स्वास्थ्य ग्रौर दीर्घायु

स्वास्थ्य और दीर्घायु

सामान्य रोगों के कारणों और उन की रोक-थाम और चिकित्सा पर सरल व सुबोध भाषा में एक निबन्ध

लेखक

डॉक्टर ए. सी. सेल्मन, एम.डी.

(भली भांति पुनरीक्षित और बहुत अधिक परिवर्द्धित)

प्रकाशक

ओरिएंटल वॉचमैन पब्लिशिंग हाउस,

सालिसबरी पार्क, पूना—१.

शुद्धि-पत्र

हमें खेद है कि इस संस्करण में छापे की कुछ त्रुटियां रह गई हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे दिए हुए शुद्ध-रूपों के अनुसार इन भूलों को ठीक कर लें :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप जो छपा है	शुद्ध रूप जो होना चाहिये
२५	१ (शीर्षक)	जावन	जीवन
२८	१ (शीर्षक)	शरार	शरीर
३२	१	कुप्रभाव	कुप्रभाव
४४	२४ (शीर्षक)	श्वास-प्रस्वास	श्वास-प्रश्वास
५१	१,२,३.	हाड्डयां, हीड्ड	हड्डियां, हड्डी
६३	२०	उठायें	उठाइये *
६७	१३	फंसाए-फसाए	फंसाए-फंसाए
६८	२	कूल्हें	कूल्हे
७३	६	चताएं	चेताएं
७७	४	मद्यपटल	मध्यपटल
८०	२०.	एक.	'एक'—नहीं होना चाहिये
८०	अन्तिम	विकास	निकास
८६	१८ (शीर्षक)	यांव	यांन
९१	३३	मेहंगी	महंगी
९४	८	मुख्यत:	मुख्यत:
९६	७ कोष्ठक में	कृमि	कृमियों
९९	४, ८, ९	पड़ें, ईकाई	पड़ें., इकाई
१०६	१ (शीर्षक), २	मक्खा, क्खी	मक्खी, मक्खी
१०७	२	मक्खयों	मक्खियों
१०८	२५	प्रोप्ति	प्राप्ति
१११	२२, २५ (अन्तिम)	परतु, खान-पीने	परन्तु, खाने-पीने
११२	१५	अट्ठाईस	अट्ठाईस
११५	३२	दिवारों	दीवारों
११६	२६-२७	ओर्जराल	आर्जराल
१२१	२	पड़.	पकड़.
१२३	१	नचे	नीचे
१२५	१४	चाहिए	चाहते
१२८	३	किस-	किसी
१२९	२, २७	ओर, पीत-पत्न	और, पति-पत्नी
१३१	२२	का	की

शेष पृष्ठ ३५१ पर देखिये।

प्रस्तावना

अपने आधारभूत मौलिक सिद्धान्तों के सर्वथा अपरिवर्तित रहने पर भी वैद्यक शास्त्र सदा अन्वेषण में संलग्न रहता है। सन् १९२४ ई. में "स्वास्थ्य और दीर्घायु" का अंग्रेजी में प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था तब से अंग्रेजी में १८ अन्य संस्करण निकल चुके हैं और यह ग्रंथ दक्षिणी एशिया की बंगला, बर्मी, गुजराती, हिन्दी, कनाड़ी, खासी, लुशाई, मलयालम, मराठी, सिंहाली, तामिल, तेलगू, और उर्दू आदि अनेक भाषाओं में अनुवादित हो चुका है।

यह पुस्तक जैसी प्रथम प्रकाशन के समय थी, अब भी वैसी ही है, परन्तु अंतरिम काल में चिकित्सा शास्त्र में अनेक नवीन अन्वेषण व आविष्कार हुए तथा पैनीसिलिन और 'सल्फा' नामक औषधियों ने कुछ विशेष बीमारियों तथा संक्रामक रोगों में क्रांति पैदा कर दी।

"स्वास्थ्य और दीर्घायु" के अंग्रेजी के १८ वें संस्करण में औषधि, विटामिन एवं पोषक तत्त्वों संबंधी उन नवीनतम अन्वेषणों का समावेश कर दिया गया है जो इस ग्रंथ में वर्णित विशेष रोगों पर लागू होते हैं। वर्तमान चिकित्सा व्यवसाय के साथ समन्वय के लिये कुछ अध्याय पूर्णत: फिर से लिखे गये हैं। इस के अतिरिक्त विकिरण व विस्फोट जैसे विषयों पर कुछ खंड जोड़ दिये गये हैं। ये ही सब विशेषताएं हिन्दी अनुवाद में मिलेंगी।

पूर्ववर्ती संस्करणों द्वारा दक्षिण एशिया में हजारों परिवारों को आशातीत लाभ हुआ है। अत: प्रस्तुत संस्करण का प्रकाशन इस आशा और विश्वास के साथ किया जा रहा है कि यह हिन्दी-भाषी जनता के हेतु स्वास्थ्य एवं जीवन संबंधी पथ-प्रदर्शक के रूप में वरदान सिद्ध होगा।

"स्वास्थ्य और दीर्घायु" पुस्तक का उद्देश्य डॉक्टर का स्थान लेना नहीं है, वरन् रोगों के लक्षण एवं निदान से परिचित कराते हुए अपने पाठकों को सुयोग्य चिकित्सकों के द्वारा ही इलाज करवाने तथा डॉक्टरों, दवाखानों और अस्पतालों को यथोचित महत्त्व प्रदान करने का परामर्श एवं प्रेरणा देना ही हमारा लक्ष्य है।

—प्रकाशक

विषय सूची

अध्याय पृष्ठ

वक्ष:स्थल और उदर-गह्वर के वृहत् यंत्र—प्रथम परत

०. हृदयावरण (हृदावरक झिल्ली); १. चुल्लिका ग्रंथि (कंठस्थ पिंड); २. दायां फेफड़ा (फुप्फुस); ३. बायां फेफड़ा; ४. श्वासपटल (वक्षोदर मध्यस्थ पेशी); ५. यकृत का दाहिना भाग; ६. यकृत का बायां भाग; ७. आमाशय (जठर); ८. बड़ी आंत का आड़ा भाग; ९. छोटी आंत (क्षुद्र अंत्र); १० अवग्रहाम स्थूलांत्र (बड़ी आंत का द्विवक्र भाग); ११.. २१. मूत्राशय
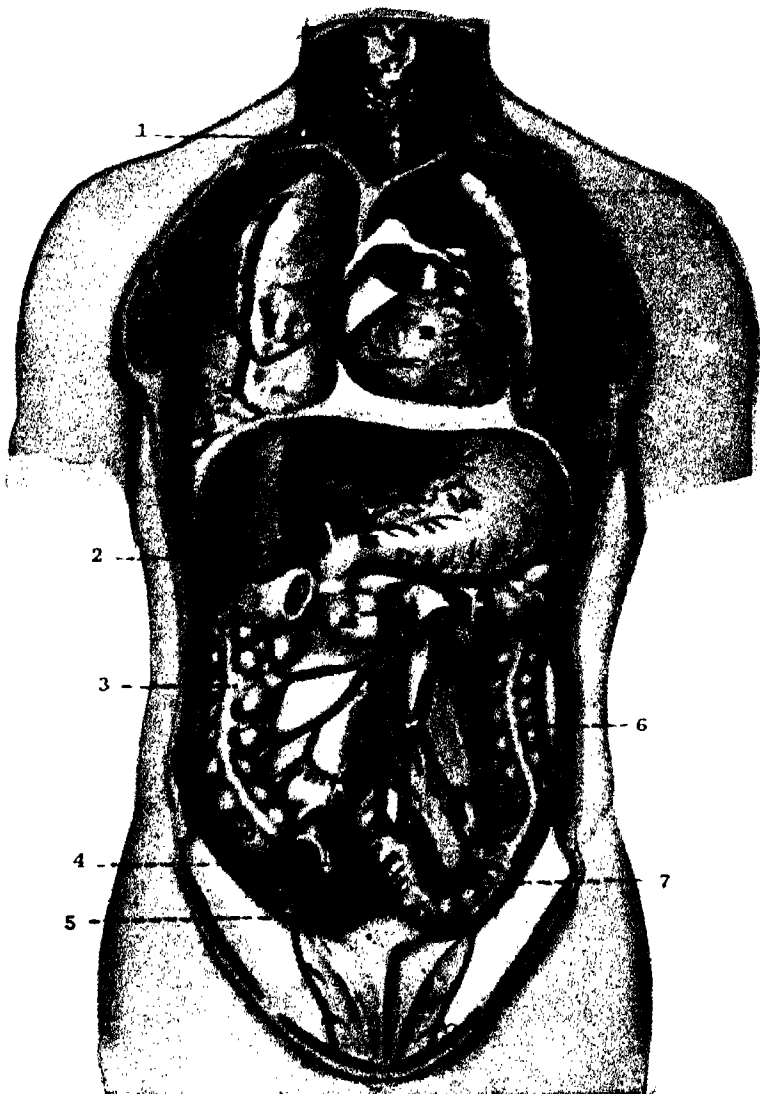
द्वितीय परत

१. श्वास-नलिका (कंठ-नाल); २. पित्ताशय; ३. उद्‌गामी वृहदन्त्र (बड़ी आंत का ऊपर की ओर जाने वाला भाग); ४. आंत्रपुच्छ; ५. वीर्य वाहक नलिका; ६. अधोगामी वृहन्त्र (बड़ी आंत का नीचे की ओर जाने वाला भाग); ७. अवग्रहाम स्थूलांत्र (बड़ी आंत का द्विवक्र भाग); ९. हृदय; १०. यकृत; १४. आमाशय (जठर); १५. पाकाशय द्वार; १६. पक्वाशय (ग्रहणी); २० स्थूल आंत्राशय ।
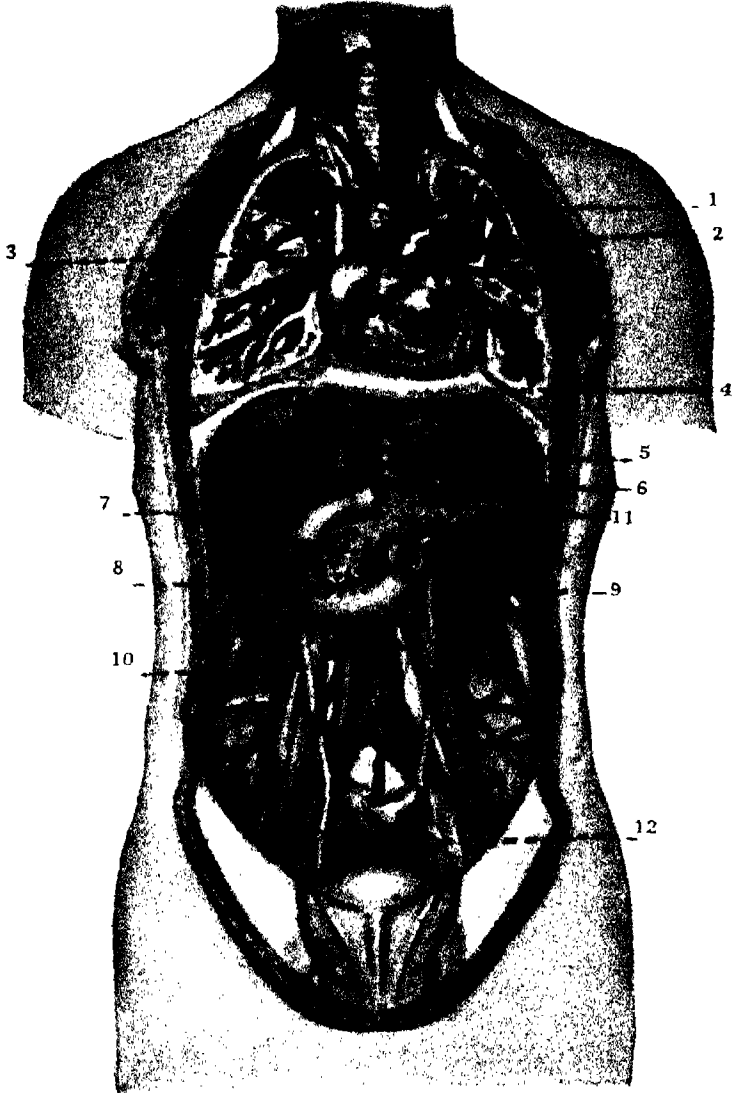
त्रितीय परत

१. महाधमनी की कमान; २. फुप्फुस-धमनी; ३. फुप्फुस-रक्त-वाहिनियां और छोटी श्वास-वाहिनियां ४. फुप्फुसावररा; ५. श्वासपटल (वक्षोदर मध्यस्थ पेशी); ६. प्लीहा और प्लीहा की रक्त वाहिनियां; ७. दाएं वृक्क (मूत्रपिंड) के ऊपर की ग्रंथि; ८. दाहिनी ओर का वृक्क; ९. बाईं ओर का वृक्क; १०. मूत्र-वाहक; ११. क्लोम-ग्रंथि (स्वादुपिंड); १२. मलाशय (गुदा)।
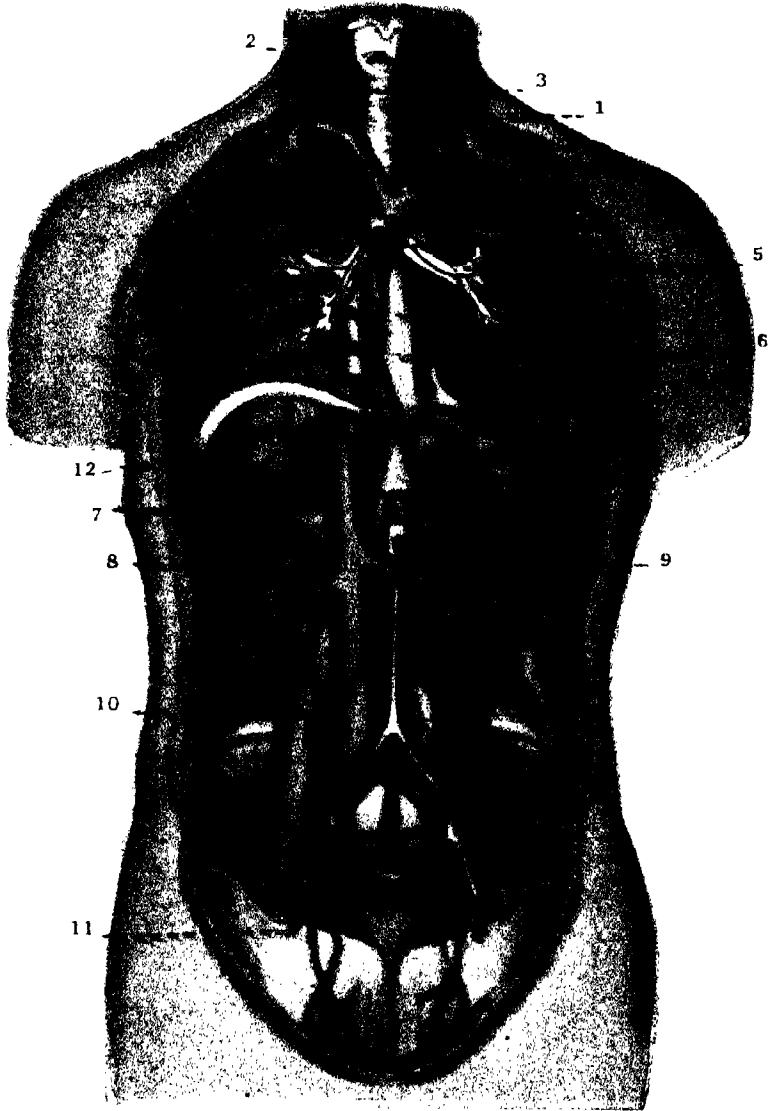
चतुर्थ परत

१. श्वास नलिका; २. दाहिनी ग्रीवा-धमनी; ३. बाईं ग्रीवा-धमनी; ४. महाधमनी की कमान; ५. बड़ी वायु नलिकाएं और छोटी वायु नलिकाओं की धमनी; ६. अन्न-नलिका ७. वृक्क (मूत्रपिंड) के ऊपर की ग्रंथि; ८. वृक्कों में के प्याले के आकार के गह्वर; ९. बाईं ओर का वृक्क (मूत्रपिंड); १०. मूत्र-वाहक; ११. वंक्षण-द्वार; १२. यकृत-शिराएं।
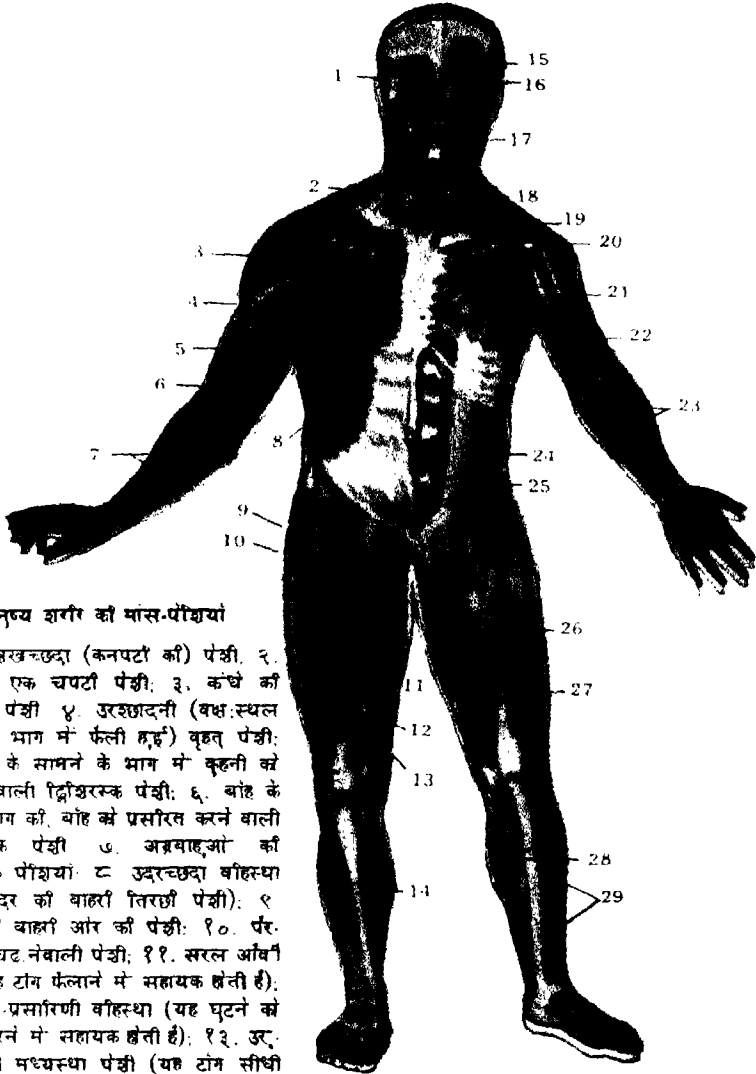
मनुष्य शरीर की मांस-पेशियां

१ शखच्छदा (कनपटी की) पेशी, २. गले की एक चपटी पेशी; ३. कंधे की त्रिकोणी पेशी ४. उरश्छादनी (वक्ष:स्थल के ऊपरी भाग में फैली हुई) वृहत् पेशी; ५. बांह के सामने के भाग में कुहनी को मोड़ने वाली द्विशिरस्क पेशी; ६. बांह के ऊपरी भाग की, बांह को प्रसीरत करने वाली त्रिशिरस्क पेशी ७. अग्रबाहुओं की आकुंचक पेशियां ८. उदरच्छदा बहिस्था पेशी (उदर की बाहरी तिरछी पेशी); ९ जांघ की बाहरी ओर की पेशी; १०. पैर-पर-पैर चढ़ानेवाली पेशी; ११. सरल ओर्वी पेशी (यह टांग फैलाने में सहायक होती है); १२ उरु-प्रसारिणी बहिस्था (यह घुटने को सीधा करने में सहायक होती है); १३. उरु-प्रसारिणी मध्यस्था पेशी (यह टांग सीधी करने में सहायक होती है); १४. जघासम्मुखा पेशी (पिंडली की भीतरी हड्डी से सम्बन्ध); १५. चक्षुपुट तथा कपाली पेशी; १६ चक्षुपुट सम्मिलक पेशी; १७. चवर्ण पेशी (निचले जबड़े में होती है और चबाने में सहायक होती है); १८. कंधे की त्रिकोणी पेशी; १९. अक्षका पेशी (सिर को पीछे को ओर दाएं-बाएं होने और स्कन्धास्थि को घुमने में सहायक होती है); २०. हंसली (कंठास्थि); २१. उरश्छादनी लघु पेशी (उरोज स्नायु); २२. बांह के ऊपरी भाग में कुहनी को मोड़ने वाली द्विशिरस्क पेशी; २३. अग्रबाहु की आकुंचक पेशियां; २४. उदरच्छदा मध्यस्था पेशी; २५. उदरच्छदा सरल पेशी; २६. जांघ की केन्द्राभिमुख आकर्षिणी पेशी; २७. उरु-प्रसारिणी बहिस्था पेशी; २८. पिंडली की पेशी; २९. प्रसारिणी अन्तस्था जघा पेशी ।
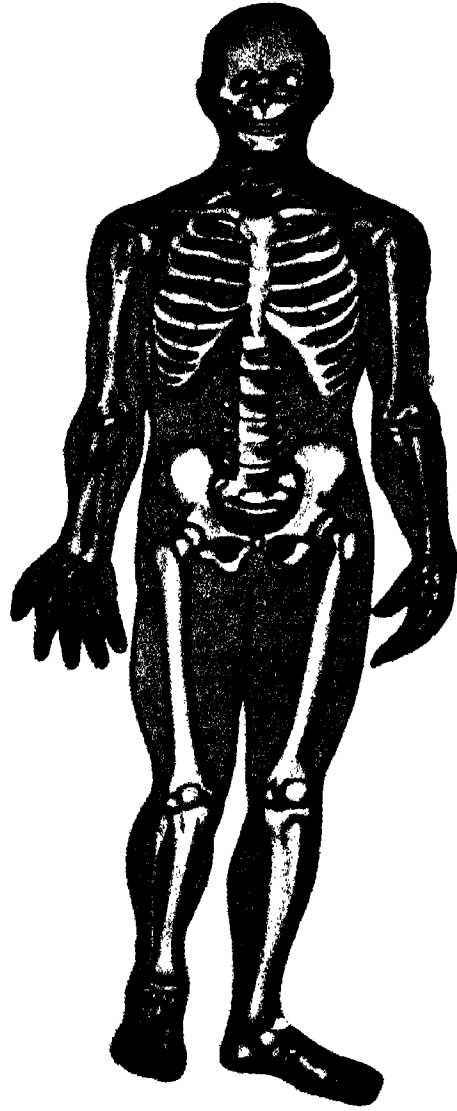
अस्थीपंजर
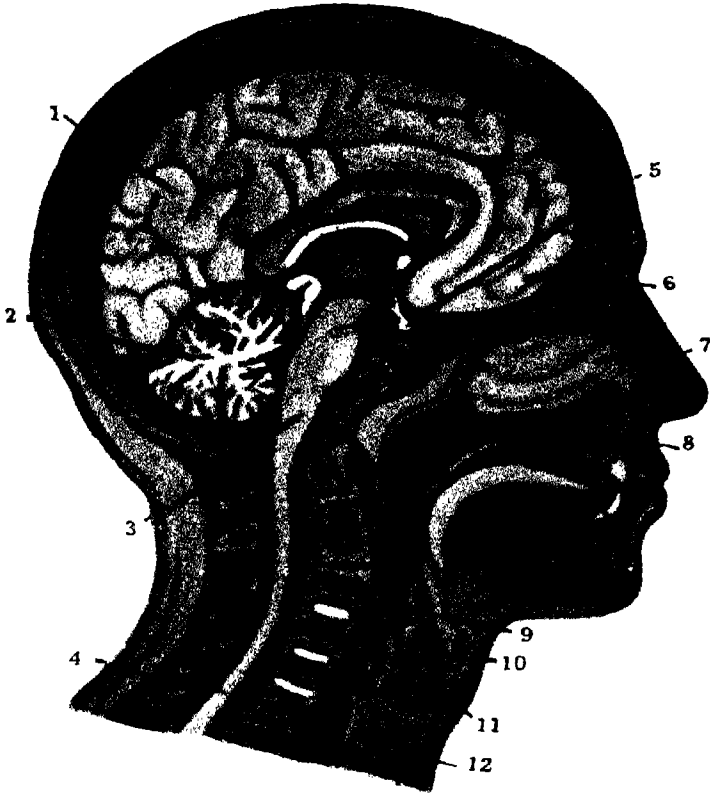
सिर की खड़ी काट

१. वृहत् मस्तिष्क; २. लघु मस्तिष्क; ३. लम्ब नाड़ी; ४. सुषुम्ना; ५. शीर्षस्थ-ग्रंथि; ६. कपाल की हड्डी का खोखला भाग; ७. नासा-गह्वर; ८. कड़ा तालु; ९. अन्न-नलिका; १०. स्वरयंत्र; ११. बाईं स्वर-रज्जु; १२. श्वास-नलिका।
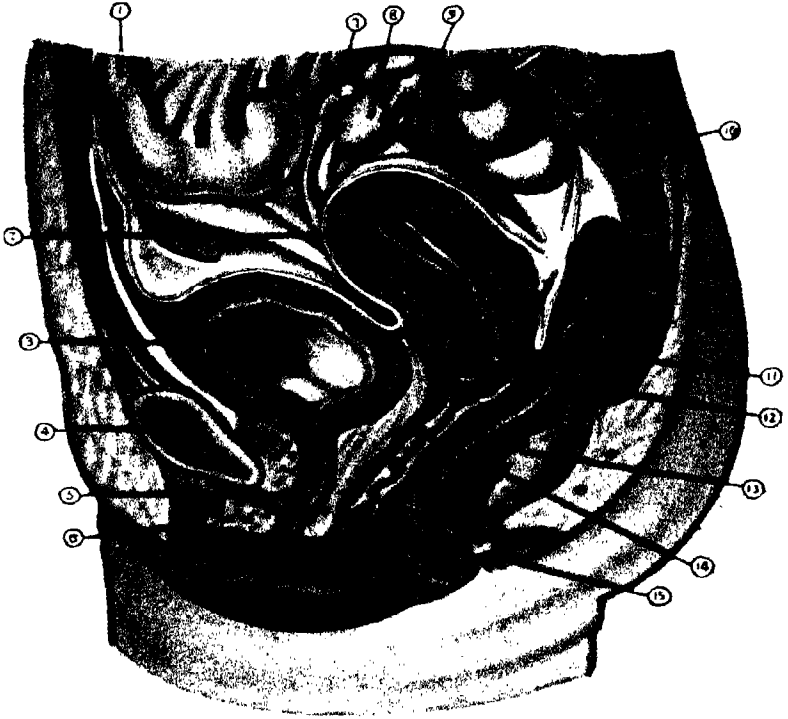
स्त्री के वस्ति (पेड़ू) गह्वर के अंग

१. अंत्र; २. गर्भाशय; ३. मूत्राशय; ४. विटपास्थि; ५. मूत्रमार्ग; ६. भगांकुर (भगनासा); ७. डिम्ब-प्रणाली (रजोवाहक नलिका); ८. बीजाण्डकोश (डिम्बाशय); ९. झालरदार छोटी नलिकाएं; १०. त्रिकास्थि (डिम्बास्थि); ११. गुदास्थि; १२. गर्भाशय ग्रीवा; १३. मलाशय; १४. योनि; १५. मलद्वार।
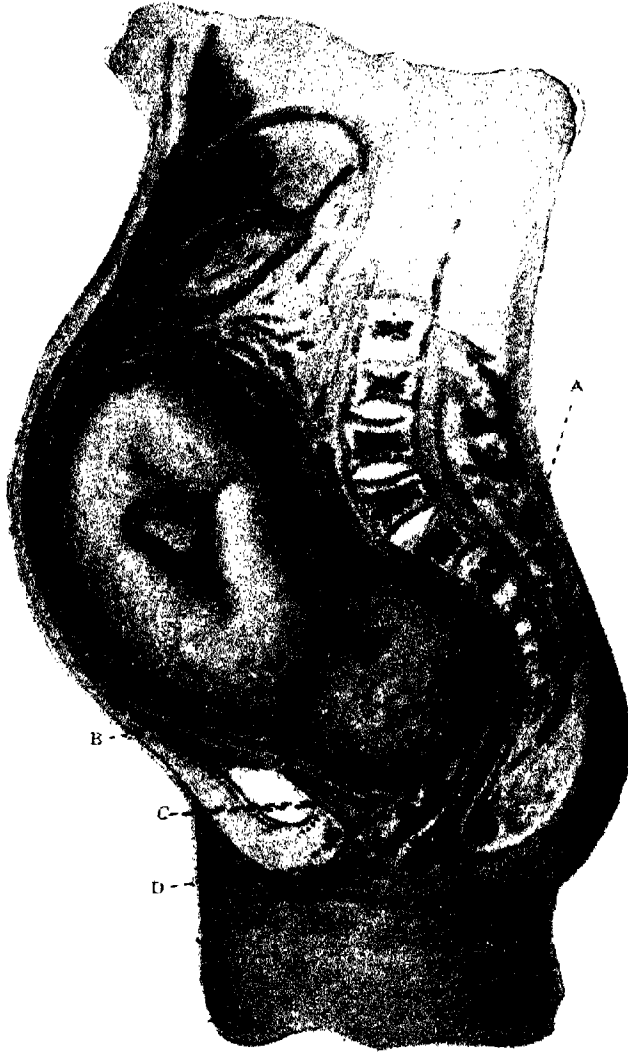
गर्भिणी

A. मलाशय; B. गर्भाशय; C. मूत्राशय D. योनि ।
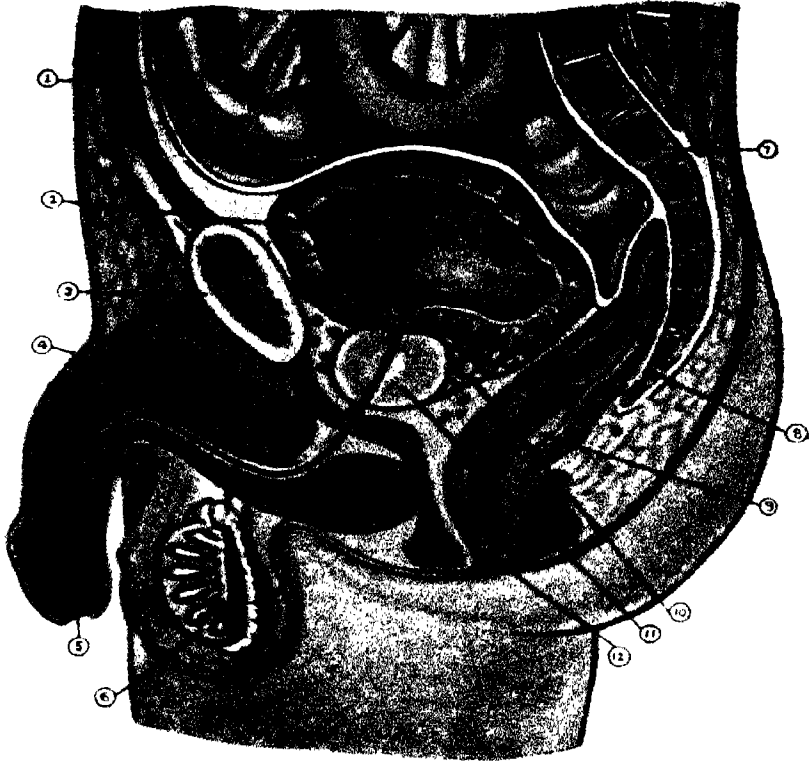
पुरुष के वस्तिगह्वर के अंग

१. अंत्र; २. मूत्राशय; ३. विटपास्थि; ४. लिंग के स्पंज समान खोखले भाग; ५. मूत्रमार्ग; ६. वीर्यपिंड; ७. त्रिकास्थि; ८. गुदास्थि; ९. मलाशय; १०. वीर्य की थैलियां (शुक्र प्रपिकाएं); ११. पौरुष-ग्रंथि; १२. मलद्वार ।
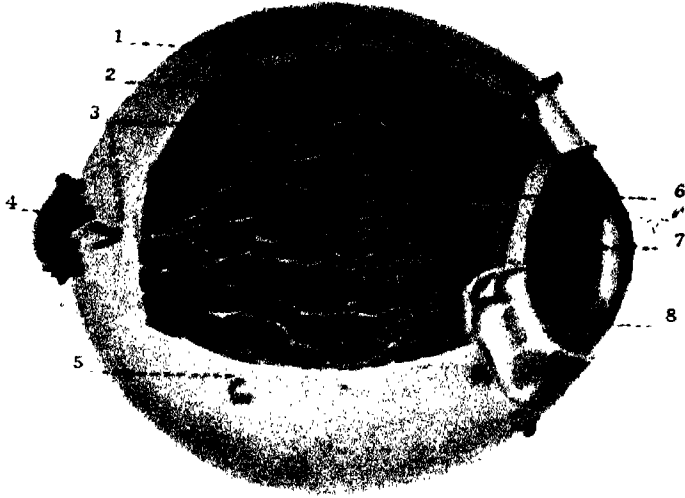
नेत्र-रचना

१. शुभ्रपटल; २. मध्यपटल; ३. रक्त-वाहिनियां; ४. दृष्टि नाड़ी तन्तु; ५. आंख के ढेले से निकलती हुई महाशिरा; ६. "सिलिअरी" स्नायु (पेशी); ७. पुतली; ८. कृष्ण-मण्डल।
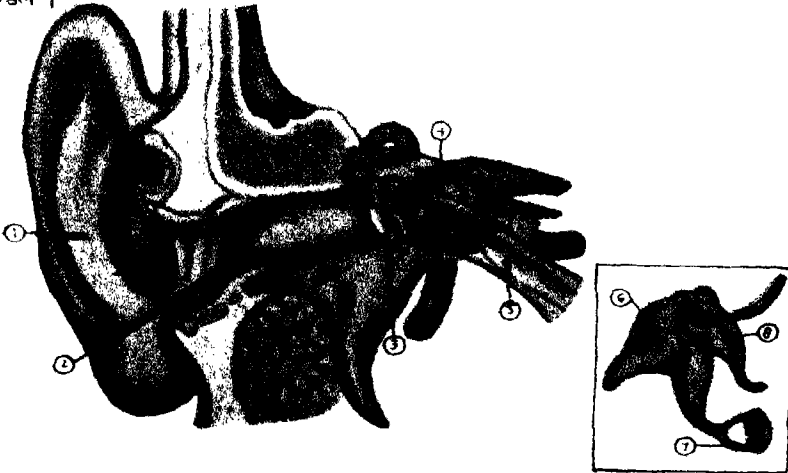
कान और उस की हड्डियां

१. बाह्य कर्ण; २. कर्ण-नलिका; ३. कान का पर्दा; ४. कर्ण-कम्बु (कान का शंखाकृति भाग); ५. कम्बु-कर्णी नलिका; ६. नेहाई; ७. रकाब; ८. घन (हथौड़ा)।

झिल्लीक-प्रवाह में गले की दशा

तालुमूल-प्रवाह में गले की दशा
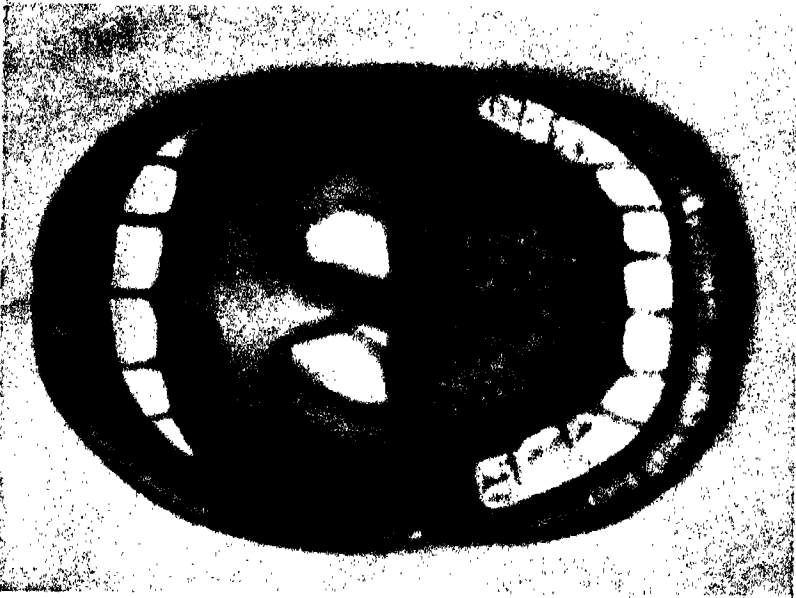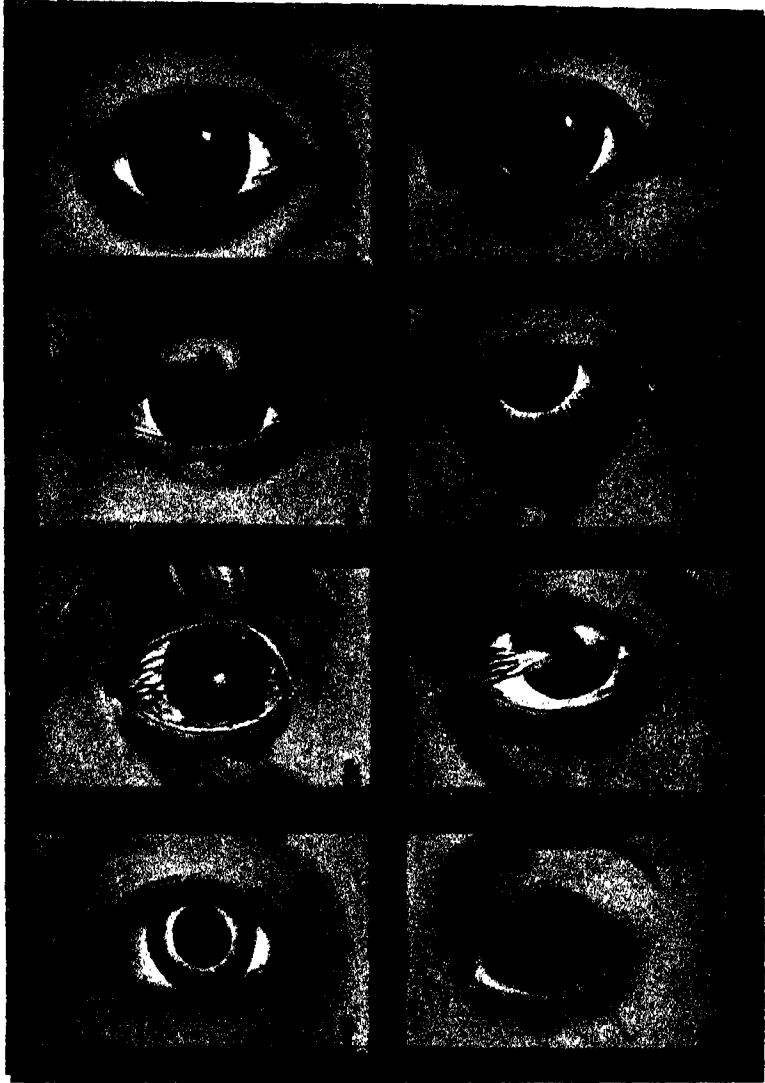
नेत्र रोग

१. पलकों का प्रदाह अथवा नेत्र-प्रदाह; २. अंजनी या गुहेरी; ३. नेत्रच्छद ग्रंथि के बढ़ जाने से आँख के पपोटे में सूजन; ४. शुभ्रपटल-प्रदाह (यह रोग संक्रामक है,) ५. कनीनिका (पारदर्शक पर्दे) का फोड़ा; ६. अनुपक्ष (नाखून); ७. मोतिया-बिन्दु; ८. कृष्णमण्डल (उपतारा) प्रदाह।
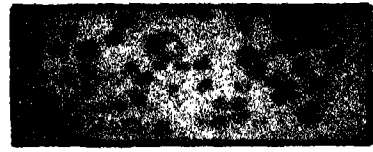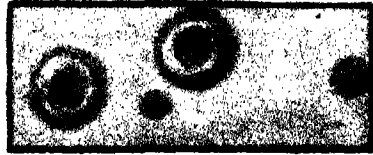
चर्म-रोग

१.लाल-ज्वर; २. छोटी माता (खसरा); ३. मोतिया-चेचक; ४. शीतला; ५. विसर्पिका (भैंसिया दाद); ६. विम्बिका रोग; ७. जुलपित्ती (आम-वात); ८. ज्वर-नाशक "ऑण्टीपाइरीन" के प्रयोग के कारण त्वचा में निकल आने वाले दाने; ९. आंत्रिक ज्वर (मियादी बुखार); १०. धूम्र-रोग (शीनाद)।
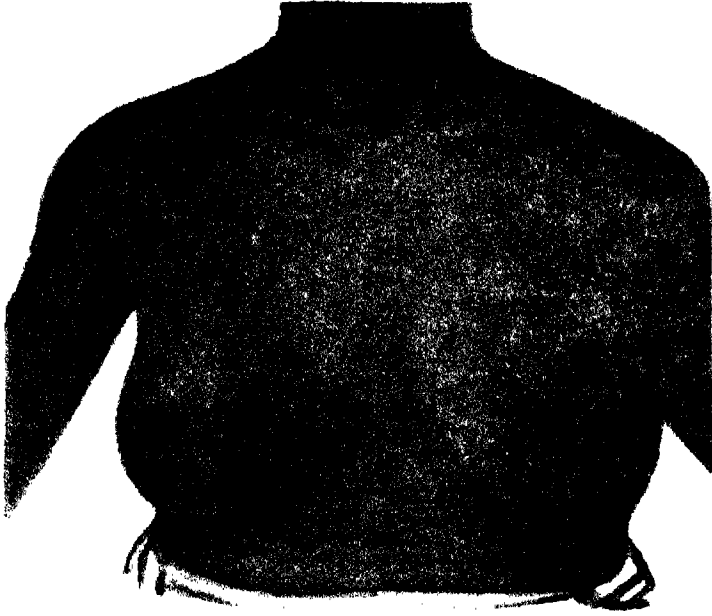
स्तन, जिह्वा तथा ओंठ में नासूर (कैंसर)

दबाव-बिन्दु

शरीर-यंत्रांग

१ स्मृति, विचार-क्रिया तथा बुद्धि-क्रिया के केन्द्र, २ दृष्टि, ३. श्रवण, ४ रक्त-दाब-नियामक, ५ नाड़ी-गति-द्योतक ६ श्वसन-गति-द्योतक: ७. ऊष्णता नियामक-यंत्र ८. समन्वय-नियामक सुषुम्ना, ९. प्रेषण-तार, १० प्राण-वायु-अन्तर्ग्रहण, ११. कार्बन-डाइ-आक्साइड का निस्सरण: १२ प्राण-वायु का रक्त में प्रवेश; १३. प्राण-वायु का हृदय में प्रवेश, १४. कार्बन-डाइ-आक्साइड फेफड़ों में लेजाई जा रही है. १५. हृदय का बायां भाग: १६ हृदय का दायां भाग १७. ग्रीवा तथा सिर में रक्त ले जाया जा रहा है. १८. वक्षःस्थल तथा शरीर में रक्त ले जाया जा रहा है: १९ क्लोम-ग्रंथि में रक्त ले जाया जा रहा है: २० रक्त का प्लीहा (तिल्ली) में प्रवाह: २१. पेशी 'पम्प': २२. हड्डियों से सम्बध धमनियां, २३. वृक्कों से सम्बध धमनियां, २४ अस्थि-मज्जा: २५. तथा २६. महाशिराओं द्वारा रक्त की वापसी: २७. अधोगामी महाशिरा, २८. लारोत्पादक ग्रंथियों में रक्त की वापसी: २९ जिह्वा ३० दोनों द्वारा काटे जाने का कार्य ३१. चर्वण दन्त (बड़ी डाढ़) ३२. अन्न-नलिका: ३३. जठर का ऊपरी मुंह: ३४ पाचक-ग्रंथि: ३५. लवनाम्ल, ३६ दूध का दही बनाने वाला पदार्थ, ३७. जठर का निचला मुंह: ३८. क्लोम-ग्रंथि: ३९ पित्त या पित्त-रस, ४०. क्लोम-रस अंत्र में प्रवेश कर रहा है. ४१. अंत्र के रस, ४२. महालसिका वाहिनी (वक्षरसवाहक) में वसा प्रवेश कर रही है: ४३ प्रोटीन: ४४ मयुक्त (कोष्ठ) शिरा में प्रवेश करने वाली शर्करा: ४५ संयुक्त (कोष्ठ) शिरा यकृत को 'आहार' पहुंचा रही है. ४६. महालसिका वाहिनी (वक्षरसवाहक) अंत्र में से टो कर वसा परिभ्रमण-संस्थान में पहुंचाई जा रही है: ४७ यकृत में शर्करा जैव श्वेतसार परिवर्तित हो रही है. ४८. प्रोटीन यकृत में प्रवेश कर रहा है: ४९. सारहीन-पदार्थ यकृत में से निकल रहा है: ५०. पीत पित्त-वर्ण: ५१ रक्ताभ पित्त-वर्ण, ५२ पित्ताशय: ५३ त्यक्त पदार्थ यकृत में से वृक्कों में ले जाया जा रहा है: ५४. जैव श्वेतसार रक्त में लौटाया जा रहा है: ५५. मूत्राशय: ५६ चुल्लिका ग्रंथि (कंठस्थ पिंड) का स्रावकारक यंत्रांग, जो अपना रस सीधा रक्त में फेंकता रहता है: ५७. प्लीहा (तिल्ली): ५८. दोनों वृक्क।

A. दायां फेफड़ा (फुप्फुस): B. अन्न-नलिका: C. बायां फेफड़ा। D फुप्फुसीय धमनी. E हृदय. F. फुप्फुसीय शिरा G आमाशय (जठर): I. अंत्र (आंत) J. मज्जा. K. मांसपेशी।

अध्याय १

जीवन – हमारी सब से बहुमूल्य सम्पत्ति

जीवन मनुष्य की सब से बहुमूल्य सम्पत्ति है और उस के बाद स्वास्थ्य का नम्बर आता है। स्वास्थ्य के बिना यदि जीवन की सारी नहीं तो बहुत कुछ उपयोगिता अवश्य जाती रहती है और इस के अतिरिक्त मनुष्य सांसारिक सुख भी नहीं उठा सकता। यदि उस का शरीर स्वस्थ नहीं, तो वह अपनी इच्छानुसार काम नहीं कर सकता, जिस कार्य में उसे सुख मिलता है वह उसे नहीं कर सकता, जिस भोजन में उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह उस का उपयोग नहीं कर सकता।

रोगी मनुष्य स्वयं ही पीड़ा और कष्ट नहीं भोगता और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकता, बल्कि घर के एक-दो लोगों को अपना निजी काम त्याग कर उस की देख-भाल में अपना समय बिताना पड़ता है। इस प्रकार वह दूसरों पर भार बन जाता है क्योंकि उन्हें उस की सेवा सुश्रूषा करनी पड़ती है और उस के भोजन और कपड़े का प्रबंध करना पड़ता है।

रोगी दूसरों के लिये भय का कारण

इन सब बातों के अतिरिक्त रोगी अपने अड़ोस-पड़ोस के लोगों के लिये भी एक प्रकार के भय का कारण बन जाता है क्योंकि बहुत से रोग आसानी से एक दूसरे को लग जाते हैं। बहुधा ऐसा देखने में आता है कि परिवार के एक सदस्य के रोगी होने के पश्चात्, दूसरे सदस्यों को भी यह रोग लग जाता है और उन्हें चारपाई की शरण लेनी पड़ती है। अधिकतर वह रोग उस परिवार से दूसरे घरों में भी पहुंच जाता है जिस के परिणाम स्वरूप उस समाज के रोगी व्यक्ति अपना काम भली भांति नहीं कर सकते जिस से आर्थिक हानि होती है और सब से बड़ी बात तो यह कि कितनी ही जानों का नुकसान भी हो जाता है।

इस के अतिरिक्त जब एक बार स्वास्थ्य गिर जाता है, तो एक ही दिन में फिर पहले जैसा नहीं हो सकता। यह सोचना बड़ी भूल है कि यह रोग साधारण सा है और दवा की कुछ खुराकें खा लेने पर ठीक हो जायगा। बहुत से रोग तो ऐसे होते हैं जिन का निवारण करने में बहुत समय और धन लग जाता है। इस दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य का महत्व जानना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपने शरीर का ध्यान रक्खे और उसे आरोग्य रक्खे। यह वह कर्त्तव्य है जो उसे प्रथम अपने लिये, और फिर अपने परिवार, अपने

पड़ौसियों और अपने देश के प्रति पालन करना चाहिये और विशेषकर अपने सृष्टा के लिये तो यह उचित ही है। यह सोचना हमारी भूल है कि रोग देवताओं, भूत-प्रेतों या जलवायु के कारण आता है और उसे रोका नहीं जा सकता; और तो और जीना-मरना तक भाग्य के हाथ में नहीं।

बीमार पड़ने का कारण

स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन करने के कारण ही मनुष्य किसी-न-किसी रोगका शिकार रहता है। परन्तु स्वास्थ्य के नियमों का पालन कर के और शरीर की सफाई की ओर ध्यान देकर उन रोगों में से ८० प्रतिशत रोगों से बचा जा सकता है, जिन से अधिक संख्या में लोग पीड़ित रहते हैं; और सभी के हृदयों में पाई जाने वाली दीर्घायु की इच्छा पूर्ण हो सकती है। इस के विपरीत स्वास्थ्य के नियमों की उपेक्षा करने से आदमी को वे सभी आपत्तियां आ घेरती हैं, जिन से सभी लोग भयभीत रहते हैं, और वे आपत्तियां हैं—विभिन्न प्रकार के रोग और समय से पहले मृत्यु !

शरीर की ओर कम ध्यान दिया जाता है

साधारणतः जब तक लोग स्वस्थ्य रहते हैं, तब तक अपने शरीर की रक्षा की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं, परन्तु जब वे रोगी और दुर्बल हो जाते हैं और मृत्यु उन के निकट आ जाती है, तब उन्हें अपने शरीर की रक्षा की पड़ती है, परन्तु तब पानी सिर से ऊंचा हो चुकता है। यह वही बात हुई कि जब चोर चोरी कर गया, तब द्वार बन्द करने का ध्यान आया। शरीर की रक्षा करने का समय होता है युवावस्था। यह कहा गया है कि इस उद्देश्य के लिये कि बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो यह आवश्यक है कि उस के उत्पन्न होने से पूर्व ही उस का ध्यान रक्खा जाए। माता-पिता को अपने स्वास्थ्य पर यथोचित ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि निर्बल और रोगी माता-पिता के बच्चे भी हृष्ट-पुष्ट और बलवान् नहीं हो सकते।

शायद इस पुस्तक के पाठक युवावस्था के हों। कदाचित् उन में से बहुत से व्यक्तियों के शरीर दुर्बल हों और कुछ रोग-ग्रस्त भी हों। इस दशा में यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इस पुस्तक के पाठक स्वास्थ्य के नियमों को पढ़ कर न केवल स्वस्थ्य शरीर का ध्यान रखना सीखें, बल्कि यह भी जान लें कि रोग ग्रस्त शरीर को किस प्रकार पुनः स्वस्थ्य बनाया जा सकता है। इस पुस्तक का उद्देश्य यह है कि पाठक को इतनी जानकारी हो जाए कि वह रोग को दूर रख सके और अपने परिवार वालों के स्वास्थ्य की रक्षा कर सके। इस पुस्तक के अध्ययन से इतना ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि जो व्यक्ति स्वयं चिकित्सक न हो वह भी रोगों की चिकित्सा कर सके। निस्सन्देह क्षय जैसे रोग में तो किसी चतुर डॉक्टर को बुलाना आवश्यक ही है क्योंकि कोई भी पुस्तक अनुभवी डॉक्टर का स्थान नहीं ले सकती।

रोग के कारण

बहुत से लोग अज्ञानता के कारण यह सोचते हैं कि रोग दैवयोग से होता है। परन्तु डॉक्टरों और वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रोग कुछ मुख्य कारणों के फलस्वरूप

होते हैं। कुछ रोग यथोचित और विधिवत् भोजन न मिलने से हो जाते हैं, और बेरीबेरी (beri beri) उन्हीं में से एक है। बहुत से रोग शरीर में विष फैल जाने से हो जाते हैं। यह बहुधा उन लोगों को होता है जो दियासलाई बनाने के कारखानों में काम करते हैं। गलत आदतों द्वारा भी रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे अपथ्य आहार से अजीर्ण का रोग हो जाता है। उपरोक्त कारण संसार के दशांश रोगों तक ही सीमित हैं, शेष के ९ अंशों का कारण रोग-उत्पादक कीड़े होते हैं।

मनुष्य के सब से बड़े शत्रु

रोग उत्पन्न करने वाले कीड़े मनुष्य के सब से बड़े शत्रु हैं। प्रतिदिन ये लाखों मनुष्यों की हत्या करते हैं। इन कीड़ों से सर्दी-जुकाम, तपेदिक (क्षय रोग), निमोनिया, दस्त, पेचिश, मोतीझरा, (मियादी बुखार; आंत्रिक ज्वर) हैजा, हनुस्तंभ, काली खांसी, मलेरिया, कोढ़, गिल्टी वाली महामरी (प्लेग) और बहुत से अन्य रोग होते हैं। इस सूची को पढ़ कर मालूम होगा कि संसार में बहुत सी मौतें रोगों के इन कीटाणुओं से होती हैं।

रोगों के कीटाणु दो प्रकार के होते हैं। एक वनस्पति से और दूसरे चतुष्पदों से उत्पन्न होते हैं। रोगों के ये कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि दिखाई नहीं देते। बहुत से कीटाणु तो इतने छोटे होते हैं कि सूक्ष्मदर्शक-यंत्र (खुर्दबीन) में उन का आकार सहस्र गुना बड़ा करने पर भी वे राई के दाने के बराबर दिखाई देते हैं।

रोग के कीटाणुओं की वृद्धि बहुत जल्दी होती है। अनुकूल दशा में हैजे अथवा मोतीझरा के कीटाणु दस घंटे में दस लाख हो जाते हैं। इतने सूक्ष्म और लाखों की संख्या में होने के कारण ये शीघ्रता से दूर-दूर तक फैल जाते हैं। ये कीटाणु कुओं के पानी में, नदी और तालाबों में, सड़कों और मकानों के फर्शों और दीवारों की धूल में, यहां तक कि हमारे खाद्य पदार्थों और पीने के पानी में भी पाए जाते हैं। कहा जा सकता है कि घनी बस्तियों में रोगों के कीड़े सब ओर पाए जाते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह सीखना उचित है कि किस प्रकार इन्हें नष्ट किया जाए। इस पुस्तक के अन्य अध्यायों में इन विषयों का वर्णन किया जाएगा।

अध्याय २

शरीर की साधारण रचना व व्यवस्था

◇◇◇

शरीर के तीन मुख्य भाग हैं, सिर, धड़, ऊपर और नीचे के अंग। धड़ में बड़ा खोल (देह गुहा) होता है जिस में प्राय: सब मुख्य इंद्रियां होती हैं। यह खोल ऊपर और नीचे के भागों में एक पतली पटल द्वारा विभाजित है। इस दिवार या पटल को श्वासपटल या अन्तर्पटल (Diaphragm) कहते हैं। पृष्ठ १६ देखिये। ऊपर का भाग छाती (वक्ष:स्थल) कहलाता है। इस में दिल और फेफड़े हैं और इस के पीछे के भाग में श्वासनलिका और अन्ननलिका, आमाशय छोटी और बड़ी आंतें और क्लोम-ग्रंथि परस्पर मिल कर काम करते (यकृत), आमाशय, तिल्ली, क्लोम-ग्रंथि, छोटी और बड़ी आंतें हैं। इस के बाहर पीछे की ओर गुर्दे (वृक्क) हैं।

शरीर के प्रत्येक अंग का अपना मुख्य प्रकार्य है और प्रत्येक अंग अवयव कहलाता है। कई अवयव मिल कर काम करते हैं। उदाहरणार्थ—भोज-पाचन-क्रिया में मुंह, दांत, अन्ननलिका, आमाशय छोटी और बड़ी आंतें और क्लोम-ग्रंथि परस्पर मिल कर काम करते हैं। इन को सामूहिक रूप से पाचन-क्रिया के अवयव कहते हैं। नाक, श्वासनलिका और फेफड़े, मिल कर शरीर में स्वच्छ वायु का प्रवेश कराते हैं और जीवान्तक वायु (कार्बन-डाई-ऑक्साइड) को बाहर निकालते हैं (देखिये अध्याय ६); और इस कारण इन को श्वास-प्रश्वास के अवयव कहते हैं। हृदय या रक्ताशय और सब छोटी-बड़ी रक्त-वाहिनियां परस्पर शरीर में रुधिर पहुंचाने का कार्य करती हैं, इस कारण वे खून का दौरा कराने वाले (रक्त-परिभ्रमण के) अवयव कहलाती हैं। गुर्दे, त्वचा, फेफड़े, कलेजा और बड़ी आंत मिल कर शरीर के मल को दूर करते हैं, और इस कारण उन को सफाई करने वाले (उत्सर्जक) अवयव कहते हैं। मस्तिष्क एवं पीठ का बांसा (सुषुम्ना) और छोटे-बड़े तन्तु (चेताएं) शरीर के अन्य अवयवों से काम कराते हैं तथा उन पर नियंत्रण रखते हैं—इन्हीं से मिल कर स्नायु-मंडल (चेता-संस्थान) बनता है। इन अवयवों के अतिरिक्त हड्डियां हैं जिन से अस्थिपिंजर बना हुआ है और जिन के सहारे शरीर का ढांचा खड़ा रहता है; और पेशियां हैं जो शरीर के दूसरे भागों को चलाती हैं।

यदि शरीर के सब भागों की रक्षा की जाए और उन की सब आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए, तो शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ रहेगा।
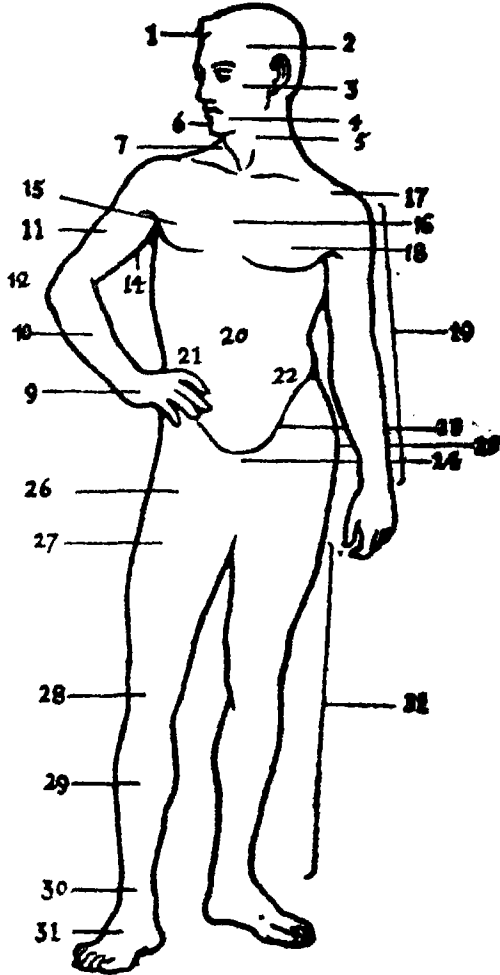
शरीर के अंग

१. माथा २. कनपटी ३. कपोल (गाल) ४. जबड़ा ५. गर्दन ६. ठुड्डी ७. श्वास-नलिका ९. हाथ १०. अग्र-बाहु ११. बांह (भुजा) १२. कोहनी १४. बगल १५. दाहिनी छाती १६. वक्षःस्थल १८. बाईं छाती १९. बांह २०. उदर २१. यकृत (कलेजा) २२. प्लीहा (तिल्ली) २३. उरुसन्धि (Groin) २४. वस्ति प्रदेश २५–२६. कूल्हे २७. टांग का ऊपर-वाला भाग या जांघ २८. घुटना २९. पिंडली ३०. गट्टा ३१. पांव ३२. टांग

स्वास्थ्य के छः नियम

शरीर की रक्षा के निमित्त जो बातें आवश्यक हैं और जिन से हमारा स्वास्थ्य बना रह सकता है, उन का सार निम्नलिखित छः नियमों में है:

१. शरीर के लिए उचित भोजन और पानी आवश्यक है।
२. शरीर को अधिक सूर्य-प्रकाश तथा स्वच्छ वायु की आवश्यकता है।
३. शरीर के लिए निरन्तर अपने अन्दर से मल आदि निकालते रहना आवश्यक है।
४. शरीर की रक्षा आवश्यक है जिस से सर्दी या गर्मी का इस पर आक्रमण न हो सके।
५. शरीर के लिये प्रतिदिन उचित व्यायाम और विश्राम आवश्यक है।
६. शरीर को सदा विषैले पदार्थों और रोग-उत्पादक कीटाणुओं से सुरक्षित रखना आवश्यक है।

इन छः नियमों पर ध्यान देने से रोगों की रोक-थाम होती और दीर्घायु प्राप्त होती है, परन्तु इन में से एक के प्रति भी उदासीन होने से रोग-ग्रस्त होने की आशंका बनी रहती है।

अध्याय ३

स्वस्थ शरीर के लिए अच्छा भोजन

साधारणत: औसत दर्जे के व्यक्ति "क्षुधा" शब्द का अर्थ भोजन की इच्छा समझते हैं। वास्तव में क्षुधा स्वाद और गंध संबंधी इन्द्रिय जनित इच्छाओं का संयुक्त रूप है। इस का वास्तविक कारण पूर्णत: नहीं समझा जा सकता और स्वाद की इच्छा की अपेक्षा इस की विस्तृत व्याख्या अधिक कठिन है। भोजन के अभाव से ही भूख एवं क्षुधा का अनुभव होता है। खाद्य पदार्थ के द्वारा इन दोनों प्रकार की इंद्रिय-जनित इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है। लम्बे उपवास से विषय-रुचि क्षीण हो जाती है परन्तु भूख बनी रहती है। अन्ननलिका में खाद्य पदार्थ गुजरने पर भूख शान्त हो जाती है, परन्तु क्षुधा का अस्तित्व फिर भी बना रह सकता है। पेट खाली हो जाने पर भूख पुनर्जीवित हो जाती है, परन्तु वह तुरंत ही प्रकट नहीं होती। इस प्रकार क्षुधा मुख्यत: स्वाद एवं गंध पर आधारित ज्ञानेन्द्रिय संबंधी समस्या है। जब इस की संतुष्टि हो जाती है तो उत्तेजना लुप्त हो जाती है। इस अंतिम निष्कर्ष का अनेक दृष्टियों से बड़ा व्यावहारिक महत्त्व है।

१. यदि भोजनके आरम्भमें अत्यंत स्वादिष्ट या मीठी वस्तुओंका प्रयोग किया जाए तो पोषण कार्य के लिये आवश्यक, पर्याप्त मात्रा में खाना खा लेने से पूर्व से ही क्षुधा की पूर्णतया निवृत्ति हो सकती है। यह बात बहुधा उन बच्चों में देखी जाती है जो खाना शुरू करने के पूर्व ही भोजनान्तर प्रयोग किए जाने वाले मिष्टान्न अथवा फल खा लेते हैं।

२. लगातार बहुत ज्यादा मसालेदार भोजन का प्रयोग करने वाले व्यक्ति भोजन के अधिक स्वास्थ्यप्रद पदार्थों का महत्त्व नहीं जान पाते और इस प्रकार अधिक पोषक आहार से ही संतुष्ट नहीं हो पाते।

३. कोई भी व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में सामान्यतया अच्छा भोजन कर सकता है और शरीर की आवश्यकतानुसार पर्याप्त परिमाण में पोषक पदार्थ प्राप्त कर लेने के पश्चात् सुस्वादु तथा भूख को उत्तेजित करने वाली वस्तुएं खाने के प्रलोभन में पड़ कर जरूरत से ज्यादा खा लेता है। सामान्य रूप से लोग ऐसा कर बैठते हैं।

४. बहुत चटपटे भोजन से क्षुधा जनित लालसा के शमनार्थ उत्तेजक द्रव्यों की आवश्यकता हो सकती है। इस प्रकार निस्संदेह अधिक मसालेदार भोजन, मिठाई इत्यादि के प्रयोग तथा मादक पेयों में परस्पर नियंत्रणात्मक निश्चित संबंध होता है।

५. साधारणतया मिठाई का बहुत अधिक प्रयोग करने के कुप्रभाव की ओर लोगों का ध्यान ही नहीं जाता। बच्चे इस का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जो लोग मिठाई के अधिक शौकीन होते हैं उन्हें भोजन में तब तक स्वाद ही नहीं आता जब तक बहुत मीठा न कर लिया जाये। यह आदत बढ़ कर उस सीमा तक पहुंच सकती है जहां बच्चा आवश्यक भोजन की परवा ही नहीं करता। इस प्रकार, कभी-कभी लोगों के कथनानुसार उन की "भूख विचित्र सी" हो जाती है और माता-पिता अपने बच्चों की सामान्य भोज्य पदार्थों के प्रति रुचि या अरुचि का कारण नहीं समझ पाते।

रुग्णावस्था में तथा रोगों की रोकथाम की दृष्टि से भोजन का उचित समाहार एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। भोजन के लिये उचित पदार्थों को एकत्र करने में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन में अम्ल तथा क्षार युक्त वस्तुओं का संतुलित मात्रा में समावेश हो। अम्ल उत्पादक भोज्य पदार्थ वे हैं जो जलाये जाने पर ऐसी राख में परिवर्तित हो जाते हैं जिन में अम्ल की मात्रा अधिक होती है। ऐसे पदार्थ मांस, अंडे, तथा अनाज आदि हैं। दूसरी ओर क्षार युक्त भोज्य पदार्थ वे हैं जिन की भस्म क्षारीय होती है। इस प्रकट क्षार युक्त पदार्थ अम्ल वाले पदार्थों के विपरीत होते हैं और उचित मात्रा में देने पर एक दूसरे के प्रभाव को व्यर्थ कर देते हैं। क्षारीय पदार्थ शाक-भाजी, फल और दो फांक वाली फलियां होती हैं। कुछ खाने की वस्तुएं ऐसी भी होती हैं जिन में अम्ल अथवा क्षार किसी की भी अधिकता नहीं होती। मांड., चीनी, चर्बी और तेल इसी प्रकार के पदार्थ हैं। संतुलित भोजन के निर्माण में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि उस में क्षार युक्त पदार्थ अम्ल युक्त पदार्थों के बराबर अथवा उस से अधिक हों। हमें ऐसा भोजन चुनने का प्रयत्न करना चाहिये जिस से पाचन मार्ग में यथासंभव जीवाणु-विद्रावण अथवा किण्वीकरण की अधिकता न होने पावे। दैनिक भोजन चुनने में भोजनों की ऐसी साधारण तालिका सहायक हो सकती है, जिस में परिमित मात्रा में द्रव भोजन सम्मिलित हों, और खाते समय बहुत अधिक पानी पीने की आवश्यकता न पड़े। हमारा लक्ष्य भोजन को इस प्रकार संयुक्त करना होना चाहिये कि बहुत अधिक किण्वीकरण न्यूनतम हो जाय और पाचन क्रिया अधिक सुगम हो जाय जिस से भोजन एक पदार्थ पाचन-क्रिया में दूसरे के मार्ग में बाधक न हो सके। अच्छे पाचन के लिये भोजन के निम्नलिखित पदार्थों की संयोजना हितकर होगी:

१. अन्य पदार्थों के साथ अनाज।
२. अन्य भोजन सामग्री के साथ गिरियां।
३. अन्य भोज्य पदार्थों के साथ अंडे।
४. अनाज और गिरी के साथ फल।
५. अनाज और कम अम्लीय पदार्थों के साथ दूध।
६. अनाज और गिरियों के साथ शाक-भाजी।

उत्तम पाचन कार्य के लिए निम्नलिखित भोजन की संयोजना प्रतिकूल होती है।

१. अधिक मात्रा में दूध और चीनी।
२. रूक्ष शाक-भाजी व फल।

३. तीव्र अम्लों के साथ दूध।
४. पकाये हुये फल तथा दूध और चीनी।
५. माड (स्टार्च) के साथ तीव्र अम्ल।
६. एक बार के भोजन में अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ।
७. किसी भी प्रकार की असंगत मिलावट।

इस में संदेह नहीं कि भोजन के साथ उत्तेजक पदार्थों का सेवन, खाने, पीने के संबंध में एक अत्यंत हानिकर आदत है। इस प्रकार के सब से अधिक वर्ज्य उत्पादन मद्यसार तथा कैफीन युक्त पदार्थ है। कुछ समय पूर्व मद्यसार को कतिपय मनुष्य भोज्य पदार्थ समझते थे परन्तु इस की निम्नांकित विशेषताएं मद्यसार के भोज्य पदार्थों में वर्गीकरण का अवश्य निषेध करती है :

१. इस का स्थानीय संतापक कार्य।
२. शरीर के तंतु-जाल पर इस का विनाशक प्रभाव।
३. केन्द्रीय नाडी मंडल (चेता-संस्थान)
४. इस की हानिकर आदत बनाने की प्रवृत्ति।

इन्हीं कारणों से मद्यसार भोजन में न गिना जा कर विषों में ही गिना जाता है। यह देखा गया है कि मद्यसार से बौद्धिक क्षमता क्षीण हो जाती है, स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाता है और साधारण कार्य करने की योग्यता भी कमजोर पड़ जाती है। वस्तुत: यह स्नायुमंडल को उसी प्रकार संज्ञाहीन कर देता है जैसे 'क्लोरोफार्म,' 'ईथर' तथा अन्य चेतना हीन करने वाले पदार्थ करते हैं, क्योंकि इस से पट्ठों (पेशियों) की शक्ति क्षीण हो जाती, रक्त परिभ्रमण और हृदय शिथिल हो जाते हैं तथा रोग निरोधक शक्ति सीमित हो जाती है। जीवन बीमा कम्पनियों को ज्ञात हुआ है कि मद्य का सामान्य प्रयोग भी आयु कम कर देता है। एक ही उम्र और परिस्थिति के मद्य सेवन न करने वाले लोगों की अपेक्षा साधारण मात्रा में मद्यपान करने वाले के खतरों का औसत ८६% अधिक रक्खा जाता है।

चाय और कॉफी, कैफीन युक्त पदार्थों के प्रतिनिधि हैं। सामान्यतया तैयार किये हुए कॉफी के एक प्याले में सक्रिय एवं अत्यंत हानिकर उत्तेजक पदार्थ कैफीन, डेढ़ से तीन ग्रेन तक होती है। चाय के एक प्याले में उसी शक्तिशाली द्रव्य की एक या दो ग्रेन की मात्रा उपस्थित होती है। दवा की एक खुराक में एक से पांच ग्रेन तक कैफीन होती है। चाय या कॉफी के दो तीन प्याले पीने वाले को कैफीन की दवा के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली पूरी खुराक से अधिक मात्रा प्राप्त हो जाती है। इस दवा की बड़ी मात्रा जहर का विशिष्ट प्रतिरूप है। इस के प्रयोग से ऐसी आदत बन जाती है जिस से छुटकारा पाना बहुत कठिन होता है। चाय में कैफीन के अतिरिक्त ''टैनिकएसिड'' नाम का दूसरा हानिकर पदार्थ होता है जो पाचन संस्थान पर बड़ा स्तंभक प्रभाव डालता है। यह स्तंभक कार्य पाचन के लिये अत्यंत हानिकर होता है क्योंकि जिस भाग को भी यह छूता है, उस में रक्त संचार धीमा कर देता है।

राई, मिर्च, अदरक, मांस के मसाले, लौंग तथा अन्य मसालों का भोजन के रूप में कोई महत्व नहीं। उन का तो केवल भूख और पाचन को उत्तेजना देने के कारण ही
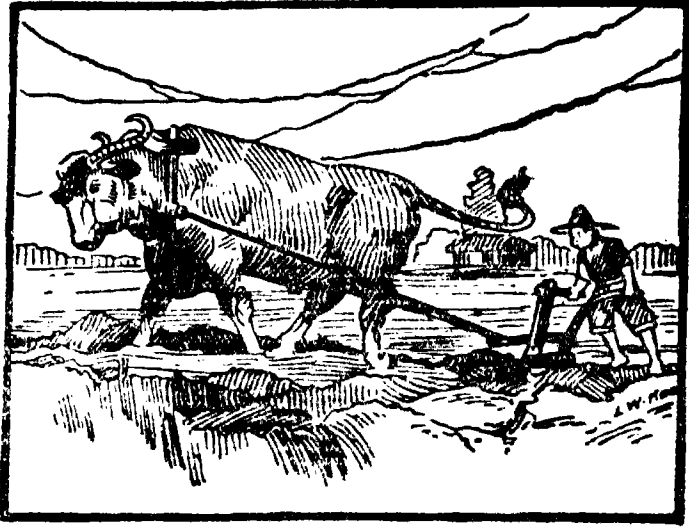
बैल का यह बल वनस्पति की देन है !

थोड़ा बहुत मूल्य समझा जाता है। इन वस्तुओं के उत्तेजक प्रभाव का कारण यह है कि इन में एक ऐसी चरपराहट होती है जो निश्चित तौर पर अन्न-मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली पर आक्रमक प्रभाव डालती है। इन का भूख पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिस से अधिकता से मिर्च-मसाले प्रयोग करने वाले व्यक्ति की सामान्य स्वास्थ्यप्रद भोजन की ओर रुचि कम हो जाती है। इन पदार्थों से भोजन स्वादिष्ट हो जाने के कारण, अधिक खाना खाने की प्रवृत्ति होती है। ऐसी चरपरी वस्तुओं को भोजन के साथ ग्रहण करने का प्रभाव सदा उत्तेजक ही होता हो ऐसा नहीं क्योंकि अनेक बार इन के प्रयोग से खिन्नता ही होती है। वे थोड़े बहुत विष युक्त होते हैं, अतः जिगर और गुर्दे के समान शरीर के अन्य उत्सर्जक अवयवों पर अधिक बोझ डाल देते हैं। स्वास्थ्य मनुष्यों को उन की आवश्यकता नहीं और रोगी व्यक्तियों पर उन का आसानी से हानिकर प्रभाव पड़ जाता है। निरोग अथवा रोगी के दैनिक भोजन में इन की कोई भी उपयोगिता नहीं है अतएव स्वास्थ्य की सुरक्षा चाहने वाले व्यक्तियों के भोजन में उन का स्थान नहीं होना चाहिये।

भोजन के समय पानी, नींबू का अर्क, फलों का रस या अन्य पेय पदार्थों का अधिक प्रयोग पाचन क्रिया में हानिकर प्रभाव डालता है। हां, थोड़ा सा द्रव पदार्थ भोजन के साथ ग्रहण करने से कोई हानि नहीं होती बशर्ते कि भोजन नलिका में खाद्य वस्तुओं को प्रवाहित करने की दृष्टि से ग्रहण न किया गया हो। द्रव पदार्थों का अधिक प्रयोग और लार तथा पाचक रस के कार्य को धीमा कर देता है और स्वभावतः भोजन चबाने में भी रुकावट डालता है। अधिक मात्रा में पानी पीने का उचित समय प्रातःकाल अथवा भोजनों के मध्यान्तर का होता है।

प्रात:काल और सायंकाल के भोजन के मध्य ५ घंटे का अवकाश आवश्यक है। इस से उदर को दूसरे भोजन से पूर्व पहिले भोजनकी सफाई करने का समय मिल जाता है। कुछ लोगों को दिन में केवल दो बार भोजन करने से पर्याप्त लाभ हो सकता है। यदि दिन में तीन बार भोजन किया जाय तो सायंकाल का भोजन सब से हल्का होना चाहिए। यद्यपि यह वाणिज्य संसार के लोगों की सामान्य आदत के बिलकुल विपरीत है, परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य अवश्य है। तीसरे अथवा सायंकाल के भोजन में फलों की तरह हल्के पदार्थ होने चाहियें इस संबंध में एक बार के भोजन करने में कितना समय लगता है यह भी विचारणीय है। काम की अधिकता और दबाव के कारण औसत व्यक्ति को खाना खूब चबा कर खाने में पर्याप्त समय लगा कर उस से अधिकतम लाभ उठाने का अवसर नहीं मिलता। यदि भोजन करने में १० या १५ मिनट की अपेक्षा आध घंटा लगाया जाय तो भोजन के उचित प्रयोग की दिशा में अच्छा परिणाम दिखाई दे और पाचक संबंधी कठिनाइयां बहुत कम हो जाएं।

प्रयोगशाला तथा व्यावहारिक अनुभव से ज्ञात होता है कि जब भोजन करते समय कोई व्यक्ति कार्य के बोझ से दबा हुआ अथवा चिंतित होता है तो उस की पाचन क्रिया में रुकावट पड़ती है। अत: खाते समय काम-धंधे की बातों अथवा दूसरी परेशानियों को दूर रखना चाहिए। भोजन को उत्तम ढंग से पचाने के लिये खाना खाते समय पढ़ना तथा अध्ययन करना भी प्रतिकूल होता है। भोजन के लिये प्रसन्नता और चिंता रहित दशायें सर्वोत्तम होती हैं। भोजन परोसने के ढंग का भी शरीर द्वारा भोजन के प्रयोग पर एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। साफ-सुथरे और क्षुधावर्धक ढंग से प्रस्तुत किया गया भोजन भूख को तीव्रतर करता है, और इस प्रकार उत्तेजना प्राप्त कर के पाचन-क्रिया अपना कार्य सुचारु रूप से करती है। दूसरी ओर यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पाचन का मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। बहुधा कहा जाता है कि यदि जीवन स्वच्छ हो तो विचार भी स्वच्छ होंगे और इस में संदेह नहीं कि मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अच्छा करने के लिए अच्छी शारीरिक अवस्था नितांत आवश्यक है।

अध्याय ४

पाचन-संस्थान

हमारा शरीर नाना प्रकार के पदार्थों के संयोग से रचा गया है। हड्डियों में एक प्रकार का पदार्थ है, त्वचा में दूसरे प्रकार का और चेताएं तीसरे प्रकार के पदार्थों से बनी हैं। सुषुप्त या जाग्रत अवस्था में हमारे शरीर के कुछ अवयव निरन्तर गतिशील ही रहते हैं और मशीन के सदा चलने वाले पुर्जों की भांति ये भी घिसते रहते हैं। इस न्यूनता और खर्च को पूरा करने के लिये पदार्थों की आवश्यकता होती है और यह कमी भोजन से पूरी हो जाती है। हम जो भोजन करते हैं उस से हमारे शरीर को नई शक्ति मिलती है जिस से हमारा हृदय धड़कता है, हाथ-पैर हिलते हैं और प्रत्येक अवयव अपना नियत कार्य करता है। चाहे गर्मी हो या सर्दी, हमारा शरीर सदा गर्म रहता है। हमारे शरीर को गर्म रखने वाली यह शक्ति भी भोजन से मिलती है। इस से यह पता चलता है कि जो भोजन हम करते हैं वह दो मुख्य कार्य करता है: पहले यह इंजन के ईंधन के समान हमारे शरीर को ऊष्णता और ऊर्जा प्रदान करता है, दूसरे शरीर को यथोचित दशा में रखने और बढ़ने में पदार्थों को जुटाता है।

भोजन का पचना आवश्यक है।

ऊष्णता, ऊर्जा या शरीर के विकास के लिये सामग्री जुटने के पूर्व भोजन का किया जाना और पचना आवश्यक है। भोजन को पचाने के लिये जो-जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें पाचन-क्रिया कहते हैं जो भोजन को उस पदार्थ में परिवर्तित कर देती है जिस से शरीर को ऊष्णता, ऊर्जा और विकास की शक्ति मिलती और न्यूनता की पूर्ति होती है।

अन्न-मार्ग

शरीर का वह भाग जो भोजन पचाने का काम करता है, अन्न-मार्ग कहलाता है। यह अन्न-मार्ग एक लम्बी सी नलिका है जो मुंह से आरम्भ हो कर बड़ी आंत के अन्त अर्थात् गुदाद्वार तक चली गई है। इस के मध्य का भाग मुड़ी-मुड़ी सा रहता है। वयस्क मनुष्य में यह तीस फुट लम्बा होता है। इस अन्न-मार्ग के विभिन्न भागों के नाम इस प्रकार से हैं—मुंह, अन्ननलिका, आमाशय, छोटी और बड़ी आंतें।

खाना सब से पहले मुंह द्वारा शरीर में जाता है। मुंह में इसे दांतों द्वारा अच्छी तरह से चबाना चाहिए। चबाते समय यह लार में सन जाता है जो लारोत्पादक पिंडों की तीन जोड़ियों द्वारा उत्पन्न होता है लार-रस पाचन-क्रिया में सहायता देता है। अतः खाने को जल्दी-जल्दी निगलना नहीं चाहिए, बल्कि चबाने में काफी समय लगाना चाहिए जिस से आमाशय में प्रवेश करने के पूर्व वह पाचन रस में भली भांति मिल जाय। जब भोजन निगला जाता है तो वह अन्न-नलिका द्वारा आमाशय में जाता है।
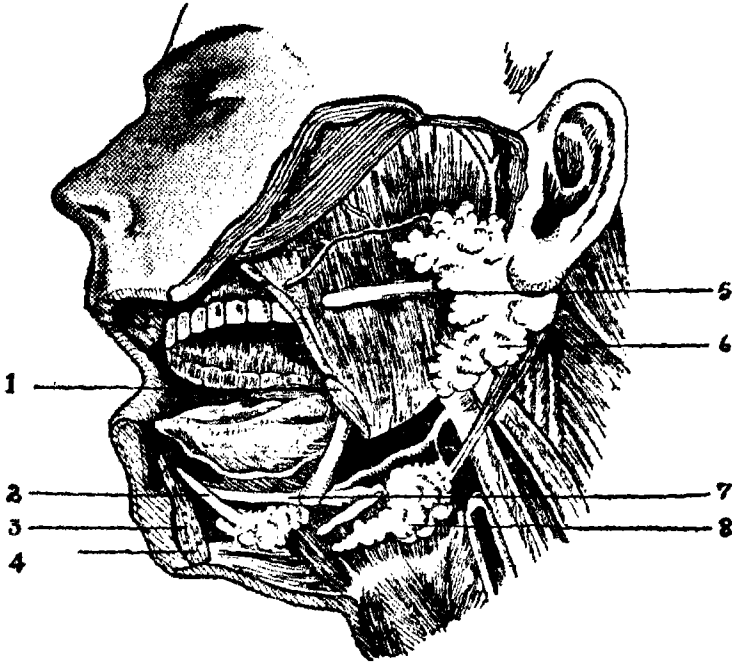
सिर के कटे हुए इस भाग में दिखाए गए हैं एक ओर के तीनों लारोत्पादक पिंड (लार-ग्रन्थियां) और उन से सम्बद्ध मुंह में लार लाने वाली नलिकाएं।

१. निचले जबड़े की हड्डी मांस निकाल दिया गया है। २. जीभ के नीचे के लारोत्पादक पिंड की नलिका जिस का मुंह, मुंह के निचले भाग में खुलता है। ३. निचले जबड़े की हड्डी। ४. जीभ के नीचे का लारोत्पादक पिंड (ग्रंथि) ५. कान के पास वाले लारोत्पादक पिंड की नलिका जिस का मुंह, ऊपर वाली, पहिले से दूसरी, बड़ी दाढ़ के ठीक सामने, कपोल में से मुंह में खुलता है। ६. कान के पास वाला लारोत्पादक पिंड (ग्रन्थि)। ७. निचले जबड़े में के लारोत्पादक पिंड की नलिका जिस का मुंह, मुंह के निचले भाग में खुलता है। ८. निचले जबड़े में का लारोत्पादक पिंड (ग्रन्थि)।

आमाशय

आमाशय स्नायुओं की एक पोली थैली जैसा है और अन्ननलिका के निचले-सिरे पर होता है। पृष्ठ १७ पर दिये हुए चित्र को देखने से उस स्थान और आकार का पता चल जायेगा। वयस्क मनुष्य के आमाशय में डेढ़ सेर से लेकर दो सेर तक पानी आदि समा सकता है। आमाशय की भीतरी सतह देखने में मुंह के भीतरी सतह जैसी होती है। यह भीतरी सतह एक प्रकार का रस उत्पन्न करती है जो जठर-रस कहलाता है। यह जठर-

रस एक प्रकार का खट्टा अम्ल होता है और मुंह की लार की भांति पाचन-क्रिया में सहायक होता है और भोजन को शरीर के उपयोग के लिये तैयार करता है।

यदि हम आमाशय की भीतरी सतह का जठर रस-स्राव देखें, तो वह ठीक वैसा दिखाई देगा जैसा पसीने के समय हमारी त्वचा दिखाई देती है। जिस प्रकार हमारे शरीर की त्वचा पर पसीने के बिन्दु अन्दर से उभरते हुए दिखाई देते हैं, उसी प्रकार जठर रस के कण सतह पर उभरते हुए जान पड़ते हैं।

आमाशय को अपना काम ठीक तरह से करने के लिये यह आवश्यक है कि भोजन अच्छी तरह पका हुआ हो और चबाया गया हो।

जब कभी किसी तरह की शराब या नशे वाली चीज पी जाती है, तो उस से आमाशय के अन्दर के भाग को हानि पहुंचती है। चाय और तम्बाकू पीने से भी आमाशय में बिगाड़ पैदा हो जाता है। लाल मिर्च, अदरक, और पान-सुपारी भी आमाशय के भीतरी भाग को हानि पहुंचाती हैं। यदि काली मिर्च, अदरक, लाल मिर्च आदि कोई चीज मुंह में रक्खी जाय तो मुंह जलने लगता है, परन्तु हम ऐसी जलन पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि हमारा मुंह झाल खाने का अभ्यास हो चुका होता है, जैसे लोहार के हाथ गर्म वस्तुओं के पकड़ने के अभ्यस्त होने के कारण कोई गर्म वस्तु पकड़ने में जलन अनुभव नहीं करते; और फिर इतनी गर्म चीजें मुंह में अधिक देर तक रक्खी भी नहीं जा सकतीं। गर्म मसाले से आमाशय के अन्दर की सतह को मुंह जलने की अपेक्षा अधिक हानि होती है; और आमाशय मुंह की भांति उन चीजों को जल्दी ही अपने अन्दर से बाहर नहीं निकाल सकता; अब वे चाहे आमाशय में एक घंटा रहें या कई घंटे रहें तब तक वह जलता रहता है। ये मसाले शरीर के लिये तनिक भी लाभदायक नहीं होते। वे केवल हानि पहुंचाते हैं, इस कारण उन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

छोटी आंत

३० मिनट से लेकर कई घंटे तक जब भोजन आमाशय में रह चुकता है, तो इस की अधिक मात्रा छोटी आंत में चली जाती है। भोजन के आमाशय में रहने का यह समय उस के गुण तथा इस बात पर निर्भर होता है कि वह किस प्रकार तैयार किया और चबाया गया है। छोटी आंत बीस फुट लम्बी एक नलिका है जो आमाशय में मुड़ी-मुड़ी रहती है।

एक छोटी नलिका यकृत (कलेजे) और पित्ताशय के बीच में स्थिर है जो छोटी आंत के ऊपरी छोर पर खुलती है। पित्त रस, जो कलेजे में तैयार होता है वह इस नलिका में से हो कर छोटी आंत में जाता है। यह पित्त रस भोजन को शरीर के लिये पुष्टिकारक बनाने के लिये अत्यंत उपयोगी होता है। एक और छोटी नलिका क्लोम से निकलती है और छोटी आंत के ऊपरी छोर पर खुलती है। जो रस इस क्लोम में बनता है वह इस नलिका द्वारा छोटी आंत में जाता है और भोजन की पाचन-क्रिया में प्रमुख सहायता देता है।

बड़ी आंत

जब तक छोटी आंत का सामान नीचे के छोर पर पहुंच कर बड़ी आंत में प्रवेश करने लगता है, तब तक भोजन का प्रायः सम्पूर्ण पुष्टिकारक भाग शरीर की पुष्टि के लिये रक्त में
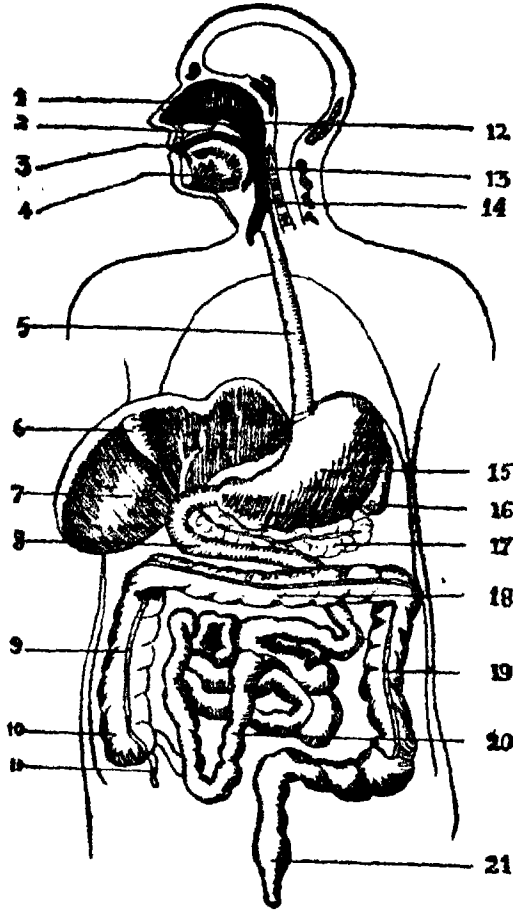
अन्न-मार्ग

१. नासा-गह्वर २. तालु ३. मुख-गह्वर (मुख-गुहा) ४. जीभ ५. अन्न नलिका ६. पित्ताशय ७. यकृत (कलेजा) ८. पक्वाशय ९. बड़ी आंत का ऊपर की ओर जाने वाला भाग १०. स्थूल आंत्राशय ११. क्रिमि-सदृश आंत्रपुच्छ १२. कंठ में के खुला हुआ नाक का सिरा १३. कंठ में के खुला हुआ मुख-गह्वर का सिरा १४. कंठ में के खुला हुआ स्वर-यंत्र का सिरा १५. आमाशय १६. तिल्ली १७. क्लोम-ग्रन्थि १८. बड़ी आंत का आड़ा भाग १९. बड़ी आंत का नीचे के उतरने वाला भाग २०. छोटी आंत २१. मलाशय

प्रवेश कर जाता है। बड़ी आंत में जो बचा हुआ भाग जाता है वह मुख्यत: अपाच्य पदार्थ होता है। बड़ी आंत में नीचे उतरते समय इस पदार्थ में कई परिवर्तन होते हैं। इस में विषैले और मल पदार्थ बनते हैं। प्रति दिन मल का निकल जाना अति आवश्यक है, अन्यथा ये विषैले पदार्थ रक्त में प्रवेश कर के सारे शरीर में फैल जाते हैं जिस से श्वास में दुर्गंध आने लगेगी, सिर में पीड़ा होगी और दूसरे रोग लग जायेंगे। जिन लोगों को कब्ज रहता है उन के मुंह से निकलने वाली दुर्गंध ठीक उस गंदे पदार्थ की दुर्गंध जैसी होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि कब्ज वाले व्यक्ति के पेट का सारहीन पदार्थ और मल सम्पूर्ण शरीर में प्रवेश करता है। यह बात सब जानते हैं कि ये दुर्गंध पूर्ण विष कितने हानिकारक होते हैं।

पचे हुए भोजन का अभिशोषण

जब भोजन पूर्ण रूप से पच चुकता है, तो वह पानी के समान तरल बन जाता है। आमाशय और छोटी आंत की दीवारों में पाई जाने वाली रक्त वाहिनियां इस तरल को कुछ उसी प्रकार चूस लेती हैं जैसे शक्कर मिला हुआ जल मोटे कपड़े की कई तहों की बनी थैली में से छनता है।

जब पचा हुआ भोजन रक्त में मिल कर शरीर के प्रत्येक अवयव में पहुंच जाता है, तो फिर ऊष्णता और ऊर्जा उत्पन्न कर के यह वही काम देता है जो इंजन में कोयला। रक्त जब शरीर के अस्वस्थ अवयवों में से हो कर घूमता है, तब पचे हुए भोजन के सार-रस से उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करता है।

इस से पता चलता है कि हमारा शरीर उस भोजन से बना है जो हम करते हैं। अत: स्वस्थ व स्वच्छ शरीर रखने के लिये स्वच्छ व शुद्ध भोजन करना चाहिये। कितने अचरज की बात है कि गेहूं, चावल और दूसरे पदार्थ जो हम खाते हैं, वे स्नायु, हड्डी और चेताओं में परिवर्तित हो जाते हैं। यह स्पष्ट है कि स्वर्ग में जो बुद्धिमान और सर्वशक्तिमान ईश्वर है उस ने मनुष्य के शरीर की योजना और रचना सोच-समझ कर ही की है; क्योंकि ऐसे सुन्दर और उच्च कोटि के ढंग से हमारे शरीर को स्वस्थ, गर्म और शक्तिशाली रखने की योजना संयोग या मनुष्य-बुद्धि की रचना नहीं हो सकती थी।

पानी पीने का महत्व

भोजन का अवशिष्ट भाग जब बड़ी आंत में पहुंचता है तब वह प्राय: अर्ध तरल पदार्थ के समान होता है। छोटी आंत उस का सम्पूर्ण सार-रस चूस चुकती है और अब वह इस दशा में होता है कि शरीर से बाहर निकाला जाए क्योंकि अब वह छोटी आंत के काम का नहीं रहता। अब बड़ी आंत भोजन के इस अवशिष्ट भाग से पानी के अंश को शोषित कर लेती है। और यह द्रव भाग गुर्दों द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम यह होता है कि बड़ी आंत का कुछ मल प्राय: दृढ़ हो जाता है। बड़ी आंत का इस मल के आगे वाला भाग सिकुड़ता है और पीछे वाला भाग

चौड़ा होता है और इस प्रकार वह धीरे-धीरे आगे की ओर ढकेल दिया जाता है, यहां तक कि वह बड़ी आंत के निचले भाग में पहुंच जाता है, यहां पर वह कुछ समय तक रहता है और फिर गुदानल में से हो कर मल द्वार से बाहर निकल जाता है।

जब तक शरीर इस सारहीन पदार्थ को बाहर निकाल-फेंकने के योग्य नहीं हो जाता, तब तक वह बड़ी आंत में ही रहता है। जो लोग कम पानी पीते हैं, उन के शरीर में यह सारहीन पदार्थ बड़ी आंत में पहुंच कर बिलकुल सूख जाता है; अतः बड़ी आंत को अपना काम करने के लिये पर्याप्त जल प्राप्त नहीं होता। ऐसे लोगों को कब्ज होने का भय रहता है, अर्थात् मल शरीर में से देर में निकलता है। इस कारण बड़ी आंत के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी पीना आवश्यक है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि पानी खूब पीजिये।

अध्याय ५

दन्त-स्वास्थ्य
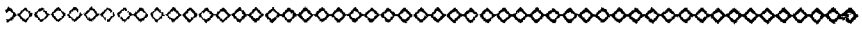
बच्चा जब छः सात मास का हो जाता है, तो उस के दांत निकलने शुरू हो जाते हैं। ढाई वर्ष की आयु में दूध के पूरे बीस दांत निकल आने चाहियें। जब बच्चा छः साल का हो जाता है, तब उस के पक्के दांत निकलने आरम्भ हो जाते हैं।

छोटे बच्चों के दांतों का ध्यान रखना चाहिये और उन्हें साफ रखना चाहिये। ये दांत उस समय तक रहने चाहियें, जब तक कि पक्के दांत इन का स्थान न लेने लगें।

पक्के दांत बत्तीस होते हैं। १७ या १८ वर्ष की अवस्था तक पिछली चार दाढ़ें नहीं निकलतीं। जीवन के अन्त तक इन पक्के दांतों को मुंह में रहना चाहिए।

दांतों का काम

दांतों का काम भोजन को चबाना है अर्थात् उस को सूक्ष्म कणों में पीस कर लार में सान देना है जिस से भोजन पच सके। दांत बोलने में भी सहायता देते हैं क्योंकि जब वे गिर जाते हैं तो कई शब्दों का उच्चारण ठीक से नहीं हो सकता। दांतों का उपयोग बहुत आवश्यक है; उन की दशा से स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

दांतों का सड़ना

सड़नेवाले दांतों में कीटाणु एकत्र हो जाते हैं जिस के कारण देह के अनेक भाग रोगग्रस्त हो जाते हैं। यदि कोई अच्छे स्वास्थ्य की अभिलाषा करे तो वह अपने दांतों को अच्छी दशा में रक्खे।
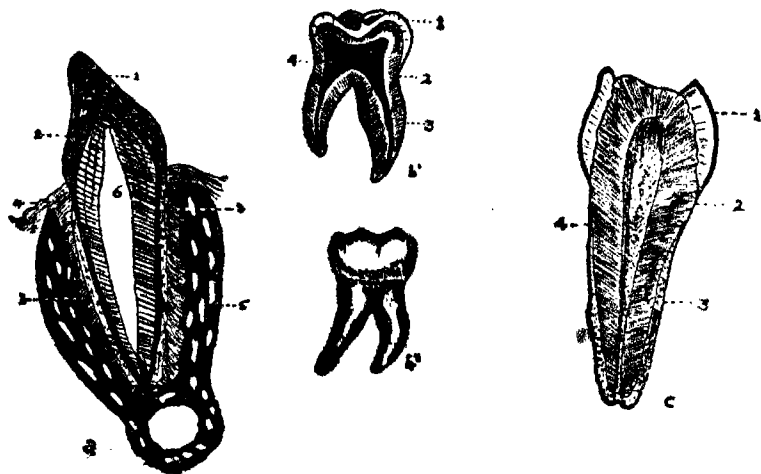
दांतों की रचना सम्बन्धी रेखा-चित्र

A 1. आकाच या दन्तवेष्ट (Enamel) 2. दन्तिन (Dentine) 3. सीमेंट (Cement) 4. दन्त अस्थिवेष्ट (Dental Periosteum) 5. निचले जबड़े की हड्डी 6. दन्त-मज्जा-गह्वर B[1] 1. दांत की चोटी 2. दांत की गर्दन 3. दांत की जड़ 4. दन्त-मज्जा-गह्वर B[2] दाढ़. C 1. दांत की चोटी जिस पर का कड़ा, सफेद और चमकदार पदार्थ (दन्तवेष्ट) घिस गया है। 2. गर्दन 3. जड़ 4. मज्जा-गह्वर

भोजन के कण दांतों के बीच मसूड़ों या दांतों की सतह के छेदों में अटक जाते हैं। ज्योंही कीड़े मसूड़ों के किनारों में उत्पन्न होने लगते हैं, त्योंही मसूड़े ढीले पड़ने लगते हैं और दांतों के बीच की खाई बढ़ने लगती है, तब कीड़ों को बहुत उत्तम स्थान मिल जाता है और वे इतनी अधिक संख्या में वहां एकत्रित होने लगते हैं कि वहां पीप भर जाती है। इस दशा में जब कोई गर्म या ठंडी चीज खाई जाती है तो दांत दुखने लगते हैं। अन्त में वे इतने ढीले हो जाते हैं कि किसी काम के नहीं रहते और उन्हें उखड़वाना आवश्यक हो जाता है।

पान-सुपारी खाना मसूड़ों के लिए हानिकारक है। पान के साथ जो चूना खाते हैं उस से मसूड़े सिकुड़ कर ढीले पड़ जाते हैं, जिस से दांत सड़ने और गिरने लगते हैं। पान और तम्बाकू दोनों दांतों की शोभा बिगाड़ डालते हैं और मुंह को भद्दा बना देते हैं।

दांतों को सुन्दर बनाए रखने के हेतु आहार में दूध, ताजे फल, हरी तरकारियां तथा गेहूं आदि अनाज के पदार्थ सम्मिलित करने चाहिएं।
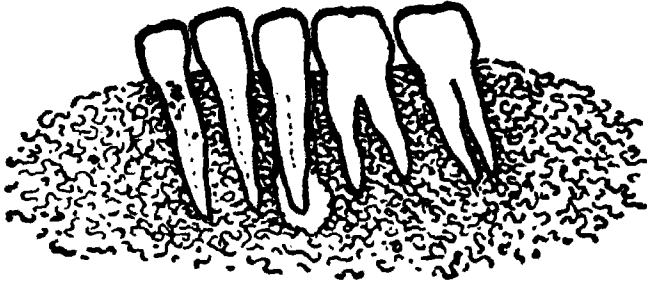
दांतों की जड़ में पीप पड़ जाना रोग का सामान्य कारण होता है, और आगे चल कर भयंकर-भयंकर रोग पैदा कर देता है।

दांतों की रक्षा कैसे करें ?

जब कोई दांत खोखला होने लगे तो जल्दी ही दांत के डॉक्टर से उसे भरवा लेना चाहिए जितनी जल्दी यह काम हो सके उतनी ही जल्दी करा लेना चाहिये, क्योंकि छोटे छेद भरवाने में कम खर्च और कम पीड़ा होती है। जब छेद छोटा होता है और दांत भरवाया नहीं जाता, तो केवल यही दांत नहीं, बल्कि इधर-उधर के दांत खराब हो जाते हैं। कम से कम दांतों को दो बार ब्रश से साफ करना चाहिये और जब कोई खराबी हो, तो तत्क्षण डॉक्टर से उस का इलाज करवा लेना चाहिये। इस के विपरीत यह उचित नहीं कि आदमी दांत की पीड़ा सहता रहे और अंत में उसे दांत उखड़वाने और नकली दांत लगवाने में पैसा खर्च करना पड़े। नकली दांत असली दांतों के कार्य का केवल एक अंश ही पूरा कर सकते हैं।

अध्याय ६

स्वास्थ्य के लिए श्वास-प्रश्वास

◇◇◇

मनुष्य कई हफ्तों तक भोजन के बिना और कई दिन तक जल के बिना जीवित रह सकता है, परन्तु यदि वायु का आना-जाना रुक जाये, जैसे डूबते या दम घुटते समय होता है, तो कुछ ही क्षणों में प्राणान्त हो जाए। इस से यह स्पष्ट है कि स्वच्छ वायु का मिलते रहना शरीर के लिये कितना आवश्यक है।

हम श्वास लेते समय अपने फेफड़ों में प्राणवायु (ऑक्सीजन) भरते हैं। प्राणवायु अदृश्य वायु है। जब हवा फेफड़ों में प्रविष्ट होती है, तो उस हवा की प्राणवायु रक्त में मिल जाती है और शरीर के समस्त भागों में फैल जाती है वायु का महत्वपूर्ण भाग प्राणवायु है जिस की आवश्यकता शरीर में जीवन देने और ऊष्णता और ऊर्जा उत्पन्न करने में पड़ती है। जो वायु हम फेफड़ों में खींच कर ले जाते हैं उस में प्राणवायु प्रचुर मात्रा में होती है, परन्तु जो श्वास हम बाहर निकालते हैं उस में प्राणवायु बहुत कम होती है और वह फिर अन्दर ले जाने योग्य नहीं रहती।

जो वायु फेफड़ों में से बाहर निकाली जाती है उस में प्राणवायु की न्यूनता तो होती ही है, साथ-ही-साथ उस में भोजन का विषैला अंश भी होता है जो दिखाई नहीं देता। यह बात तो सभी जानते हैं कि यदि बहुत से लोग किसी कमरे में हों और सब दरवाजे-खिड़कियाँ थोड़ी देर के लिए बिल्कुल बन्द कर दिए जाएं, तो उन के खुलने पर बाहर से अन्दर आने वाले को तुरन्त दुर्गंध आएगी; और उस कमरे में के बहुत से अन्य लोगों के सिर में पीड़ा होने लगेगी और सिर चकराने लगेगा। दुर्गंध, सिर-दर्द और सिर का चकराना इन सब का एक मात्र कारण है फेफड़ों में से निकली हुई विषैली वायु!

अतः घर के प्रत्येक कमरे में एक-एक या अधिक खिड़कियां होनी चाहिएं। ये खिड़कियां इतनी बड़ी हों कि सूरज की रोशनी और ताजी हवा आसानी से अन्दर आ सके। खिड़कियों के सामने न तो कपड़े टाँगे जाएं और न ही पर्दे हों, क्योंकि इन दोनों चीजों से सूर्य प्रकाश और स्वच्छ वायु के प्रवेश में बाधा पड़ती है।

श्वास-प्रश्वास के अवयव

जिस वायु को हम श्वास के साथ अन्दर ले जाते हैं, वह नाक के नथनों से हो कर गल-कोष (कंठ) के पिछले भाग में पहुंचती है और फिर वहां से गले के निचले भाग पर से प्रवेश करती है। श्वास-नलिका एक बड़ी नलिका है जो गले के सामने वाले भाग को छूने से मालूम हो सकती है। श्वास नलिका अपने निचले भाग पर दो शाखाओं में विभक्त हो गई है, उस

की एक शाखा दायें फेफड़े में तथा दूसरी बायें फेफड़े में चली जाती है। फेफड़े वायु की असंख्य छोटी-छोटी थैलियों के बने हुए हैं। अगले पृष्ठ के चित्र को देखिये। श्वास लेना वायु की इन थैलियों को भरना और खाली करना है।
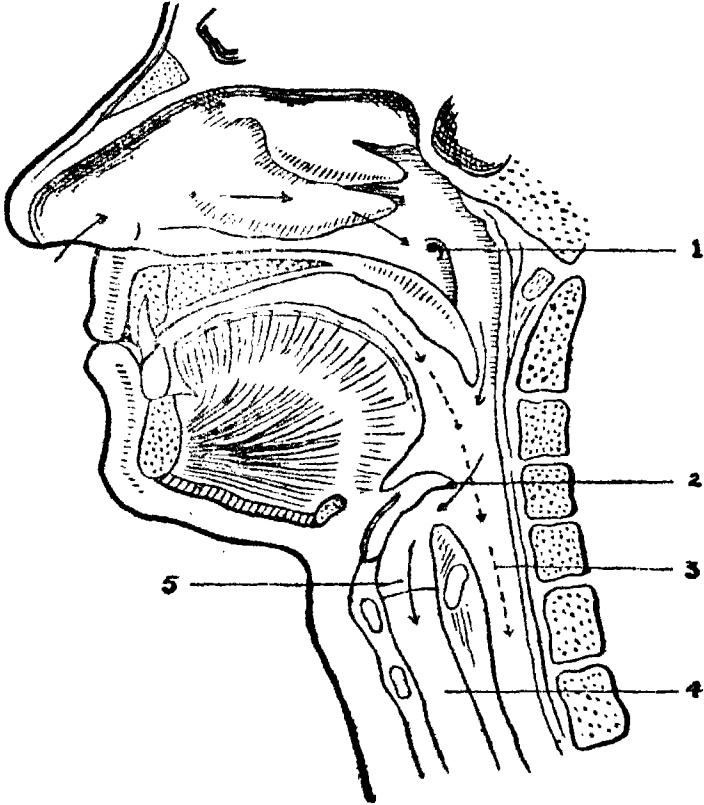
नाक और गला

बिंदु-रेखा वाला तीर भोजन-मार्ग दिखा रहा है। सामान्य रेखा वाला तीर वायु-मार्ग दिखा रहा है।

कम्बु-कर्णी नलिका का मुंह २. श्वास-मार्ग का पर्दा ३. अन्न-नलिका
४. श्वास-नलिका ५. स्वर-यंत्र

श्वास लेना

हम एक मिनिट में प्राय: १६ या १८ बार सांस लेते हैं। प्रत्येक बार श्वास लेते समय हृदय चार बार धड़कता है। व्यायाम करने से और बुखार के समय श्वासन-गति बढ़ जाती है।

प्रत्येक जीवधारी, चाहे वह पशु हो या वनस्पति, श्वास लेता है। बाइबल की "उत्पत्ति" नामक पुस्तक के दूसरे पर्व में जो वृतांत मनुष्य की रचना का है वह यूं है—"परमेश्वर ने मनुष्य को पृथ्वी की मिट्टी से रचा और उस के नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया,
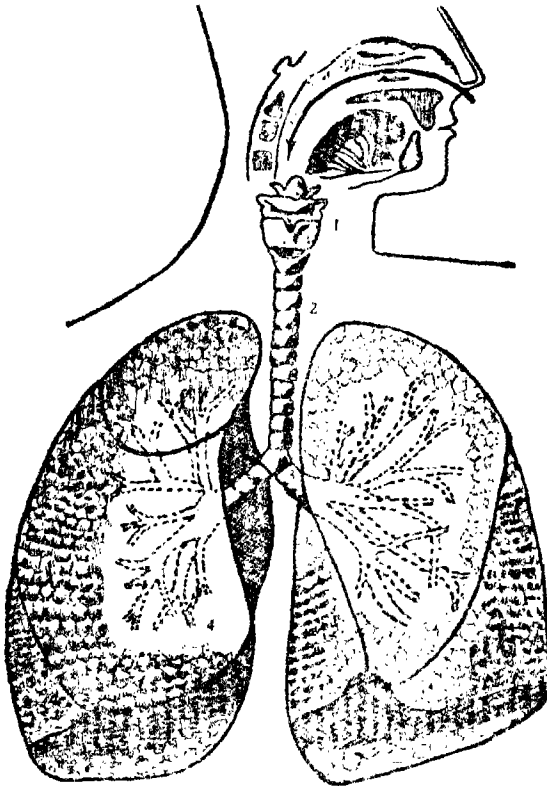
श्वास-प्रश्वास के अवयव

१. स्वर-यंत्र २. श्वास-नलिका ३. बड़ी वायु-नलिका ४. फेफड़ा।

बस मनुष्य एक जीता-जागता प्राणी बन गया।" बाइबल में लिखा है कि परमेश्वर "सब को श्वास और जीवन देता है।" और "प्रत्येक मनुष्य का जीवन" उसी के हाथ में है। स्वर्ग में बैठा हुआ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारे श्वास को अपने अधिकार में रखता है। इस बात का प्रमाण यह है कि जब हम सो जाते हैं, तब भी हमारे फेफड़े निरन्तर स्वच्छ वायु को भीतर खींचते और विषैली वायु को बाहर निकालते रहते हैं। सोते समय हम बिल्कुल अचेत हो जाते हैं; और यदि हमें अपने श्वास की भी देख-भाल करनी पड़ती, तो नींद आते ही हम मर जाते। श्वास लेना और हृदय का धड़कना दोनों ही अनैच्छिक गतियाँ कहलाती हैं। ये दोनों चेता-संस्थान के एक भाग पर अवलम्बित हैं। परन्तु यह कहना कि श्वास लेना अनैच्छिक और स्वचालित गति है इस को स्पष्ट नहीं करता, क्योंकि हमें इस

बैठने का उचित ढंग — बैठने का अनुचित ढंग

प्रकार का कोई उत्तर नहीं मिलता कि चेता-संस्थान का एक भाग हृदय की गति और श्वास को कैसे चलायमान रखता है और वह गतियां आरम्भ ही कैसे हुई। श्वसन-क्रिया के मूल नियंत्रण और अद्भुत अनुकूलन-योग्यता पर ध्यान देने से केवल एक निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य से बाहर और उस से बड़ी कोई ऐसी शक्ति है जो भीतर श्वास पर नियन्त्रण रखती है जिस से मनुष्य जीवित रहता है। वह शक्ति है—ईश्वर। वह परमात्मा जो इतनी दयालुता से हमारी देख-भाल करता है, वही आराधनीय है।

बैठने और खड़े होने की ठीक रीति

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि हम सीधे बैठें और सीधे खड़े हों जिस से जब हम श्वास लें तो फेफड़ों को यथोचित रूप से फैलाने के लिये स्थान रहे। इस प्रकार शरीर को स्वच्छ वायु अधिक मात्रा में मिलती रहती है। पीठ को आगे की ओर झुका कर खड़े होना या बैठना कुरूप ही नहीं दिखाई देता, वरन् फेफड़ों को पूर्ण रूप से फैलने का अवसर

खड़े होने का उचित ढंग

खड़े होने का अनुचित ढंग

नहीं देता; शरीर पर्याप्त मात्रा में वायु प्राप्त नहीं करता, जिस के परिणाम स्वरूप वह दुर्बल हो जाता है और सर्दी और तपेदिक जैसी बीमारियों का उस पर जल्दी आक्रमण हो जाता है।

घर के अन्दर काम करने वालों, विशेषकर बैठ कर काम करने वालों, को दिन में कई बार सीधे खड़े होने की और लम्बी-लम्बी सांसें लेने की आदत डालनी चाहिये जिस से फेफड़ों को स्वच्छ वायु मिले और विषैली जीवान्तक वायु (कार्बन डायक्साईड) पूर्ण रूप से बाहर निकल जाय। ठीक तरह से बैठने और खड़े होने के चित्र देखिए। जीवान्तक वायु उस विषैली वायु को कहते हैं जो श्वास से बाहर निकली हुई वायु में होती है।

गलत तरीके से सांस लेना

वायु का स्वाभाविक प्रवेश-मार्ग है नाक। नाक के अन्दर अनगिनत सूक्ष्म बाल होते हैं जो सांस के साथ अन्दर जानेवाली धूल और कीड़ों को रोक लेते हैं। नाक द्वारा अन्दर प्रवेश करते समय वायु गीली और गर्म हो जाती है। जब कोई व्यक्ति मुंह से सांस लेता है, तो गलकोष (कंठ) में जाने से पूर्व वह गर्म और गीली नहीं होती जिस से यह गलकोष (कंठ) सूख जाता है और अधिक कफ निकलने लगता है; इस से जुकाम और खांसी

हो जाती है। जो बच्चा मुंह से सांस ले, उसे डॉक्टर को दिखाना चाहिए जिस से वह नाक और गले का निरीक्षण करे और यदि गल-ग्रंथियां (adenoids) हों तो उन को निकाल डाले। (इन का कारण, इन की रोकथाम, और चिकित्सा २९ वें अध्याय में बताई गई है।)

तम्बाकू और मदिरा से श्वास-प्रश्वास के अवयवों को हानि पहुंचती है

तम्बाकू का धुंआ श्वास-प्रश्वास के अवयवों के प्रत्येक भाग को हानि पहुंचाता है। यह नाक के भीतर की झिल्ली, गले, फेफड़ों और श्वास-नलिका की झिल्ली को फुला देता है। यह फेफड़ों की झिल्ली को इस प्रकार हानि पहुंचाता है कि तपेदिक फेफड़े में नासूर (कैन्सर), और दूसरी बीमारियों के लगने की सम्भावना हो जाती है।

शराब किसी प्रकार की भी क्यों न हो, शरीर को हानि ही पहुंचाती है। जब कोई व्यक्ति मदिरा सेवन करता है, तो पीने के थोड़ी देर पश्चात् उस के मुंह से दुर्गंध आने लगती है। इस का कारण यह है कि जब शराब रक्त में प्रवेश करती है और फेफड़ों में जाती है, तो फेफड़े उस विष से जल्दी-जल्दी छुटकारा पाने की कोशिश करते हैं। डॉक्टर जानते हैं कि शराब पीने वाले निमोनिया और तपेदिक के बहुत जल्दी शिकार बन जाते हैं; और जब उन को इन में से कोई रोग लग जाता है, तो उन लोगों की अपेक्षा वे बहुत देर में छुटकारा पाते हैं जो शराब नहीं पीते। इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शराब से फेफड़ों को हानि पहुंचती है।

सार

१. आप के घर में रात-दिन पूरी-पूरी रीति से वायु का आना जाना रहे।
२. दिन के समय जितनी देर तक हो सके, उतनी देर तक बाहर स्वच्छ वायु में रहिए और रात्रि में सोने वाले कमरे की खिड़कियां खोल दीजिये जिस से स्वच्छ वायु आती रहे।
३. श्वास लेते समय प्रत्येक बार फेफड़ों को हवा से पूर्ण रीति से भर लीजिये। ऐसा करने के लिये सीधे बैठना और सीधे खड़े होना चाहिए।
४. धूल से भरी वायु सांस के साथ अन्दर न ले जाइये।
५. तम्बाकू का किसी भी रूप में उपयोग न कीजिये।
६. किसी प्रकार की भी शराब न पीजिये।
७. सदा नाक से सांस लीजिये।
८. कमर को कभी कस कर न बांधिये।
९. प्रतिदिन कई बार लम्बी-लम्बी सांसें लेने की आदत डालिये।
१०. कभी मुंह ढक कर न सोइये।

अध्याय ७

परिभ्रमण-संस्थान

>◇◇

जब सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा रक्त की एक बूंद की परीक्षा की जाती है, तब उस में बहुत से छोटे-छोटे गोल लाल कण दिखाई देते हैं जो लाल रक्त कण कहलाते हैं। इस के अतिरिक्त बहुत से छोटे श्वेत कण भी रक्त की बूंद में होते हैं और इन को श्वेत रक्त कण कहते हैं। जिस प्रकार छोटी-छोटी गोल सी मछलियां जल में तैरा करती हैं, उसी प्रकार ये लाल और श्वेत रक्त कण भी रक्त की धारा में तैरते हैं।

पचा हुआ भोजन भी रक्त में मिल जाता है। रक्त प्राणवायु को जो फेफड़ों द्वारा शरीर में प्रवेश करती है और पचे हुए उस भोजन को जो आमाशय व आंतों द्वारा ठीक किया जाता है शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचाता है और जिस भाग में जो कमी होती है उसे पूरी करता है। यह शरीर के प्रत्येक भाग से हानिकारक पदार्थों को और दूषित वायु को फेफड़ों, गुर्दों और त्वचा में ले जाता है जहां से वे श्वास, मूत्र और पसीने द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं।

हृदय और रक्त-वाहिनियां

हृदय के संकुचित होने से रक्त निरंतर रक्त-वाहिनियों में बहता रहता है। हृदय मनुष्य की बन्द मुट्ठी के बराबर और अन्दर से खोखला होता है। वह एक ऐसे शक्तिशाली पम्प का काम देता है जिस से रक्त शरीर के प्रत्येक भाग में चक्कर लगाता रहता है।

वयस्क मनुष्य का हृदय एक मिनिट में प्राय: ७० बार धड़कता है। व्यायाम से यह और भी जल्दी-जल्दी धड़कने लगता है; और ज्वर होने पर भी इस की गति अधिक बढ़ जाती है।

हृदय द्वारा पम्प हो कर रक्त फेफड़ों में जाता है जहां वह स्वच्छ प्राणवायु पाता है और दूषित वायु त्यागता है। स्वच्छ रक्त हृदय को लौट आता है और फिर वहां से शरीर के समस्त भागों को पहुंचाया जाता है। परन्तु जब रक्त हृदय को वापिस आता तब उस में दूषित पदार्थ भरे होते हैं, अत: उस को फेफड़ों में भेजना आवश्यक है। इस प्रकार परिभ्रमण पूर्ण होता है और शरीर में प्राण रहते हैं।

जब कभी शरीर के किसी भाग में जाने से रक्त रोक दिया जाता है तो वह भाग निर्जीव हो जाता है। इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक अंग का जीवित रहना
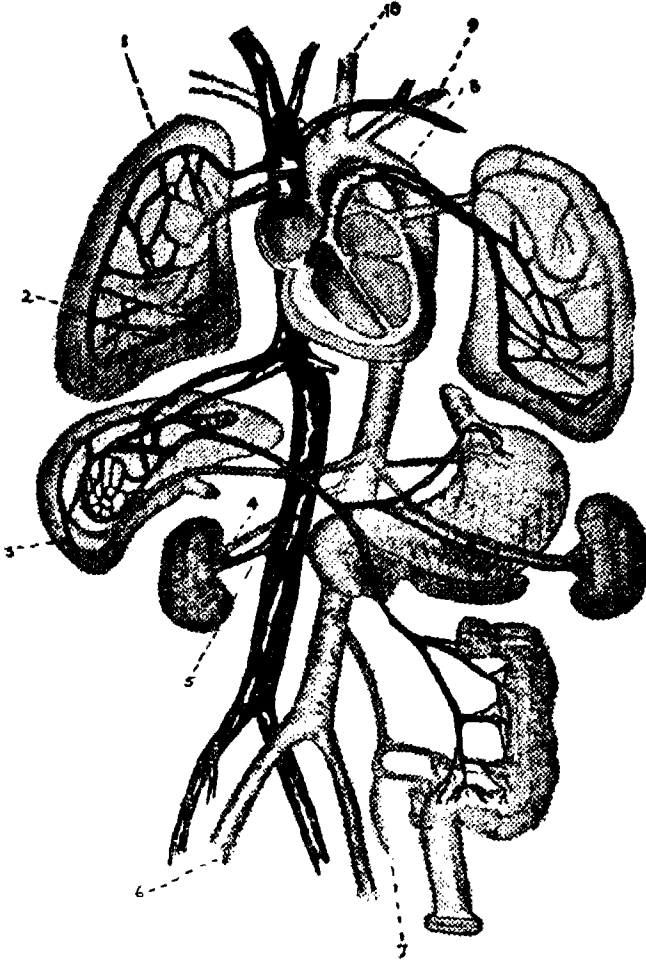
परिभ्रमण-संस्थान

रक्त अवयवों में पोषक तत्वों को पहुंचाता है और वहां से व्यर्थ तत्वों को निकालता है। इस संस्थान के द्वारा ही जीवान्तक वायु (कार्बन डायक्साईड) फेफड़ों में से बाहर निकलती है और इस के स्थान पर प्राण-वायु (ऑक्सीजन) अन्दर आती है।

१. फुप्फुस-धमनी (अशुद्ध रक्त) २. फुप्फुस-शिरा (शुद्ध रक्त) ३. यकृत में होने वाला परिभ्रमण (यकृत द्वारा रक्त-गालन) ४. वृक्क-धमनी (नाइट्रोजन युक्त व्यर्थ पदार्थ) ५. वृक्क-शिरा (विशुद्ध रक्त) ६. मुख्य शेषान्त्रक (iliac) धमनी ७. निचला मध्यान्त्र त्वच् (Inferior Mensenteric) ८. महाधमनी ९. अधोजत्रु धमनी १०. ग्रीवा-धमनी

पर ही अवलम्बित है। हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य के रचयिता, परमात्मा ने कहा था "सब प्राणियों का जीवन रक्त ही में है।"

रक्त और हृदय में हम परमात्मा की शक्ति के कितने ही प्रमाण पाते हैं। जब बच्चा माता के गर्भ में ही होता है तभी से हृदय धड़कने लगता है और तब से ८० या ९० वर्ष की आयु तक एक मिनिट में ७० बार धड़कता है। हृदय जीवनदायक रक्त खींच कर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचाता रहता है। इस के धड़कने की बागडोर हमारे हाथों में नहीं है। वह तो स्वर्ग में परमात्मा है जिस ने मनुष्य को बनाया और जो सदा हृदय को धड़काता रहता है चाहे हम सोते हों या जागते हों।

जब शरीर के किसी भाग को कोई चोट पहुंचती है तो रक्त ही उस को अच्छा करता है। जब रोग उत्पादक कृमि शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तब ये श्वेत रक्तकण जिन का वर्णन अभी किया जा चुका है निडर सिपाहियों की भांति पहरा देते हैं और उन कीड़ों को पकड़ कर नष्ट कर देते हैं। जब रोग के कीड़े अधिक संख्या में और अधिक विषैले होते हैं या शराब, तम्बाकू या किसी और कारण ये रक्त कण निर्बल हो जाते हैं, तब ये रक्त कण कीड़ों को नष्ट करने में अशक्त हो जाते हैं।

चूंकि रक्त में ही जीवन है और वही हमें चंगा करता है, इसलिए यह आवश्यक है कि हम में अच्छा रक्त हो। रक्त उस भोजन से बनता है जो हम खाते हैं। यदि भोजन स्वच्छ और अच्छा है तो रक्त भी निर्मल होगा। यदि घटिया प्रकार का हो या आवश्यक मात्रा से कम हो तो रक्त कणों को पर्याप्त आहार नहीं मिलता और इस का परिणाम यह होता है कि शरीर का प्रत्येक भाग दुःख सहता है। बहुत अधिक मात्रा में स्वच्छ जल पीने से रक्त के मल और विषैले पदार्थ साफ हो जाते हैं। अच्छे रक्त के लिए व्यायाम करना भी आवश्यक है। शराब और तम्बाकू लाल तथा श्वेत दोनों प्रकार के रक्त कणों को हानि पहुंचाते हैं और रक्त की जीवनदायिनी शक्ति और स्वस्थ करने की क्षमता को नष्ट कर डालते हैं।

अध्याय ८

उत्सर्जन-संस्थान

◇◇

वृक्क

हर दिन हम भोजन करते हैं और पानी पीते हैं। यह भोजन हमारे शरीर में जलता है और कुछ राख या व्यर्थ पदार्थ छोड़ जाता है जिसे शरीर से बाहर निकालना आवश्यक है। शरीर या उस के कुछ अवयव निरन्तर गतिशील रहते हैं और जब कोई वस्तु गतिशील रहती है तो उस का कुछ भाग अवश्य घिसता रहता है जिस से व्यर्थ पदार्थ जमा हो जाता है। इस व्यर्थ पदार्थ को बाहर निकाल देना चाहिये क्योंकि यदि यह साफ न किया जाए, तो यह पदार्थ विष बन कर शरीर को हानि पहुंचाता है और रोग फैलाता है। व्यर्थ पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने का काम वृक्कों (गुर्दों) का है।

वृक्क सेम के आकार के दो अवयव हैं। ये उदर-गह्वर की, पिछली दिवाल में आगे की ओर जुड़े हुए हैं—एक मेरुदंड के एक ओर और दूसरा दूसरी ओर है (पृष्ठ १६ के चित्र को देखिये)। जब वृक्कों में रक्त बहता है, तब वे विषैले सारहीन पदार्थ के कुछ भाग को छान डालते हैं। जब वृक्कों द्वारा रक्त में से अलग किए सारहीन पदार्थों तथा रक्त में से चूसे हुए पानी के योग से मूत्र बनता है। प्रत्येक वृक्क में से निकलने वाली एक-एक नलिका द्वारा यह मूत्र मूत्राशय में पहुंचता है और वहां इकट्ठा होता रहता है यहां तक कि जब मूत्राशय पर दबाव पड़ने लगता है, तो हमें पेशाब करने की आवश्यकता होती है और तभी यह बाहर निकाल दिया जाता है। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति आध सेर से लेकर डेढ़ सेर तक मूत्र निकालता है। जब कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वस्थ होता है और यथेष्ठ मात्रा में जल पीता है, तो मूत्र का रंग हल्के पीले रंग का होना चाहिये; बहुधा यह पानी के समान साफ होता है। यदि यह लाल या भूरा हो, तो यह बात स्पष्ट होती है कि जल बहुत कम पिया गया।

प्रत्येक उस रोग में जिस में ज्वर रहता है वृक्क का काम अधिक बढ़ जाता है और यह अत्यावश्यक है कि रोगी को स्वच्छ जल अधिक मात्रा में पीने को दिया जाय। पानी को उस के पास रखना अच्छा है जिस से रोगी बार-बार बिना कष्ट के पी सके।

शराब, तम्बाकू, काली मिर्च, पान-सुपारी अदरक वृक्क के लिये हानिकारक होती हैं। वृक्क का यह भी काम है कि रक्त में जो भी उपरोक्त प्रकार के हानिकारक पदार्थ हों उन्हें शरीर से बाहर निकाल दे। रक्त से यह हानिप्रद पदार्थ निकालते समय वृक्क को भी हानि पहुंचती है।
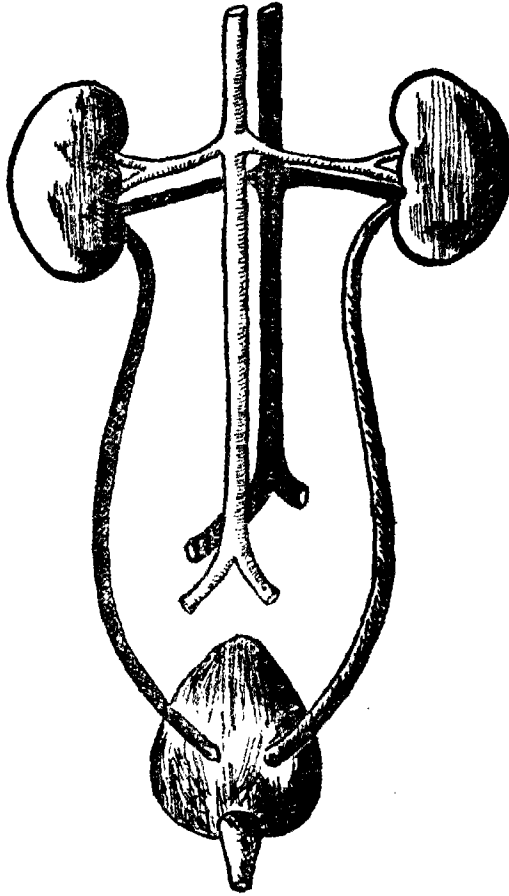
वृक्क और मूत्राशय

वृक्क दो अवयव हैं जो उदर-गह्वर की पिछली दिवाल में आगे की ओर जुड़े हुए हैं और महाधमनी और निचली महाशिरा द्वारा पृथक हैं। वृक्कों में से मूत्र, मूत्र-वाहकों में ले जाया जाता है।

त्वचा

त्वचा अर्थात् चमड़ी शरीर के उस ऊपरी भाग को कहते हैं जिस से शरीर के भीतर के अंगों की रक्षा होती है। इस की तुलना अस्तर वाले वस्त्र से हो सकती है क्योंकि इस में भी ऊपर दो परतें होती हैं। जब अकस्मात् खौलता हुआ पानी त्वचा पर गिर जाता है तो इन दो परतों के बीच में छाले पड़ जाते हैं।

त्वचा की भीतरी परत में असंख्य छोटी-छोटी पसीने की ग्रन्थियाँ होती हैं। इन में से प्रत्येक में एक नलिका होती है जो त्वचा के ऊपर तक पहुंचती है। पसीना केवल पानी ही नहीं है बल्कि इस में नमक और सारहीन पदार्थ भी मिले रहते हैं जो मूत्र के सारहीन पदार्थों के समान होते हैं।

यदि गुर्दे और त्वचा इन सारहीन पदार्थों को बाहर न निकालें, तो शीघ्र ही स्वयमेव विष फैल जायेगा। शरीर की प्रत्येक ग्रन्थि में से निरन्तर पसीना निकलता रहता है; गर्मी और व्यायाम से अधिक पसीना निकलता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये थोड़ा बहुत
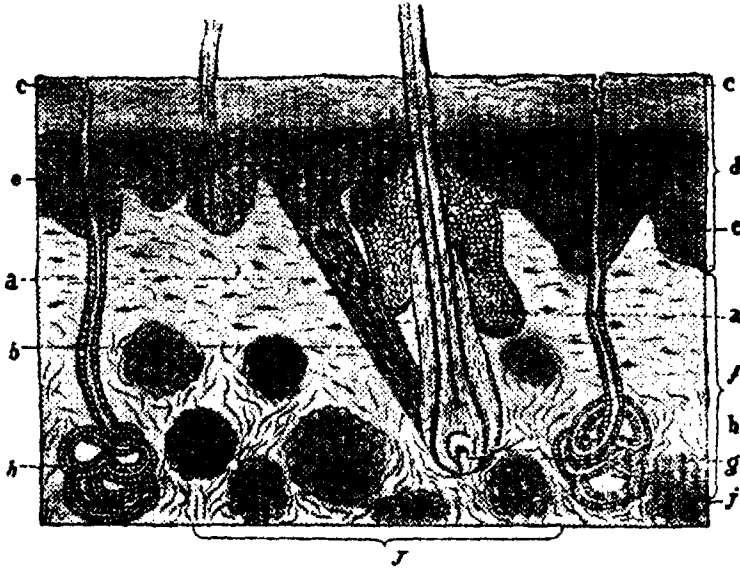
त्वचा की खड़ी काट

A. स्नेह-ग्रन्थि (बाल की जड़ पर चिकनाई उत्पन्न करने वाली ग्रन्थि) B. त्वचा पर बालों को खड़ा कर देने वाली पेशी C. स्वेद-ग्रन्थि की नलिका D. बाह्य त्वचा E. बाह्य और अन्तरत्वचा के बीच की त्वचा F. आन्तरत्वचा G. बाल की जड़ H. स्वेद-ग्रन्थि J. स्नेह-कोष

व्यायाम करना उचित है जिस से पसीना अच्छी तरह निकले. इस से न केवल त्वचा ही स्वस्थ और सक्रिय रहती है, बल्कि रक्त भी साफ और निर्मल रहता है।

स्वच्छता के लिये गरम पानी और साबुन का उपयोग करना अच्छा है। ठंडे पानी से स्नान करने के पश्चात् तौलिये से शरीर खूब रगड़ कर पोंछने से शरीर को शक्ति और स्फूर्ति मिलती है और सर्दी तथा दूसरे रोग शीघ्र ही आक्रमण नहीं कर सकते। ठंडे पानी से नहाने का सब से अच्छा समय प्रातःकाल है।

स्वस्थ लोग रोग से बचने के लिए प्रतिदिन स्नान करते हैं। जल्दी-जल्दी नहाते रहने से न केवल त्वचा पर से जमा हुआ मैल दूर हो जाता है, बल्कि ऐसे रोग-उत्पादक कीटाणु भी दूर हो जाते हैं जिन का त्वचा पर पता तक नहीं लगता। स्नान द्वारा पसीने के साथ निकला हुआ मल भी दूर हो जाता है।

साथ वाले चित्र में गांव के लोगों के लिए नहाने की एक सरल व साधारण रीति बताई गई है।
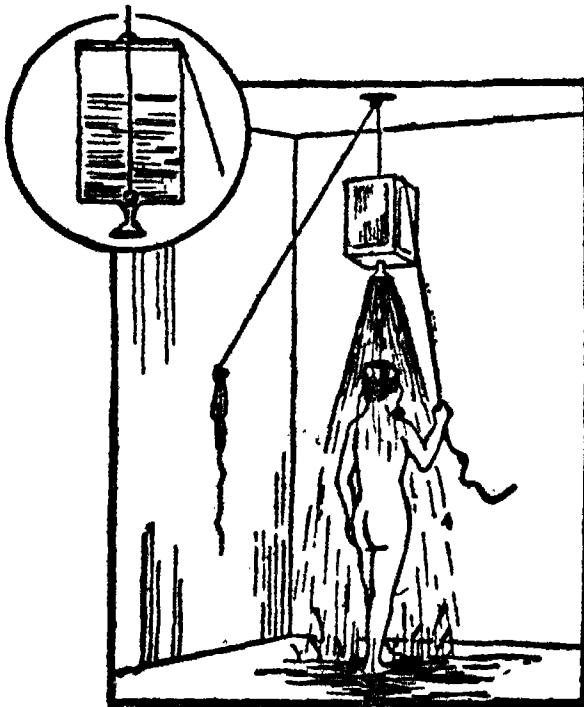
फव्वारे के स्नान का घर पर बनाया हुआ साधन

बीमार लोगों को प्रतिदिन स्नान कराना चाहिए ताकि बीमारी के समय त्वचा पर जमा हो जाने वाला मल दूर हो जाए। बहुत से बीमार लोग प्रतिदिन स्नान करने से शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं। यदि बीमार को ठीक तरह से स्नान कराया जाये तो उसे सर्दी लगने का डर नहीं रहता। पानी गरम होना चाहिए। पहले दाहिनी बांह धोइये और उसे पोंछकर ढांक दीजिए फिर बाईं बांह धोइये और उसे पोंछकर ढांक दीजिये; इस के बाद छाती के सामने का भाग धोइये और पोंछ कर ढांक दीजिये; इसी प्रकार सारे शरीर को धोइये।

चूंकि त्वचा को बहुत से कार्य करने पड़ते हैं और चूंकि उस का प्रभाव स्वास्थ्य और व्यक्ति की शक्ल-सूरत पर बहुत पड़ता है, इसलिए उसे बहुत अच्छी स्थिति में रखना चाहिए। केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि त्वचा को कई बार धो कर ऊपर से स्वच्छ रक्खा जाए, अपितु उसे अन्दर भी साफ रखना चाहिए, अर्थात् तम्बाकू और अन्य हानिकारक वस्तुओं के उपयोग से बचाना चाहिए, क्योंकि त्वचा को उन्हें बाहर निकाल फेंकने में कष्ट होता है।

बाल और त्वचा की तेल ग्रंथियां

प्रत्येक बाल की जड़ में एक छोटी गांठ होती है जिस में से तेल निकलता है। यह त्वचा के ऊपर आ जाता है और उसे सूखने या उस में झुर्रियां पड़ने से रोकता है। यह तेल बालों को भी चिकना करता रहता है। सिर के बालों को चिकना रखने और इन्हें जल्दी-जल्दी बढ़ाने के लिये सब से उत्तम उपाय यह है कि इन्हें प्रति दिन ब्रश से अच्छी तरह झाड़ा जाए। समय-समय पर इन्हें गरम पानी और साबुन से धो कर इन की धूल और तेल को भी दूर करना चाहिये।

अध्याय ९

हड्डियाँ और मांस पेशियां

५९ पृष्ठ पर दिया चित्र अस्थिपंजर का है। मानव अस्थिपंजर में २०६ हड्डियां होती हैं। शिशु की हड्डियां बड़ी कोमल होती हैं और इस कारण इन का विशेष ध्यान रखना चाहिये जिस से वे कुडौल न हो जायें। यदि पैदा होने के पश्चात् बच्चे को एक ही ओर लिटाये रक्खा जाए, तो उस का सिर बेढंगा हो जायेगा, अर्थात् एक ओर आगे को उभर आयेगा और दूसरी ओर चपटा हो जाएगा। बच्चे को कुछ घंटे तक एक करवट लिटाए रख कर दूसरी करवट लिटाना चाहिए। स्कूलों में बच्चों के लिये कुर्सियां ऐसी होनी चाहियें कि उन की पीठ को सहारा मिल सके, और इतनी नीची होनी चाहियें कि उन के पैर फर्श पर आराम से रह सकें। बहुत से बालकों की कमरें इसीलिए झुकी हुई होती हैं कि पाठशाला की कुर्सियां बहुत ऊंची होती हैं और उन में पीठ के सहारे के लिए कुछ नहीं होता।

यदि बच्चे धीरे-धीरे बढ़ें और उन की हड्डियां छोटी और निर्बल हों, तो इस का कारण यह होता है कि उन्हें उचित भोजन नहीं मिल रहा है। उन्हें इस प्रकार का भोजन देना चाहियें कि उन की हड्डियां बनें। गेहूं के बने हुए पदार्थ, मटर, सेम, दाल, साग और इन के साथ दूध यथेष्ट मात्रा में देना चाहिये।

जिस स्थान पर दो हड्डियां जोड़ बनाने के लिये आपस में मिलती हैं वहां वे परस्पर पुष्ट सन्धि बंधनों द्वारा जुड़ी हुई होती हैं। कभी-कभी जब ये जोड़ बलपूर्वक हिलाये जाते हैं, तब ये सन्धि बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। इसी को हम मोच कहते हैं।

कभी-कभी हड्डियां टूट जाती हैं। यदि टूटी हुई हड्डी का ठीक तरह से ध्यान रक्खा जाय तो वह अपने आप उसी प्रकार जुड़ जायेगी जैसे पेड़ की टूटी हुई डाल स्वयं जुड़ जाती हैं। अध्याय ४० में मोच और टूटी हड्डी की चिकित्सा बताई गई है।

मांस पेशियां

यदि त्वचा और उस के नीचे की चर्बी निकाल दी जाय तो शरीर का आकार वैसा ही दिखाई देगा जैसा चित्र में पृष्ठ १३ पर दिखाया गया है। जीवित पेशी लाल रंग की होती है। गाय या बकरी की मांसपेशी लाल होती है। शरीर में ५०० से कुछ ऊपर पेशियां हैं, और ये आकार और परिमाण में विभिन्न हैं। मांसपेशी के चित्र को देख कर पता चलेगा कि इन में से कुछ गोल हैं, कुछ लम्बी हैं, कुछ छोटी हैं, कुछ बड़ी हैं और कुछ नन्ही-नन्ही हैं। पेशियां अंगों एवं शरीर के दूसरे भागों को गतिशील करती हैं। यह बात नहीं कि जब हम चलते-फिरते हों तभी पेशी को काम करना पड़ता हो, बल्कि सीधा खड़ा होते समय भी पेशी को निरन्तर संकोचित होना पड़ता है। बहुत से लोग खड़े होते या
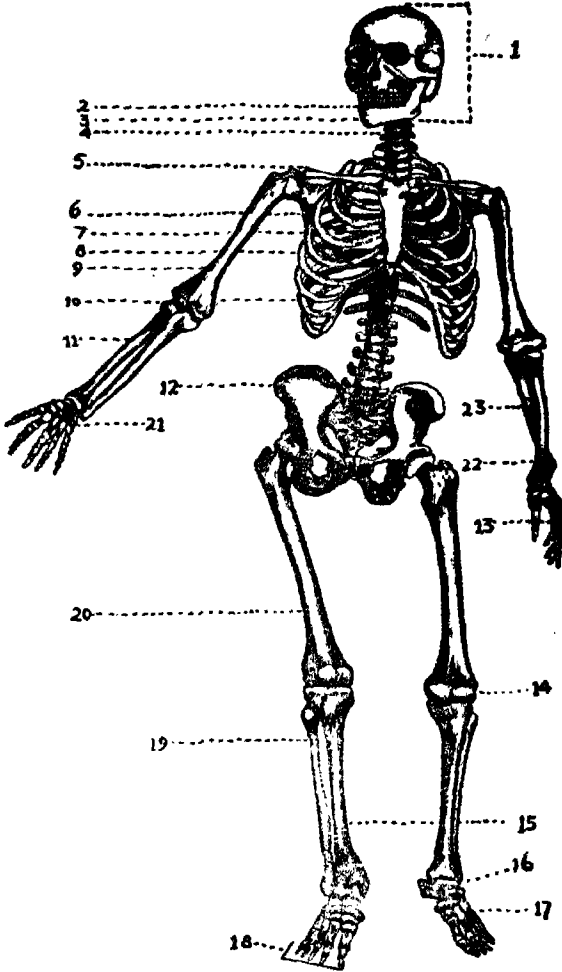
शरीर की हड्डियां

१. खोपड़ी २, ३. जबड़े की हड्डियां ४. शिरोधरास्थि (गर्दन की पहली कशेरुका) और कीलकास्थि (गर्दन की दूसरी कशेरुका) ५. हंसली (जत्रु) ६. कंधे की हड्डियां ७. ८. १०. पसलियां ९. प्रगंडास्थि (बाजू की हड्डी) ११. अग्रबाहु की दोनों अस्थियां १२. कूल्हे की हड्डी १३. उंगलियों की हड्डियां १४. घुटने की हड्डी १५. पिंडली की पिछली हड्डी १६. टखने (गट्टे) की हड्डी १७. तलवे की हड्डियां १८. पांव के अंगूठे और उंगलियों की हड्डियां १९. पिंडली की अगली हड्डी २०. जांघ की हड्डी २१. कलाई की हड्डियां २२. अग्रबाहु की भीतर की ओर की हड्डी २३. अग्रबाहु की बाहर की ओर की हड्डी

बैठते समय पीठ की पेशी को ढीला कर देते हैं जिस के परिणाम स्वरूप पीठ में कूबड़ निकल आता है, कंधे आगे की ओर झुक जाते हैं। यह न केवल मनुष्य को कुरूप बनाता है, बल्कि इस से छाती के पोल की दीवार फेफड़ों को दबाने लगती हैं जिस से लम्बी सांस लेना कठिन हो जाता है। कुर्सी पर बैठते समय या पढ़ने की मेज पर झुकते समय शरीर को सीधा रखना चाहिये। खड़े होते समय बिल्कुल सीधा खड़ा होना चाहिये। गर्दन सीधी रहे और ठुड्डी उठी रहे। पेट के सामने की दीवार बाहर की ओर न निकलने पाए वरन् अन्दर की ओर ही रहनी चाहिये।
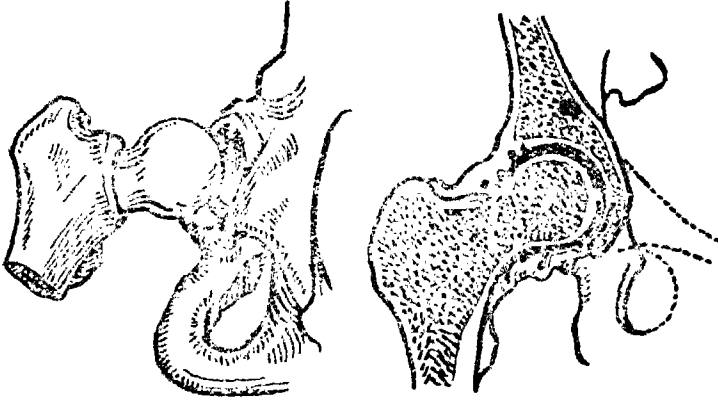
कूल्हे की उरवल-संधि: जांघ की हड्डी और वस्ति-गह्वर

जांघ की हड्डी वस्ति-गह्वर में अपने स्थान पर : अस्थि-मज्जा भी दिखाई गई है।

सीधे बैठने या खड़े होने को जितना महत्व दिया जाए कम है। हम उचित भोजन द्वारा अपना रक्त भले ही स्वच्छ बनाये रक्खें, परन्तु यदि गलत ढंग से खड़े रहने या बैठने की आदत पड़ गई, तो रक्त शरीर के सम्पूर्ण भागों में यथोचित रीति से दौरा नहीं कर सकेगा और फिर रोगी हो जाना निश्चित है। माता-पिता और अध्यापक को देखते रहना चाहिये कि बच्चे सीधे बैठें और सीधे ही खड़े हों।

कसरत (व्यायाम) से पेशियों का विकास होता है

शरीर को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाने के लिये कसरत करना नितान्त आवश्यक है। कसरत करते समय हृदय जल्दी-जल्दी धड़कने लगता है, इस कारण शरीर के प्रत्येक भाग को रक्त पर्याप्त मात्रा में मिलने लगता है। कसरत करते समय लोग जल्दी-जल्दी श्वास लेते हैं और इस प्रकार और अधिक प्राण-वायु शरीर के प्रत्येक अवयव में पहुंच जाती है। यदि शरीर की पेशियां कसरत न करें तो मस्तिष्क भी कमजोर हो जाता है। यदि कोई अच्छी स्मरण शक्ति का इच्छुक हो और ध्यान लगा कर पढ़ना और पढ़ा

हुआ याद रखना चाहता हो, तो उस को शरीर की पेशियों को प्रतिदिन कसरत करवानी चाहिये।

लोहार की बांह भरी-भरी और पुष्ट इसलिये होती है कि वह निरन्तर उस से काम करता रहता है। पहाड़ी कुलियों की टांगें इस कारण भरी-भरी और शक्तिशाली होती हैं कि वे अधिक चलते फिरते हैं। इस के विपरीत बहुत से छात्रों और व्यापारियों की बांहें, टांगें और सारा शरीर बहुत कमजोर रहता है क्योंकि वे अधिक बैठते हैं और अपनी बांहों और
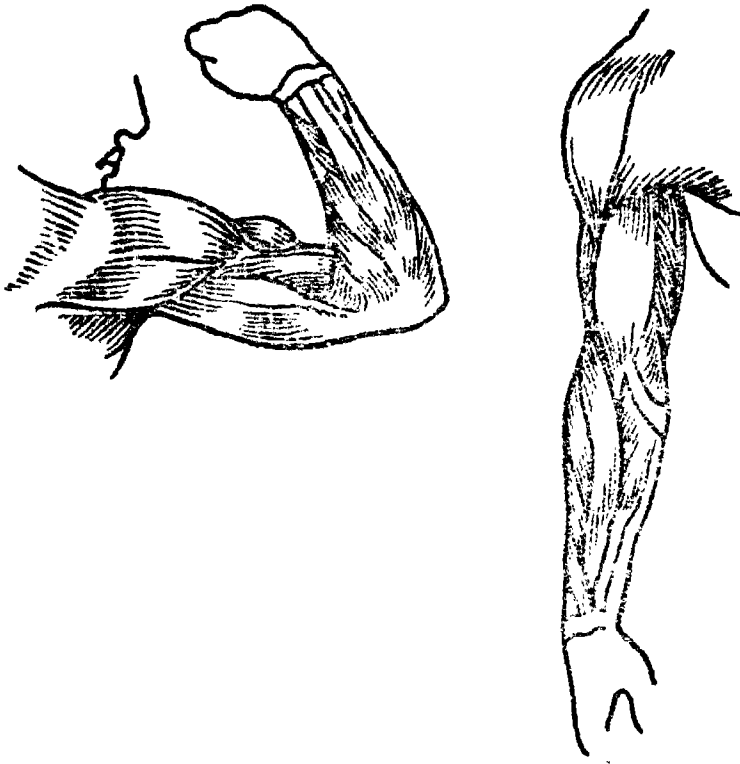
बांह की पेशियां

अंगों से काम नहीं लेते। बहुत से लोग सोचते हैं कि शिक्षित लोगों के लिये काम करना आवश्यक नहीं है बल्कि केवल कुली वर्ग को ही अपने हाथों से काम करना चाहिये। यह बहुत बड़ी गलती है। शारीरिक परिश्रम करना बड़े गौरव की बात है। शारीरिक व्यायाम लड़कियों और स्त्रियों के लिये भी उतना ही आवश्यक है जितना लड़कों और

पुरुषों के लिये। प्रत्येक व्यक्ति को नरम और कमजोर पेशी होने पर शर्म आनी चाहिये।

जब ईश्वर ने मनुष्य के शरीर की रचना की, तो वह जानता था कि शरीर को शक्तिशाली और स्वस्थ रखने में किस-किस चीज की आवश्यकता होगी। अत: शरीर के पोषण के लिये उस ने न केवल भोजन की अवस्था की, वरन् यह शर्त भी रखी कि भोजन प्राप्त करने के लिए मनुष्य को काम करना और शारीरिक परिश्रम करना आवश्यक है। व्यायाम नाना प्रकार के होते हैं, परन्तु उन में से सर्वोत्तम हैं बागीचा बनाना या बढ़ई का काम जैसे साधारण कार्य। चलना, दौड़ना, तैरना भी व्यायाम की अच्छी विधियां हैं।
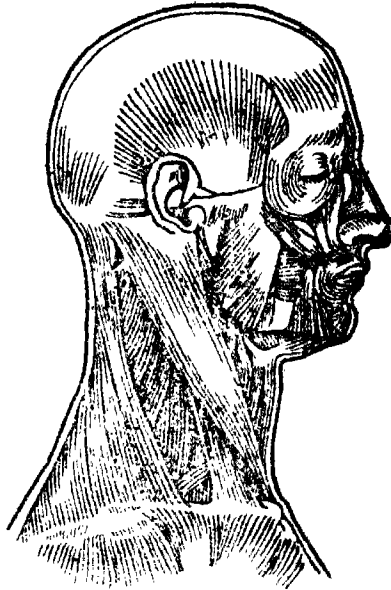
गर्दन और सिर की पेशियां

कुछ देर तक अपने पढ़ने-लिखने की मेजों पर चुपचाप बैठे रहने के पश्चात् बच्चों का श्वास-प्रश्वास धीमा पड़ जाता है, और प्रत्येक बार सांस अन्दर ले जाते समय बहुत कम हवा फेफड़ों में जाती है। मस्तिष्क ठीक से काम नहीं कर पाता और बच्चा भली-भांति पढ़-लिख नहीं सकता। इस कारण अध्यापकों को बीच-बीच में बच्चों को छुट्टी दे देनी चाहिये जिस से वे बाहर निकल कर दौड़ें, और खेलें-कूदें। इस प्रकार के खेल और मनोरंजन के अतिरिक्त बच्चों से श्वास-प्रश्वास और अंगों को फैलाने का व्यायाम दोपहर से पूर्व ३ या ४ मिनट तक एक-दो बार और तीसरे पहर को फिर एक-आध बार

करवाना चाहिये । ऐसी कसरतों से हृदय जल्दी-जल्दी धड़कने लगता है और बच्चे जल्दी-जल्दी लम्बी श्वासें लेते हैं और इस कारण उन के मस्तिष्क और भी तेजी से काम करने लगते हैं ।

शक्ति बढ़ाने के लिये व्यायाम

प्रत्येक व्यायाम सीधे खड़े रहने की स्थिति से आरम्भ होता है । एड़ियां मिली रहें; पंजे जरा-जरा खुले रहें; शरीर कमर पर से सीधा रहे और थोड़ा आगे की ओर झुका हुआ हो । कंधे सीधे हों, बांहें स्वाभाविक रूप से नीचे लटकी रहें । प्रत्येक क्रिया धीरे-धीरे और ठीक ढंग से की जाय, जल्दी या असावधानी से कोई कसरत न हो । पहले तीन आरम्भिक व्यायाम बहुत साधारण ढंग के हैं ।

पहले अपनी दोनों बांहें उठा कर एक सीध में ले आइये,* फिर, उन्हें सीधा सिर के ऊपर ले जाइये और फिर धीरे-धीरे उन्हें नीचे लाइये । फिर, बांहें ऊपर उठाइये और कोहनियों को पीछे कर के हाथ कमर पर रख लीजिए और फिर दोनों ओर नीचे कीजिये । इस के बाद, एक बार फिर बांहों को ऊपर उठाइये और फिर कोहनियों को पीछे कर के गर्दन के पीछे दोनों हाथों की उंगलियों को छुइये । प्रत्येक कसरत को कई बार कीजिये ।

पहला व्यायाम:– दोनों बांहें एक सीध में ऊपर उठाइये, हथेलियों को ऊपर की ओर कर के बांहों को जितना हो सके पीछे ले जाइये, इस स्थिति में धीरे-धीरे एक से दस तक गिनते हुए, हर गिनती पर, दोनों ओर एक-एक ऐसा पूरा घेरा बनाइये जिस का व्यास लगभग बारह इंच हो; इस व्यायाम में यह आवश्यक है कि बांहों को कड़ा और कंधों को एक सीध में रक्खा जाए । दस तक गिनती समाप्त हो जाने पर उल्टी दिशा में एक-एक कर के, दस बार पहले जैसे घेरे बनाइये । (देखिये चित्र १)

दूसरा व्यायाम:– पहले की भांति अपनी बांहों को एक सीध में उठायें; फिर लम्बी सांस लेते हुए बांहों को इस प्रकार और ऊपर उठाइये कि पहली स्थिति की लाइन के साथ नई स्थिति की लाइन ४५ डिग्री का कोण बनाए; और एड़ियां भी ऊपर उठाइये जिस से आप केवल पंजों के बल पर ही खड़े रह सकें । तब धीरे-धीरे सांस निकालते समय, पहले की ही स्थिति में वापस लौट आइये; पांव पूरी तरह धरती पर जमे रहें और बांहें सीधी रहें । इस बात में सावधानी रखिए कि बांहें ४५ डिग्री से अधिक ऊपर न उठें और वापस आते समय पहली स्थिति से नीचे न आएं । (देखिये चित्र २)

तीसरा व्यायाम:– पहले की तरह बांहों को एक सीध में ऊपर उठाइये और फिर हाथों को गर्दन के पीछे इस प्रकार रखिये कि अंगूठों के बाद वाली उंगलियां एक दूसरे को छूती रहें और दोनों कोहनियां पीछे को अकड़ी रहें । इस स्थिति में धीरे-धीरे शरीर को कमर पर से आगे की ओर जितना हो सके उतना झुकाइये । फिर पहले की भांति सीधे खड़े हो जाइये

---

*नोट:– बांहों को एक सीध में लाने या उठाने का तात्पर्य यह है बांहों को इस प्रकार ऊपर उठाना कि ये दोनों ओर सीधी हो कर कंधों की सीध में आ जाएं और पृथ्वी के समानांतर रहें । (चित्र १ के अनुसार)
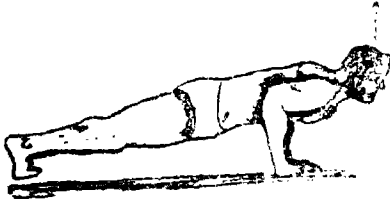
चित्र १ डंड : इस व्यायाम में पीठ कड़ी रक्खी जाए और कूल्हे धंसने न पाएं—इस स्थिति में शरीर को इतना नीचे लाइये कि फर्श को छूने लगे, फिर आगे की ओर बलपूर्वक उभरते जाइये यहां तक कि बांहें बिल्कुल सीधी हो जाएं।

चित्र २. इस व्यायाम में पहले फर्श पर चित लेट जाइये और दोनों बांहें को आगे की ओर पूरी तरह सीधा कर लीजिये। इस स्थिति में उदर-पेशियों को सिकोड़ते हुए कूल्हे के ऊपर वाले शरीर को ऊपर उठाइये और फिर हाथ की उंगलियों से पैर की उंगलियों को छूने की कोशिश कीजिये। पूरे व्यायाम में टांगें सीधी और कड़ी रहें।
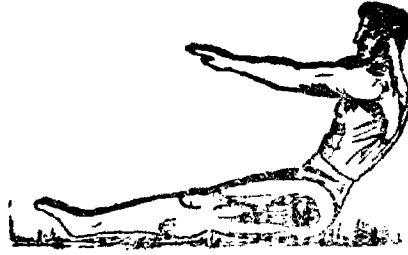
चित्र ३. टांग की पेशियों का व्यायाम : बांहें सीधी नीचे लटकी रहें। सारा भार बायें पैर पर डाल कर शरीर आगे को कीजिये और दाएं पैर को अपने सामने फर्श पर अच्छी तरह जमा लीजिये। इस के बाद दायें पैर पर सारा भार डाल कर और बायें पैर को आगे जमा कर शरीर को आगे को कीजिये।
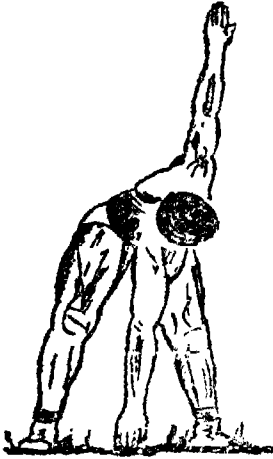
चित्र ४. कंधे का व्यायाम : टांगें चौड़ी कर के खड़े हो जाइये। फिर कमर पर से शरीर को इस प्रकार आगे को झुकाइये कि दाहिनी बांह सीधी फर्श की ओर आए और बाईं सीधी ऊपर चली जाए और दोनों बांहें रीढ़ की हड्डी के साथ समकोण बना लें। कमर झुकी रहे। इस के बाद दाहिनी बांह ऊपर उठा कर और बाईं फर्श की ओर ला कर यह व्यायाम कीजिये।
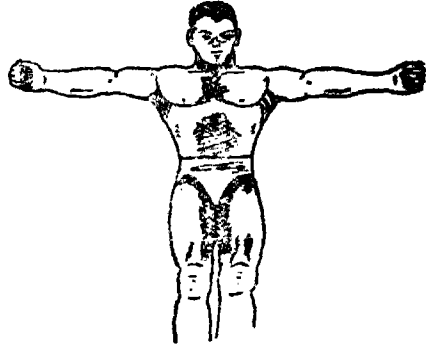
चित्र ५. वक्षःस्थल की पेशियों का व्यायाम फर्श पर चित लेट जाइए। बांहों को वक्षःस्थल के ऊपर सीधा कर लीजिये, और फिर उन्हें फर्श की ओर धीरे-धीरे इस प्रकार नीचे ले जाइये कि फर्श पर जाकर वे रीढ़ की हड्डी के साथ समकोण बनाए रक्खें। बांहों को अलग करते और नीचे ले जाते समय लम्बी सांस लीजिये। फिर बांहों को पहले की स्थिति में धीरे-धीरे ले जाइये परन्तु इस समय सांस रोके रखिये।

और शरीर को पीछे की ओर कीजिए। ऐसा करते समय झटके के साथ आगे पीछे नहीं झुकना चाहिये और जल्दी भी नहीं करनी चाहिए। यह पूर्ण क्रिया (आगे को झुकना, फिर सीधे खड़ा होना और फिर शरीर को पीछे को मोड़ना) पांच बार कीजिए। (देखिये चित्र ३)

चौथा व्यायामः- बांहों को पहले की भांति एक सीध में उठाइये। बाईं हथेली को ऊपर उठाइये फिर, बाईं बांह उठा कर दाहिनी बांह इस प्रकार नीचे को लाइये कि वह शरीर के पास आ जाए और बाईं बांह सीधी सिर के ऊपर पहुंच जाए। फिर कमर पर से अपना शरीर धीरे-धीरे दोनों ओर इस प्रकार झुकाइये कि दाहिनी बांह दाहिनी टांग पर से फिसलती हुई घुटने या उस से नीचे तक पहुंच जाए और बाईं बांह सिर के ऊपर हवा में अर्धवृत्त

बनाती हुई इस प्रकार झुके कि उंगलियां दाहिने कान को छूने लगें। फिर पहली स्थिति में आ जाइये और फिर दूसरी ओर भी शरीर को उक्त रीति से झुकाइये अर्थात् इस बार बाईं बांह टांग पर से फिसलती हुई घुटने या उस से नीचे तक पहुंच जाए और बाईं बांह सिर के ऊपर हवा में अर्धवृत्त बनाती हुई इस प्रकार झुके कि उंगलियां बायें कान को छूनें लगें। इस व्यायाम को पांच बार कीजिए। (देखिये चित्र ४)

पांचवां व्यायाम:– (अ) बांहें पहले की भांति एक सीध में ऊपर उठाइये। बायें पैर को दायें पैर से १२ इंच दूर रखिये। मुट्ठियों को धीरे-धीरे छाती की ओर ले जाइये और बांहों को कोहनियों पर से नीचे को कीजिये। फिर मुट्ठियों को ऊपर उठाते हुए बगलों में ले जाइये, और इस के साथ-ही-साथ सिर को इस प्रकार पीछे को कीजिये कि छत दिखाई देने लगे। सिर को पीछे को करते समय लम्बी सांस लीजिये और जब फिर सिर सीधा करने और बांहों को एक सीध में अर्थात् मूल स्थिति में लाने लगें, तो सांस छोड़ते जाइये। (देखिये चित्र ५)

(ब) फिर बिना आराम किये हथेलियां नीचे कर के बांहों को कंधों पर से सीधा उठाइये, फिर बांहों को नीचे करते हुए कमर पर से शरीर को आगे की ओर झुकाइये (सिर सीधा रहे और आंखें सामने को रहें) यहां तक कि शरीर उस स्थिति पर पहुंच जाए जहां
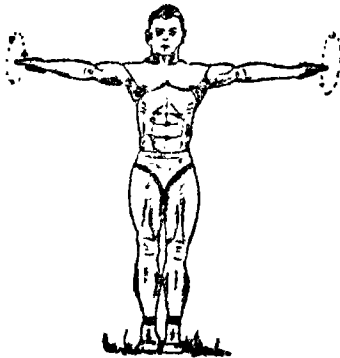
चित्र १.
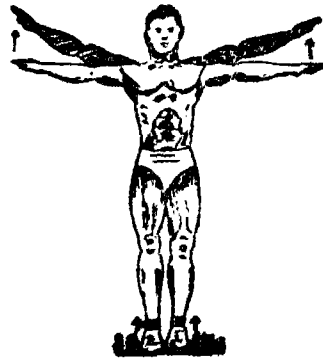
चित्र २.
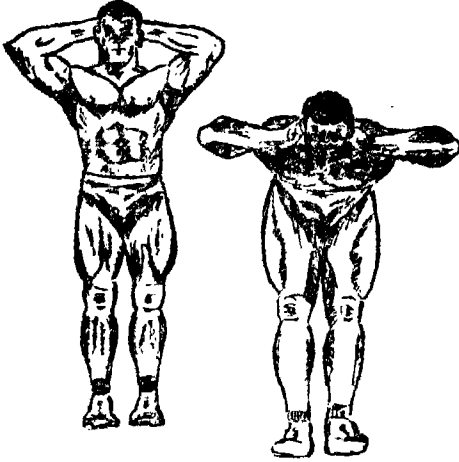
चित्र ३. चित्र ४.

से वह और आगे हिल न सके और बांहें दोनों किनारों को पार कर जायें और पीछे की ओर को जितनी ऊपर उठ सकती हों, उठी हुई हों, नीचे जाते समय लम्बी सांस लेनी चाहिए और सीधा होते समय सांस को बाहर निकालना चाहिये। इन (अ) और (ब) व्यायामों को पांच-पांच बार कीजिये। (देखिये चित्र ६)

छठा व्यायाम:— दायें पैर को इतना दूर कीजिये कि एड़ियां १२ इंच की दूरी पर हो जायें। बांहों को ऊपर उठा कर एक सीध में लाइये। सारा भार पंजों पर रख कर घुटनों को मोड़िये और शरीर को एड़ियों तक नीचे ले आइये, परन्तु धड़ जितना सीधा रह सके उतना सीधा रखिये। इस व्यायाम को दस बार कीजिये। (देखिये चित्र ७)

सातवां व्यायाम :—पहले की भांति बांहों को ऊपर उठा कर एक सीध में लाइये। फिर उन्हें सिर के ऊपर बिल्कुल सीधा खड़ा कर लीजिये। इस के बाद दोनों हाथों की उंगलियां आपस में इस प्रकार फंसा लीजिये कि बांहें कानों को छूने लगें। अब उंगलियों को फंसाए-फंसाए हवा में एक ऐसा पूरा वृत्त बनाइये जिस का व्यास लगभग चौबीस इंच का हो। ध्यान रहे कि इस क्रिया में शरीर केवल कमर पर से ही झुके। इस क्रिया को पांच बार कीजिये। इस के बाद इसी क्रिया को पांच बार उल्टी दिशा में कीजिये।
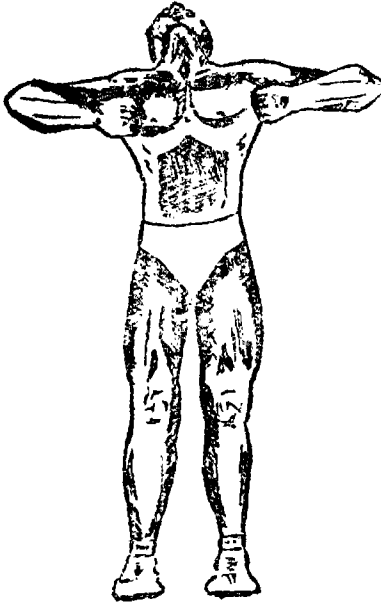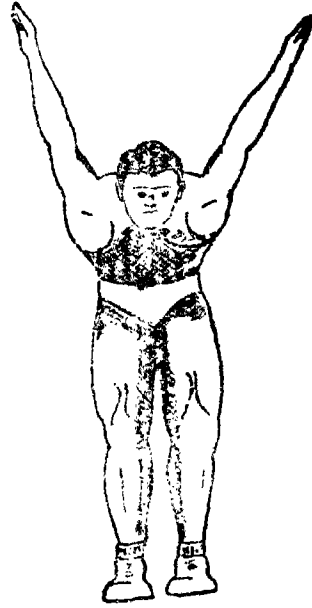
चित्र ५. चित्र ६.

इस पूर्ण व्यायाम को धीरे-धीरे, परन्तु ठीक-ठीक, करना चाहिए। शरीर केवल कूल्हों पर से ही चारों ओर घूमे। (देखिये चित्र ८)

आठवां व्यायाम:– (अ) दायां पैर इतनी दूर खिसकाइये कि एड़ियां १२ इंच की दूरी पर हो जायं। बांहों को सीधा उठाइये और शरीर को कूल्हे पर से बाईं ओर घुमाइये, परन्तु बांहें सीधी ही रहें, यहां तक कि चेहरा बाईं ओर घूम जाय, दाईं बांह सीधी आगे की ओर रहे और बाईं बांह सीधी पीछे की ओर। (देखिये चित्र ९)

(ब) इसी स्थिति में शरीर को कमर पर से झुकाइये जिस से दाईं बांह नीचे की ओर जाय यहां तक कि दायें हाथ की उंगलियां पैरों के बीच के स्थान का स्पर्श कर लें और बाईं बांह ऊपर उठ जाय। दायां घुटना थोड़ा सा मोड़ना चाहिये जिस से इच्छित स्थिति सम्भव हो सके। इस के बाद बायां पैर इतनी दूर खिसकाइये कि एड़ियां १२

चित्र ७.　　　　चित्र. ८.
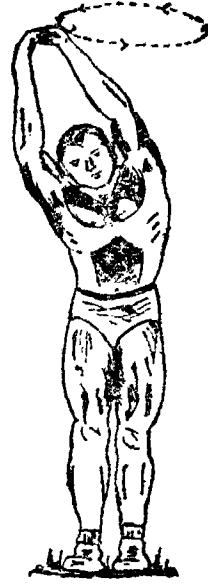
इंच की दूरी पर हो जाएं। इस बार शरीर को उक्त रीति से दाहिनी ओर घुमाइये जिस से बायां हाथ सामने आजाए और फिर नीचे जा कर उंगलियां पैरों के बीच के स्थान का स्पर्श करने लगें। हर बार मूल स्थिति में आ जाइये अर्थात् शरीर सीधा हो और बांहें ऊपर उठी हुई एक सीध में हों। इस व्यायाम का भली भांति अभ्यास हो जाने पर (अ) और (ब) दोनों व्यायाम एक ही गति में हो सकते हैं।

(अ) और (ब) को पहले दाईं ओर फिर बाईं ओर १० बार कीजिये (देखिये चित्र १०)

नवां व्यायामः— बांहों को ऊपर उठा कर एक सीध में लाइये। फिर उन्हें और उठा कर बिल्कुल सिर के ऊपर ले आइये अब उन्हें आगे की ओर कर के नीचे को लाइये जिस से शरीर कमर पर से आगे को इतना झुके कि बांहें दोनों पहलुओं को पार कर जाएं और जहां तक हो सके वहां तक पीछे की ओर जा कर ऊपर को चली जाएं। (व्यायाम ९ से सम्बन्धित चित्र ६ देखिये) याद रहे कि शरीर के आगे को झुकते समय सिर ऊपर को
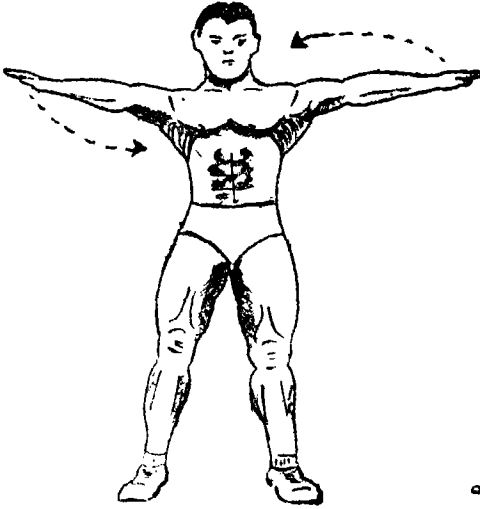
चित्र ९.　　चित्र १०.
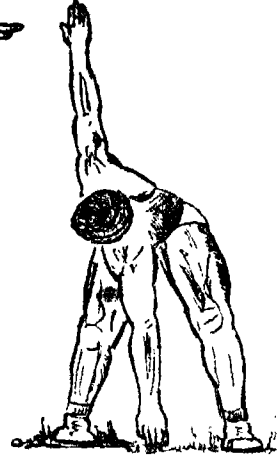
और आंखें सामने को रहें। इस के बाद शरीर को बिल्कुल सीधा कर लीजिये और बांहें को सिर के ऊपर ले जाइये। फिर बांहें को नीचे कंधों के बराबर एक सीध में लाइये। इस दशा में हथेलियों को ऊपर कर के बांहें और कंधों को बलपूर्वक पीछे को कीजिये। फिर बांहें को ऊपर की ओर उठाइये और इस क्रिया को फिर आरम्भ कीजिये। इस पूर्ण क्रिया को धीरे-धीरे पांच बार कीजिये। इस व्यायाम में जब शरीर आगे को झुकता हो, तो फेफड़ों में से हवा बाहर निकाल दीजिये और जब शरीर फिर सीधा होता जाए, तो फेफड़ों में हवा भर लीजिये।

अध्याय १०

चेता-संस्थान

◇◇◇

शरीर में बहुत से अवयव हैं। प्रत्येक अवयव का एक मुख्य कार्य होता है। उदाहरणार्थ के लिए—आमाशय का काम भोजन को पचाना है; गुर्दे विषैले सारहीन पदार्थों को बाहर निकालने में सहायता देते हैं; त्वचा शरीर में यथोचित नियमित रूप से ऊष्णता का संचालन करती है; तथा हृदय रुधिर का संचार करता है। प्रत्येक अवयव को नियत समय पर अपना-अपना काम करना आवश्यक है और यह भी बहुत आवश्यक है कि सब अवयव एक साथ सामंजस्यपूर्वक काम करें, नहीं तो शरीर को कोई-न-कोई रोग लग जाएगा। चेता-संस्थान का काम यह है कि शरीर के सब भागों से नियत समय पर, उचित ढंग से और ठीक मात्रा में काम कराए।

मस्तिष्क और सुषुम्ना

चेता-संस्थान या नाड़ी-संस्थान के दो मुख्य भाग हैं—मस्तिष्क और सुषुम्ना (Spinal Cord)। मस्तिष्क हड्डी के एक बक्स में सुरक्षित रहता है। हड्डी के इस बक्स को खोपड़ी या कर्पर कहते हैं।

सुषुम्ना वास्तव में मस्तिष्क का ही एक भाग है जो लम्बी रस्सी के समान दूर तक चला गया है। सुषुम्ना ऊपर से नीचे तक छोटी उंगली जितनी मोटी होती है। यह मस्तिष्क के निचले भाग (मस्तिष्क-पुच्छ) से जुड़ी हुई होती है; और खोपड़ी में से एक बड़े छेद में होकर गुजरती है। सुषुम्ना एक बड़े ही अद्भुत ढंग से सुरक्षित रहती है। पीठ से लगी हुई चौबीस हड्डियां ऊपर-तले रक्खी होती हैं। इस समूह को मेरुदंड कहते हैं। मेरुदंड की प्रत्येक हड्डी के बीचों-बीच एक छेद होता है। ये सब छेद इस प्रकार एक-पर-एक आ जाते हैं कि एक लम्बी नलिका-सी बन जाती है। इसी नलिका में हड्डियों की दीवार द्वारा सुषुम्ना सुरक्षित रहती है। सुषुम्ना रीढ़ में नीचे कमर के पतले भाग तक चली गई है।

मस्तिष्क और सुषुम्ना में से बहुत सी अत्यन्त सूक्ष्म चेताएं निकल कर शरीर के समस्त भागों में फैली हुई हैं। इन चेताओं में से कुछ तो रेशम के बारीक-से-बारीक
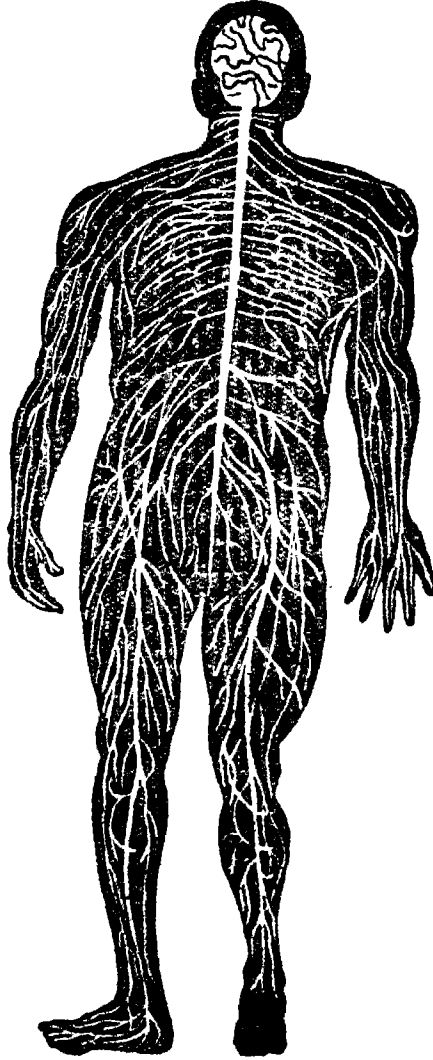
सामान्य चेता-संस्थान

रेशे से भी बारीक होती हैं। इन अनगिनत चेताओं का समस्त शरीर में इस प्रकार जाल-सा फैला हुआ है कि यदि महीन-से-महीन सुई भी शरीर में कहीं चुभाई जाय, तो किसी-न-किसी चेता में अवश्य ही चुभेगी जिस से पीड़ा होगी।

मस्तिष्क और सुषुम्ना के प्रकार्य

मस्तिष्क सुषुम्ना किसी प्रान्त के उस शासक के समान हैं जो अपनी राजधानी के कार्यालय में बैठा हो; और शरीर के प्रत्येक भाग में फैली हुई चेताएं बिजली के उन तारों के समान हैं जो संदेश भेजने और प्राप्त करने के लिए शासक के कार्यालय और राजधानी के विभिन्न मुख्य नगरों को परस्पर मिलाते हों। जब शासक के कार्यालय में किसी नगर में घटित घटना का समाचार प्राप्त होता है, तो शासक तत्क्षण उस नगर के अधिकारी को उचित कार्यवाही का आदेश भेजता है।

मस्तिष्क शरीर के अन्य भागों से न केवल संदेश प्राप्त ही करता है, वरन् उन्हें अपने संदेश भेजता भी रहता है—इसी का संदेश पाकर पेशियां अपना कार्य आरम्भ कर देती हैं, और हृदय संदेश के अनुसार कभी तीव्र गति से और कभी मध्यम गति से धड़कता है। यदि हम चलना चाहें, तो मस्तिष्क तुरन्त टांगों की पेशियों को चलाने का आदेश देता है। यदि आंखों ने मस्तिष्क को यह समाचार भेजा कि शरीर के निकट सांप है, तो मस्तिष्क उसी समय पेशियों को यह आदेश भेजता है कि तुरन्त शरीर को वहां से हटाओ। यदि उंगली की चेता मस्तिष्क तथा सुषुम्ना को यह समाचार भेजे कि उंगली किसी गरम वस्तु को छू रही है, तो मस्तिष्क तथा सुषुम्ना तत्क्षण बांहें की पेशियों को यह आदेश भेजेंगे कि तुरन्त उंगली हटा लो। यदि हमारे शरीर में चेताएं न होतीं, तो हमें उंगली जलने का पता भी न चलता और गरम वस्तु पास से हटाने से पूर्व ही हमारी उंगली जल जाती।

मस्तिष्क सोचता है; संवेदनाओं का अनुभव करता है; बातों और घटनाओं को याद रखता है; प्रेम और घृणा की भावनाओं को अभिव्यक्त करता है; तथा इस बात का भी निर्णय करता है कि किसी परिस्थिति विशेष में क्या किया जाए और क्या न किया जाए। यह शरीर के प्रत्येक भाग पर नियंत्रण रखता है। जब मस्तिष्क और शरीर के किसी अन्य भाग को जोड़ने वाली चेता किसी प्रकार कट कर अलग हो जाती है, या इस में किसी प्रकार की चोट आ जाती है, तो वह भाग सुन्न पड़ जाता है अर्थात् क्रियाहीन हो जाता है और उस में किसी प्रकार की चेतना नहीं रहती। मद्यपों का या उन व्यक्तियों का जिन्हें गर्मी-रोग (आतशक) लग जाता है, कभी-कभी आधा शरीर सुन्न पड़ जाता है, क्योंकि मद्य का विष और गर्मी-रोग का विष दोनों ही चेताओं को नष्ट कर देते हैं।

चेता-संस्थान की स्वास्थ्य-रक्षा

चेता-संस्थान को स्वस्थ रखने के लिए सारे शरीर को हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली होना चाहिए। चेता-संस्थान (नाड़ी-संस्थान) को अच्छी दशा में रखने के लिए अच्छा

व शुद्ध भोजन, स्वच्छ वायु, पर्याप्त नींद और उचित मानसिक व शारीरिक व्यायाम बहुत आवश्यक हैं।

आदतें

जो कुछ भी हम करते हैं, चाहे अच्छा हो, चाहे बुरा, करते-करते उस को करने की आदत बन जाती है। हमें चाहिए कि अपने मन में अच्छी ही बातें और अच्छे ही विचार आने दें, जिस से केवल अच्छी आदतें बनें; क्योंकि बार-बार बुरा कहने और बुरा करने से बुरी आदतें पड़ती हैं। पच्चीस वर्ष की आयु को पहुंचते-पहुंचते हमारी बहुत सी आदतें बन चुकती हैं। अतः यह कितनी महत्वपूर्ण बात है कि बच्चों और युवकों को उचित शिक्षा दी जाए। उन्हें सच्चाई, ईमानदारी, न्याय और मानसिक व शारीरिक निर्मलता की सीख देनी चाहिए। इस प्रकार भले आचरण का निर्माण होगा। भली बातें सोचने और भले काम करते-करते जब भली आदतें बन चुकती हैं, तो फिर आसानी से रोगों से बचा जा सकता है और दीर्घायु और उपयोगी जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

अध्याय ११

सुनना और देखना

नेत्र एक आश्चर्यजनक अवयव है। यह जो कुछ भी देखता है, उस की प्रतिमा बना लेता है और दृष्टि-चेताएं ऐसी प्रतिमाओं की सूचना मस्तिष्क को पहुंचा देती हैं। नेत्र इतने कोमल अवयव हैं कि आसानी से इनको हानि पहुंच सकती है; इसी कारण खोपड़ी के सामने वाले भाग में दो गढ़ों में सुरक्षित रहते हैं; इस के अतिरिक्त पलकें, बरौनियां और भौंहें बाहर से इन की रक्षा करती हैं।

नेत्रों की रक्षा

बच्चों की आंखों की बहुत अधिक देखभाल होनी चाहिए। (अधिसूचनार्थ अध्याय १८ देखिये)। जब बच्चा सोता है, तो उस के ऊपर मच्छरदानी डाल दीजिये जिस से मक्खियां उस की आंखों पर बैठ कर उन्हें कोई रोग न लगा जाएं। स्कूल के जिस कमरे में बालक पढ़ते-लिखते हैं वहां पर अच्छा प्रकाश होना चाहिये। बच्चों के बैठने की कुर्सियां इतनी नीची होनी चाहियें कि उन के पैर फर्श पर टिक सकें। डेस्क या मेज भी इतनी नीची होनी चाहिए कि जब किताब मेज पर रक्खी हो और बच्चा सीधा बैठा हो, तो दोनों के बीच एक फुट का अन्तर हो। बच्चों की पुस्तकें ऐसी होनी चाहियें कि उन के अक्षर बड़े-बड़े हों और छापा साफ हो। खसरा, शीतला या लाल ज्वर से अच्छा होने के पश्चात् कुछ हफ्तों तक बच्चे को स्कूल नहीं भेजना चाहिये क्योंकि इन रोगों से बच्चों की आंखों को हानि पहुंचती है और वे कमजोर हो जाती हैं।

किसी प्रकार की चोट अथवा रोग से आंखों को बचाने के लिए जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है, उस के अतिरिक्त निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना चाहिए:

१. कम प्रकाश वाले स्थान में न तो कभी पढ़ना चाहिए और न ही कढ़ाई जैसा महीन काम करना चाहिये।

२. पढ़ते समय रोशनी आंखों के सामने नहीं होनी चाहिए, बल्कि इस प्रकार बैठना चाहिए कि प्रकाश पीछे कंधों के ऊपर से आकर पुस्तक पर पड़े।

३. पढ़ते समय या कोई ऐसा कार्य करते समय जिस में एकाग्र-चित्त होना आवश्यक हो, थोड़ी-थोड़ी देर बाद आंखों को आराम देना चाहिये। थोड़ी देर तक उन्हें या तो बन्द कर लीजिए या खिड़की में से दूर आकाश को, हरे पेड़ों या हरी घास को कुछ मिनटों तक देखते रहना चाहिये।

आंख धोने की प्याली; आंख में दवा डालने की पिचकारी

४. जब धूल या कोई अन्य पदार्थ आंख में पड़ जाय तो आंख को मलना नहीं चाहिए, वरन् आंख को बोरिक एसिड से धोकर उसे बाहर निकालना चाहिए और यदि बोरिक एसिड पास न हो तो उबले हुए साफ पानी का उपयोग किया जा सकता है।

५. तौलिया, साबुन, चिलमची या मुंह पोंछने के कपड़े, जिन का उपयोग दूसरे व्यक्ति करते हैं उन को अपने काम में न लाइये। यदि दुखती हुई आंखों वाले व्यक्ति इन वस्तुओं का प्रयोग कर चुके हैं और आप भी उन्हीं को अपने काम में लाते हैं, तो निश्चय ही रोग आप की आंखों को भी लग जाएगा।

६. धुंआ आंखों के लिए हानिकारक होता है। जिस चूल्हे पर खाना पकता हो वहां से यदि धुआं बाहर निकलने के लिए चिमनी बनी हुई न हो, तो सारा घर धुएं से भर जाता है। जब यही बात दिन भर में तीन-तीन बार होती है, तो परिवार के प्रत्येक सदस्य की आंखों को हानि पहुंचती है। बहुत थोड़े से खर्च से मामूली चिमनी बन सकती है जो धुएं को बाहर निकालकर आप की आंखों को दुःख व हानि से बचाएगी।

७. मद्यपान और तम्बाकू के सेवन से बचिये।
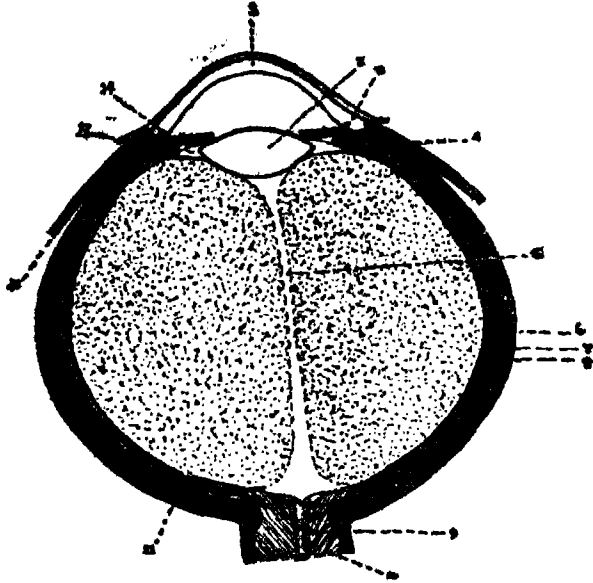
आंख के ढेले की रचना

१. कनीनिका या पारदर्शीपटल (Cornea) २. नेत्रमणि (Lens) ३. उपतारण् मण्डल (Ciliary body) ४. पारदर्शीपटल और कृष्ण मण्डल के बीच का स्थान (Posterior Chamber) ५. पारदर्शक नली (Hyaloid Canal) ६. शुभ्रपटल (Sclera) ७. मध्य-पटल (Choroid) ८. नाड़ी पटल (Retina) ९. धमनी १०. दृष्टि-नाड़ी तन्तु (Optic Nerve) ११. अंध-बिन्दु (Blind Spot) १२. श्लैष्मिक-झिल्ली (Mucous Membrane) १३. नेत्रमणि का लटकता बंधन (Zonular space) १४. शुभ्रपटल और पारदर्शी पटल के मिलने का स्थान (Sclero-Corneal junction)

कानों की रक्षा

पृष्ठ १९ पर दिए हुए कान के चित्र को ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलेगा कि कान के तीन भाग हैं—बाहर का भाग, बीच का भाग, और अन्दर का भाग। बाह्यकर्ण जो सिर के बाहर निकला हुआ दिखाई देता है, चोंगे जैसा है और इसी में से हो कर आवाज पहले बीच के भाग (मध्यकर्ण) और फिर अन्दर के भाग (आन्तर-कर्ण) में जाती है। मध्यकर्ण एक छोटी सी नलिका (कम्बु-कर्णी नलिका) द्वारा गले से

मिला हुआ है। जुकाम हो जाने पर जब किसी की नाक और गला कफ से भर जाते हैं, तो नसों के अन्दर का आवरण और कम्बु-कर्णी नलिका फूल जाते हैं और यह नलिका बन्द हो जाती है। बहरेपन का एक कारण यह भी होता है।

जब कम्बु-कर्णी नलिका में कोई दोष उत्पन्न हो जाता है, तो यह दोष मध्य-कर्ण में भी पहुंच जाता है जब पीप पड़ जाती है और मध्यकर्ण में भर जाती है, तो कान में पीड़ा होने लगती है। इतनी पीप इकट्ठी हो सकती है कि कान के पर्दे पर जोर डालने लगती है और फिर उसे छेद कर बाहर निकलती हुई दिखाई देने लगती है। इस का उपचार अध्याय ३४ में दिया गया है।
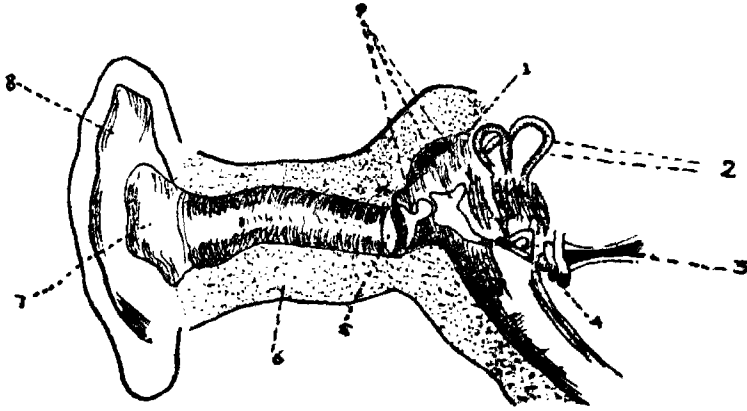
इस रेखा-चित्र में कान के बाहर का, बीच का और अन्दर का भाग दिखाया गया है।

१. मध्यकर्ण २. अर्द्ध-गोलाकार नलियां (Semi-circular Canals) ३. श्रावणी नाड़ी (Auditory Nerve) ४. कर्ण-कम्बु या कान शंखाकृति भाग (Cochlea) ५. कान का पर्दा (Drum membrane) ६. कनपटी की हड्डी (काटी हुई) ७. बाह्य कर्ण-नलिका (External Auditory Canal) ८. बाह्य कर्ण (Auricle) ९. छोटी-छोटी हड्डियों की पंक्ति (Chain of ossicles)

कानों की रक्षा के लिए निम्नलिखित मुख्य बातों पर ध्यान देना चाहिये :

१. कान के मैल का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह मैल बहुत ही कड़वा होता है और इस कारण कोई कीड़ा कान में प्रवेश नहीं कर सकता; हां, कोई कीड़ा उड़ता-उड़ता अकस्मात् घुस जाए, तो दूसरी बात है। कान के मैल को कदापि खुरच-खुरच या करेद-करेद कर नहीं निकालना चाहिये। यदि यह मैल सख्त हो जाए और सुनने में बाधा डालने लगे, तो अध्याय ३४ में बताई हुई रीति से निकालना चाहिये। कानों में जो

बाल उग आते हैं वे भी धूल और कीड़े. आदि को बाहर रखने में उपयोगी सिद्ध होते हैं। नाई को इन्हें काटने न दीजिये।

२. यदि कोई छोटा-सा कीड़ा कान में घुस जाए, तो उस को बाहर निकालने का सब से अच्छा उपाय यह है कि तिल के या किसी और साफ मीठे गरम तेल की कुछ बूंदें कान में डाल दीजिये। इस से यह कीड़ा या तो बाहर निकल आएगा या मर जाएगा, और फिर गरम पानी की पिचकारी द्वारा यह मरा हुआ कीड़ा बाहर निकाला जा सकता है।

३. जोर से नाक साफ न कीजिये। ऐसा करने से जोर पड़ने पर नाक और गले के कृमि कम्बु-कर्णी नलिका द्वारा मध्यकर्ण में पहुंच जाते हैं और परिणाम इस का होता है बहरापन।

४. बच्चे के कानों पर कभी भी थप्पड़ आदि न मारिये। इस से कान को हानि पहुंचती है और कान बहरा भी हो सकता है।

अध्याय १२

प्रजनन-संस्थान

पुरुष जननेन्द्रियां

प्रजनन तथा यौन-स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धांतों की चर्चा इस पुस्तक में इस कारण की जा रही है कि इन विषयों का ज्ञान न होने से लोग भयंकर-से-भयंकर रोगों के शिकार बन सकते हैं और नाना प्रकार के दुराचारों में फंस सकते हैं।

लड़का जब चौदह-पन्द्रह वर्ष का हो जाता है तो उस के शरीर में परिवर्तन होने लगते हैं। वह यौवनारम्भ-काल में पदार्पण कर चुकता है। परन्तु इस अवस्था को पहुंचने के बाद ही वह पूर्ण रूप से पुरुषत्व प्राप्त नहीं कर लेता, क्योंकि तरुणावस्था से पुरुषत्व को पहुंचते-पहुंचते लगभग आठ वर्ष लग जाते हैं; अतः तेईस-चौबीस वर्ष की आयु से पहले नहीं, बल्कि उस के बाद ही पुरुष की मानसिक व शारीरिक शक्तियां उसे विवाह करने और पिता बनने के योग्य बनाती हैं।

पुरुष जननेन्द्रियों की रचना व क्रिया

पुरुष की बाह्य जननेन्द्रियों में शिश्न या लिंग और अंडकोष या वृषण हैं। अंडकोष के अन्दर दो अण्ड या वीर्य-पिंड होते हैं।

शिश्न के आगे का छोर लगभग एक इंच लम्बा और सुपारी के आकार का सा होता है; इसे शिश्नमुण्ड या बोलचाल की भाषा में 'सुपारी' कहते हैं। जो पतली सी त्वचा इस 'सुपारी' को ढके रहती है वह ढीली होती है और आगे-पीछे को खींची जा सकती है। इस त्वचा को शिश्नच्छदा या लिंगावरणीत्वचा या फिर सीधी-सादी भाषा में 'चमड़ी' कहते हैं। यदि चमड़ी आसानी से पीछे को खींची न जा सके और 'सुपारी' पूर्ण रूप से साफ-साफ दिखाई न दे, तो समझ लेना चाहिए कि उस में कोई-न-कोई दोष है; और इस दशा में किसी होशियार डॉक्टर को दिखाना चाहिए। इस 'चमड़ी' के नीचे श्वेत धातु सी जमा हो जाती है, और यदि जल्दी-जल्दी धोई न जाए तो इस में से दुर्गंध आने और खुजली होने लगती है। यह खुजली शिश्न को साफ न रखने के कारण ही पैदा होती है, और लड़कों में प्रायः इसी से हस्त-मैथुन की आदत पड़ जाती है।

दोनों अंड त्वचा की एक थैली सी के अन्दर रहते हैं; इस थैली को अण्डकोष या वृषण कहते हैं। अंडों में शुक्रकीट पैदा होते हैं। ये शुक्रकीट इतने सूक्ष्म होते हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्र के दिखाई नहीं दे सकते। वीर्य-स्खलन के समय ये शुक्रकीट एक नलिका में से हो कर मूत्राशय में पहुंच जाते हैं और वहां से शिश्न में होकर निकल जाते हैं। यही शुक्रकीट स्त्री-प्रसंग के समय स्त्री की योनि में एकत्रित हो जाते हैं। इन में से एक का स्त्री के डिम्ब से संयोग हो जाता है; और तुरन्त ही डिम्ब बढ़ने लगता है और बढ़ते-बढ़ते दो सौ अस्सी दिन में पूर्ण रूप से विकसित शिशु का एक रूप धारण कर लेता है।

वीर्य-स्खलन

मूत्रमार्ग से जुड़ी हुई दो विशेष ग्रंथियां होती हैं—पौरुष तथा 'कौपर' ग्रंथियां। यौवनावस्था आरम्भ होने पर इन ग्रंथियों में—पहली में दूधिया रंग का कुछ गाढ़ा-गाढ़ा सा पदार्थ और दूसरी में पानी के रंग का लेस सा*—निरन्तर पैदा होता रहता है। ये दोनों प्रकार के द्रव पदार्थ अण्डकोष, शुक्रनलिका और मूत्रप्रणाली में स्थित अन्य ग्रंथियों के स्राव में मिल जाते हैं; और इसी मिश्रित रूप का नाम है वीर्य। अधिक संचित हो जाने पर अविवाहित और व्यभिचार से बचे हुए युवक का थोड़ा-बहुत वीर्य आप-से-आप दसवें-पन्द्रहवें दिन स्खलित हो जाता है। इस प्रकार का वीर्य-स्खलन प्रायः निद्रित अवस्था में होता है, और हो सकता है कि कामुक स्वप्न में हो। इसे स्वप्न-दोष कहते हैं। इस प्रकार के स्वप्न-दोष कोई अस्वाभाविक दशा उत्पन्न नहीं करते, बल्कि स्वाभाविक होते हैं और इन से भयभीत नहीं होना चाहिये। समाचार-पत्रों में निकले उन विज्ञापनों पर जरा भी ध्यान न दीजिये जिन में यह कह कर डराने की कोशिश की गई हो कि इस प्रकार के स्वप्न-दोषों से काम-शक्ति नष्ट हो जाती है, और यह हो जाता है और वह हो

---

*इन का एक मुख्य कार्य है वीर्य के विकास में सुगमता पैदा करना।
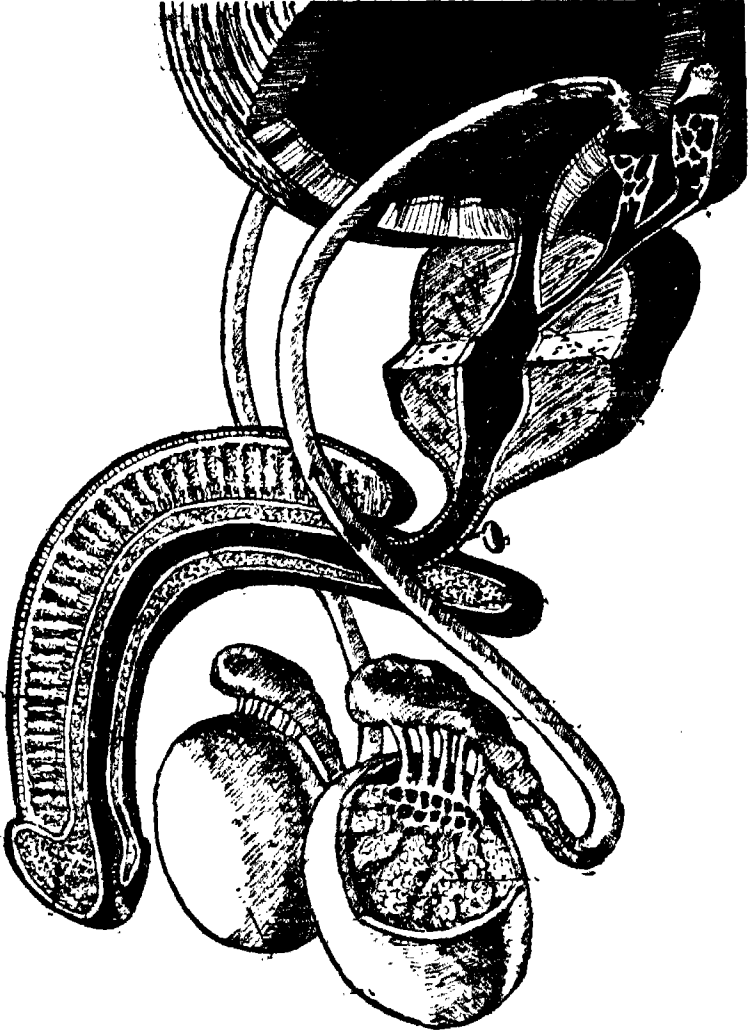
पुरुष-जननेंद्रियां

जाता है—ये सब निरी बकवास होती है, पैसा कमाने का साधन होता है। परन्तु हां, एक बात है कि यदि स्वप्न-दोषों की संख्या बढ़ती जाए और सवेरे को उठने पर सिर में पीड़ा

और शरीर में दौर्बल्य अनुभव हो, तो अवश्य ही अस्वाभाविक स्थिति होगी; और इस दशा में किसी अनुभवी चिकित्सक का परामर्श प्राप्त करना चाहिये। स्वाभाविक रूप से स्वप्न-दोष उन्हीं युवकों को होते हैं जिन के मन और शरीर दोनों स्वच्छ रहते हैं, जिन का जीवन पवित्र होता है और जो कामुक पुस्तकें नहीं पढ़ते, अश्लील चित्र नहीं देखते और कामोद्दीपक विचार मन में नहीं रखते। परन्तु हस्त-मैथुन की बुरी आदत और अश्लील पुस्तकों के अध्ययन से ऐसे "स्वप्न-दोष" होते हैं जिन से शरीर में दुर्बलता आती जाती है और आगे चल कर बड़ी हानि पहुंचती है।

संयम

अविवाहित युवक के लिए संयम का अर्थ यह होता है कि वह स्त्री-प्रसंग से दूर रहे। विवाहित युवक के लिए संयम का अर्थ यह होता है कि वह अपनी काम-वासना के वश में न रहे, बल्कि उस को परिमित रखे। प्रत्येक युवक को संयमी जीवन व्यतीत करना चाहिये। विवाह से पूर्व कभी-कभी प्रत्येक स्वस्थ युवक की काम-वासना बहुत ही प्रबल हो उठती है, परन्तु यदि वह स्वस्थ और शक्तिशाली रहना चाहता हो, यदि जीवन में उपयोगी बनने और प्रसन्न रहने की इच्छा रखता हो, यदि सुयोग्य पत्नी और स्वस्थ बच्चों की लालसा करता हो, तो उसे संयमी रहना चाहिये। ऐसा करने के लिए आत्म-संयम की आवश्यकता होती है, अपनी इन्द्रियों को वश में रखना पड़ता है। बहुत से युवक अपनी काम-वृत्तियों के वशीभूत होकर हस्त-मैथुन या स्त्रियों के साथ अनन्मत्त सहवास करने लगते हैं। इन दोनों कुकर्मों में से कोई सा ही क्यों न हो, आदमी नीति-पथ से गिर जाता है, अपना आचरण भ्रष्ट कर लेता है!

हस्त-मैथुन

हस्थ-मैथुन (अपनी शक्ति को स्वयं नष्ट करना) बड़ी ही गन्दी और विनाशकारी आदत है। जब बालक छोटा ही होता है तभी से यह लत पकड़ लेता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे की देख-रेख करने वाला नौकर बच्चे को बहलाने के लिए उस के लिंग को पकड़ता और सहलाता है। बाद में बच्चा स्वयं ही अपने शरीर के इस भाग को पकड़ने लगता है और इस प्रकार हस्त-मैथुन सीख जाता है। बच्चे की टांगें चीर कर उसे कूल्हे पर बैठाए रखने से उस के लिंग में निरन्तर रगड़ लगती रहती है, उस में जलन पैदा हो जाती है जिस का फल यह होता है कि बच्चा अपने लिंग को पकड़ता है और फिर धीरे-धीरे हस्त-मैथुन करने लगता है। प्रायः बच्चे पाठशाला में अपने साथियों से यह बुरी आदत सीख लेते हैं। बहुधा ऐसा भी होता है कि बच्चे के लिंग के आगे की चमड़ी बहुत लम्बी और तंग होती है, इस से लिंग के सिरे पर खुजली या जलन होने लगती है। बालक लिंग को पकड़ता है और हस्त-मैथुन सीख जाता है। इसीलिए जब कभी लड़का अपने लिंग अथवा उस के निकटवर्ती स्थान को मले या खुजाए, तो

यह अच्छा होगा कि किसी अच्छे डॉक्टर से उस 'चमड़ी' को कटवा दिया जाए। बचपन के बाद युवावस्था में भी जब किसी युवक की हस्त-मैथुन की लत नहीं छूटती, तो वह नैतिक रूप से पतित हो जाता है; उस में आत्म-सम्मान नहीं रहता, और फिर जब तक वह अपनी गलती पर न पछताए और इस बुरी लत को छोड़ न दे, तब तक वह उपयोगी नहीं बन सकता। बचपन में ही इस आदत को रोकने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

व्यभिचार

अननुमत सहवास बहुत ही नीच, घृणित और हानिकारक कार्य है। सब से पहले तो यह एक अत्यंत गम्भीर नैतिक अपराध है। इस से स्त्री-पुरुष दोनों ही अपना आचरण भ्रष्ट कर लेते हैं और पशुता के स्तर से भी नीचे गिर जाते हैं। अननुमत सहवास एक इतना भारी अपराध है कि इस का दण्ड भी कड़े-से-कड़ा होना चाहिए; और सच पूछिये तो व्यभिचारी व्यक्ति को जो गुप्त रोग प्रायः लग जाते हैं, उन को इस दंड का एक अंश ही समझना चाहिये। एक ही बार के अननुमत सहवास से प्रायः ऐसा गुप्त रोग लग जाता है कि वर्षों दुःख भोगना पड़ता है। इन गुप्त रोगों में हैं उपदंश-व्रण, पूयमेह (सुजाक) और गर्मी (आतशक) इन रोगों का वर्णन अध्याय २१ में किया जाएगा।

संयमी रहने का गुर

पुरुष, विवाहित हो या अविवाहित, यदि अपनी काम वासनाओं को वश में रखना चाहे, तो उसे निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए:

१. प्रतिदिन खुली हवा में व्यायाम कीजिये या टहलिये।

२. पर्याप्त मात्रा में ताजी हरी तरकारियां खाइये और मांस तथा मिर्च न खाइये।

३. मादक पेयों का सेवन न कीजिये। किसी विद्वान ने लिखा है कि मादक पेयों के विरोध में सब से बड़ी बात यह है कि वे कामेच्छाओं को उत्तेजित करते हैं और आत्म-संयम की शक्ति को क्षीण करते हैं।

४. प्रचुर मात्रा में पानी पीजिये जिस से शारीरिक मल-स्राव सुगम हो जाए।

५. नित्यप्रति स्नान कीजिये। ठंडे पानी से नहाने से कामेच्छा दब जाती है।

६. मन की स्थिति को कुछ इस प्रकार बनाइये कि मन में केवल शुद्ध विचार ही आएं, और बात-चीत भी आप की उच्च प्रवृत्ति-उत्पन्न करने वाली हो।

अतिशय मैथुन, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, महापाप है और इतना बढ़ता जाता है कि बहुत से पुरुषों की उपयोगिता नष्ट होती जाती है। जननेन्द्रियों के प्रयोग में पराङ्मुखी प्रवृत्ति आयु को घटाती है और मृत्यु को निकट लाती है।

मासिक धर्म के दिनों में स्त्री के साथ संभोग नहीं करना चाहिये। गर्भावस्था के प्रथम सात महीनों में बहुत कम संभोग करना चाहिये, परन्तु अन्तिम दो महीनों में बिल्कुल नहीं करना चाहिये क्योंकि गर्भपात का डर रहता है।

नारी जननेन्द्रियां

प्रजनन के अद्‌भुत कार्य में यद्यपि स्त्री-पुरुष दोनों ही सहभागी होते हैं, परन्तु इस का बहुत अधिक भार स्त्री ही पर पड़ता है। प्रत्येक शिशु का जीवन यथासम्भव सुरक्षित रूप से माता के उदर ही में आरम्भ होता है; प्रत्येक शिशु अपने जीवन के प्रथम दो सौ अस्सी दिन तक माता के उदर में ही पोषित होता है। दो सौ अस्सी दिन तक उदर में ही नहीं, वरन् जन्म के पश्चात् पहले डेढ़ साल तक शिशु माता का स्तन-पान करता है, यही नहीं दूध छोड़ने के बाद भी कई वर्ष तक बच्चा माता की देख-रेख में ही रहता है—माता ही को उस का सब कुछ करना पड़ता है।

अतः यह तो स्पष्ट ही है कि बच्चे के भविष्य के निर्माण में पिता की अपेक्षा माता का हाथ अधिक होता है। वही बच्चे को जन्म देती है और उसी पर उस के पालन-पोषण का भार पड़ता है; तो क्या इस दृष्टि से पुरुषों को स्त्रियों का अधिकाधिक सम्मान नहीं करना चाहिये ? बच्चे के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास में भी अधिक हाथ माता ही का होता है, तो क्या यह हमारे लिए सब से महत्वपूर्ण बात नहीं हो जाती कि हम इस का सदा ध्यान रक्खें कि स्त्री को अच्छी शिक्षा प्राप्ति का अवसर दिया जाए जिस से वह अपने इस महत्वपूर्ण कार्य में सफल हो, उस का जीवन नीरस न बना दिया जाए और मातृत्व का भार उस पर तब तक न पड़ने दिया जाए जब तक वह पूर्ण रूप से स्त्रीत्व को प्राप्त न हो जाए ?

नारी जननेन्द्रियों की रचना व क्रिया

नारी जननेन्द्रियों में डिम्बाशय (डिम्ब ग्रंथियां) और गर्भाशय दो मुख्य इंद्रियां हैं। डिम्बाशय दो छोटी-छोटी बादाम के आकार की सी दो ग्रंथियां होती हैं और वस्तिगह्वर में नीचे की ओर गर्भाशय के दोनों ओर स्थित होती हैं। इन का ठीक-ठीक स्थान पृष्ठ १० पर के चित्र में दिखाया गया है। डिम्ब ग्रंथियां डिम्ब (अंडे) पैदा करती हैं। यह डिम्ब इतना छोटा होता है कि यदि एक सौ पच्चीस डिम्ब बराबर-बराबर मिला कर रख दिए जाएं, तो कठिनाई से एक इंच चौड़ा स्थान घेर सकेंगे।

डिम्ब प्रणाली चार-पांच इंच लम्बी एक नलिका है; इस का एक सिरा गर्भाशय से जुड़ा रहता है और दूसरा डिम्बाशय तक चला जाता है। इसी नलिका में से हो कर डिम्ब डिम्बाशय से गर्भाशय में पहुंचते हैं।

गर्भाशय पृष्ठ १६ पर के चित्र में दिखाए गए आकार का ही होता है। कुंवारी लड़कियों (अप्रजाता स्त्रियों) का गर्भाशय लगभग पौने तीन इंच लम्बा और पौन इंच चौड़ा या मोटा होता है। इस का निचला संकीर्ण भाग योनि मार्ग के अन्तिम सिरे से मिला रहता है।

कुंवारी लड़कियों का योनिद्वार एक प्रकार की पतली झिल्ली द्वारा बन्द सा रहता है। इस झिल्ली को योनिच्छद या कुमारीच्छद कहते हैं, इस में मासिक धर्म के लिए एक छोटा सा छेद होता है; और यह प्रायः प्रथम सहवास में फट जाती है। हो सकता है
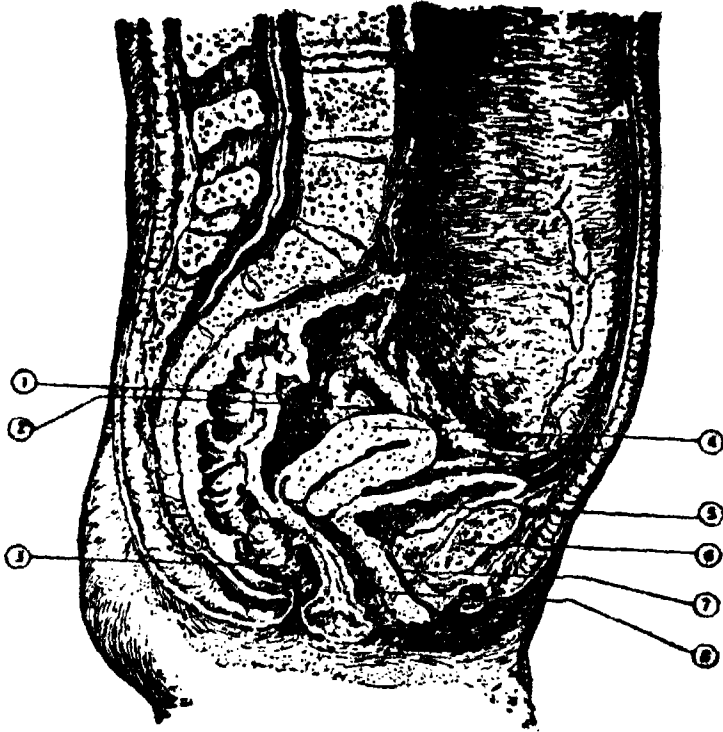
नारी-जननेन्द्रियां

१. बीजाण्डकोष या डिम्बाशय (Ovary) २. डिम्ब-प्रणाली या रजो-वाहक नलिका (Fallopian tube) ३. मलाशय (Rectum) ४. गर्भाशय (Womb or uterus) ५. मूत्राशय (Urinary bladder) ६. वस्तिगह्वर की हड्डी (Pelvic bone) ७. मूत्र-मार्ग (Urethra) ८. योनी

कि योनिच्छद में कोई छेद हो ही न, या किसी रोग के कारण बन्द हो गया हो। इस दशा में पानी के रंग का लेसदार स्राव योनि में एकत्रित हो जाएगा और इस के कारण योनि में पीड़ा और सूजन हो जाएगी। जिस लड़की को इस किस्म की शिकायत हो उसे किसी डॉक्टरनी को दिखाना चाहिए।

यौवनावस्था और मासिक-धर्म

नौ वर्ष के बाद और पन्द्रह वर्ष से पहले-पहले कन्या यौवनावस्था में पदार्पण कर चुकती है। इस समय उस के शरीर में कुछ ऐसे परिवर्तन होने लगते हैं जो इस बात के सूचक होते हैं कि वह अब इस योग्य हो चुकी है कि गर्भधारण कर के सन्तानोत्पत्ति कर सके। उस की बगलों में और नाभि के नीचे बाल उगने लगते हैं, छातियां बढ़ने लगती हैं, उस का सारा शरीर बहुत तेजी से बढ़ने लगता है। और रजः स्राव आरम्भ हो जाता है।

हर अट्ठाईसवें दिन मासिक-धर्म आरम्भ होता है और साधारणतया पांच दिन तक रहता है। रजः-स्राव के समय गर्भाशय की आन्तरिक झिल्ली के छोटे-छोटे टुकड़े उतर-उतर के गिरते हैं। रजः-स्राव में मुख्य रूप से रक्त और श्लेष्मा मिश्रित होते हैं। गर्भावस्था में और जब तक बच्चा दूध पीता है रजः स्राव बन्द रहता है। लगभग पैंतालीस वर्ष की अवस्था में मासिक-धर्म बन्द हो जाता है और इस के बाद स्त्री सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकती।

यदि रजोदर्शन के प्रारम्भ से ही लड़की गर्भ धारण करने के योग्य हो जाती है, तो इस का यह तात्पर्य नहीं कि तुरन्त उस का विवाह कर के मातृत्व का भार उस पर डाल दिया जाए। उस का यह अधिकार है कि बाल्यावस्था से युवावस्था तक उस का स्वाभाविक रूप से शारीरिक और मानसिक विकास हो। इस के बाद ही उसे मातृत्व का भार संभालना उचित होगा। विवाह की सब से अच्छी आयु अट्ठारह वर्ष से तेईस वर्ष तक होती है।

यौन-स्वास्थ्य की रक्षा के सिद्धांत

प्रत्येक माता को जननेन्द्रियों के प्रकार्य, उन की सफाई और उन की रक्षा के सिद्धांतों का ज्ञान होना चाहिये। जहां तक उन की समझ में आ सके वहां तक प्रत्येक माता को अपनी लड़कियों को यौन-सम्बन्धी बातें उचित ढंग से समझा देनी चाहियें। इन बातों के बता देने से कन्या का स्वास्थ्य और चरित्र सुरक्षित रहेगा।

बालिका कितनी ही छोटी क्यों न हो, यह आवश्यक है कि उस की नाभि के नीचे के अंगों को सदा साफ रक्खा जाए जिस से ऐसा न हो कि वे गंदे हो जाएं और उन में खुजली होने लगे और बालिका उन्हें रगड़ने लगे। हो सकता है कि इसी प्रकार हस्त-मैथुन की आदत पड़ जाए।

बच्चे को, चाहे वह लड़का हो या लड़की, कभी नंगा नहीं फिरने देना चाहिये। बालक और बालिका को एक ही बिस्तर में साथ-साथ नहीं सोने देना चाहिये। बच्चे कितने ही छोटे क्यों न हों, साथ सोने से बुरी आदतें सीख लेते हैं।

जब कन्या यौवनावस्था को प्राप्त हो जाए और रजः स्राव आरम्भ हो जाए, तो उस की माता को उसे यह भली भांति समझा देना चाहिये कि रजः स्राव के दिनों में सर्दी बहुत जल्दी लग जाती है, इसलिए सावधान रहे। यौवनावस्था को प्राप्त होने वाली कन्या से अधिक काम नहीं कराना चाहिये और उसे रात को नौ-नौ, दस-दस घंटे तक सोने दिया जाए।
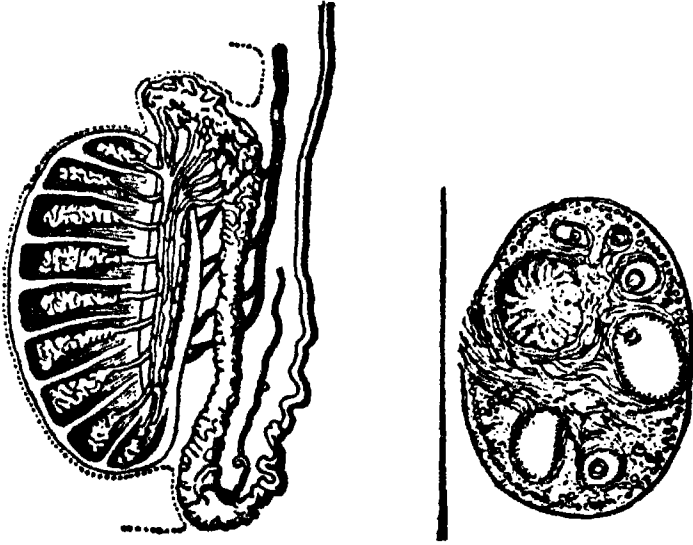
अण्डों (वीर्य-पिंडों) की रचना सम्बन्धी रेखा-चित्र

डिम्बाशय की आड़ी काट

रजः स्राव के समय साफ कपड़े के टुकड़े या पतले से कपड़े में लिपटी हुई रुई का प्रयोग करना चाहिये जिस से वह रजः स्राव को सोख ले।

मासिक-धर्म के दिनों में बार-बार नहाना आवश्यक होता है। यदि नहा कर तुरन्त तौलिए से शरीर को रगड़ कर पोंछ डाला जाए, तो इस से सर्दी लगने की आशंका जाती रहती है। इस अवधि में किसी भी स्त्री को अपना शरीर साफ रखना नहीं भूलना चाहिए।

अध्याय १३

सुरासार और तम्बाकू
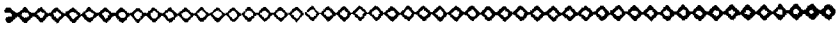
सुरासार (Alcohol) प्राकृतिक रूप से उपजने वाली वस्तु नहीं, बल्कि गेहूं, मक्का, जई, चावल, अंगूर और खजूर आदि को सड़ा कर इन का रस चुआ लिया जाता है। जो किण्व (खमीर) इन पदार्थों को सड़ाने में प्रयुक्त होता है, वह अन्न पदार्थों और फलों के श्वेतसार (Starch) और शक्कर को सुरासार में परिवर्तित कर देता है। शराब किसी प्रकार की क्यों न हो, अर्थात् व्हिस्की हो, ब्रांडी हो, जिन हो, बियर हो या ताड़ी हो, उस में सुरासार अवश्य होता है।

सुरासार एक ऐसा विषम विष है जो मनुष्य के शरीर में पहुंच कर उस की मानसिक तथा शारीरिक प्रक्रियाओं को क्षति पहुंचाता है। इस का हानिकारक प्रभाव सब से पहले केन्द्रीय चेता-संस्थान पर पड़ता है। इस से पूर्व कि किसी मद्यप के पैर उखड़ने लगें और वह लड़खड़ाने लगे, उस के मस्तिष्क की कार्य-गति बहुत धीमी पड़ जाती है। स्मरण-शक्ति और चित्त-एकाग्रता की क्षमता स्वाभाविक दशा में नहीं रहती। जिन कार्यों में शीघ्रता और पूर्ण शुद्धता की आवश्यकता होती है, वे भली भांति नहीं हो पाते। थोड़ी सी भी मदिरा उत्तेजना से होने वाले प्रतिप्रभाव के बीच के समय को बढ़ा देती है, अर्थात् पेशियों और चेताओं की प्रतिक्रिया-गति बहुत मंद हो जाती है। इसीलिए मोटर-गाड़ी चलाने वालों और वायुयान-चालकों को थोड़ी सी भी मदिरा नहीं पीनी चाहिये, क्योंकि इस से भयंकर दुर्घटनाओं की सम्भावना बनी रहती है। बियर की एक ही बोतल से यह दशा हो जाती है कि दूरी का ज्ञान नहीं रहता, प्रतिक्रियागति मंद पड़ जाती है और सोच-समझ कर काम करने की योग्यता कम हो जाती है। अधिक मदिरापान से चालक (ड्राइवर) असावधान हो जाते हैं, क्योंकि यद्यपि मदिरा कार्य-क्षमता को घटा देती है, तथापि पीने वाले में एक प्रकार का वैयक्तिक विश्वास और साहस आ जाता है और वह यह समझने लगता है कि मैं मानसिक तथा शारीरिक रूप से सर्वथा सचेत हूं और अपना कार्य भली-भांति कर सकता हूं।

जब कोई व्यक्ति मदिरा-पान करता है, तो उस की त्वचा लाल रंग की हो जाती है, क्योंकि रक्त अधिक परिमाण में त्वचा में से हो कर दौड़ने लगता है और सुरासार त्वचा के पास वाली रक्त-वाहिनियों को फुला देता है। इससे एक प्रकार की उष्णता का अनुभव होने लगता है। बहुत से धोबी जो देर तक ठंडे पानी में खड़े हो कर कपड़े धोते हैं, वे यही सोच कर मदिरा पीते हैं कि इस से शरीर गर्म रहता है। परन्तु वास्तव में

मदिरा शरीर को शीत पहुंचाती है, क्योंकि जब रक्त दौड़ कर ऊपर त्वचा में आ जाता है, तो वहां ठंडा हो जाता है, जिस के फलस्वरूप शरीर की उष्णता निकल जाती है और आंतरिक तापमान घट जाता है।

सुरासार निर्णय-बुद्धि को नष्ट कर देता है और मानसिक प्रतिकार की क्षमता तथा आत्मसंयम की शक्ति को कम कर देता है। प्राय: अपराधी लोग अपराध करने से पूर्व मदिरा पी लेते हैं। मदिरा भलाई-बुराई में अन्तर समझाने वाली बुद्धि को नष्ट कर देती है। सुरासार के दुष्प्रभाव के कारण ही बहुत से युवक अनेक कुकर्म कर बैठते हैं। अत: जो व्यक्ति अपने व्यवहार तथा आचरण पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहें, उन्हें प्रत्येक प्रकार के मादक पेय से बचने का निश्चय कर लेना चाहिये।

मदिरा आमाशय, यकृत, रक्त-वाहिनियों, वृक्कों और चेता-संस्थान को बहुत हानि पहुंचाती है। मदिरा-पान से शरीर में रोगों को रोकने वाली शक्ति घट जाती है, और आदमी फेफड़ों के रोगों, विशेषकर निमोनिया और क्षय रोग का शिकार बन जाता है।

बीमा कम्पनियों के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि जो व्यक्ति शराब पीते हैं वे इतने दिन जीवित नहीं रहते, जितने दिन शराब न पीने वाले व्यक्ति जीवित रहते हैं।

बुद्धिमान तथा विद्वान सुलेमान ने मद्यप का शब्द-चित्र इस प्रकार खींचा है:—

"कौन हाय-हाय करता है? कौन दु:खी होता है? कौन झगड़े में पड़ता है? कौन बक-बक करता है? कौन अकारण घायल होता है? किस की आंखों में लाली होती है?— उन की जो देर तक दाखमधु (मदिरा) पीते हैं।"

फिर सुलेमान यह उपदेश और चेतावनी देता है —

"जब दाखमधु लाल दिखाई देता हो, और प्याली में उस का सुन्दर रंग चमकता हो, और जब वह धार बांध कर ढाला जाता हो—तब उस को न देखना, क्योंकि अन्त में वह सर्प की भांति डसता है और करैत के समान काटता है।"

मदिरा-परित्याग का उपाय

सब से आवश्यक बात तो यह है कि इस बुरी आदत को छोड़ने का दृढ़ निश्चय होना चाहिए। यदि मनुष्य प्रार्थना द्वारा परमेश्वर से सहायता चाहे, तो उसे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाएगी कि वह मदिरा-पान की प्रबल इच्छा का दमन कर सकेगा।

अब तो यह बात भी ज्ञात हो गई है कि भोजन का मदिरा-पान की इच्छा से घनिष्ट सम्बन्ध है। अत: जो कोई इस आदत को छोड़ना चाहे, उसे सब प्रकार के मांस और मसाले वाले भोजनों से दूर रहना चाहिये। किसी भी प्रकार की मदिरा या सुरासार की इच्छा पर नियंत्रण रखने के लिए तम्बाकू के प्रयोग का परित्याग नितान्त आवश्यक है, क्योंकि तम्बाकू का प्रयोग करते-करते ही आदमी को शराब पीने की लत पड़ जाती है। यथासम्भव ताजे फल खाइये और अधिक मात्रा में साफ पानी पीजिये। चाय या कॉफी न पीजिये। प्रतिदिन गर्म पानी से स्नान करने के बाद तुरन्त शरीर पर ठंडा पानी डाल लीजिये और जल्दी से शरीर को पोंछ डालिये। जहां तक हो सके बाहर खुली हवा में रहिये। प्रतिदिन इतनी देर तक व्यायाम कीजिये कि पसीना निकलने लगे। न तो अपने

घर में शराब आने दीजिये और न शराब की दुकान में कदम रखिये। यदि कोई व्यक्ति वास्तव में शराब पीने की लत को छोड़ना चाहता हो, तो उपरोक्त बातों का नियमपूर्वक पालन करे, अवश्य ही सफल होगा।

तम्बाकू

संसार भर के देशों के निवासी किसी और बुरी आदत की दासता में इतने नहीं जकड़े, जितने तम्बाकू द्वारा वशीभूत हैं। तम्बाकू चाहे धूम्रपान के लिए उपयोग में लाई जाए, चाहे नसवार के रूप में उपयुक्त हो, चाहे पान में रख कर खाई जाए, चाहे 'निकोटीन' का पानी पिया जाए, प्रभाव इस का प्रत्येक रूप में हानिकारक ही होता है। इस विषैली घास में मनुष्य के लिए कोई भी तो गुणकारी बात नहीं। तो फिर क्या कारण है कि सभी देशों में इस का प्रयोग इतना सर्वव्यापी है ? बात यह है कि इस का निद्राकारी प्रभाव एक प्रकार का आनन्द प्रदान करता है, इसीलिए लोग इस के इच्छुक रहते हैं। चूंकि तम्बाकू मस्तिष्क तथा चेतनाओं को शिथिल कर देता है, इसीलिए मनुष्य को थोड़ी देर के लिए चिन्ता, थकान, भूख और चिड़चिड़ेपन से छुटकारा मिल जाता है। अधिक समय तक इस का प्रयोग करने के पश्चात् ही मनुष्य को इस की धोखेबाजी का पता चलता है; परन्तु उस समय तक वह इस बुरी लत की दासता में इस बुरी तरह जकड़ चुकता है और उस का मन इतना अशक्त हो जाता है कि वह इसे छोड़ने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

तम्बाकू एक विष है

तम्बाकू में जो एक मुख्य विष होता है उसे 'निकोटीन' कहते हैं; और मनुष्य को जितने भी विष ज्ञात हैं उन में से इसे भी अत्यंत घातक विष माना जाता है। 'निकोटीन' की केवल आधी बूंद ही अत्यंत घातक परिणाम उत्पन्न कर देती है, और फिर यह विष किसी औषधि से उतर भी नहीं सकता। जब तम्बाकू पहले-पहले प्रयोग में लाया जाता है, तो उस के विषैले प्रयोग के ये लक्षण होते हैं: जी मिचलाना, सिर चकराना और वमन होना। जब शरीर को यह विष सहन करने की आदत धीरे-धीरे पड़ जाती है, तो ये लक्षण प्रकट नहीं होते, परन्तु विष शरीर पर अपना प्रभाव जारी रखता है। इच्छित मादक प्रभाव का अनुभव होता है। तम्बाकू का प्रयोग करने वाले की वैसी ही दशा होती है जैसी किसी अन्य मादक पदार्थ के प्रयोग करने वाले की—उसे उस पदार्थ के परिमाण को सदैव बढ़ाते रहने की आवश्यकता होती है, और यदि वह ऐसा न करे, तो उसे इच्छित आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता; और सब से बुरी बात तो यह है कि वह इस के बिना रह नहीं सकता। वह इस का दास बन जाता है !

तम्बाकू के प्रभाव

तम्बाकू का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को उपर्युक्त "सुख व आनन्द" का जो मूल्य चुकाना पड़ता है, वह निम्न वाक्य में संक्षेप में व्यक्त किया गया है—"जैसे-जैसे उस

का पैसा धुएं का रूप धारण कर के वायु में उड़ता जाता है, वैसे-ही-वैसे उस को अपने शरीर की अनुकूलता के अभाव का अनुभव होने लगता है; उस के पास अशक्त हृदय, धीमा श्वासोच्छवास, भर्राता हुआ गला, कुंठित मस्तिष्क, शीघ्र उत्तेजित हो जाने वाला स्वभाव, स्वादेंद्रिय, गंधेंद्रिय, और दृष्टि में शक्तिहीनता, रोगों का प्रतिरोध करने वाली शक्ति का अभाव और अल्पायु—यही कुछ रह जाता है।" इस कथन की पुष्टि आंकड़ों द्वारा हो जाती है।

बालकों पर तम्बाकू का प्रभाव

सम्भव है कि वयस्क व्यक्ति पर उपरोक्त प्रभाव धीरे-धीरे प्रकट हों, परन्तु जो व्यक्ति बचपन में या युवावस्था के आरम्भ से ही तम्बाकू का प्रयोग करने लगता है, उस पर इस का प्रभाव शीघ्रतर, घातक और स्थायी होता है। जिन विशेषज्ञों का सम्बन्ध चिकित्सा, शिक्षा, धर्म और न्याय से रहा है, वे सभी इस बात को मानते हैं कि यदि कोई बालक या युवक तम्बाकू का, मुख्यतः सिगरेट का, प्रयोग करता है, तो उस की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिकशक्ति कुंठित हो जाती है। एक ऐसा विद्यार्थी जो मानसिक रूप से तीक्ष्ण बुद्धि वाला, नैतिक रूप से शुद्ध मन का, और शारीरिक रूप से स्वस्थ तथा फुर्तीला हो, और यदि सिगरेट पीना आरम्भ कर दे, तो कुछ ही समय बाद, मानसिक दृष्टि से कुंठित; नैतिक दृष्टि से अविश्वस्त: झूट बोलने, धोखा देने और चोरी करने का अभ्यस्त; शारीरिक दृष्टि से सुस्त और नाटे कद का; और रोग के लिए योग्य पात्र बन जाएगा। जितनी छोटी आयु में तम्बाकू के प्रयोग की लत पड़ जाती है, उतनी ही अधिक तीव्र गति वाली घातक और स्थायी हानि होती है और उतना ही अधिक मनुष्य इस की दासता में जकड़ता जाता है। बड़े-बड़े काम करने, विजय व सफलता प्राप्त करने और औचित्य के मार्ग पर चलने की इच्छा-शक्ति नष्ट हो जाती है। बाल अपराधियों के न्यायाधीशों का कथन है कि बाल-अपराधियों में से अधिकांश ऐसे होते हैं जिन्हें सिगरेट पीने की लत होती है।

जब युवा पुरुषों या स्त्रियों को इस की आदत पड़ जाती है, तो उन्हें अपनी मानसिक व शारीरिक प्रक्रियाओं में शिथिलता का अनुभव होने लगता है। एक बहुत बड़ा विश्व-विद्यालय है जहां बहुत से विद्यार्थी तम्बाकू का प्रयोग करते हैं, परन्तु वहां आज तक तम्बाकू का प्रयोग करने वालों में से एक भी विद्यार्थी अपनी कक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त नहीं कर सका। तम्बाकू का प्रयोग करने वाले उछल-कूद और दौड़-भाग के खेलों में भी कभी कमाल नहीं दिखा सकते, क्योंकि इन खेलों में शारीरिक सहन-शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसे लोगों में से अधिकांश लोग रोगों के, विशेषकर श्वास-प्रश्वास की नलिका के रोगों के, शिकार बन जाते हैं। धूमपान करने वाला व्यक्ति बहुत सरलता से मदिरा-पान या अन्य नशे करने लगता है।

स्त्रियों में धूम्रपान की आदत

बड़े खेद की बात है कि पुरुष तम्बाकू के प्रयोग की गंदी, स्वास्थ्यनाशक, महंगी और अपवित्र आदत के शिकार बन जाएं, परन्तु स्त्रियों को यह लत लग जाना इस से कहीं

अधिक सोचनीय है। इस का कारण यह है कि स्त्रियों ही पर बच्चों का स्वास्थ्य व विकास निर्भर रहता है। चिकित्सक लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि जो माता तम्बाकू का बहुत अधिक प्रयोग करती है, जो विशेष कर सिगरेट पीती है, उस का बच्चा रोगी होता है। ऐसे बालक के शरीर में विष होता है। बात यह है कि धूम्रपान करने वाली माता के गर्भ में जो शिशु होता है वह एक प्रकार के पानी से घिरा हुआ रहता है और इस पानी में होता है 'निकोटीन'। जन्म लेने के पश्चात् ऐसे बालक को सशक्त बनने का बहुत ही कम अवसर मिलता है क्योंकि वह शरीर को निर्बल कर देने वाली स्थितियों में उत्पन्न होता है और उस की माता के दूध में भी 'निकोटीन' होती है जिस से बालक को और भी हानि पहुंचती है। ऐसे बालकों में से साठ प्रतिशत बालक तो दो वर्ष की आयु को पहुंचते-पहुंचते ही मर जाते हैं। जिन युवतियों को सुदृढ, स्वस्थ और तीक्ष्ण-बुद्धि वाले बालकों की इच्छा हो, उन्हें चाहिये कि भूल कर भी तम्बाकू का सेवन किसी रूप में न करें। इस के अतिरिक्त यह सर्वमान्य तथ्य है कि तम्बाकू का अत्यधिक प्रयोग स्त्रियों के बांझपन का सामान्य कारण बन जाता है।

तम्बाकू और फेफड़ों का नासूर (कैंसर)

अमेरिका की कैंसर सोसाइटी (The American Cancer Society) के मार्गदर्शन और उस की देख-रेख में निपुण विशेषज्ञों के एक दल ने ५० से ७० वर्ष तक की आयु वाले लगभग १८७,००० व्यक्तियों के जीवन-वृत्त का अध्ययन किया। इन में सभी प्रकार के लोग थे, अर्थात् ऐसे लोग भी थे जिन्होंने कभी भी धूम्रपान नहीं किया था, या जो केवल सिगरेट या केवल पाइप या केवल सिगार पीते रहे थे; और ऐसे भी थे जिन्होंने सभी प्रकार का मिला-जुला धूम्रपान अपने जीवन में किया था। १२ महीने की जांच-पड़ताल के बाद प्रथम विश्लेषण प्रारम्भ हुआ और इस से यह परिणाम निकला कि इस जांची गई संख्या में से ४,८५४ व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी।

इन में नियमित रूप से धूम्रपान करने वालों की संख्या सिगरेट न पीने वाले मृतकों की संख्या का डेढ़ गुना पाई गई। इसी प्रकार धूम्रपान न करने वाले फेफड़े के कैंसर से मृत्यु को प्राप्त हुए रोगियों की संख्या से पांच गुनी संख्या उन रोगियों की निकली जो अत्यधिक सिगरेट पीने के कारण उक्त रोग से पीड़ित थे। धूम्रपान से मुक्त मृतकों की तुलना में साधारण तथा हल्का (प्रतिदिन डेढ़ डिब्बी से कम) धूम्रपान करने वालों की संख्या पर्याप्त रूप में अधिक मालूम पड़ी।

वयस्क पुरुष को फेफड़े का कैंसर बहुत कम होता है, ५० में से किसी एक-आध को हो तो हो। यदि वह धूम्रपान न करे, तो इस रोग से पीड़ित होने की सम्भावना घट कर इतनी कम हो जाती है कि १७० से लेकर १९० में से किसी एक को यह रोग हो जाए तो हो जाए। यदि वह नियमित रूप से एक या इस से अधिक सिगरेट की डिब्बियां प्रतिदिन पीता हो, तो फेफड़े के कैंसर से उस के रोगी हो जाने की सम्भावना १५-२० में से एक हो जाएगी। वर्तमान उपादेय सामग्री के अनुसार इन भयानक आंकड़ों में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है।

पहिले विश्लेषण के एक वर्ष बाद दूसरा विश्लेषण किया गया और परिणाम से यह संकेत मिला कि पहिली बार की जांच में प्रकट हुए तथ्यों की तुलना में धूम्रपान और फेफड़ों के नासूर उत्पन्न करने वाली अवस्था का परस्पर घनिष्ट सम्बंध इस बार अधिक स्पष्ट है। पता चला कि सिगरेट न पीने वाले लोगों की ३२४६० संख्या में से विश्लेषण की अवधि में केवल दो ही व्यक्ति फेफड़े के नासूर से पीड़ित हुए, दूसरे शब्दों में इस अनुपात के अनुसार १००,००० व्यक्तियों में ४.९ व्यक्ति रोगी निकले। सदा या यदा-कदा धूम्रपान करने वाले लोगों की १०७,९७८ संख्या में से फेफड़े के नासूर द्वारा १५२ व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार १००,००० के पीछे १४५ रोगी काल कवलित हो गए। इस का अर्थ है कि सिगरेट न पीने वालों की अपेक्षा पीने वालों में इस रोग के प्रसार की सम्भावना २९ गुना अधिक थी। पाइप पीने वाले लोगों में फेफड़े के नासूर द्वारा मृत्यु संख्या धूम्रपान रहित लोगों की अपेक्षा दस गुना अधिक निकली।

फेफड़े के नासूर से अत्यधिक मृत्यु संख्या उन लोगों में पाई गई जिन्होंने प्रश्न करते समय स्वीकार किया था कि हम एक दिन में दो डिब्बियां या इस से भी अधिक सिगरेट पिया करते हैं। इन लोगों में फेफड़े के नासूर से मृत्यु संख्या धूम्रपान न करने वालों की अपेक्षा ९० गुना अधिक थी।

अब प्रश्न उठता है कि "यदि मैं वर्षों से सिगरेट पीता आ रहा हूं, तो अब इसे बन्द करने से मुझे कुछ लाभ भी होगा?"

हां, अवश्य होगा। जो लोग नियमित रूप में धूम्रपान करते थे और जिन्होंने जांच पड़ताल करने से पूर्व धूम्रपान वर्जित कर दिया था उन में सिगरेट या तम्बाकू न पीने वालों की अपेक्षा मृत्यु-संख्या चौदह गुना अधिक हुई, परन्तु उन लोगों की तुलना में, जो जांच के समय तक लगातार धूम्रपान करते रहे, यह मृत्यु-संख्या घट कर पचास प्रतिशत रह गई।

साठ हजार अंगरेज चिकित्सकों पर इसी प्रणाली से प्रयोग करने पर भी ठीक इसी प्रकार का परिणाम निकला।

तम्बाकू छोड़ने का उपाय

जो लोग तम्बाकू का प्रयोग नहीं करते उन्हें चाहिये कि इस का प्रयोग कभी भी आरम्भ न करें। जो व्यक्ति इस का प्रयोग करते हों, परन्तु साथ-ही-साथ दीर्घायु व सुखी जीवन के भी इच्छुक हों, उन्हें चाहिये कि इस से होने वाली हानियों को ध्यान में रख कर तुरन्त इस का परित्याग कर दें। इस के परित्याग का सब से अच्छा उपाय यह है कि एक बार छोड़ें, तो बिल्कुल छोड़ दें; यह नहीं कि छोड़ने के इरादे से दिन-प्रति-दिन इस की मात्रा को घटाने का प्रयत्न करें। इस के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक में किसी और स्थान पर सुरासार के परित्याग के जो उपाय बताए गए हैं, वे तम्बाकू की प्रबल इच्छा का दमन करने में भी सहायक हो सकते हैं। एक दूसरा उत्तम उपाय यह भी है कि प्रतिदिन शरीर में से खूब पसीना निकाला जाए, जिस से पसीने के साथ-साथ शीघ्र ही तम्बाकू का विष भी शरीर से बाहर निकल जाए।

अध्याय १४

स्वास्थ्यप्रद भोजन

प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता होती है: बढ़ने के लिए, ऊर्जा के लिए, शारीरिक प्रक्रियाओं का नियमन करने के लिए, टूटे-फूटे घिसे हुए तन्तुओं की पुन: रचना के लिए, पर्याप्त मात्रा में और रासायनिक अंगों वाले भोजन आवश्यक हैं। जो खाद्यपदार्थ शरीर के लिए आवश्यक हैं उन को रसायनशास्त्र के विशेषज्ञों ने निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा है:—पानी, प्रोटीन, कार्बोज, वसा, जीवनसत्व या पोषक तत्व (विटामिन), और खनिज पदार्थ।

पानी और कुछ खनिज पदार्थों को छोड़ कर मनुष्य के आहार की सामग्री मुख्यत: वनस्पति-जगत् से प्राप्त होती है। पौधे सूर्य के प्रकाश को, और वायु में के आक्सीजन, कार्बन डाएऑक्साइड और नाइट्रोजन को, और पृथ्वी में से, पानी और खनिज लवणों को अपने उपयोग में लाते हैं और इन के द्वारा कार्बोज वसा (चिकनाई), प्रोटीन और जीवनसत्व (विटामिन) उत्पन्न करते हैं जो मनुष्य के भोजन का काम देते हैं।

यह भोजन व्यवस्था पवित्र पुस्तक (बाइबल) में वर्णित भोजन व्यवस्था के अनुरूप ही है क्योंकि उस में बताया गया है कि जब सर्वज्ञ सृष्टिकर्ता ने मनुष्य को बनाया था तब उस के लिए ऐसा भोजन भी उत्पन्न किया था जिस में केवल फल, अनाज, साग-भाजी और मेवे सम्मिलित थे। यह बात स्पष्ट है कि परमेश्वर जिस ने मनुष्य का शरीर बनाया, वह ठीक-ठीक जानता था कि मनुष्य के लिए कौन-सा भोजन उत्तम और अत्यन्त उपयोगी होगा।

कार्बोज पदार्थ शरीर में उष्णता तथा ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। वे फलों और साग-भाजी में पाए जाते हैं, परन्तु चावल, आलू, मिठाइयों और रोटी इत्यादि जैसी वस्तुओं में वे अधिक मात्रा में होते हैं।

वसा (चिकनाई) भी उष्णता तथा ऊर्जा उत्पन्न करती है। जो वसा पदार्थ प्राणियों से मिलते हैं वे मक्खन, मलाई अण्डे का पीला भाग और चर्बी हैं, और जो वनस्पति से मिलते हैं वे नारियल, जैतून, मूंगफली, बिनौला, सरसों और सोयाबीन के तेल हैं।

प्रोटीन (Proteins) भी थोड़ी बहुत ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, परन्तु उन का मुख्य कार्य है शारीरिक प्रक्रियाओं को क्रमानुसार रखकर तन्तुओं की छीजन की पूर्ति करते रहना और उन की बाढ़ को नियमित रखना। सब आहारों में थोड़ा-बहुत प्रोटीन होता ही है, परन्तु वह बेचिकनाई के मांस, मछली, अंडे, दूध, पनीर, मेवों, हाथ के कूटे हुए चावलों और गेहूं जैसे अनाजों, छीमियों, मटर, सोया बीन, अन्य प्रकार की बीनों, मूंगफली और दालों में बहुत होता है।

खनिज पदार्थों की आवश्यकता शरीर के लिए इस लिए होती है कि सूक्ष्म तन्तुओं की मरम्मत भली-भांति होती रहे। सब खनिज पदार्थ देह के लिए आवश्यक हैं और वे ताजे फलों और साग-भाजी में प्रचुर मात्रा में होते हैं। अन्य खनिज पदार्थों की अपेक्षा शरीर में कैल्शयम और फास्फोरस अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। वयस्कों को इन दो खनिज पदार्थों की जितनी आवश्यकता होती है उस से दुगुनी मात्रा में बच्चों को होती है। यदि आहार में अंडे, पनीर, दही, साग-भाजी और दूध पर्याप्त मात्रा में हों, तो इन खनिज पदार्थों की पर्याप्त मात्रा इन में से मिल जाएगी। इस बात को प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान में रखना चाहिए कि आहार में लोहे की पर्याप्त मात्रा हो। यह खनिज पदार्थ (लोहा) सब हरी तरकारियों, पत्तेदार साग-भाजी, किशमिश, अंगूर केले, कलेजी, बिन चिकनाई के मांस, अंडे के पीले भाग, और शीरे में होता है।

विटामिन (पोषकतत्वों) को शरीर के नियमक कहते हैं। यदि किसी व्यक्ति के आहार में ताजे फल, साग-भाजी, और बिना भूसी निकाले हुए अनाज पर्याप्त मात्रा में हों तो उसे इन विटामिन की पर्याप्त मात्रा शरीर की बाढ़ के लिए मिल जाएगी।

पानी खाद्य पदार्थ तो नहीं है, परन्तु मनुष्य के आहार में इस की बहुत आवश्यकता है ताकि किया हुआ भोजन इस की सहायता से इस दशा में आ जाए कि शरीर उस का परिपचन सरलता से कर सके। शरीर को कितने पानी की आवश्यकता है यह बात प्रत्येक व्यक्ति की आयु, कार्य और उस स्थान के जल-वायु पर निर्भर होती है। नियमित आहारों के बीच में कई ग्लास पानी पीने की आदत प्रत्येक व्यक्ति को बनाए रखनी चाहिए।

उपरोक्त बातों से यह बात सिद्ध होती है कि अच्छे और संतुलित आहार में ये पदार्थ होने चाहिएं :—ताजे फल और साग-भाजी, पकाए हुए और कच्चे दोनों प्रकार के, बिना भूसी निकाले अनाज और मेवे।

इस प्रकार के आहार को "शाकाहार" कहते हैं। जब इस में दूध से बनी हुई वस्तुएं और अंडे भी सम्मिलित कर लिए जाते हैं तो इसे "दुग्धयुक्त शाकाहार" कहते हैं। "दुग्धयुक्त शाकाहार" का उपयोग करने से आहार सम्बन्धी विभिन्न पदार्थों में उचित सन्तुलन रखने में कम कठिनाई होती है। दूध रक्षक आहार है क्योंकि उस में कुछ खनिज पदार्थ और विटामिन, अधिक मात्रा में प्रोटीन, वसा, और कार्वोज होते हैं। पवित्र पुस्तक (बाइबल) में दूध को उत्तम आहार माना गया है क्योंकि उस में लिखा है कि नई दुनिया ऐसी जगह होगी जहां "दूध और शहद की नहरें बहती होंगी।"

भोजन में मांस का स्थान

जैसा कि इसी अध्याय में ऊपर बताया जा चुका है सब आहारों के मिलने का मौलिक स्थान वनस्पति जगत है। पशुओं का मांस उस आहार से बनता है जो पशु घास-पात में से प्राप्त करते हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि जो कोई मनुष्य पशुओं का मांस खाता है वह अ-प्रत्यक्ष रूप से वनस्पति जगत् से ही अपना आहार प्राप्त करता है, अर्थात् एक बार खाई हुई वस्तुओं को ही खाता है। इस के साथ-ही-साथ वह पशुओं के शरीर में पाई जाने वाली हानिकारक वस्तुओं को भी खा जाता है।

पशुओं में रोग

किसी लेखक ने लिखा है कि यदि मांस खाने वाले व्यक्ति उन जीवित पशुओं की दशा देख पाएं जिन का मांस वे खाते हैं, तो उस मांस की ओर से घृणापूर्वक मुंह मोड़ लें; और उन के शरीर में एक प्रकार की कंपकंपी पैदा हो जाए।

जिन पक्षियों, मछलियों और पशुओं का मांस मनुष्य खाते हैं उन में प्रति दिन रोग बढ़ता जा रहा है। ध्यानपूर्वक जांच करने से पता लगा है कि क्षय, नासूर, सब प्रकार के फोड़े, कृमियों के रोग, 'बैंग' की बीमारी (जो उन कृमि से उत्पन्न होती है जिन से मनुष्य में भूमध्यसागर का ज्वर (undulant fever) उत्पन्न होता है) ये सब रोग इन जीवधारियों में शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। मनुष्यों में ये बीमारियां उन जीवधारियों के मांस को छूने अथवा खाने से उत्पन्न हो जाती हैं। जो मांस खाया जाता है वह पूर्ण रीति से अन्दर तक भली-भांति पक नहीं पाता है और इसके खाने से बहुत हानि होती है। रोगी जानवरों का खराब दूध पीने और रोगी पक्षियों के अंडे खाने से भी कई प्रकार के रोग हो जाते हैं।

अधिक प्रोटीन जड़ पकड़ जाने वाली बीमारियों का कारण बन जाती है

कुछ वर्षों से जड़ पकड़ जाने वाली बीमारियां बड़ी तेजी से बढ़ रही हैं। इन के कारण गुर्दों, हृदय और मस्तिष्क जैसे शरीर के अवयवों के तन्तुओं में विनाशात्मक परिवर्तन हो जाते हैं। अधिक मात्रा में प्रोटीन के सेवन से विशेषकर अधेड़ अवस्था के लोगों को हानि पहुंचती है।

गुर्दों और हृदय का रोग, सन्यास रोग (apoplexy), रक्तवाहिनियों का सख्त हो जाना आदि, ये सब बीमारियां उस अधिक प्रोटीन के कारण होती हैं जो मांस खाने से शरीर के अन्दर जाती है।

मांस खाने से नासूर (Cancer) का सम्बन्ध

"नासूर, उस का कारण और उस की चिकित्सा" नामक पुस्तक में डा. बकले ने बड़े ही दिलचस्प आंकड़े दिए हैं। इन से पता चलता है कि आहार का नासूर से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध हो सकता है। डा. बकले लिखते हैं कि इंग्लैंड में पिछले पचास वर्षों में कभी-कभी मांस के प्रयोग की मात्रा दुगनी हो गई है अर्थात् इस हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति का साल भर के मांसाहार का औसत १३० पाउंड हुआ। इसी अवधि में नासूर की वृद्धि चौगुनी हो गई। आयरलैंड में इस अवधि में मांस बहुत कम खाया गया अर्थात् साल भर का प्रत्येक व्यक्ति के मांसाहार का औसत ४० हुआ और वहां नासूर से होने वाली मृत्युएं भी बहुत कम हुईं। इटली में आयरलैंड की अपेक्षा मांसाहार की मात्रा और भी कम रही और वहां नासूर से मरने वालों की संख्या भी बहुत कम रही। जिन स्थानों में शाकाहार का अधिक प्रचार है वहां यह बीमारी बहुत कम सुनने में आती है। अधिकतर

परिस्थितियों में नासूर पाचन-अवयवों से ही सम्बन्ध रखता है। इस से यह बात सिद्ध हुई कि नासूर की बीमारी का आहार से बहुत कुछ सम्बन्ध हो सकता है।

मांस और सहनशक्ति

मांसाहार से सहनशक्ति बहुत कम हो जाती है। यह बात बहुत-से प्रयोगों द्वारा प्रमाणित कर दी गई है। सब से अधिक प्रख्यात वे प्रयोग हैं जो अमरीका के येल विश्व-विद्यालय के डॉक्टर इरविंग फिशर ने किये थे। उस ने पन्द्रह मांसाहारी व्यायामप्रिय युवकों को और कुछ मिले-जुले शाकाहारी युवकों को जो व्यायाम नहीं करते थे चुना। शाकाहारी युवकों ने मांसाहारी युवकों की अपेक्षा हाथों को फैलाए रखने और घुटने झुकाकर खड़े रहने में दुगनी सहनशक्ति दिखाई।

जो व्यक्ति बहुत मांस खाता है, यदि मांस खाना बन्द कर दे, तो उसे एक प्रकार की शिथिलता का अनुभव होता है और उस में ओज नहीं रहता। इस का कारण यह है कि मांस में उत्तेजना उत्पन्न करने का प्रभाव होता है जिस से रक्त में उष्णता बढ़ती है और नाड़ियों में उत्तेजना पैदा हो जाती है। कुछ समय के पश्चात् यह शिथिलता जाती रहती है और मांस खाए बिना ही पहले जैसी शक्ति देह में रहती है।

इस से हम को यह बात ज्ञात हुई है कि मांसाहार में खतरा है, इस के साथ-ही-साथ हमें यह जान कर संतोष और प्रसन्नता होती है कि मांसाहार के बिना भी सन्तुलित आहार सम्भव हो सकता है। सर रॉबर्ट मेकारिसन ने मद्रास में एक भाषण में यह निष्कर्ष निकाला था:— "उत्तम और पूर्ण आहार वह है जिस में मुख्य पदार्थ दूध, दूध से बनी हुई वस्तुएं, अनाज, या मिले-जुले हुए कई अनाज, पत्तेदार हरी साग-भाजी और फल सम्मिलित हों।"

खाना पकाने की विधि

पके हुए फल और मेवों के अतिरिक्त बहुत से खाद्य पदार्थों को खाने से पूर्व पका लेना चाहिए। पकाने से तीन लाभ होते हैं: पहला यह कि बहुत से खाद्यपदार्थों में अधिक मात्रा में पाए जाने वाले सब रोगोत्पादक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। दूसरा यह कि पकाने से खाना आसानी से पच सकता है। गेहूं, दाल और सेम आदि ऐसे भोजन हैं कि यदि इन को पकाया न जाए तो मनुष्य के शरीर के अवयव इन्हें पचा नहीं सकते। तीसरा यह कि पकाने से भोजन स्वादिष्ट बन जाता है, क्योंकि चावल, सेम, गेहूं, बाजरा आदि में जैसे खाद्य पदार्थों को कच्चा खाने में इतना स्वाद नहीं आता जितना पकाने के बाद आता है।

खाना पकाने की तीन प्रचलित विधियां हैं: उबालना, या भाप से पकाना (दम करना), भूनना और तलना।

तलना पकाने की अच्छी विधि नहीं है। इस प्रकार खाना जल्दी तो पक जाता है परन्तु बेहतर यही है कि खाना पकाने में अधिक समय लगाया जाए क्योंकि तला हुआ भोजन पाचन-अवयवों को हानि पहुंचाता है। तलते समय जिस तेल का उपयोग किया जाता है

वह भोजन के प्रत्येक कण पर इस प्रकार तह जमा लेते हैं मानों उसे तेल से रंग दिया गया हो। जब तेल में लिपटा हुआ भोजन आमाशय में पहुंचता है, तो यह पच नहीं सकता। तले हुए भोजन का निरन्तर उपयोग करने से अजीर्ण रोग (बदहजमी) हो जाता है।

विभिन्न आयुओं में आवश्यक दैनिक आहार

आयु	इतना कलोरीज चाहिए	इतने ग्राम प्रोटीन देह के वजन के प्रत्येक पौंड पर	इतने ग्राम कैल्शियम	इतने ग्राम फास्फोरस	इतने मिलिग्राम लोहा	इतने यूनिट विटा. मिन "ए"	इतने यूनिट विटा. मिन "बी"	इतने मिलिग्राम विटा. मिन "सी"	इतने यूनिट विटा. मिन "डी"
१ वर्ष से कम	४००-१०००	१.०-१.५	१.०	१.०	३-६	६०००-१००००	८०-	४०	८००-१२००
१ से २	१०००-१२००	१.०-१.५	१.०	१.०	६-७	,,	२००-३००		
३ से ५	१०००-१५००	१.०-१.५	१.०	१.०	६-८	,,	२५०-६००		
६ से ९	१५००-२५००	१.०-१.३	१.०	१.०-१.२	७-१२	,,	३००-६००		
१०-१३ बालक	२६००-३३००	०.७-०	१.०	१.०-१.५	१०-१५	८०००-१००००	४००-६००	४०-८०	३००-६७५
बालिका	१८००-३०००	,,	,,	,,	,,	,,			
१४-१८ बालक	१६००-४०००	०.७	१.०	१.०-१.८	१२-२०	,,	४०००-८०००	०-८०	३००-
बालिका	२४००-२८००	१.०-	१.५	,,	,,	,,			
वयस्क	२०००-३०००	०.५	०.६८	१.३	१२-२०	३०००-८०००	३००-६००	४०-८०	

ऊपर दी हुई सूची में विटामिन की जो मात्रा बताई गई है वह इतनी है कि साधारण आहार के लिए पर्याप्त होती है और उत्तम आहार के लिए भी पूर्ण समझी जाती है। बहुत से व्यक्तियों में इन मात्राओं से बहुत कम विटामिन खाने से भी विटामिन की कमी ज्ञात नहीं होती।

सूची में जो वचन दिए गए हैं वे मीट्रिक पद्धति के यूनिट हैं, क्योंकि यह पद्धति अब संसार भर में वैज्ञानिक लेखों और पुस्तकों में प्रयोग में लाई जाती है। लोहा और विटामिन "सी" के वजन मिलीग्राम्स में दिए गए हैं ताकि लम्बे दशमलव अपूर्णांक न लिखने पड़ें। १,००० मिलीग्राम का एक ग्राम होता है, और लगभग २८ ग्राम का एक आउंस होता है। विटामिन "सी" को पर्याप्त रूप से शुद्ध कर लिया गया है, अतः उस की मात्रा वजन में दी जा सकती है, और आज-कल इसी पद्धति का प्रयोग बहुधा किया जाता है। रासायनिक दृष्टि से इसे 'एस्कॉर्बिक एसिड' या 'सेविटेमिक एसिड' कहते हैं। पुरानी पुस्तकों में विटामिन की मात्राएं अन्तर-राष्ट्रीय इकाई में दी गई हैं। ऐसी इकाई में विटामिन की मात्राएं देना अधिक समाधान कारक नहीं होता है, क्योंकि एक विटामिन के यूनिट की तुलना दूसरे विटामिन के यूनिट से नहीं की जा सकती है, परन्तु इस समय तो यही पद्धति उत्तम मानी गई है। संसार के विभिन्न भागों में बीसियों वैज्ञानिक विशेषज्ञ इस कार्य में व्यस्त हैं कि जो विटामिन आज तक ज्ञात हुए हैं उन्हें शुद्ध किया जाए, और नए विटामिन का अनुसन्धान किया जाए। जब कोई विटामिन शुद्ध कर लिया जाता है तब उसके रासायनिक अंगों का पता लगाया जा सकता है और उन की मात्राओं को यूनिट के स्थान में वजन द्वारा निश्चित किया जा सकता है। आशा है कि विज्ञानशास्त्र की उन्नति से शीघ्र ही यह सम्भव होगा कि जितने साधारण विटामिन अब तक ज्ञात हो चुके हैं उन को इस अचूक पद्धति से नापा जा सके।

रसोई घर

उचित प्रकार से भोजन बनाने पर ही परिवार का स्वास्थ्य निर्भर होता है। रसोई घर का कमरा सारे घर में अच्छा होना चाहिये। उस में खिड़कियां होनी चाहियें जिस से अन्दर खूब धूप आ सके। फर्श, दीवारें और छत साफ सुथरी रखनी चाहियें। कूड़ा करकट और गन्दा पानी डालने के लिए बाल्टी, घड़ा या ढक्कन वाले टीन होने चाहियें। कूड़ा और गन्दा पानी दरवाजे के सामने एक ओर या फर्श पर नहीं फेंकना चाहियें क्योंकि इससे गन्दगी बढ़ती है और मक्खियां और दूसरे कीड़े जल्दी-जल्दी बढ़ने लगते हैं।

एक ऐसी अल्मारी का प्रबन्ध करना चाहिये जिस में चारों ओर जाली लगी हुई हो। इस में खाना रक्खा जाए जिस से मक्खियां एवं दूसरे कीड़े खाने पर न जा सकें। चूहे, चुहियां, मक्खियां, झींगुर और अन्य जन्तु अत्यंत गन्दे होते हैं। उन के पैरों तथा देहों पर घिनौने विषैले पदार्थ होते हैं। वे उस गंदगी को भोजन पर छोड़ देते हैं। मक्खियों को गंदगी तथा मैले को खाते और वहां से उड़ कर रसोई घर में भोजन पर बैठे किस ने न देखा होगा। इसलिए सारा भोजन चूहे-चुहियों की पहुंच से सुरक्षित रखना चाहिये।

खाने की आदतें

माता-पिता और बच्चों को एक साथ बैठ कर भोजन करना चाहिए और खाते समय आनन्दपूर्वक बात-चीत करते रहना चाहिए, क्योंकि यदि मन शांत और सुखी होता है तो भोजन अधिक स्वादिष्ट लगता है और भली भांति पच सकता है। धीरे-धीरे खाइये और भोजन को पूर्ण रूप से चबाइये। खाने के समय नियमित रखने चाहिएं, चाहे दिन में दो बार खाएं या तीन बार खाएं। शाम का भोजन हल्का होना चाहिए, और साधारणतया सात बजे से पहले-पहले कर लेना चाहिये। रात के समय पाचन-अवयव थके हुए होते हैं और उन्हें विश्राम की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार देह के शेष अंगों को होती है। अजीर्ण रोग और पाचन अवयवों से सम्बन्धित बहुत सी बीमारियां इसलिए होती हैं कि लोग रात को बहुत देर से खाना खाते हैं और वह भी पेट भर के और फिर तुरन्त ही सो जाते हैं। वयस्क व्यक्तियों और सात वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चों को दिन-भर में तीन बार भोजन करना बहुत पर्याप्त होता है, और बीच-बीच में कुछ भी नहीं खाना चाहिए।

अध्याय १५

रोगों के कारण

◇◇

मनुष्यों के सब से बडे. शत्रु वे हैं जो आकार में अति सूक्ष्म हैं। यदि यह पता चले कि किसी गांव में एक भयानक नरभक्षक शेर घुस आया है तो लोग बहुत डर जायें। जिन के पास बन्दूकें हैं, वे उसे मारने के लिये आगे बढ़ेंगे और जिन के पास अपने बचाव के लिये कोई शस्त्र नहीं, वे मारे डर के घरों में घुस जाएंगे। परन्तु प्रत्येक गांव में ऐसे अनगिनत शत्रु होते हैं जो शेर से कहीं अधिक भयंकर और हानिकारक होते हैं। शेर तो केवल दो-तीन व्यक्तियों को मार कर भाग सकता है। परन्तु ये दूसरे शत्रु प्रत्येक गांव में वर्षों से रहते हैं और गांववालों में से ९८ प्रतिशत की मृत्यु का कारण यही होते हैं। ये शत्रु हैं—"रोगों के कीटाणु।"

रोग के कीटाणु क्या हैं

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में ही 'रोगोत्पादक कीटाणु' की चर्चा की जा चुकी है। इन रोगोत्पादक कीटाणुओं को 'अदृश्य कीटाणु' भी कहते हैं क्योंकि ये इतने सूक्ष्म होते

वैज्ञानिक लोग रोगों के कारणों की निरन्तर खोज में लगे हुए हैं।

हैं कि बिना सूक्ष्मदर्शक-यंत्र के दिखाई नहीं देते। इन में अधिक कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि यदि एक हजार कीटाणु मिल कर एक गोली का आकार धारण कर लें, तो यह गोली राई के दाने से अधिक बड़ी न होगी। इन में से कुछ गोल होते हैं और कुछ लम्बे।

रोग के कीटाणु बहुत जल्दी बढ़ते हैं। बीज बो देने के पश्चात् पौधे के उगने, बढ़ने और फिर नये बीज उत्पन्न करने में कई महीने लगते हैं। परन्तु एक कीड़ा गरम स्थान में ३० मिनट में अपने आप को विभाजित कर के वैसा ही एक और कीड़ा उत्पन्न कर देगा, और अगले ३० मिनट में ये दो कीड़े चार बन जायेंगे, और इसी प्रकार आधे घंटे में आठ। यदि वे इस गति से बढ़ते रहे तो दस घंटे में दस लाख कीड़ों का एक परिवार फैलता दिखाई देगा।

जिस किसी स्थान में थोड़ी गर्मी और नमी होगी वहां कीटाणु उत्पन्न हो जाएंगे। गर्म और गीला स्थान इन कीटाणुओं की तीव्र वृद्धि के लिये अति अनुकूल है। लगभग सभी पौधों और जानवरों को अच्छी तरह बढ़ने के लिये सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है परन्तु कीड़े तेज धूप में मर जाते हैं। ये कीड़े उन स्थानों में भी अधिक संख्या में बढ़ते हैं जहां सब्जी या मांस सड़ रहा हो। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि जो स्थान जितना साफ और प्रकाशमय होगा, उतने ही कम कीड़े वहां होंगे।

ये कीड़े बहुत छोटे, हलके और प्रत्येक स्थान पर अपनी संख्या बढ़ाने वाले होते हैं, इस से ये चारों ओर फैले रहते हैं। ऐसा स्थान शायद ही कोई हो जहां ये कीटाणु न उपस्थित हों। ये हमारे मुंहों में, हमारी नाकों में, और हमारी त्वचा पर होते हैं। ये हमारे भोजन और पीने के पानी में रहते हैं। ये हमारे घरों के फर्श और दीवारों पर, हमारे घर के दालान और आंगन में, तालाब, कूएं और नदी के जल में और जिस हवा में हम सांस लेते हैं उस में भी होते हैं। जहां पर लोगों की आबादी अधिक घनी होती है वहां पर ये अधिक संख्या में पाए जाते हैं।

सभी कीटाणु हानिकारक नहीं होते परन्तु इन में से कुछ मनुष्य को हानि पहुंचाते हैं; इसलिए इन से बच कर ही रहना चाहिए।

कीटाणु रोग कैसे उत्पन्न करते हैं

हैजा, मोतीझिरा, झिल्लीक-प्रदाह, क्षय रोग, महामारी, फोड़े, लाल ज्वर, गर्मी का रोग और सुजाक आदि रोग कीटाणुओं से इस प्रकार होते हैं: जब कीटाणु शरीर के अन्दर घुस जाते हैं और वहीं बढ़ते हैं, तो वे शरीर में विष फैलाते हैं। इन कीटाणुओं के विष से ही ज्वर, सिर-दर्द, पीड़ा, और दस्त इत्यादि के रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग के कीटाणु कहां से आते हैं

रोगोत्पादक कीड़े हमारे शरीर में उत्पन्न नहीं होते, वे बाहर से आते हैं। वे बीमार लोगों या जानवरों से आते हैं। उदाहरण के लिये, हैजे वाले रोगी के शरीर में वे कीड़े होते हैं जो हैजा फैलाते हैं। जब यह व्यक्ति प्लेट या खाने के बरतन का प्रयोग करता है तो उस के मुंह और हाथों से कुछ कीड़े उस प्लेट पर आ जाते हैं, और यदि कोई दूसरा

व्यक्ति उस प्लेट को खौलते पानी में धोए बिना ही काम में लाए तो अवश्य ही हैजे के कुछ कीटाणु उस के पेट में चले जाएंगे। ये कीड़े, उस के अन्न-मार्ग में पहुंच कर संख्या में बढ़ते जाएंगे और थोड़े, समय बाद इतना विष पैदा कर देंगे कि उसे ज्वर आयेगा, दस्त आने लगेंगे और हैजे के सभी अन्य चिन्ह प्रगट होने लगेंगे। इन कीड़ों के फैलने का एक और तरीका यह भी है कि हैजे के रोगी के मल में से ये कीड़े, दूसरों तक पहुंच जाते हैं। हैजे के रोगी के दस्त हैजे के कीटाणुओं से भरे हुए होते हैं। यदि इस मल को तालाब, नदी या कुएं के पास ही फेंक दिया जाए तो इन कीटाणुओं की संख्या बढ़ती जाएगी और जो लोग तालाब, नदी या कुएं से पानी भरेंगे, उन के शरीर में पानी के साथ कुछ कीटाणु चले जाएंगे और थोड़े, ही समय में इन लोगों को भी हैजा हो जाएगा।

जिन रोगियों के फेफड़ों में क्षय रोग होता है उन के थूक में कीटाणु लाखों की संख्या में रहते हैं। जब ये रोगी फर्श या जमीन पर थूकते हैं तो थूक सूख कर शीघ्र ही धूल में मिल जाता है। यह धूल हवा में मिल जाती है और लोग इस हवा को सांस के साथ अन्दर ले जाते समय क्षय रोग के इन कीटाणुओं को भी अन्दर ले जाते हैं। यदि इन कीड़ों को अन्दर ले जाने वाला व्यक्ति अधिक हृष्ट-पुष्ट न हो तो ये कीड़े बहुत बड़ी संख्या में बढ़ जाएंगे और उस के फेफड़े, क्षय रोग के शिकार बन जाएंगे। इन दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि रोग के कीटाणु कहां से आते हैं।
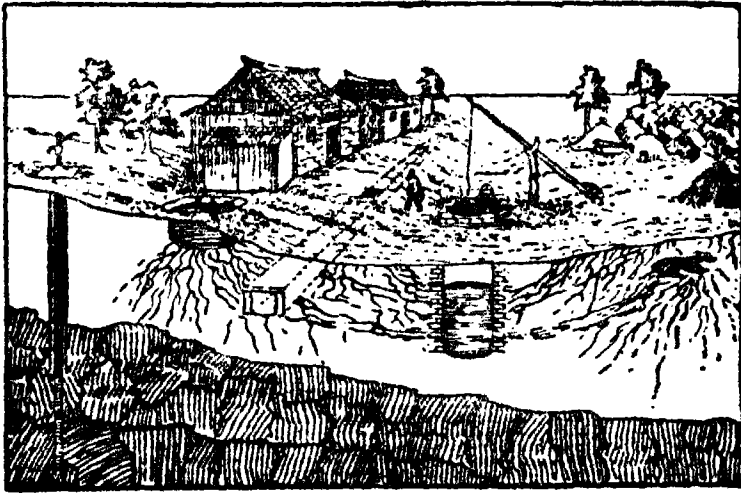
किसी अनुचित स्थान पर असावधानी से कुआं बनाने के कारण ही पानी दूषित होता है। इस चित्र में जो खुदा हुआ कुआं दिखाया गया है उस में इधर-उधर गंदा पानी अन्दर चला जाता है; परन्तु बर्मे द्वारा पृथ्वी में छेद कर के नल द्वारा पानी निकालने से पानी दूषित नहीं हो पाता।

इस के अतिरक्त यह भी बता देना उचित है कि कुछ रोग लोगों को छोटे-छोटे जानवरों से भी लग जाते हैं । जैसे पागल कुत्ते के काटने से हड.क का रोग, चूहों से महामारी, सूअर से बालों का कोई भी रोग और भेड. बकरियों से क्षय रोग हो जाता है। दाद जैसे त्वचा के कई रोग बिल्ली या कुत्ते से लग जाते हैं ।

रोग के कीटाणु शरीर में किस प्रकार प्रवेश करते हैं

रोग के कीटाणुओं के लिए शरीर में प्रवेश करने के तीन द्वार हैं: मुंह नाक और त्वचा पर चोट लगा हुआ स्थान । रोग के कीटाणु भोजन और पानी द्वारा हमारे मुंह में प्रवेश करते हैं । जब कोई व्यक्ति गंदे हाथों से भोजन करता है, जब बच्चे अपनी उंगलियां, रुपया या पैसा अपने मुंह में डालते हैं—तो रोग के कीटाणु मुंह में प्रवेश कर जाते हैं । जो हवा में मिले हुई धूल नाक द्वारा अन्दर जाती है उस के साथ रोग के कीटाणु भी हमारे शरीर के अन्दर पहुंच जाते हैं ।

यदि शरीर की त्वचा कहीं से कटी-फटी न हो तो वह शरीर के ऊपर एक ऐसी चादर डाल देती है जिस से कीटाणु शरीर के अन्दर नहीं पहुंच सकते । परन्तु जब त्वचा में चोट लगती है तो कीटाणु शरीर के अन्दर उसी प्रकार पहुंच जाते हैं जैसे किसी मकान की छत से खपरैल हटा लेने पर वर्षा अन्दर आने लगती है । जब त्वचा चाकू या छुरी से अकस्मात् कट जाए या कोई कांटा या सुई अन्दर घुस जाए और त्वचा में छोटा या बड.ा सा छेद हो जाए और चूंकि चाकू या लकड.ी पर रोग के कीटाणु सदैव रहते हैं, वे शरीर के अन्दर घुस जाते हैं, बढ.ने लगते हैं और शीघ्र ही चोट लगा हुआ स्थान लाल हो जाता है या फूल जाता है और एक-दो दिन में उस में पीप पड. जाती है। यह सब कुछ उन कीड.ों के कारण हो जाता है जो त्वचा पर चोट लगने के कारण शरीर के अन्दर घुस जाते हैं ।

शरीर के अन्दर रोग के कीटाणुओं के घुसने का दूसरा ढंग यह है कि जब मच्छर पिस्सू, खटमल, जूं या किलनी किसी व्यक्ति को काटते हैं तो वे थोड.ा सा खून चूस लेते हैं । यदि उस व्यक्ति को मलेरिया या आंत्रिक-ज्वर हो, तो उस का खून चूसते समय वह कीड.ा मलेरिया या आंत्रिक-ज्वर के कुछ कीटाणु अपने अन्दर ले जाता है । बाद में वही कीड.ा जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो रोगी व्यक्ति के शरीर में से चूसे हुए कीटाणुओं में से कुछ उस व्यक्ति के शरीर में पहुंचा देता है ।

रोग के कीटाणु से हम अपने आप को किस प्रकार बचाएं

प्राय: रोगोत्पादक कीटाणु रोगी लोगों से ही आते हैं । अत: यह बात बहुत आवश्यक है कि ज्योंही ये रोगी के शरीर से निकलें त्योंही उन्हें नष्ट कर दिया जाए जिस से वे भोजन, पानी या दूसरे लोगों के बरतनों पर न बैठ सकें । हैजा, मोतीझिरा, महामारी, झिल्लीक-प्रदाह आदि बीमारियों में रोगी को अलग कमरे में रखना चाहिए । इस प्रकार की बीमारियों की अवस्था में रोगी को छूत की बीमारियों के अस्पताल में जाना चाहिए। परन्तु रोगी चाहे कहीं भी रहे उसका कमरा अलग होना चाहिए और उन लोगों के अति-

रिक्त जो उस की देखभाल कर रहे हों, किसी को भी उस में नहीं घुसना चाहिए। रोगी के बरतन आदि उसी के कमरे में रक्खे रहने देने चाहिए और उन का प्रयोग होने के पश्चात् हर बार उन्हें खौलते हुए पानी से साफ कर लेना चाहिए। नर्स को भी बार-बार अपने हाथ धोने चाहियें और उसे रोगी वाले कमरे में भोजन नहीं करना चाहिए।

रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर देने वाली कोई वस्तु मिलाए बिना ही रोगी के मल-मूत्र को इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए। उस के थूक और नाक की गन्दगी में भी रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं; अतः रोगी को कागज के टुकड़ों में थूकना और नाक साफ करना चाहिए और फिर इन कागज के टुकड़ों को जला देना चाहिए।

रोग के कीटाणुओं से अपने शरीर की रक्षा करने के लिए आदमी को इस बात में बहुत सावधानी रखनी चाहिए कि भोजन किसी प्रकार से गन्दा न होने पाए। नदियों तालाबों और कुओं के पानी में प्रायः विषैले कृमि होते हैं। अतः पीने से पहले पानी को उबाल लेना चाहिए। बाजार या फेरी वाले से खरीदे हुए फल को साफ कर के और छील कर खाना चाहिए।

अपनी त्वचा को प्रत्येक प्रकार की चोट से बचा कर रखना चाहिए। चोट लगने पर तत्क्षण टिंचर लगाइये या साबुन से धोइये। अपने पहनने के कपड़ों को दूसरे-तीसरे दिन धोना चाहिए और बिस्तर को साफ रखना चाहिए जिस से कोई खटमल या जूं आदि न आ सके। जहां मच्छर हों, वहां बिस्तरे के ऊपर मच्छरदानी लगाइये जिस से मच्छर आप को काट न सकें।

इस प्रकार के सभी बचाव करने पर भी कभी-कभी रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। परन्तु उस बुद्धिमान परमेश्वर को धन्यवाद दीजिये जिस ने हमारे शरीर को वह शक्ति दी है कि यदि रोग के कीटाणु अधिक संख्या में न हों या अधिक विषैले न हों, तो शरीर उन्हें स्वयं ही नष्ट कर सकता है। बीमारी को रोकने की क्षमता और विषैले कृमियों को नष्ट करने की शक्ति खून में होती है। यदि कोई व्यक्ति अच्छा खाना न खाए और साफ हवा में सांस न ले, या इतना काम करे कि थक जाए, या शराब और तम्बाकू पीता हो, या स्त्री-सहवास बहुत करे, तो खून की कीटाणुओं को रोकने की और कीटाणुओं को मारने की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः रोगों से अपने शरीर को बचाए रखने के लिए यह बात बहुत ही आवश्यक है कि भोजन स्वच्छ हो, साफ हवा में सांस लिया जाए, रात को पूरे आठ घंटे सोया जाए, मदिरा या तम्बाकू का किसी भी रूप में प्रयोग न किया जाए, और शुद्ध व नैतिक जीवन व्यतीत किया जाए। इस प्रकार शरीर हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली रहेगा और रक्त रोग के उन कीटाणुओं को नष्ट करने योग्य होगा जो समय-समय पर किसी-न-किसी प्रकार शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

अध्याय १६

आप की शत्रु—मक्खी

मक्खी बहुत छोटा-सा कीड़ा है; तो फिर यह मनुष्य को कैसे मार सकती है ?

मक्खी एक स्थान से दूसरे स्थान को विष ले जाती है और इस प्रकार लोगों की हत्या का कारण बन जाती है। यद्यपि मक्खी दक्षिण एशिया में प्रति वर्ष लाखों लोगों को मार डालती है, परन्तु फिर भी बहुत कम लोग मक्खी पर सन्देह करते हैं।

मक्खी द्वारा होने वाली भयानक हानियों को समझने के लिए मक्खी की जीवन-संबंधी बातों और उसकी आदतों को समझने आवश्यक है।
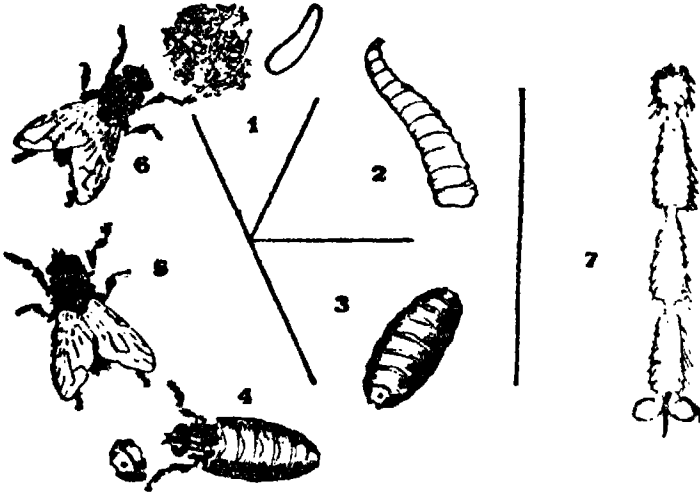
मक्खी का शारीरिक विकास

१. मक्खी के एक दिन में दिए हुए अंडे। २. अंडे से बाहर निकलने पर मक्खी का प्रारम्भिक आकार। ३. कोशस्थ अवस्था—पंख निकलने से पहले की स्थिति (तीन से पांच दिन तक) ४. कोश में से निकली हुई मक्खी। ५. पूर्ण रूप से विकसित मक्खी। ६. शारीरिक विकास-चक्र पूर्ण हो चुका, और अब मक्खी उड़ कर एक नई पीढ़ी की उत्पत्ति में प्रयत्नशील होने वाली है। (यह सब कुछ केवल सात से पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर हो चुकता है।) ७. मक्खी की टांग।

मादा मक्खी अंडे देती है और ये अंडे कृमि बन जाते हैं और फिर ये ही बढ़कर मक्खियां बन जाते हैं। अंडे देने के समय से लेकर मक्खियों की नई पीढ़ी बनने तक दस से चौदह दिन लगते हैं। एक मादा मक्खी कम-से-कम १२० अंडे देती है और १५ दिन में इन अंडों से १२० मक्खियां पैदा हो जाती हैं। इस से पता चलता है कि कुछ महीनों में एक मक्खी से लाखों मक्खियां पैदा होती हैं।

साधारण मक्खी के अंडे देने का मुख्य स्थान घोड़े की लीद या गाय-बैल का गोबर आदि है। मक्खियां मनुष्य के मल, सड़े गले पदार्थों और सब प्रकार के कूड़े-कचरे पर भी अंडे देती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जहां पर गन्दगी इकट्ठा हो जाती है, वहीं पर मक्खियां अंडे दे देती हैं।

मक्खी गन्दगी में सेई (अंडे में से निकाली) जाती है, गन्दा खाती है और गन्दे स्थानों में ही रहना पसन्द करती है। इस के शरीर और ६ पैरों में अनगिनत बाल हैं और प्रत्येक पैर में एक गोल गद्दी होती है। इन गद्दियों पर एक प्रकार का लसलसा व चिपकने वाला पदार्थ लगा रहता है। यदि यह चिपकने वाला पदार्थ उसकी टांगों पर न लगा होता तो वह छतों पर उलटी न चल सकती, जैसे कि अब चलती है। शरीर और टांगों पर अनगिनत बाल होने के कारण और पैरों में यह चिपकने वाला पदार्थ लगा रहने के कारण मक्खी रोग के कीटाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने में अद्वितीय कीड़ा है। यह खाद के ढेर, खुली टट्टियों, सड़ते हुए पदार्थों, खुले घावों आदि पर बैठ-बैठ कर उड़ती हुई लोगों के घर में भोजन पर आ बैठती है, दूध पीती है, बच्चों के मुंह तथा आंखों पर बैठती है, और इस प्रकार जहां कहीं जाती है अपने साथ कीटाणु ले जाती है। मक्खी आंखों का दुखना, अतिसार (पतले दस्त), आंत्रिक-ज्वर तथा हैजा आदि रोगों को फैलाती है।

प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि मक्खियों के उत्पत्ति-स्थानों को नष्ट कर के उन से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे, और अपने घरों के खिड़की-दरवाजों पर जाली लगाए ताकि मक्खियां अन्दर न आ सकें और यदि किसी प्रकार आ जाएं तो उन को मार डालें। मक्खी मनुष्य का शत्रु है ! इस के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दीजिए।

••••

अध्याय १७

दीर्घायु का रहस्य

प्राचीन समय के किसी महात्मा का कथन है कि मनुष्य मरता नहीं, बल्कि अपने को मार डालता है। यह कथन बहुत से लोगों के विषय में सत्य है। यह तो ठीक है कि एक-न-एक दिन सभी को मरना है, परन्तु फिर भी बहुत कम लोग स्वाभाविक जीवन के अन्त तक जीते हैं।

प्रत्येक जाति के ग्रंथों में उन लोगों का वर्णन हैं जो बहुत समय तक जीते रहे। कुछ तो सौ से ऊपर तक जीवित रहे। परन्तु सौ या इस से अधिक वर्ष की आयु को पहुंचने वाले इन सभी व्यक्तियों के विषय में यह ज्ञात है कि उन्होंने छोटी आयु से ही अपने स्वास्थ्य की देख-रेख आरम्भ कर दी थी।

बहुत से पुरुष और स्त्रियां युवावस्था में स्वस्थ और शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट होते हैं। जब उन्हें ऐसे कार्य करने से रोका जाता है जिन से स्वास्थ्य बिगड़ता है तो वे इस चेतावनी को हंसी में उड़ाते हुए कहते हैं—अरे, अभी तो जवानी है, हमें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंच सकती। जो परमात्मा सारे जगत् पर शासन करता है, उस ने एक ऐसा नियम बना दिया है जिस के अंतर्गत प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री का प्रत्येक कार्य आ जाता है। परमेश्वर ने कहा है कि मनुष्य जो कुछ बोएगा, वही काटेगा। यदि कोई मनुष्य गेहूं बोता है तो उस को गेहूं की फसल ही मिलेगी, यदि वह दाल बोता है तो उसे दाल मिलेगी। जो युवक जीवन में बुरी आदतों को बोता है वह अपने शरीर में रोग के बीज बोता है और यह बिल्कुल निश्चित है कि कभी-न-कभी वह रोग ही की फसल काटेगा अर्थात् रोगी हो जाएगा। १२ वें और १३ वें अध्याय में यह बताया गया है कि अधिक सहवास से और वीर्य के नष्ट होने से जो रोग उत्पन्न होते हैं उन से आयु कम हो जाती है। अफीम और तम्बाकू के सेवन से ऐसे रोग का बीज बोया जाता है जिससे आयु घटती है।

इस पुस्तक को पढ़नेवालों में से बहुत से लोग अपनी युवावस्था को पार कर चुके होंगे और कदाचित् कुछ रोगग्रस्त हों। वे स्वाभाविकतया पूछेंगे कि गत वर्षों में तो हम ने अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रक्खा, तो क्या अब भी दीर्घायु की प्राप्ति की कोई आशा हो सकती? यह तो शरीर की अवस्था पर निर्भर है कि वह कहां तक रोगग्रस्त हो चुका है और कहां तक स्वास्थ्य की पुनःप्राप्ति के योग्य है। परन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं जो अपनी आयु को बढ़ा न सके; हां, शर्त यह है कि स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली सभी आदतों

को एक दम छोड़ना पड़ेगा और वे सभी आदतें डालनी पड़ेंगी जिन से आयु बढ़ती है। ऐसे बहुत से लोगों के उदाहरण हैं जिन के शरीर चालीस वर्ष या उस से अधिक की अवस्था में रोगग्रस्त थे परन्तु जिन्होंने अपनी आदतें सुधार लीं और तब फिर वे ७५ या ८० वर्ष तक जीवित रहें।

दीर्घायु की प्राप्ति के लिए मनुष्य को संयमी होना आवश्यक है।

दीर्घायु के लिए संयमी होना अति आवश्यक है। जो पुरुष और स्त्रियां सौ वर्ष तक जीवित रहे वे हर प्रकार के असंयम से बचे रहे। वे खाने-पीने में भी संयमी थे। संयम के लिए विषय-इच्छा और खाने-पीने की इच्छा दोनों ही पर नियंत्रण आवश्यक है। क्रोध, ईर्ष्या तथा किसी के प्रति दुर्भावनायें शरीर पर बुरा प्रभाव डालती हैं और आयु घटाती हैं। दयालु विचार और संतुष्ट मन मनुष्य को दीर्घ जीवी बनाते हैं। इस संसार पर शासन करने वाले तथा समस्त जीवन के मूल परमात्मा को ध्यान में रख कर जो व्यक्ति पवित्र विचार रखता है और अच्छे कार्य करता है, उस की आयु लम्बी होती है।

वृद्ध लोगों का भोजन

वृद्ध लोगों के लिये सर्वथा उपयुक्त भोजन ये हैं: चावल, हल्के उबले हुए अंडे, और दूसरी बार सेंकी हुई कुरकुरी सी रोटी है। यदि दांत कमजोर हों, तो रोटी (टोस्ट) को गर्म पानी द्वारा नरम कर लेना चाहिए। फल अधिक मात्रा में खाने चाहिये। जब पके हुए फल उचित दामों पर न मिलें तो कच्चे ही खाने चाहियें। भाप से पकाये हुए या उबाले हुए फल भी बहुत लाभदायक होते हैं। केक-मिठाइयां आदि नहीं खानी चाहियें। बूढ़े लोगों को जल्दी-जल्दी स्नान करना चाहिए। यदि त्वचा को स्नान के बाद तेजी से सूखे तौलिये से रगड़ा जाए तो शरीर सर्दी लगने से बचा रहेगा।

व्यायाम

दीर्घ जीवी होने के लिये प्रतिदिन व्यायाम करना आवश्यक है। शरीर मशीन के समान है। यदि मशीन का उपयोग न किया जाए तो उस में जंग लग जाता है और यह बात सब जानते हैं कि जंग लगी हुई मशीनें जल्दी ही टूट जाती हैं। यदि कोई व्यायाम न करे तो शरीर कड़ा हो जाता है। वह चलने के लिए अपनी टांगों का उपयोग नहीं कर सकता। कुछ प्रसिद्ध लोग जो दीर्घ काल तक जीवित रहे, उन्होंने जीवन भर प्रतिदिन कसरत करने का अभ्यास बना लिया था और बहुत बूढ़े हो जाने पर भी वे प्रतिदिन ताजा हवा में सैर करने जाया करते थे।

शरीर के साथ-साथ मस्तिष्क को भी पढ़ने या वाद-विवाद द्वारा कसरत करानी चाहिए। यदि बूढ़े लोग ऐसा करें तो वह बच्चों की सी बातें नहीं करेंगे, जैसे कि बहुत से लोग करते हैं।

दीर्घायु के नियम

१. जिन कमरों में आप रहते हैं उन में स्वच्छ वायु का आवागमन रहे।

२. काम और मनोरंजन दोनों ही खुली हवा में कीजिये।

३. हो सके तो बाहर सोइये।

४. लम्बी श्वास लिया कीजिये।

५. अधिक भोजन न कीजिये।

६. मांस और मसालेदार खाना बहुत कम खाया कीजिये।

७. भोजन धीरे-धीरे और खूब चबा कर किया कीजिये।

८. प्रतिदिन एक या दो बार टट्टी हो जानी चाहिये।

९. सीधे बैठिये, सीधे खड़े रहिये और सीधे चलिये।

१०. दांत, मसूड़े और जीभ प्रतिदिन ब्रुश से साफ किया कीजिये।

११. विष या रोग के कीटाणु को शरीर के अन्दर न घुसने दीजिये।

१२. अधिक काम न कीजिये। जब थक जाएं, तो आराम कीजिये। अपनी आवश्यकता के अनुसार सात से लेकर ९ घंटे तक सोया कीजिये।

१३. क्रोध और चिन्ता से दूर रहिये—मन शांत रखिये।

(अमरीका के कुछ वैज्ञानिकों ने उपर्युक्त नियम उन लोगों के लिये बताए हैं जो स्वस्थ रहना तथा दीर्घ जीवी होना चाहते हैं:)

नोट: इन वैज्ञानिकों का कहना है कि मांस कम मात्रा में खाया जाए, परन्तु हमारे विचार में मांस बिलकुल ही न खाना और भी अच्छा है।

अध्याय १८

गर्भाधान तथा शिशु-जन्म सम्बन्धी समस्याएँ

मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में हमें विश्वसनीय लिखित विवरण बाइबल की 'उत्पत्ति' नामक पहली पुस्तक में मिला है। लिखा है कि परमेश्वर ने कहा—"हम मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार अपनी समानता में बनाएं; और वे समुद्र की मछलियों और आकाश के पक्षियों और घरेलू पशुओं और सारी पृथ्वी पर और सब रेंगनेवाले जन्तुओं पर जो पृथ्वी पर रेंगते हैं, अधिकार रक्खें। तब परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उस को उत्पन्न किया, नर और नारी कर के उस ने मनुष्यों की सृष्टि की .... और यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रच कर उस के नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया और आदम जीवित प्राणी बन गया।"

'उत्पत्ति' नामक पुस्तक ही से हमें यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक पौधे और पशु को प्रजनन-शक्ति प्राप्त हुई जिस से वे अपनी-अपनी जाति को बढ़ाएं और फूलें-फलें। मनुष्य के विषय में उस रचयिता ने कहा, "फूलो, फलो और पृथ्वी में भर जाओ।" वह सृष्टिकर्ता आसानी से पृथ्वी को असंख्य लोगों से भर सकता था परन्तु उस ने केवल दो ही को बनाया—एक पुरुष बनाया और एक स्त्री बनाई। परन्तु एक रूप से उस ने वह क्रियात्मक शक्ति मनुष्य को प्रदान की। अतः प्रजनन-क्रिया को कामाभिलाषाओं की पूर्ति का साधन मात्र नहीं समझना चाहिए, वरन् यह समझना चाहिये कि यह ईश्वरीय सृष्टि-कार्य के समान ही एक कार्य है।

गर्भाधान

बारहवें अध्याय में बताया जा चुका है कि मनुष्य को अतिशय सहवास से बचना चाहिये। यद्यपि पति और पत्नी का सहवास उचित और स्वाभाविक है, परन्तु उचित और स्वाभाविक तब ही तक है जब तक इसे नियम और तर्क के अन्तर्गत परिमित रक्खा जाए। इसे को यूं समझिये कि यद्यपि भूख और प्यास दोनों ही स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं और इन को संतुष्ट करना उचित है, परन्तु सभी जानते हैं कि अधिक खान-पीने से हानि

होती है। इसी प्रकार कामेच्छा की पूर्ति स्वाभाविक और उचित समझ कर सीमा से परे चला जाना न तो ठीक है और न ही तर्क संगत है।

बार-बार बच्चे जनने से माता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए क्या उपाय है जो बच्चे की संख्या तो न बढ़ाना चाहते हों, परन्तु स्वाभाविक रूप से अपनी कामेच्छा की पूर्ति करना चाहते हों? साधारणतया स्त्री के लिए प्रति मास कुछ घंटों की एक अल्प अवधि ऐसी होती है जिस में वह गर्भ-धारण कर सकती है। यह वह समय होता है जब परिपक्व डिम्ब डिम्ब-ग्रन्थि से मुक्त होता है। जिस स्त्री का रज: स्राव-चक्र २८ दिन का होता है उस में यह अवधि प्रतिमास रज: स्राव आरम्भ होने से १४ दिन पूर्व आती है। विभिन्न स्त्रियों में इस अवधि में अन्तर होता है, यद्यपि अधिकांश स्त्रियों में होने वाले रज:स्राव से पूर्व १० वें और १६ वें दिन के बीच कहीं भी आ जाती है। जब गर्भधान की इच्छा हो तो सहवास महीने के इन्हीं छ: दिनों में होना चाहिए। इस के विपरीत यदि संतानोत्पत्ति की इच्छा न हो तो इस डिम्बमोचन-अवधि में सम्भोग से बचना चाहिये।

ध्यान रहे कि उपरोक्त विधि केवल उसी स्त्री पर लागू होती है जिस को नियमित रूप से हर अट्ठाईसवें दिन रज:स्राव होता हो। जिन स्त्रियों का मासिक-धर्म-चक्र अट्ठाईस दिन से कम या अधिक का हो या जिन के मासिक-धर्म आरम्भ होने की तिथि प्रतिमास बदलती रहती हो, उन के लिए यह विधि विश्वसनीय और सफल नहीं कही जा सकती। (देखिये अध्याय १९)

गर्भाशय में शिशु का विकास

किसी स्त्री को गर्भ रहते ही वह डिम्ब जो राई के दाने से भी छोटा (एक इंच का १/१२५ वां भाग) होता है, बढ़ने लगता है। कुछ ही दिनों में वह शहतूत का सा रूप धारण कर लेता है और लगभग उतना ही बड़ा हो जाता है। चार सप्ताह में वह कबूतर के अंडे जितना बड़ा हो जाता है। दूसरे महीने के अन्त तक वह मुर्गी के अंडे जितना बड़ा हो जाता है और अब उस में मनुष्य के शरीर के से चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। कुछ ऐसी रक्त-वाहिनियां होती हैं जो उसे गर्भाशय के भीतरी भाग से जोड़ देती हैं; और माता जो कुछ खाती है वह पच कर उस की अपनी रक्त वाहिनियों द्वारा भ्रूण (गर्भाशय में बढ़ते हुए शिशु) तक पहुंच जाता है और उसे बढ़ाता है।

कितने आश्चर्य की बात है कि शहतूत जैसा जीव बढ़ कर २०६ हड्डियों, ५०० से अधिक मांस पेशियों, आंख, कान, हृदय, मस्तिष्क आदि वाला मनुष्य बन जाता है! यह इस सत्य का एक और प्रमाण है कि परमेश्वर ने ही मनुष्य को रचा और वही इतने सूक्ष्म जीव को बढ़ा कर पूर्ण रूप से विकसित शरीर प्रदान करता है। प्राचीन काल में दाऊद नाम का एक बड़ा बुद्धिमान राजा था। उस ने एक बार कहा था .... "हे परमेश्वर मैं तेरा धन्यवाद करता हूं क्योंकि मैं बड़े अद्भुत ढंग से रचा गया हूं। जब मैं गुप्त रीति से रचा जा रहा था, तो तुझ से छिपा नहीं था; क्योंकि तू ने ही मुझ में प्राण डाले हैं; तू ने ही मुझे मेरी माता के गर्भ में रचा था।"

गर्भधान-अवधि की गणना करने की तालिका

January	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
OCTOBER	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	6	7	NOVEMBER
February	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28				
NOVEMBER	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	1	2	3	4	5				DECEMBER
March	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
DECEMBER	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	JANUARY
April	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30		
JANUARY	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4		FEBRUARY
May	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
FEBRUARY	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	1	2	3	4	5	6	7	MARCH
June	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30		
MARCH	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	6		APRIL
July	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
APRIL	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	1	2	3	4	5	6	7	MAY
August	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
MAY	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	6	7	JUNE
September	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30		
JUNE	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	1	2	3	4	5	6	7		JULY
October	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
JULY	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	6	7	AUGUST
November	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30		
AUGUST	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	1	2	3	4	5	6		SEPTEMBER
December	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	
SEPTEMBER	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	1	2	3	4	5	6	7	OCTOBER

प्रत्येक खाने में ऊपर वाली पंक्ति का अंक मासिकधर्म की तारीख बताता है; उस से नीचे का अंक यह बताता है कि प्रसव की आशा कौन-सी तारीख को करनी चाहिए। उदाहरणार्थ—यदि मासिकधर्म की तारीख मार्च १ थी, तो दिसंबर ६ को प्रसव की आशा करनी चाहिए।

चौथे महीने के अन्त तक बच्चा पांच इंच लम्बा हो जाता है। छटे महीने तक उस का वजन सवा सेर हो जाता है। यदि छटे महीने के अन्त में ही उस का जन्म हो जाए, तो ऐसे शिशु के जीवित रहने की बहुत कम सम्भावना रहती है। आठ महीने (२५२ दिन) के अन्त तक शिशु का वजन २ से ले कर ३ सेर तक हो जाता है और उस की लम्बाई लगभग आठ इंच हो जाती है। यदि इस समय शिशु का जन्म हो जाए और उस की बहुत अधिक देख-भाल की जाए, तो वह जीवित रह सकता है। नौ महीने के अन्त में (२८० दिन बाद), शिशु पूर्ण रूप से विकसित हो चुकता है। इस समय उस का वजन तीन सेर से ले कर पांच सेर तक होता है, और लम्बाई लगभग बीस इंच होती है।

गर्भावस्था की अवधि

गर्भावस्था २८० दिन तक रहती है। निम्नलिखित विधियों द्वारा उस समय का अनुमान लगाया जा सकता है जब बच्चा पैदा होगा। पिछले मासिकधर्म के आरम्भ होने की तिथि से आगे के पूरे नौ महीने गिन लीजिए और उन में सात दिन जोड़ दीजिये, उदाहरणार्थ—यदि पिछला मासिक धर्म १ जनवरी को आरम्भ हुआ हो, तो अक्तूबर ८ के आस-पास बच्चा पैदा होगा।

एक और सरल सी विधि यह है कि पिछले मासिक धर्म के आरम्भ होने की तिथि से आगे के पूरे २८० दिन गिन लीजिये। परन्तु किसी भी विधि से बिल्कुल ठीक-ठीक तिथि ज्ञात नहीं की जा सकती। बच्चा अनुमानित समय से दो सप्ताह पहले भी पैदा हो सकता है और दो सप्ताह बाद भी।

गर्भावस्था के लक्षण

प्रश्न उठता है कि किसी स्त्री को अपनी गर्भावस्था का पता कैसे चले ? तो कई एक ऐसे लक्षण हैं जिन से उसे इस स्थिति का ज्ञान हो सकता है। नियमित रूप से होते-होते जब किसी विवाहित स्त्री का रज:स्राव अकस्मात् बन्द हो जाए, तो बहुत सम्भव होता है कि वह गर्भवती हो गई हो, परन्तु पूर्ण रूप से निश्चित नहीं कि ऐसा हो ही; क्योंकि दूध पिलाती हुई स्त्री भी गर्भवती हो सकती है और शिशु के जन्म के पश्चात् मासिक धर्म के पुन: आरम्भ से पूर्व भी गर्भधान सम्भव है।

गर्भावस्था में भय-सूचक चिन्ह

१. निरन्तर या जोर का वमन।
२. निरन्तर या तीव्र सिर-पीड़ा।
३. बार-बार सिर का चकराना।
४. धुंधला दिखाई देना या अन्य दृष्टि-दोष।
५. चेहरे पर सूजन, विशेषकर आंखों के नीचे।

६. पैरों, गट्टों और अन्य अंगों पर सूजन।
७. उदर के ऊपरी भाग में तीव्र पीड़ा।
८. एक सप्ताह या इस से अधिक समय तक गर्भावस्था में भ्रूण का न हिलना-डुलना।
९. योनी से रक्त बहना।
१०. पेट में ऐंठन और उस के साथ-ही-साथ पीठ के निचले भाग में दर्द।
११. मन उदास-उदास रहना, और स्वभाव में परिवर्तन।

गर्भवती होने के कुछ सप्ताह पश्चात् स्त्री का प्रति दिन सवेरे-ही-सवेरे जी मचलाने लगता है। बिस्तर से उठते ही उस को वमन होने लगता है। यह दशा कई सप्ताह तक रह सकती है। गर्भावस्था का यह एक निश्चित लक्षण है।

गर्भाधान के दूसरे या तीसरे महीने में छातियां सख्त और बड़ी हो जाती हैं स्तनों के वृन्त बाहर को निकल आते हैं।

गर्भावस्था के तीसरे महीने से पेट धीरे-धीरे बढ़ने लगता है।

गर्भवती होने के लगभग साढ़े चार महीने के पश्चात् स्त्री शिशु की गति को अपने गर्भाशय में अनुभव करने लगती है।

गर्भवती स्त्री की देख-भाल

गर्भवती स्त्री को यथेष्ट मात्रा में पौष्टिक भोजन चाहिए क्योंकि उसे दो प्राणियों के लिये भोजन करना पड़ता है, अपने लिये और अपने गर्भाशय में बच्चे के लिये। प्रतिदिन टट्टी का होना भी बहुत आवश्यक है। यदि स्त्री को कब्ज हो तो उसे अध्याय २८ में लिखे नियमों का पालन करना चाहिये।

उसे हवादार कमरे में सोना चाहिये।

गर्भवती स्त्री के लिए प्रतिदिन कोई-न-कोई शारीरिक व्यायाम करना भी आवश्यक है नहीं तो उस की पेशियां अशक्त और ढीली पड़ जाती हैं, बच्चा कमजोर होगा और प्रसव काल में उसे भी बहुत पीड़ा होगी।

उसे प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में साफ पानी पीना चाहिये।

उसे शराब, तम्बाकू, पान-सुपारी आदि के सेवन से बचना चाहिये।

उस को स्वच्छ रहने के लिए बार-बार स्नान करना चाहिये।

गर्भावस्था में विशेष कर अंतिम दो मास में सहवास बिल्कुल नहीं करना चाहिए और प्रथम सात महीनों में बहुत कम।

प्रसव की तैयारी

जब प्रसवकाल समीप हो तो प्रसूता के कमरे को साफ सुथरा रखना चाहिए। दीवारों पर टंगा हुआ सामान उतार लिया जाए और दिवारों पर सफेदी कर दीजिए। फर्श को धोना चाहिए और यदि फर्श मिट्टी का हो, तो उसे अच्छी तरह से झाड़ू से साफ कर के कमरे के कोनों और फर्नीचर के नीचे चूना छिड़क दिया जाए। चारपाई और मेज के अतिरिक्त सारा सामान कमरे से बाहर निकाल दिया जाए। यदि मकान

में केवल एक ही कमरा हो तो साफ सुथरी चटाइयों को बीच में लटका कर स्त्री के प्रसव-गृह को दूसरे भाग से अलग कर दिया जाए। निम्नलिखित वस्तुओं को प्रसूता के कमरे में प्रस्तुत रखना चाहिए :—

१. एक पाउण्ड या अधिक सोखने वाली रुई जो रक्त आदि को पोंछने और बालक उत्पन्न होने के पश्चात् गद्दी बना कर योनि में रखने के काम आए।
२. बच्चा होने के बाद स्त्री के पेट पर बांधने के लिए नये सूती कपड़े की दो १० इंच चौड़ी और ४फुट लम्बी पटि्टयां।
३. धो कर या खौला कर साफ किए हुए पुराने कपड़े के टुकड़े। ये प्रसूता के नीचे रक्खे जाते हैं जिस से रक्त और दूसरे पदार्थों को सोख लें।
४. शिशु को लपेटने के लिए दो फुट लम्बा फलालैन या किसी और नर्म कपड़े का टुकड़ा। इसे अच्छी तरह साफ कर लेना और खौला लेना चाहिए।
५. बालक के पेट पर बांधने के लिए कपड़े की दो पटि्टयां। ये दो-दो फुट लम्बी और साढ़े चार-चार इंच चौड़ी हों और इन्हें भी खौला लेना चाहिये।
६. साबुन और एक छोटा सा ब्रश जिस से दाई या नर्स अपने हाथ साफ कर सके।
७. एक सेर पानी में एक चमच लाइसोल (Lysol) डाल कर दाई के हाथ धोने के लिए इस का घोल तैयार कर लिया जाए।
८. एक या दो औंस बोरिक पाउडर। यह नाल को काट कर उसके ऊपर बुरकने के काम आता है।
९. साफ कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़े। इन को खौला लिया जाए। प्रत्येक टुकड़ा तीन इंच लम्बा और तीन इंच चौड़ा होना चाहिए और उसके बीच में इतना बड़ा छेद हो कि उस में नाल का ठूंठ आसानी से घुस सके।
१०. चार छः औंस वाली बोरिक एसिड सोल्यूशन की बोतल। देखिये परीशिष्ट में उपचार नम्बर १; इस से बच्चे की आंखें और माता के स्तन-वृन्त धोए जाते हैं।
११. एक-आध औंस वाली अर्जिरोल (argyrol) के घोल की बोतल। इस में १/१० भाग अर्जिरोल को हो। इस से बालक की आंखें धोई जाती हैं। (देखिए उपचार नम्बर ३)।
१२. पैदा होते ही बच्चे के शरीर को साफ करने के लिए थोड़ी सी वैसलीन या थोड़ा सा मीठा तेल।
१३. थोड़ी सी सेफ्टी पिनें। ये मां और बच्चे के पेट की पटि्टयां बांधने के काम आती हैं।
१४. बच्चे के शरीर को पोंछने के लिए नर्म और साफ कपड़े के कई टुकड़े।
१५. सूत के दस-बारह तारों को अच्छी तरह बट कर धागा बना लिया जाए और इस के छः-छः या आठ-आठ इंच लम्बे दो टुकड़े कर लिए जाएं। ये नाल बांधने के काम आते हैं। गरम पानी में खौला कर एक अच्छी सी कैंची भी तैयार रखनी चाहिये।

यह सब सामान पहले से ही जमा कर लेना चाहिये, और सब खौले हुए कपड़ों को एक साफ सुथरे कपड़े में लपेट कर रखना चाहिये। इस सामग्री को बिना हाथ धोये नहीं छूना चाहिए।

बच्चे और माता के लिये उस अवसर पर पहनने के कपड़े और पलंग की चादरें, साफ होनी चाहियें और उन्हें धूल से बचाए रखना चाहिये।

यह बड़े महत्व की बात है कि प्रत्येक वस्तु साफ सथुरी हो। जो बहुत से बच्चे शैशव में मर जाते हैं, उन में से अधिकतर पैदा होने के दो सप्ताह बाद ही मर जाते हैं। इस का कारण यह है कि बच्चे के पैदा होते समय सारे सामान को साफ सुथरा रखने में सावधानी नहीं बरती जाती। बहुत सी माताएं बच्चों को जन्म देने के पश्चात् बीमार हो जाती हैं और ज्वर बहुत दिनों तक उन का पीछा नहीं छोड़ता। इस का कारण भी यह है कि प्रसवकाल में सफाई पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता।

ज्योंही स्त्री को पता चले कि अब बच्चा पैदा होने का समय आ गया है, त्योंही उसे अपना बिस्तर तैयार करवा लेना चाहिए। समाचार पत्रों के कई रद्दी पन्ने, या प्लास्टिक की चादर गद्दे या चटाई पर बिछा दीजिये जिस से वह गीली न हो सके, उस के बाद उस पर साफ चादरें बिछाइये। रक्त सोखने के लिये पुराने गन्दे कपड़ों का प्रयोग कभी न कीजिये।

कई गैलन पानी उबाल कर साफ बरतनों में रख लेना चाहिये। इस में से कुछ पानी साफ चिलमचियों और घड़ों में भर कर ऊपर से एक साफ कपड़ा ढंक दीजिये और ठंडा हो जाने दीजिये। एक छोटी सी मेज कमरे में रखनी चाहिये। इस मेज को खौलते हुए पानी से धो कर जिस-जिस सामान की आवश्यकता हो उसे उस पर रख दीजिये। दो चिलमचियां भी साबुन और गरम पानी से धो कर तैयार रखिये।

प्रसव

प्रसव के दो मुख्य लक्षण हैं। पहला यह कि योनी से लाल पदार्थ बाहर निकलता है और दूसरा यह कि प्रसव पीड़ायें होने लगती हैं। वास्तविक प्रसव पीड़ायें तो १५ मिनिट तक होती हैं और ज्यों-ज्यों प्रसव काल समीप आता जाता है त्यों-त्यों ये जल्दी-जल्दी होने लगती हैं।

अच्छा तो यही होता है कि कोई अच्छी डॉक्टरनी मिल जाए, परन्तु यदि न मिल सके तो किसी ऐसी नर्स को बुलाना चाहिए जिसे बच्चे जनाने का काम आता हो। यदि अच्छी डॉक्टरनी मिल गई तो वह अपने आप हर बात का ध्यान रक्खेगी, परन्तु यदि न मिले तो निम्न अधिसूचनाओं पर चलना चाहिये।

किसी बाहर के आदमी को उस कमरे में नहीं आने देना चाहिए। नर्स या दाई के अतिरिक्त उस कमरे में दो से अधिक व्यक्ति न हों।

प्रसूता को गरम पानी से स्नान करना चाहिये। उस के पेड़ू और उत्पत्ति स्थान के अवयव साबुन और गर्म पानी से अच्छी तरह धोने चाहियें। प्रसव काल में मूत्र जल्दी-जल्दी आना आवश्यक है। यदि पिछले छः या आठ घंटे से टट्टी न हुई हो तो

प्रसूता को गरम पानी का अनिमा देकर उस का पेट साफ करवा देना चाहिये। (अनीमे का प्रयोग करने के लिये देखिये अध्याय २१)।

पहली प्रसव पीड.ा में प्रसूता जैसा मन चाहे बैठी रहे या लेट जाए। जब पीड.ा अधिक तीव्र होने लगे तो प्रसूता को पलंग पर लेट कर टांगें ऊपर को समेट लेनी चाहियें। इस अवसर पर प्रसूता का खड.ा रहना या बैठना हानिकारक होता है। बच्चे को भी साफ रखना असम्भव है।

नर्स या दाई को अपने हाथों और कोहनियों तक बाहें को धो कर साफ रखना बहुत आवश्यक है। बाहें कोहनियों तक नंगी होनी चाहिए। उंगलियों के नाखून कटे हों, किसी चीज से उन के अन्दर का मैल निकाल दिया गया हो। केवल गर्म पानी और साबुन से ही हाथ धोना काफी नहीं। हाथों को छोटे ब्रश से रगड. कर साफ करना चाहिये। नर्स या दाई को साफ-सुथरे कपडे. पहनने चाहियें। एक बड.ा साफ एपरन पहनना लाभदायक है।
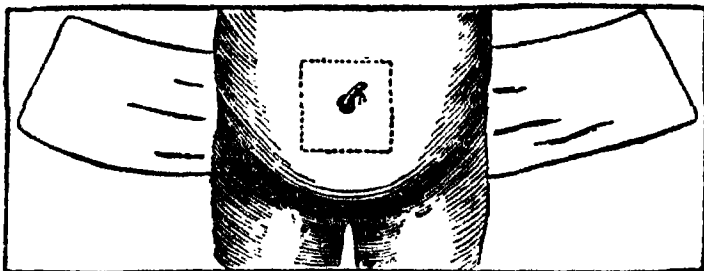
नाल की सुरक्षा का यथोचित उपाय

प्रसव के समय स्त्री को कोई औषधि न दीजिये, यह न सोचिये कि दवा से बच्चा जनते समय मां को सहायता मिलेगी। उसे किसी दवा की आवश्यकता नहीं; वह उस के बिना ही ठीक रहेगी। स्त्री के पेट को रस्सी या पलंग की चादर से न बांधिये। इस से सहायता के बदले बाधा ही होती है। दाई या नर्स को प्रसूता की योनि में उंगली नहीं डालनी चाहिये। ऐसा करने से बहुत सम्भव है कि प्रसूता के अन्दर विष फैल जाए और उसे प्रसूत-ज्वर आने लगे।

जब "पानी की थैली" फटती है तो बच्चे का सिर योनि के मुंह में से निकलता हुआ दिखाई देगा। यदि बच्चे की अवस्था ठीक है तो बच्चे का मुंह नीचे की ओर या मां की पीठ की तरफ होगा और सिर पहले बाहर आएगा। यदि सिर बहुत तीव्रता से निकल आए तो प्रसूता का "शरीर" बुरी तरह चिर जाएगा। इसलिए ज्योंही सिर दिखाई देने लगे त्योंही उस पर उंगलियां जमा लेनी चाहिए और फिर प्रत्येक बार पीड.ा के समय नीचे को दबाना चाहिये। बच्चे का सिर उस की छाती की ओर झुक जाता है जिस से वह योनि में से सुगमता से निकल आता है। सिर का पूरी तरह से बाहर निकलना कुछ मिनिट के लिये रुक जाता है। पीड.ा के बीच-बीच में पेशियों में ढीलापन आता जाता है।

जब यह ढीलापन आरम्भ होने लगे तो सिर को बाहर निकलने देना चाहिये। इस प्रकार से "शरीर" चिरने का भय कम रहता है।

सिर निकलने के पश्चात् शरीर के बाहर निकलने में थोड़ी देर लग जाती है। ज्यों ही सिर बाहर निकल आए त्यों ही बच्चे की गर्दन पर अपनी उंगलियां फेर कर देखिये कि नाल गर्दन में लिपटी हुई है या नहीं? यदि नाल गर्दन में लिपटी हो और उस में सांस न हो तो जल्दी ही बच्चा जना देना चाहिये। यदि नाल गर्दन में न लिपटी हो तो दाई को सोखने वाली रुई या साफ कपड़े के एक टुकड़े से बच्चे की आंखें पोंछ देनी चाहिए और उस का मुंह खोल कर उसे भी साफ कर देना चाहिये।

जब बच्चा पैदा हो चुके तो उसे फलालैन या नरम कपड़े में लपेट दिया जाए। उस के चेहरे पर लगा हुआ खून पोंछ देना चाहिये। दाई को बच्चे की प्रत्येक आंख में दस प्रतिशत आर्जिरल मिले हुए घोल की एक-एक बूंद डाल कर उस की आंखों को साफ कर देना चाहिये। यदि आर्जिरल न हो तो बच्चे की आंखों में बोरिक एसिड के घोल की कुछ बूंदें डालनी चाहियें। हजारों बच्चे इसलिए अन्धे हो जाते हैं कि जन्म के समय उन की आंखें इस प्रकार नहीं धोई जातीं।

बच्चे के उत्पन्न होते ही दाई की सहायता करने वाली स्त्री को अपना एक हाथ प्रसूता के पेट पर रख कर गर्भाशय को पकड़ लेना चाहिये। टटोलने पर गर्भाशय एक कड़ा ढेला सा लगेगा। उसे धीरे-धीरे दबाया जाय। एक क्षण के लिए भी वह वहां से अपना हाथ न हटाए क्योंकि इस प्रकार दबाने से गर्भाशय सिकुड़ता है और रक्त प्रवाह बन्द हो जाता है।
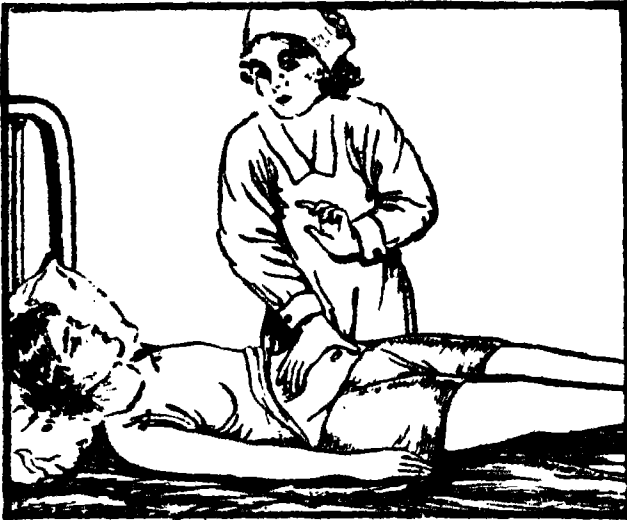
हाथ से दबा कर गर्भाशय को संकोचित करने की एक रीति।

ज्यों ही नाल में धड़कन बन्द हो जाए त्यों ही उसे बांध कर काट देना चाहिये। दो टुकड़ों का प्रयोग इस अवसर पर करना चाहिये। इन दोनों टुकड़ों और नाल को काटने वाली कैंची को पहले एक बरतन में डाल कर अच्छी तरह उबाल लेना चाहिए। जब तक उन की आवश्यकता न पड़े, तब तक उन्हें गरम पानी में ही रहने देना चाहिये। नाल को काट कर अच्छी तरह कस कर बांध देना बहुत आवश्यक है। इस में चूक न कीजिये। न तो कुछ मिनिटों तक पानी में खौलाए बिना किसी यंत्र को नाल काटने के काम में लाना चाहिये और न ही कुछ मिनिटों तक पानी में खौलाए बिना धागे की डोरी का नाल बांधने में प्रयोग करना चाहिये। इन वस्तुओं के न खौलाए जाने से ही शरीर में विषैले कृमि प्रवेश कर जाते हैं और हनुस्तम्भ या जमुहां (Tetanus) या अन्य इस प्रकार के रोग लग जाते हैं।

ज्यों ही नाल कट जाए त्यों ही उसके सिरे पर थोड़ा-सा बोरिक एसिड पाउडर छिड़क देना चाहिये और फिर ठुंठ पर कपड़े का एक टुकड़ा रख दिया जाए। कपड़े का यह टुकड़ा पहले ही से कई मिनट तक पानी में खौला कर तैयार रखना चाहिये। (देखिये परिशिष्ट, उपचार नम्बर ४)। इस कपड़े के छेद में से नाल के ठुंठ को निकाल लिया जाए और फिर कपड़ा उस पर तह कर दिया जाए। इस कपड़े को इसी स्थान पर रखने के लिये बच्चे के शरीर के चारों ओर एक पट्टी लपेट दी जाए और बच्चे को गरम व सूखे स्थान पर दाईं करवट से लिटा कर मां की देख-भाल की जाए। बच्चे के जन्म के थोड़ी देर बाद ही कमल (Placenta) बाहर निकल आता है। नाल के छोर को न खींचिये और उस पर कोई चीज न बांधिये। यह सोचना भूल है कि नाल का फिर मां के पेट में चले जाने और उसे कष्ट पहुंचने का भय रहता है। जो स्त्री गर्भाशय को पकड़े, हो उसे चाहिये कि जोर से दबाए रक्खे। अधिक जोर भी नहीं लगना चाहिये। इस से रक्त का निकलना बन्द हो जाएगा और कमल भी बाहर निकल आएगा।

कमल के निकलते ही १८ इंच चौड़ी एक मोटी सी पट्टी उदर पर कस कर बांध देनी चाहिये और उस के दोनों सिरों में पिनें लगा देनी चाहियें या इन सिरों में सिली हुई डोरियों से बांध देना चाहिये। यह एक चौड़ी पेटी का काम देगी और पेट को दबाए रहेगी।

ज्यों ही बच्चे को साफ कर के कपड़े पहना दिए जाएं त्यों ही साधारण नियम के अनुसार उसे मां की छाती से लिपटा देना चाहिये, क्योंकि जैसे ही वह मां का दूध पीने लगेगा वैसे ही गर्भाशय छोटा हो कर कड़ा हो जाएगा। इस से गर्भाशय से रक्त बहना बन्द हो जाएगा। उदर में पट्टी बांधने से पूर्व सब मैले कपड़े और पलंग का बिस्तरा निकाल लेना आवश्यक है और स्त्री के शरीर के जिस भाग पर खून लग गया हो उसे गरम पानी से धो कर सुखा लेना चाहिये। इस के बाद सोखने वाली ढेर सी रूई या बहुत से कपड़ों की तहें कर के एक गद्दी सी बना कर उत्पत्ति स्थान के अवयवों पर रख दीजिये। इस गद्दी को एक फीते से बांध दीजिये। इस फीते का एक छोर उदर की पट्टी पर सामने हो और दूसरा पीछे और इन छोरों में पिनें लगा देनी चाहियें।

स्त्री को कई दिन तक चुपचाप चारपाई पर लेटे रहना चाहिये। उत्पत्ति-स्थान के अवयवों पर रक्खी गद्दी को जल्दी-जल्दी बदलते रहना चाहिये। इन अवयवों को जल्दी-जल्दी धोना आवश्यक है।
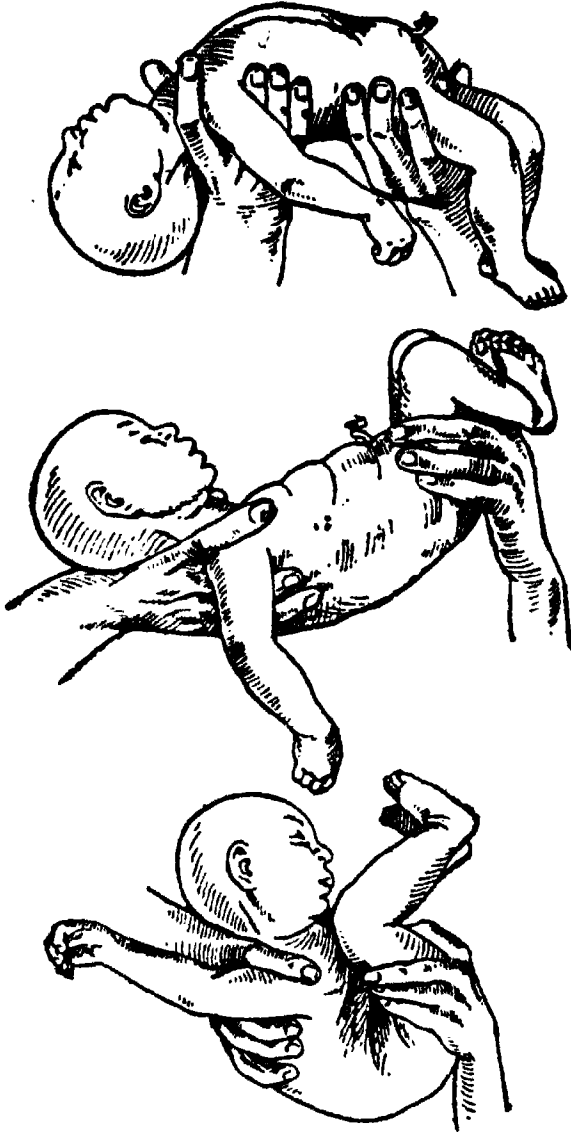
जो बच्चा जन्म लेते ही सांस न लेने लगे, उस के लिए "कृत्रिम श्वसन" की एक विधि। चित्र में दिखाए हुए ढंग से बच्चे को हाथों में पकड़ लीजिये, और धीरे-धीरे उस के शरीर को दोहरा करती जाइये जिस से फेफड़ों में की हवा दब कर बाहर निकल जाए; फिर धीरे-धीरे उस के शरीर को सीधा करती जाइये जिस से हवा फेफड़ों में भरती जाए। इस क्रिया को इसी क्रम से एक मिनट में लगभग दस बार किया जाए।

बच्चे के जन्म के छः सात घंटे पश्चात् स्त्री को पेशाब कराना चाहिये। यदि इतनी देर में उसे पेशाब न लगे तो एक बड़ा सा तौलिया गरम पानी में डुबा कर निचोड़ लिया जाए और फिर उस की कई तहें बना कर पेडू, और उत्पत्ति-स्थान पर रक्खा जाए। बच्चा होने के एक दिन बाद टट्टी भी होनी चाहिये; यदि ऐसा न हो तो रेचक-औषधि देनी चाहिये।

बच्चे के जन्म के पश्चात् मां साधारण भोजन खा सकती है। एक या दो दिन तक ठंडा खाना नहीं खाना चाहिये। मां को अच्छी तरह पका हुआ और चावल, अंडे, दूध, डबलरोटी, आलू, मछली, पके हुए फल आदि पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए।

जब बच्चा श्वास न ले तो क्या करना चाहिये

साधारणतया बच्चा पैदा होते ही, रोने लगता है और सांस लेने लगता है। यदि बच्चा न रोए और न ही सांस ले बल्कि चुपचाप पड़ा रहे या धीरे-धीरे श्वास ले, तो उसे जल्दी ही सांस लेने पर बाध्य करना चाहिये। इस सम्बन्ध में जो भी उपाय किये जा सकते हैं उन्हें शीघ्र ही करना चाहिए। उंगली में एक पतला साफ सा कपड़ा लपेट कर बच्चे के मुंह और गले में डाल कर उसे साफ कीजिये। अंगूठे और उंगली में पतला सा कपड़ा लपेट कर बच्चे की जीभ साफ कीजिये। एक मिनिट में दस बार उस की जीभ धीरे-धीरे खींचिये। जब यह किया जा रहा हो तो दूसरा व्यक्ति बालक के चूतड़ों पर कपड़ा मारे या कपड़े को ठण्डे पानी में भिगो कर बच्चे की छाती पर धीरे-धीरे मारे। इन उपायों से शीघ्र ही उसे श्वास आने लगेगा। ज्योंही बच्चे को श्वास आने लगे, त्योंही कपड़े का एक टुकड़ा सेंक कर बच्चे को उस में लपेट लिया जाए।

यदि ऊपर लिखे उपायों से बच्चे को सांस न आए तो उस की नाल को जल्दी ही काट कर उसे बांध देना चाहिये और "कृत्रिम श्वसन" का प्रयोग किया जाए। पृष्ठ १२१ पर चित्रों द्वारा इस विधि को समझाया गया है। इस विधि में गति अधिक नहीं होनी चाहिये, एक मिनट में दस या बारह बार से अधिक न हो। यह अधिक अच्छा होगा कि एक बरतन में गरम पानी भर लिया जाए। यह बरतन इतना बड़ा हो कि बच्चे को पूरी तरह इस में लिटाया जा सके। पानी का तापमान १०५°F से कम न हो। "कृत्रिम श्वसन" का प्रयोग करते समय बच्चे के शरीर का जितना भाग हो सके उतना इस गरम पानी में डाले रखना चाहिए। शीघ्र ही आशा न छोड़ बैठिए। यदि प्राणों के कुछ भी चिन्ह दिखाई दें, तो इस विधि को आध घंटे या इस से भी अधिक समय तक जारी रखना चाहिये।

प्रसव के समय अधिक रक्त-स्राव

बच्चे के जन्मते समय, ठीक उस के बाद और कमल निकलते समय कुछ रक्त सदा बहता है। परन्तु यह रक्त स्वाभाविक रूप में थोड़ी ही देर तक बहता है अधिक रक्त बहे तो प्रसूता को सर्दी लगने लगती है, उस का मुंह पीला पड़ जाता है और बेहोशी भी होने लगती है।

स्त्री के नितंबों के नचे थोड़ा सा बिस्तर लपेट कर रख दीजिये जिस से नितंब तनिक ऊपर उठ जाएं। गर्भाशय को उदर की भीतों पर से जोर से इस प्रकार पकड़ें कि गर्भाशय सिकुड़ जाए। जब तक रक्त का बहना बन्द न हो जाए, तब तक इसे इसी प्रकार पकड़े रहिये; पकड़ ढीली न होने पाए। ठंडे-से-ठंडे पानी में कपड़े का एक टुकड़ा भिगो कर पेड़ू और जननेंद्रिय पर रख दिया जाए। इसी प्रकार थोड़ी-थोड़ी देर में कपड़े को पानी में भिगो कर उक्त स्थानों पर रखते रहना चाहिये। शीत पा कर रक्त वाहिनियां सिकुड़ जाएंगी और रक्त बहना बन्द हो जाएगा। दो या तीन फिट की ऊंचाई से थोड़ा-थोड़ा पानी आमाशय पर डालिये। बच्चे को एकदम छाती से लगा दीजिये क्योंकि उस के दूध पीना आरम्भ करते ही गर्भाशय सिकुड़ने लगेगा। यदि Ergot (औषध रूप में व्यवहृत राई वृक्ष के छत्रक के बीजाणु) का सत्त मिल सके, तो इस का एक चम्मच पिला दीजिये और फिर तीन-तीन घंटे बाद पिलाते रहिये। इस प्रकार के रक्त-स्राव के पश्चात् स्त्री को कुछ दिन तक चुप-चाप लेटे रहना चाहिये। किसी दशा में भी उसे बैठने या बिस्तरे से बाहर न निकलने दीजिये।

प्रसव के बाद का ज्वर (प्रसूत ज्वर)

बच्चे को जन्म देने के पश्चात् मां को कुछ दिनों तक हल्का-हल्का सा ज्वर रहता है। यह ज्वर खतरनाक नहीं होता और तीन चार दिन से अधिक नहीं रहता। परन्तु जो ज्वर बच्चे के जन्म के तीसरे या चौथे दिन आरम्भ होता है वह गंभीर स्थिति का सूचक होता है। ज्वर के साथ प्रसूता की नाड़ी भी बड़ी तेजी से चलने लगती है (स्वाभाविक रूप से नाड़ी की गति एक मिनिट में ७२ बार होनी चाहिये) आरम्भ में ठंड लगना सम्भव है। आमाशय के निचले भाग में प्राय: थोड़ा दर्द होता है और यदि उस पर कोई दबाव डाला जाए तो पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। सिर दर्द होता है। जब ज्वर आरम्भ होता है, तो प्राय: गर्भाशय से होने वाला स्राव एक या दो दिन के लिये कम हो जाता है।

यदि प्रसव के समय प्रत्येक वस्तु की सफाई पर ध्यान दिया जाए तो यह प्रसूत-ज्वर नहीं होगा, क्योंकि यह ज्वर उन कृमियों के कारण होता है जो दाई के गंदे हाथों या उन गंदे चिथड़ों के द्वारा जो रक्त सोखने के लिए प्रसूता के नीचे और जननेंद्रिय पर रख दिए जाते हैं, गर्भाशय में प्रवेश कर जाते हैं। यदि दाई अपने हाथ या कोई औजार स्त्री की योनि में डाले तो बहुधा गर्भाशय में रोग कृमि प्रवेश कर जाते हैं और इस के परिणाम स्वरूप यह प्रसूत-ज्वर हो जाता है।

यह एक बहुत भयानक बीमारी है। अत: डॉक्टर को बुलाने में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। वह आवश्यकता के अनुसार रोग-कृमि-नाशक औषधियों (Antibiotics) का प्रयोग करेगा।

●●●●●●

अध्याय १९

परिवार नियोजन

◇◇

परिवार-नियोजन एक ऐसा विषय है जो आज संसार में सभी का समान रूप से ध्यान आकर्षित कर रहा है। बहुत से देशों में जहां जन्मवेग धीमा है वहां यह विषय राष्ट्र के लिये बड़े महत्त्व का है ताकि वहां की आबादी जितनी है उतनी ही बनी रहे या अधिक हो जाए। दूसरे देशों में जहां जन्म-वेग बहुत अधिक है वहां राष्ट्र की मितव्ययता के लिये यह आवश्यक है कि वहां की जनसंख्या के पालन-पोषण के लिये जन्मवेग तथा कृषि योग्य भूमि के उत्पादन सामर्थ्य में संतुलन बना रहे। इतिहास साक्षी है कि क्रांति को जन्म देने वाली अधिकांश राजनैतिक उथल-पुथल भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में जनसंख्या की समस्याओं के कारण ही होती हैं।

परिवार-नियोजन का विषय राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु पारिवारिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण है। यहां यह समाज के उन व्यक्तिगत सदस्यों को सर्वाधिक प्रभावित करता है जिन से समाज का निर्माण होता है।

पिछले कुछ ही वर्षों में किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अपराधी वर्ग में से अधिकांश तथा बाल अपराधियों का आश्चर्यजनक रूप से बड़ा प्रतिशत आमतौर पर उन बड़े कुटुम्बों या ऐसे परिवारों से निकलता है जिन में माता-पिता अपनी संतान की भली भांति देख-रेख करने में असमर्थ होते हैं। प्रत्येक स्त्री या पुरुष के समक्ष प्रबल रूप में यह तथ्य उपस्थित कर के उसे दृढ़ विश्वास दिलाया जाए कि उस के लिये अपनी विवेक शक्ति तथा आत्म-नियंत्रण का प्रयोग करते हुए अपने परिवार को इस प्रकार नियोजित करना नितांत आवश्यक है कि इस जगत में लाए जाने वाले बालक सभ्यता के लिये अभिशाप न हो कर वरदान सिद्ध हों।

इस बात को समस्त विश्व में मान्यता प्राप्त है कि मनुष्य मात्र के बीच दो बड़ी शक्तियां कार्य कर रही हैं। हम उन्हें भलाई की शक्ति तथा बुराई की शक्ति कह सकते हैं। या हम उन्हें परमेश्वर का सामर्थ्य तथा शैतान का बल भी कह सकते हैं। जो भी संज्ञा हम इन दोनों शक्तियों को दें, इस बात को सभी लोग मानते हैं कि उन का अस्तित्व अवश्य है, और दोनों एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। विचार करने पर अनुभव हो जाता है कि जब कोई स्त्री और पुरुष बच्चों के लिये उचित भोजन, वस्त्र, शिक्षा की व्यवस्था करने और उन का उत्तरदायित्व-पूर्ण एवं लाभप्रद परिपक्वता के लिये पथ-प्रदर्शन

करने के सामर्थ्य से अधिक बच्चों को जन्म देते हैं, तो वे ऐसे व्यक्तियों की अभिवृद्धि करते हैं जिन से बुराई की सेना का निर्माण होता है।

ऐसे बहुत से स्त्री-पुरुष मिलेंगे जो अपने घर में बच्चों के होने की बड़ी इच्छा रखते हैं, परन्तु कुछ अज्ञात कारणों से उन के घर बच्चों की उपस्थिति से आनंदित नहीं हो पाते। ऐसे लोगों के लिये परिवार-नियोजन की समस्या बहुत ही अधिक महत्त्व रखती है; वे क्या-क्या नहीं कर गुजरते ! परिवार-नियोजन से संबंधित इस समस्या से बड़ा शोक और अकथनीय दुःख उत्पन्न होता है।

कुछ लोगों में गर्भाधान रोकने के विचार पर भी विरोध पाया जाता है। ऐसा विरोध उन लोगों में इस विचारधारा के कारण उत्पन्न होता है कि किसी एक मत अथवा सिद्धांत विशेष का अनुसरण करने वाली जनसंख्या की वृद्धि में रुकावट डालने वाला कोई कार्य न किया जाए। संसार में धार्मिक-राजनैतिक दल हैं जो अपनी सदस्यता की बढ़ोतरी के निमित्त जन संख्या की वृद्धि में विश्वास करते हैं। ऐसे संगठन संख्या की गति को धीमा करने वाले प्रत्येक प्रयत्न का विरोध करेंगे। यद्यपि इस पुस्तक के प्रकाशक किसी को दुःख नहीं पहुंचाना चाहिए तथापि उन का दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार की पुस्तक तब तक पूरी नहीं समझी जा सकती जब तक यह परिवार-नियोजन की समस्या की ओर ध्यान न दे और कुछ ऐसे सुझाव उपस्थित न करे जिन से संतान के सुख से वंचित घरों में भी बच्चों को खिलाने की इच्छा पूरी हो जाए।

कभी-कभी माता का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ जाने से बचाए रखने के कारण भी यह आवश्यक हो जाता है कि बच्चों की संख्या सीमित रक्खी जाए, जिस से उस बेचारी के प्राणों के लाले न पड़ जाएं।

जैसा कि पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है नये रजःस्राव के प्रारम्भ होने से पूर्व पन्द्रहवें दिन डिम्ब मुक्त होता है। यह तथ्य परिवार नियोजन के प्रत्येक रूप का ज्ञान रखने के लिये अत्यंत आवश्यक है। दूसरा मौलिक और याद रखने योग्य सिद्धांत यह है कि, डिम्बाणु उत्पन्न होने के थोड़े ही समय तक अपने अन्दर उत्पादक क्षमता बनाए रख सकता है। तीसरा मौलिक तथ्य यह है कि यद्यपि पुरुष के शुक्रकीट स्त्री की योनी में पड़ने पर आठ दिन तक जीवित या क्रियाशील गति में रहें, परन्तु वे समागम के उपरांत ४८ घंटे से अधिक समय तक डिम्ब को फलोत्पादक बनाने योग्य नहीं रहते। इन तथ्यों से दो दृष्टिकोण उत्पन्न होते हैं: डिम्ब के विषय में यह निष्कर्ष निकलता है कि गर्भाधान केवल अगले रजःस्राव से पन्द्रहवें दिन पूर्व होता है। दूसरा निष्कर्ष शुक्रकीट के विषय में प्राप्त होता है और वह यह कि चूंकि शुक्रकीट केवल ४८ घंटे तक क्रियाशील रहता है इसीलिए डिम्ब की उत्पत्ति से ४८ घंटे या उस से कम समय पूर्व किये गए समागम के फलस्वरूप गर्भ स्थिति हो सकती है। इस प्रकार इस में संदेह नहीं कि अगले प्रटतुदर्शन (रजःस्राव) से पन्द्रहवें, सोलहवें या सत्रहवें दिन पूर्व समागम से गर्भाधान की सम्भावना हो सकती है।

संक्षेप में यूं समझिये कि किसी स्त्री में गर्भस्थापना तब तक नहीं हो सकती जब तक आगामी रजःस्राव से १५, १६ या १७ दिन पूर्व उस के साथ समागम न किया जाए। कुछ अधिकारी ऐसा सुझाव भी दे सकते हैं कि इन दिनों से पूर्व और अन्त में सावधानी

के बजाए एक-एक दिन बढ़ा दिया जाए; अर्थात् अगले रजोदर्शन से पूर्व १४ वें, १५ वें, १६ वें, १७ वें, और १८ वें दिन के समागम से डिम्ब फलोत्पादक हो सकता है।

जीवविज्ञान के इसी सिद्धांत पर परिवार-नियोजन की 'समताल प्रणाली' (Rhythm Method) आधारित है।

परिवार की इच्छा रखने वाले प्रत्येक निस्सन्तान स्त्री-पुरुष को चाहिये कि इस तथ्य से लाभ उठावें और समागम केवल उन्हीं दिनों करें जिन दिनों गर्भाधान के लिये उपयुक्त समय हो और स्त्री में डिम्ब अनुकूल अवस्था में हो। इस प्रकार गर्भस्थिति की अधिक सम्भावना हो सकती है। यदि इस से सफलता न मिले तो पति-पत्नी को चाहिये कि किसी योग्य चिकित्सक द्वारा अपने प्रजनन सम्बन्धी अंगों की सम्यक परीक्षा करवा लें। बांझपन पुरुषों में भी होता है और स्त्रियों में भी। बहुत बार स्त्रियों ही को बांझपन का अपराधी समझा जाता है परन्तु जांच करने पर इस का कारण पुरुषों में ही देखने को मिलता है। संभव है कि पुरुष में पर्याप्त मात्रा में शुक्रकीट उत्पन्न न हो रहे हों और यदि होते भी हों तो कमजोर या दोषपूर्ण शुक्रकीट ही होते हों। कोई शारीरिक कठिनाई भी ऐसी हो सकती है जिस से पति-पत्नी में ठीक प्रकार बीजारोपण न कर सकता हो, इस का भी ध्यान रखना उचित है। यह भी संभावना है कि उस व्यक्ति में किसी रोग का प्रभाव हो जिस का स्वयं उसे पता न हो और यही प्रजनन में बाधा उपस्थित कर रहा हो। इसी प्रकार की संभावनाएं स्त्री में भी हो सकती हैं और और यदि उपरोक्त उपाय सफल न हो सके हो तो पूरी तरह से डॉक्टरी परीक्षा द्वारा कारण स्पष्ट हो जाएगा।

यदि माता-पिता आर्थिक कठिनाइयों के कारण या स्वास्थ्य की दृष्टि से परिवार नियोजन चाहते हों तो उन्हें चाहिये कि ऊपर बताए हुए दिनों में समागम वर्जित कर दें क्योंकि इस सूची में दिये गए दिनों के अतिरिक्त अन्य दिनों में गर्भस्थिति नहीं हो सकती।

अब तुरन्त यह प्रश्न उठता है कि अगला रजोदर्शन कब हो सकता है क्योंकि उपरोक्त निर्देश में कहा गया है कि डिम्बमोचन अगले रज: स्राव से पन्द्रहवें दिन पूर्व होता है।

कुछ स्त्रियां रज:स्राव के चक्र को नियमानुसार पूरा करती हैं और हर २८ वें दिन नियमित रूप से रजस्वला हो जाती हैं। परन्तु यह सभी स्त्रियों पर समान रूप से लागू नहीं हो सकता। प्रयोगों से प्रकट हुआ है कि ९० प्रतिशत स्त्रियों के रजस्वला होने की परिधि महीने में २८ दिन या इस से दो तीन दिन, दोनों दिशाओं में इधर-उधर हुआ करती है। चुनी हुई स्वस्थ स्त्रियों में प्रयोग किये गए हैं और यह पाया गया है कि ९७ उदाहरणों में रजोधर्म का चक्र नियमित था। इस समूह में से २२ प्रतिशत ठीक २८ वें दिन रजस्वला होती थीं, ३९ प्रतिशत हर तीसवें दिन और ११ प्रतिशत हर ३२ वें दिन रजोवती होती थीं। इस प्रकार स्वस्थ स्त्रियों ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि नियमानुसार ऋतुमती होती हैं। शेष २५ प्रतिशत स्त्रियों का रज:स्राव कभी आगे और कभी पीछे होता था परन्तु फिर भी आगे पीछे घटने या बढ़ने की यह अवधि भी नियम से ही चलती थी। केवल ३ प्रतिशत ही, चुनी हुई स्वस्थ स्त्रियां ऐसी निकलीं जिन के रज:स्राव में अधिक अनियमितता पाई गई।

यह एक तथ्य है कि अधिकांश स्त्रियां यह नहीं जानतीं कि रज:स्राव की परीधि कब पूरी होती है। कुछ स्त्रियां कहेंगी कि हमें २८ दिन में रज:स्राव का एक चक्र पूरा कर लेते हैं, परन्तु यदि कई महीनों तक उन का ध्यान पूर्वक निरीक्षण किया जाए तो पता चलेगा कि उन के रजोधर्म का चक्र २७ या २९ में अथवा बारी-बारी से २७, २८ या ३० दिन में पूरा होता है। अतएव प्रत्येक स्त्री को अपने मासिक धर्म के समय का ठीक-ठीक निरीक्षण करना आवश्यक है और यह जानलेना भी बहुत आवश्यक है कि कितने दिन के बाद रज:स्राव हुआ करता है। इस निरीक्षण के परिणामों का लेखा रखना चाहिये और कम-से-कम एक वर्ष तक निरीक्षण जारी रखना चाहिये। ठीक-ठीक प्रकार से ऐसा करने के लिये सम्बद्ध स्त्री को चाहिये कि वह स्वयं अपने रजोधर्म की एक तालिका निम्न रज:स्राव-तालिका के अनुसार नोट-बुक या किसी कागज पर तैयार कर ले।

रज:स्राव-तालिका

पहला खाना रज:स्राव के पहले दिन की तारीख का है। दूसरे रजोधर्म तक ठहरी रहिये और पहले खाने में वह तारीख लिख कर सूची को चालू कर दीजिये। रजस्वला रहने की वास्तविक अवधि इस सम्बंध में कोई महत्व नहीं है। दूसरे रज:स्राव के आरम्भ होने की तिथि नीचे के अगले खाने में अंकित कर दी जाए। इस प्रकार वर्ष भर का लेखा तैयार हो जाएगा।

First Days of Menstrual Cycle	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	32	33
August 1																O														M		
August 31																O														M		
Sept. 30																O														M		
Oct.																																

इस के बाद पीहले रज:स्राव के आरम्भ होने से लेकर दूसरे रज:स्राव तक के दिन गिनने चाहिये। इस में पहले स्राव का पहला दिन शामिल कर लेना चाहिये, परन्तु दूसरे रजोधर्म का पहला दिन नहीं गिनना चाहिये। सूची में उस के नीचे ठीक वर्ग में 'M' अक्षर लिख देना चाहिये। उदाहरण के लिए मान लिया कि मासिक धर्म का पहला दिन अगस्त की पहली तारीख को पड़ता है और दूसरा रजोधर्म ३१ अगस्त को होता है तो पहली अगस्त के बाद ३१ अगस्त के नीचे के निर्धारित खाली वर्ग में 'M' अक्षर वैसा ही लिख देना चाहिये जैसा कि ऊपर की सूची में दिखाया गया है। यदि सारे वर्ष का परिणाम एक ही निकले तो उस स्त्री को पता चल जाएगा कि मेरे मासिक-धर्म का आवर्तन नियमित रूप से ३० दिन का है। यदि इस के विपरीत वह समय २७, २८, २९ या ३१ दिन का निकले और प्रति मास ठीक उतने ही दिनों या समान रूप से बना रहे तो उस का रज:स्राव का आवर्तन 'सामान्य' (Simple menstrual cycle)

कहा जाता है। इसी प्रकार यदि पहिले महीने किसी स्त्री के रज:स्राव के बीच २७ दिन और दूसरे महीने ३० दिन का अन्तर पड़े. और वर्ष पर्यन्त यही क्रम जारी रहे तो उस का "द्विगुणित रज:स्राव आवर्तन" (Double menstrual cycle) कहा जाता है। किसी-किसी स्त्री के "त्रिगुणित आवर्तन" (Triple cycle) या "चतुर्गुण-आवर्तन" (quadruple cycle) भी हो सकते हैं। कुछ ऐसी भी स्त्रियां हैं जिन का रज:स्राव अत्यन्त अनियमित ढंग से होता है।

यह मान लेने पर कि रज:स्राव प्रति तीसवें दिन आरम्भ होता है, यह निश्चय हो जाता है कि डिम्बमोचन भी हर तीसवें दिन होता है, और मासिक-धर्म की उपरोक्त तालिका में 'M' अक्षर अंकित करने के दिन को सम्मिलित करते हुए १५ दिन पूर्व एक शून्य रख देना चाहिये। यह वह दिन अंकित कर देगा जिस दिन डिम्बमोचन होता है। इस प्रकार यदि कोई स्त्री प्रति तीसवें दिन रजस्वला होती है तो उस की रज:स्राव तालिका के अनुसार उस में रजोधर्म के मास की सोलहवीं तारीख को डिम्बमोचन होता है जैसा कि ऊपर दिए गए विवरण से स्पष्ट हो जाता है। (देखिए पृष्ठ १२९) (A) यदि २७ दिन के बाद, रज:स्राव हो, तो उस की तालिका के अनुसार १३वें दिन डिम्बमोचन हुआ। (B) इसी नियम से यदि वह स्त्री ३२ दिन के बाद रजस्वला होती है तो १८ वें दिन पूर्व उस में डिम्बमोचन होता है। (C) यदि ३१ ता. को रज:स्राव हुआ तो निम्नलिखित सूची के अनुसार उस में १७ वीं ता. को डिम्बमोचन हुआ होगा।

अब हम इस सारी समस्या के वास्तविक कठिन प्रसंग पर पहुंचते हैं। कोई भी पाठक इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि यह निर्णय करना बड़ा कठिन कार्य है कि जिस स्त्री में द्विगुणित या बहुगुणित 'रज:स्राव आवर्तन' (Double or Multiple menstrual cycle) होते हैं उन में डिम्बमोचन कब होता है।

फिर भी यदि उस स्त्री को पता हो कि मेरे रज:स्राव के दिनों का अधिकतम अन्तर ३० दिन और न्यूनतम अन्तर २६ दिन रहता हो और यदि उस ने एक वर्ष तक इस का ठीक-ठीक ब्योरा रक्खा हो (देखिये सूची D), तो वह अपने गर्भबीज प्रकट होने की तारीख निम्न प्रकार मालूम कर सकती है। मेरा पिछला रज:स्राव २९ जुलाई को प्रारम्भ हुआ। यदि मेरा अगला चक्र अधिकतम ३० दिन का हुआ तो मेरे अगले रज:स्राव का दिन २८ अगस्त और डिम्बमोचन का दिन १३ अगस्त होगा। अस्तु, यदि मेरा आगामी चक्र न्यूनतम २६ दिन का हुआ तो अगला रज:स्राव का दिन २४ अगस्त होना चाहिये और इस दशा में डिम्बमोचन का दिन ९ अगस्त होना चाहिये। अतएव मेरे गर्भबीज उदय होने का दिन नौ और १३ अगस्त के बीच पड़ना चाहिये। निश्चय ही यदि उस स्त्री का दैनिक अंतर प्रस्तुत उदाहरण से अधिक हो तो अपने तर्क में उसे भी स्थान देना चाहिए।

जो कुछ कहा गया है उस से स्पष्ट है कि जिन स्त्रियों के रज:स्राव का एक ही सामान्य चक्र (Simple menstrual cycle) होता है, वे अपने डिम्बमोचन का दिन ठीक-ठीक गिन सकती हैं। जिन के दो या अधिक चक्र होते हैं वे केवल उस अवधि का हिसाब लगा सकती हैं जिस में डिम्बमोचन होता है। अधिकतम तथा न्यूनतम दिनों वाले चक्रों (Maximum and minimum cycles) के बीच का अंतर कम हो तो हिसाब भी ठीक प्रकार लगाया जा सकता है। यदि इन के बीच का अंतर अधिक हो तो कम परिशुद्धता होगी। अस्तु,

	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	32	33
A												O														M						
B																	O														M	
C																O														M		
D											O				O										M				M			

यदि कोई दम्पत्ति संतान के अत्यंत इच्छ,क हों, तो उन के लिये गर्भबीज तालिका बना कर उस का ठीक-ठीक अनुसरण करना नितांत आवश्यक है। अतएव एक और उदाहरण लीजिये।

मान लिया किसी स्त्री (E) ने एक वर्ष तक बड.ी सावधानी से तालिका बना कर रख छोड.ी हो और उस ने पता लगाया हो कि मेरे रज:स्राव का चतुर्गुण चक्र (quadruple cycle) है जिन में २५, २९, ३० और ३३ दिन के चक्र हैं। मान लिया कि उस का पिछला रज:स्राव १ अप्रैल को हुआ। अब वह पता लगाना चाहती है कि आगे अगली बार डिम्बमोचन कब होगा। जो कुछ अभी तक कहा जा चुका है उस से वह जानती है कि मेरे संबंध में अधिकतम और न्यूनतम दिनों के चक्र ही अधिक महत्त्व के हैं। अर्थात् २५ और ३३ दिन के चक्रों से वह हिसाब लगा सकती है। अत: वह इस प्रकार विचार करेगी: "मेरा रजोधर्म पहली अप्रैल को आरम्भ हुआ था। मेरा सब से छोटा चक्र २५ दिन का है। संभव है मेरा रज:स्राव का दिन २० तारीख को पडे. और इस हालत में १२ वीं तारीख को डिम्बमोचन होना चाहिये; परन्तु चूंकि मेरा चक्र परिवर्तनशील है, अत: मेरा वर्तमान चक्र (cycle) संभवत: ३३ दिन का हो जो प्रत्यक्ष रूप से मेरा सब से बड.ा चक्र है। ऐसी दशा में मेरा आगामी रज:स्राव ४ मई को आरम्भ हो सकता है और तदनुसार बीस अप्रैल को डिम्बमोचन होना चाहिये।" इस प्रकार उसे निश्चय हो सकता है कि डिम्बमोचन १२ और २० और अप्रैल के बीच होगा। अब यदि उसे संतान की बड.ी अभिलाषा है तो उसे और उस के पति को निम्न लिखित तालिका के अनुसार १० और २० अप्रैल के बीच की तिथियों में समागम की योजना बनानी चाहिये। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि अभी बताए हुये चक्र (cycle) के अंतर वाली स्त्री के पास एक महीने में १३ दिन की अवधि गर्भधारण करने की हो सकती है जब कि दूसरी स्त्री (F) जिस का केवल एक ही सामान्य रज:स्राव चक्र (Simple menstrual cycle) है, महीने में केवल ५ ही दिन तक गर्भधारण करने योग्य हो सकती है। सन्तान की इच्छा रखने वाले लोगों को चाहिए कि केवल उन्हीं दिनों समागम करें जिन दिनों स्त्री में गर्भधारण की योग्यता हो।

अस्तु, यह याद रखना आवश्यक है कि मासिक धर्म के चक्र में निश्चित तौर से शारीरिक चोटों, शल्य चिकित्साओं, बीमारियों, बुखारों और गंभीर प्रकार की मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल के कारण उलट-फेर हो सकता है, और उन पति-पत्नि को जो "समताल प्रणाली" (Rhythm method) के आश्रित रहते हैं, यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसी अवस्थाओं में रज:स्राव और उसी के अनुसार डिम्बमोचन का समय भी गलत ढंग से बदल सकता है। अतएव ऐसी अवस्था में नियमित रूप से रज:स्राव चक्र के लौटने तक कोई
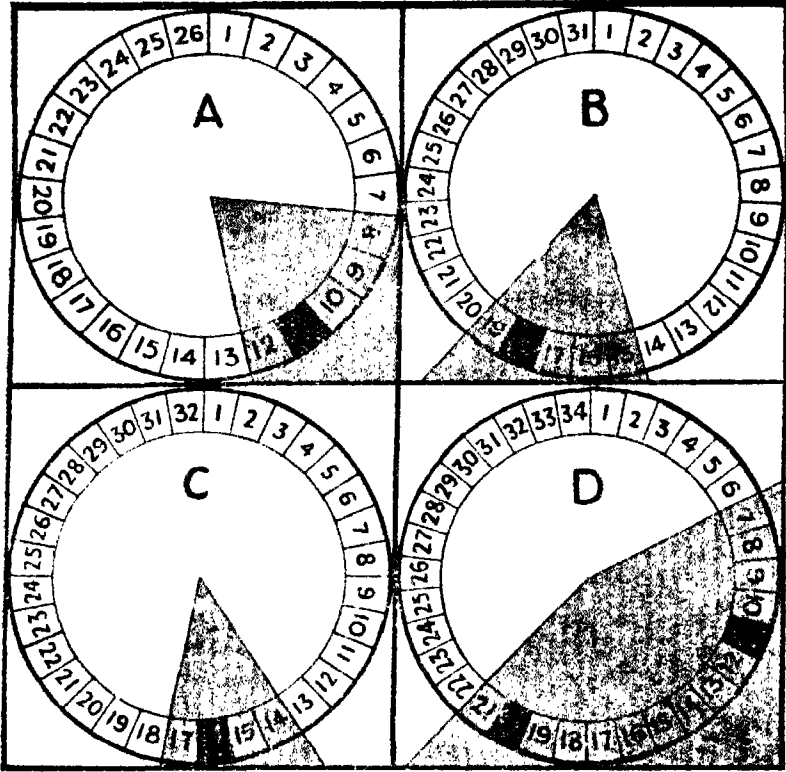
डिम्बमोचन सम्बन्धी तालिकाएं

A. २६ दिन का चक्र
B. ३१ दिन का चक्र
C. ३२ दिन का चक्र
D. परिवर्तनशील चक्र (२६ से ३४ दिन तक)

तालिका में जिन तिथियों पर "स्याही फेर दी गई है" वे, वे तिथियां हैं जिन को २६ और ३४ दिन के अन्दर हेर-फेर कर के रजस्वला होने वाली स्त्री में डिम्बमोचन होगा। विदित तिथियों के बीच किसी अन्य तिथि को भी डिम्बमोचन हो सकता है।

डिम्बमोचन की तिथि पर स्याही फेर दी गई है। जिन तिथियों पर हल्की स्याही फेरी गई है उन को गर्भधान की अधिक सम्भावना रहती है। प्रत्येक दशा में, पहला, और तीसरा दिन ही रज:स्राव का दिन है।

ऐसा आधार नहीं है जिस के अनुसार डिम्बमोचन के दिनों का पक्का निर्णय किया जा सके। ऊपर बताये हुए कारणों के अतिरिक्त खेलों आदि से सम्बन्धित कठिन शारीरिक परिश्रम, भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु में लम्बी यात्रायें, पर्वतारोहण इत्यादि भी शामिल किये जा सकते हैं। यदि रज:स्राव-चक्र के पूर्वार्द्ध में कोई ऐसी घटना घटित हो जाए तो डिम्बमोचन में विलम्ब हो जाता है। यदि यह घटना उत्तरार्द्ध में हो तो रज:स्राव समय से पूर्व ही हो सकता है।

पति-पत्नी को यह भी जान लेना चाहिए कि रज:स्राव का चक्र विवाह के बाद बदल भी सकता है और नहीं भी बदल सकता। बच्चे को जन्म देने के बाद भी यह बदल सकता है, परन्तु जरूरी नहीं कि बदल ही जाए। कभी-कभी बच्चे के जन्म के उपरांत प्रारम्भ में रज:स्राव-चक्र बहुत लम्बे होते हैं, परन्तु क्रमशः अपनी सामान्य अवस्था को लौट आते हैं। अतएव रजोधर्म के आवर्तन चक्रों (menstrual cycles) के स्वभाव को समझने के लिए बच्चे के जन्म के बाद कम-से-कम चार चक्करों का ध्यान से अवलोकन करना चाहिए क्योंकि गर्भाधान के दिनों का ठीक-ठीक हिसाब लगाने के लिए इस की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। यदि प्रसव के बाद रज:स्राव के चक्रों का समय गर्भावस्था से पूर्व की ही भांति रहे तो वह स्त्री अपनी पहली बनाई हुई डिम्बमो-

	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	32	33	34	35
E											O								O						M								M	
F													O														M							

चन की सूची का विश्वास के साथ प्रयोग कर सकती है। परन्तु यदि उसके चक्र आगे-पीछे, कभी छोटे कभी बड़े, हों, जिस से यह प्रकट हो कि कभी उस के डिम्बाशय अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के योग नहीं हुए, तो उसे चाहिए कि जब तक उसके चक्र अपनी पुरानी अवस्था को न प्राप्त हो जाएं, या जब तक नए चक्र (cycle) का निर्धारण न हो जाए, तब तक प्रतीक्षा करे।

इन विषयों में किसी भी स्त्री को अपनी स्मृति के भरोसे नहीं रहना चाहिए। यहां पर बताई गई प्रणाली का बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयोग करने का संभव रीति यही है कि सम्बद्ध स्त्री, सुझाए हुए ढंग के अनुसार अपनी तालिका बिल्कुल सही ढंग से बना ले।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हाल ही में एक बड़ी संख्या में जिन स्त्रियों का अध्ययन किया गया उन में से बहुत सी ऐसी थीं जो कि अपने रज:स्राव चक्र के किसी भी दिन गर्भधारण कर सकती थीं। अस्तु, जैसा कि इस अध्याय के पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, सन्तान की उत्कट अभिलाषा रखने वाले लोगों को चाहिए कि महीने भर स्त्री-प्रसंग पर रोक लगाकर उसे केवल उन्हीं दिनों के लिए सीमित कर दें जिन दिनों पत्नी में गर्भाधान की संभावना अधिक होती हो।

◇◇◇◇◇◇

अध्याय २०

छोटे बच्चों की देख-रेख

◇◇

एक सम्प्रदाय में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक सौ बच्चों में से पचहत्तर एक वर्ष की आयु को पहुंचने से पूर्व ही मर जाते हैं। उस सम्प्रदाय के पड़ोसी सम्प्रदाय में उत्पन्न होने वाले प्रत्येक सौ बच्चों में से केवल पांच ही एक वर्ष की आयु को पहुंचने से पूर्व मरते हैं। इन दो सम्प्रदायों के बच्चों की मृत्यु-संख्या में इतना भारी अन्तर होने का कारण यह है कि एक में माता-पिता अपने बच्चों की उचित देख-रेख नहीं करते, परन्तु दूसरे में बच्चों की देख-भाल उचित रीति से की जाती है। एशियाई देशों में तो यह हाल है कि बहुत से शिशु बारह महीने के हो नहीं पाते कि मर जाते हैं। समाज को पहुंचने वाली इस भयंकर हानि को रोका जा सकता है, क्योंकि इस का कारण है बच्चे के जन्म के समय सफाई न रखना, कुछ ही महीने के शिशु को ठोस खाद्य-पदार्थ—विशेषकर मांस, कच्चे खरबूजे-तरबूज, तरकारियां आदि खिलाना, ऐसी वस्तुएं खिलाना जिन पर मक्खियां रोग-कृमि छोड़ गई हों जब भी बच्चा रोए तभी खाने को दे देना और बच्चे को गंदी चीजें मुंह में डालने से न रोकना। चूंकि इस बढ़ती हुई शिशु-मृत्यु को बहुत हद तक रोका जा सकता है, इसीलिए माता-पिता को बच्चों की देख-रेख के विषय पर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिये।

प्रसम बालक

जन्म के समय प्रसम (Normal) बालक का भार ३ सेर से लेकर ४ सेर तक होना चाहिये। जन्म के पश्चात् एक सप्ताह तक बच्चे के भार में कोई वृद्धि नहीं होती। पहले छः महीने में बच्चे के भार में औसत वृद्धि प्रति सप्ताह ४ आउंस के हिसाब से होनी चाहिये। इस के पश्चात् अगले छः महीने में यह औसत वृद्धि ४ आउंस से कुछ कम होती है। दूसरे वर्ष बच्चे का भार कोई ३ सेर बढ़ जाना चाहिये।

दांत निकलने का समय अध्याय ५ में बताया जा चुका है।

दस महीने के बच्चे को टांगों के बल खड़ा होना चाहिये; और बारह महीने का होने पर थोड़ा-थोड़ा चलने भी लगना चाहिए।

जब बच्चा पैदा होता है तो उस की खोपड़ी में दो कोमल स्थान (Fontanels) होते हैं, एक ठीक माथे के ऊपर और दूसरा पीछे खोपड़ी में। पीछे का स्थान लगभग
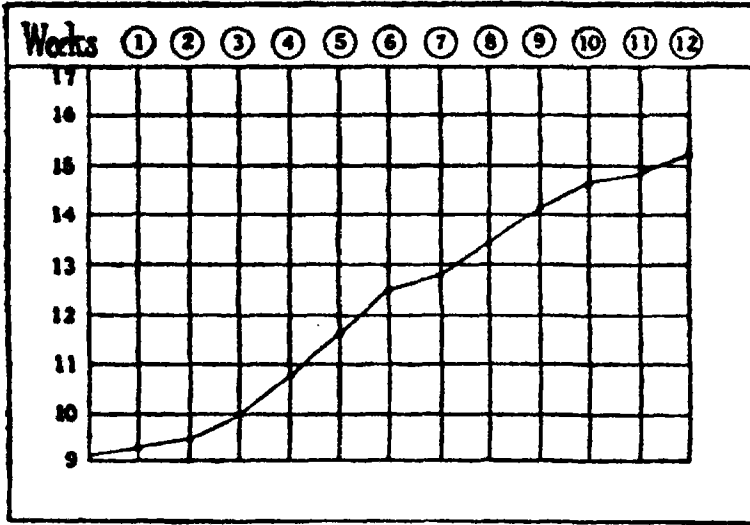
बालक के प्रथम बारह सप्ताहों का प्रसव भार सम्बन्धी रेखा-चित्र

दूसरे महीने के बाद बन्द हो जाता है और आगे का लगभग अट्ठारहवें महीने के अन्त में बन्द होता है। यदि इन दोनों कोमल स्थानों (Fontanels) में से कोई-सा दो साल के बाद भी रहे तो उस का कारण यह होता है कि या बच्चे को उचित भोजन नहीं मिल सका है या फिर सूखे का रोग (Rickets) हो गया है।

बच्चे का बार-बार रोना स्वाभाविक है, अत: मां को उसे जब वह रोए तभी दूध पिलाने की आदत नहीं डालनी चाहिए।

बच्चे की देख-भाल

प्रत्येक बच्चे के तीन महीने की आयु से पहले ही शीतला का टीका लगवा देना चाहिये। यदि आस-पास शीतला फैल रही हो तो बच्चे के जन्म के पश्चात् एक या दो सप्ताह में ही उस के यह टीका लगा देना चाहिये (देखिये अध्याय २४)। झिल्लीक-प्रदाह (Diptheria) हनुस्तम्भ या जमुहा (Tetanus), कुकर-खांसी तथा शीतल से सुरक्षित रखने के लिये, छ: या आठ महीने का होने से पहले-ही-पहले बालक के टीके लगवा देने चाहियें।

जीवन के प्रथम सप्ताहों में शिशु का अधिकांश समय सोते व्यतीत होता है। बालक के लिए आरामदह बिस्तर तैयार कर लेना चाहिये। बांस की लम्बी सी टोकरी में बिस्तर लगाने से बालक को बड़ा आराम मिलता है। इस के ऊपर मच्छरदानी डाल देनी चाहिये
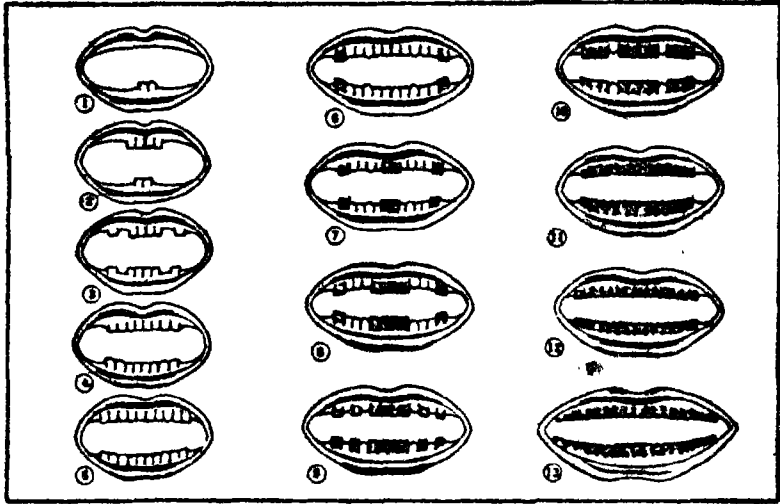
बालक के दंतोद्भेद से सम्बन्धित रेखा-चित्र। चित्र में जिन दांतों पर स्याही फेर दी गई है, वे स्थायी दांत हैं।

१. छः से आठ महीने तक के दांत। २. आठ से दस महीने तक के दांत। ३. बारह से चौदह महीने तक के दांत। ४. अट्ठारह से बीस महीने तक के दांत। ५. अट्ठाईस से बत्तीस महीने तक के दांत ६. छः वर्ष की अवस्था में। ७. सात वर्ष की अवस्था में। ८. आठ वर्ष की अवसथा में। ९. नौ वर्ष की अवस्था में। १० दस वर्ष की अवस्था में ११. ग्यारह वर्ष की अवस्था में। १२. बारह वर्ष की अवस्था में। सत्राह से पच्चीस वर्ष की अवस्था में।

जिस से मक्खियां बच्चे की आंखों और मुंह पर न बैठ सकें। मक्खियों से आंखें दुखने लगती हैं और बच्चे की त्वचा पर छोटी-छोटी फुंसियां निकलने लगती हैं। इस से बच्चों को दस्त लग जाते हैं। जब बच्चा सो रहा हो तो उस का सिर न ढांकिए। बच्चे को अधिक मात्रा में ताजा हवा की आवश्यकता होती है; अतः जिस कमरे में वह सोता हो उस के दरवाजे या खिड़कियों पर परदे नहीं डालने चाहियें, बल्कि खिड़कियां खुली रखिये या उस का बिस्तर बाहर छाया में ऐसे स्थान पर लगा दीजिये जहां वह धूप से बचा रहे।

बालक को प्रतिदिन नहला कर साफ रखना चाहिए।

पयाल या बांस की चटाई फर्श पर बिछा कर बच्चे को उस पर लिटा दीजिये। यदि बच्चे की आयु सात-आठ महीने की हो, तो वह वहां से खिसक कर फर्श पर आ जाएगा, अतः एक छोटा-सा कठघरा (Pen) बनवा लीजिये और उसे चटाई पर रख दीजिए और बच्चे को उस के अन्दर छोड़ दीजिये।

बालक को नहलाना। बालक को हाथों में पकड़ने के ढंग को ध्यानपूर्वक देखिए।

बच्चे को चुसनी (Comforter) न दीजिये। जब बच्चा पांच या छः महीने का हो और उस के दांत निकल रहे हों, तो उस के मुंह में चम्मच या ऐसी ही कोई सख्त चीज चबाने को दीजिये या चीज कुछ ही क्यों न हो, परन्तु यह आवश्यक है कि बालक के मुंह में देने से पूर्व कई बार खौलते हुए पानी में साफ कर ली जाए।

पोतड़ों के लिए साफ कपड़ों का उपयोग कीजिये। गन्दे कपड़ों में न केवल दुर्गन्ध ही होती है, वरन् उन से बच्चे के मूत्र-स्थान के अवयवों में खुजली होने लगती है।

लड़का हो तो उस की नूनी के सामने की चमड़ी को समय-समय पर पीछे खिसका कर साफ करना आवश्यक है। यदि चमड़ी पीछे न खिसकाई जा सके तो बच्चे को किसी योग्य डॉक्टर के पास ले जाकर चमड़ी को फैलवा दीजिए जिस से वह खिसक सके। लड़की के मूत्र-स्थान के ओठों और दरार का भी ध्यान रखना चाहिये और उन्हें समय-समय पर धोना चाहिये।

जब बच्चे को कपड़े पहनाए जाएं तो उस के नितम्बों और मूत्र-स्थान के अवयवों को ढंका रहना चाहिये। बच्चों को नंगे फिरने देना या ऐसे वस्त्र पहनाना कि उस के नितम्ब या मूत्र-स्थान के अवयव दिखाई देते रहें, अच्छा नहीं है।

बच्चे का खान-पान

प्रत्येक बालक के लिए अपनी माता का दूध ही सर्वोत्तम आहार होता है, परन्तु दूध पिलाने-वाली माता का स्वास्थ्य अच्छा होना अत्यावश्यक है; अतः माता को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिये—पर्याप्त विश्राम करना चाहिये, पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिये, प्रतिदिन खुली हवा में घूमना-फिरना चाहिये; माता का आहार पुष्टिकर तथा सुसंतुलित होना चाहिये; उस में दूध हो, ताजे फल हों, तरकारियां हों, और मोटे आटे की रोटी। दाल के साथ हरे-पत्ते वाली तरकारियों का उपयोग करना चाहिये जिस से माता को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन (Protein) मिल सके। पॉलिश किए हुए अन्न में पोषक तत्व बहुत कम हो जाते हैं; इसीलिए जहां-जहां मुख्य भोजन

चावल हो, वहां दूध पिलाने-वाली माता के आहार में अन्य अन्न—जैसे गेहूं ... भी सम्मिलित होना चाहिये। कुछ स्थानों में यह प्रथा है कि बच्चे के जन्म के पश्चात् माता का आहार सीमित कर दिया जाता है जिस का परिणाम यह होता है कि पहले दो-तीन महीने उसे बहुत ही कम प्रोटीन मिलता है। यह बहुत बुरी प्रथा है और इस के परिणाम स्वरूप बाल-मृत्यु की संख्या में वृद्धि होती है।

दूध पिलाने वाली माता को पान-सुपारी, तम्बाकू (पीने का हो या खाने का) और किसी प्रकार की मदिरा का सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि दूध द्वारा इन पदार्थों के हानिकारक तत्व बच्चे के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। निकोटीन (Nicotine) जो तम्बाकू में होती है, बच्चे के हृदय और मस्तिष्क को दुर्बल कर देती है और शरीर के विकास में बाधक सिद्ध होती है। मदिरा के सेवन से केन्द्रीय चेता-संस्थान को क्षति पहुंचती है। चाय और कॉफी में भी ऐसे ही तत्व पाए जाते हैं जिन से माता को बड़ी हानि पहुंचती है।

औसत वजन के नवजात शिशु को चार-चार घंटे बाद स्तन-पान कराना चाहिये। स्तन-पान कराते समय दस-दस मिनट के बाद छातियां बदलते रहना अच्छा होता है। जो बच्चा अपने समय से बहुत पहले पैदा हो गया हो, उसे दो-दो घंटे बाद ड्रॉपर (Dropper) से दूध पिलाना चाहिये और अन्य छोटे और कमजोर बच्चों को तीन-तीन घंटे बाद। जब बच्चे को छः बजे, दस बजे, दो बजे; छः बजे, दस बजे, दो बजे दूध पिलाने का नियम बना हो, तो प्रायः तीन महीने तक उसे दो बजे रात को दूध पिलाना पड़ता है; परन्तु जितनी जल्दी हो सके यह रात को दो बजे दूध-पिलाना बन्द कर दिया जाए जिस से बच्चे और माता दोनों ही को बिना किसी विघ्न के आराम मिल सके। जिस बच्चे को तीन-तीन घंटे बाद दूध पिलाया जा रहा हो, उस के शरीर का प्रसम विकास और प्रसम भार हो जाने पर तुरन्त ही चार-चार घंटे बाद दूध पिलाने का नियम बनाया जाता है। आठ महीने के बाद और साल भर का होते-होते बच्चों को दस बजे रात को दूध पिलाना बन्द कर दिया जाता है और फिर दो वर्ष का होने तक चार बार दूध पिलाने का नियम बना लिया जाता है। माता को यह आदत बना लेनी चाहिये कि हर बार दूध पिला चुकने के बाद बच्चे को सीधा कर के थोड़ी सी देर तक अपने कंधे से लगाए रक्खे, ताकि पेट में से हवा निकल जाए या बच्चा डकार ले ले।

दूध पिलाने के नियमित समयों के बीच-बीच में बच्चे को खौला हुआ पानी जरा गर्म कर के पिलाना चाहिये। पानी पिलाने की सर्वोत्तम रीति यह है कि चुसनी-वाली शीशी का प्रयोग किया जाए; परन्तु यदि बालक बहुत छोटा हो तो ड्रॉपर (Dropper) या छोटे चम्मच से भी पिलाया जा सकता है।

दो सप्ताह का होते-होते बच्चे को किसी भी छाप का—विशेषकर बच्चों के लिए व्यापारिक ढंग से सारकृत रूप में तैयार किया हुआ—मछली का तेल देना चाहिये। अधिसूचना (Directions) के अनुसार दिन में एक बार उस के मुंह में चार से छः बूंदें डालनी चाहिये। लगभग इस समय से मीठे संतरों का रस भी देना आरम्भ कर देना चाहिये; पहले, खौले हुए पानी के साथ मिला कर दूध पिलाने के नियमित समयों के बीच में देना चाहिए। पहले तीन महीने तक कोई एक छटांक भर दिया जाए और इस के बाद दो-दो छटांक—अवस्था के साथ-साथ इस की मात्रा भी बढ़ती रहनी चाहिये। परन्तु शिशु को पेचिश

(Dysentery) से बचाए रखने के हेतु यह परमावश्यक है कि हाथों, संतरों और बरतनों की सफाई पर ध्यान रक्खा जाए।

दूसरे या तीसरे महीने से शिशु को खूब पका हुआ केला, अच्छी तरह कुचल कर या फेंट कर देना चाहिये। पहले-पहल, प्रति दिन, दूध पिलाना आरम्भ करने से पूर्व, एक-दो बार, जरा सा चखा देना चाहिये, और फिर धीरे-धीरे इस की मात्रा बढ़ती जानी चाहिये।

तीसरे या चौथे महीने से बच्चे के आहार अंडे की जर्दी (पीला भाग) भी सम्मिलित कर लेनी चाहिये। अंडे को उबाल कर सख्त कर लिया जाए, और फिर उस के पीले-भाग को थोड़े से दूध या घर पर बनाए हुए दूध* में मिला कर लेई जैसी बना लीजिये। यह इस प्रकार आरम्भ कीजिये कि जब बच्चा भूखा हो, तो दूध पिलाने से पूर्व जरा सा चटा दीजिए। जब तक कि बच्चा पूरे बारह महीने का न हो जाए, तब तक उसे अंडे की सफेदी (सफेद भाग) नहीं देनी चाहिये। जब भी कोई नया पदार्थ खिलाना आरम्भ करना हो, तो पहले बच्चे को उस के स्वाद का अभ्यस्त कर लीजिए। तीसरे या चौथे महीने से अच्छी तरह पकाए हुए अन्न पदार्थ भी देना आरम्भ कर देना चाहिये। व्यापारिक ढंग से तैयार किये हुए अन्न-पदार्थ के प्रयोग में आसानी रहती है क्योंकि उसे या तो बहुत ही कम या बिल्कुल नहीं पकाना पड़ता। वैसे घंटे भर या इस से अधिक समय तक पका कर गेहूं या बिना पॉलिश के चावलों के अच्छी तरह छने हुए आटे की लप्सी बनाई जा सकती है।

चार महीने का होने पर बच्चे को तरकारियां भी खिलानी आरम्भ कर देनी चाहियें। खूब पका कर और खूब कुचल कर गाजर, हरे पत्तेदार तरकारियां, सीताफल, हरी बीन और मटर आदि एक-एक कर के खिलाना आरम्भ करना चाहिये; पहले जरा सा चटा देना चाहिये और फिर धीरे-धीरे मात्रा छटांक भर तक पहुंच जानी चाहिये। इस प्रकार चौथे या पांचवें महीने से खूब पका कर और कुचल कर या छान कर सेब, आड़ू, खुबानी, अमरूद और आम जैसे फल भी खिलाना आरम्भ कर देना चाहिए। छटे या सातवें महीने से प्राकृतिक रूप से पके हुए अर्थात् बिना आग पर पकाए हुए फल और टमाटर भी बच्चे के आहार में सम्मिलित कर लेने चाहियें; परन्तु इन के बीज, छिलके और कड़ा भाग बड़ी सावधानी से अलग कर दिया जाए।

इस प्रकार छः और आठ महीने के बीच बच्चे का खान-पान निम्न नियम, मात्रा और समय के अनुसार होना चाहियें :—

६ या ७ बजे सवेरे — एक अंडे की जर्दी (पीला भाग); कुचला हुआ केला १-२ आउंस; दूध ७-८ आउंस या स्तन-पान

८ या ९ बजे — संतरे का रस ४ आउंस; विटैमिन A और D के सारकृत द्रव (Concentrate) की ६ से ९ बूंदें तक बच्चे की जीभ पर डाल देनी चाहियें।

---

*बच्चे के लिए घर पर दूध बनाने की विधि आदि पृष्ठ १३९ पर विस्तारपूर्वक समझाई गई है। इसे अंग्रेजी में "फॉर्मूला" कहते हैं।

१० या ११ बजे सवेरे — पका हुआ दलिया आदि १-२ आउंस; आग पर पकाया हुआ कोई फल १-२ आउंस; दूध ७-८ आउंस या स्तन-पान।
२ या ३ बजे तीसरे पहर — पका कर चुचली हुई कोई तरकारी (सब्जी) १-२ आउंस; दूध ७-८ आउंस या स्तन-पान।
६ या ७ बजे सायंकाल — पक्का और कुचला हुआ केला १-२ आउंस; दूध ७-८ आउंस या स्तन-पान।
१० या ११ बजे रात को — दूध ७-८ आउंस या स्तन-पान।

जब बच्चा नौ से बारह महीने तक का हो जाए, तो उसे अन्य ऐसी वस्तुएं भी देनी चाहियें जिन्हें वह चचोड़ या चबा सके—जैसे बिना मक्खन का सख्त टोस्ट या कुरकुरे रस्क, बिस्कुट आदि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में आलू, चावल, दाल का 'सूप' और दही भी देना चाहिये। अच्छा होगा कि बच्चों को आइसक्रीम, केक-मिठाइयों या शीरे आदि का चस्का न डाला जाए। खान-पान के नियमित समयों के बीच कुछ न खिलाया जाए। जब तक बच्चे के पूरे दांत न निकल आएं, तब तक हरी मकई (Green Corn), खीरा-ककड़ी, मूली और गिरियां आदि कोई वस्तु नहीं देनी चाहियें। तले हुए पदार्थ, मांस का शोरबा, और केक-मिठाइयां बच्चे के लिए अपचनीय सिद्ध होती हैं। मिर्च-मसाले पेट में जलन पैदा कर देते हैं, यद्यपि बहुत से देशों में सुअर के मांस, मछली या मांस को बच्चे के लिए अच्छा बताया जाता है, परन्तु वास्तव में ये पदार्थ उस के लिए अच्छे नहीं होते। दो साल या इस से अधिक अवस्था का बच्चा यदि पूरी मात्रा में दूध पी रहा हो, तो दाल और हरे पत्ते वाली तरकारियों का प्रयोग करने से 'प्रोटीन' की पूर्ण मात्रा प्राप्त हो सकती है।

अरंडी का तेल (Castor Oil) न तो स्वस्थ बच्चे के लिये अच्छा होता है और न अस्वस्थ के लिये। पारा मिला कर तैयार किए हुए पदार्थ (Mercury preparations) विषैले होते हैं, इसीलिए न तो दूध पिलाने वाली माता को दिए जाएं और न शिशु को। यदि तीन दिन तक बच्चे को टट्टी न हो, तो किसी प्रशिक्षित नर्स या डॉक्टरनी से हल्की सी पिचकारी (अनिमा) लगवा देनी चाहिए, या फिर वह कब्ज दूर करने वाला मिल्क ऑफ मैगनीशिया (Milk of Magnesia) जैसा कोई द्रव बताएगी। साधारणतया यदि बच्चे को नियमानुसार खिलाया जाए और पर्याप्त मात्रा में पानी पिलाया जाए, तो कब्ज की शिकायत होती ही नहीं।

ऊपरी दूध

यदि माता किसी कारणवश नवजात शिशु को अपना दूध न पिला सके, तो बनाया हुआ दूध अर्थात् ऊपरी दूध शीशी द्वारा देना चाहिये। दूध पिलाने वाली धाय या किसी ऐसी स्वस्थ स्त्री का प्रबन्ध करना चाहिये जिस के स्तनों में उस ने अपने बच्चे की आवश्यकता से अधिक दूध उतरता हो। ऐसा प्रबन्ध हो जाने से प्रायः समय से पूर्व उत्पन्न या दुर्बल बच्चे के प्राण बच जाते हैं। फिर यह कहना ही होगा कि माता का दूध ही बच्चे के लिए सर्वोत्तम आहार होता है। अतः प्रत्येक माता को अपने बच्चे को भरसक

दूध पिलाना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि माता के स्तनों में दूध तो होता है, परन्तु बच्चा इतना दुर्बल होता है कि वह वृन्त को मुंह में दबा कर दूध नहीं खींच सकता। ऐसी अवस्था में हर चार घंटे बाद स्तनों में से हाथ से या 'पम्प' द्वारा सारा दूध निकाल कर बच्चे को पिलाना चाहिये और जब तक बच्चा अपने आप स्तनों से दूध पीने योग्य न हो जाए, तब तक इसी प्रकार दूध पिलाना चाहिये।

बच्चों के लिए व्यापारिक ढंग से तैयार किया हुआ दुग्ध चूर्ण (Powered Milk) लगभग सभी स्थानों पर बिकता है। यह अधिक हानिरहित और अधिक प्रामाणिक होता है; और साथ-ही-साथ इस के बनाने में माता को कोई कठिनाई नहीं होती। यह दुग्ध-चूर्ण भैंस, गाए बकरी के ताजा दूध से बनाए हुए दूध (Formula) से अधिक पचनीय होता है। यदि किसी कारणवश ताजा दूध का प्रयोग करना ही पड़े, तो छोटे बच्चे को माता के दूध के बदले देने के लिए इस में अन्य वस्तुएं मिला लेनी चाहियें (इस का वर्णन आगे आएगा)।

जिन स्थानों पर मौसम बारहों महीने गर्म रहता हो और हिमीकरण (refrigeration) का कोई प्रबन्ध न हो, वहां यह बहुत आवश्यक है कि दुहे जाने के बाद से तीन चार घंटे के अन्दर-ही-अन्दर दूध मिल जाए, और तुरन्त ही दस मिनट तक औटा लिया जाए और ठंडा कर लिया जाए। भैंस के दूध में वसा की बहुतायत होती है, इसीलिए इस पर से मलाई उतार लेनी चाहियें और तब बच्चे को देने को दूध बनाया जाए। दूध बनाने की रीति कुछ यूं है कि दूध में पानी मिला कर उसे पतला कर लिया जाए—आधा दूध, आधा पानी---और ६-७ प्रतिशत मीठा (Sweetening); इस मिश्रित दूध में वही गुण होता है जो माता के दूध में होता है। अगले पृष्ठ पर दूध, पानी और मीठे की मात्राओं से सम्बन्धित विस्तृत तालिकाएं दी गई हैं—ये मात्राएं, आयु के भिन्न-भिन्न महीनों के अनुसार हैं। आउंसों के योगफल को दूध पिलाने के नियमित समयों की संख्या से भाग देने पर यह पता चल जाएगा कि एक बार में बच्चे को कितना दूध देना चाहियें। यदि बिना मलाई उतारे दूध के चूर्ण (Powder) का प्रयोग किया जाए, तो डब्बे पर दी हुई अधिसूचनाओं के अनुसार मिलाना चाहिये। यदि मक्का का शर्बत (Corn Syrup) या डेक्सीट्रन-माल्टोज (Dextrin-Maltose) प्राप्त न हो, तो शक्कर ही प्रयोग में लानी चाहियें। मक्का के शर्बत की मात्रा की अपेक्षा शक्कर की मात्रा आधी होनी चाहियें।

जमाया हुआ टीन का मीठा दूध (Sweetened condensed tinned milk) बच्चे के लिए ठीक नहीं होता। यह दूध रोगाणु रहित न किया हुआ होता है और पैंतालीस प्रतिशत शक्कर द्वारा संरक्षित किया हुआ होता है जिस से इस में 'प्रटीन' की कमी आ जाती है। इस दूध को पीकर बच्चा मोटा-ताजा भले ही हो जाए, परन्तु उस के शरीर के तन्तु ढीले-ढाले रह जाते हैं और वह पेचिश और अन्य बीमारियों से सुरक्षित रहने की शक्ति नहीं रखता।

प्राय: जब बिना मलाई उतारे दूध का प्रयोग किया जाए, तो अच्छा होता है कि दूध बनाते समय उसे आम्लिक कर लिया जाए, इस से बच्चे के पेट में अधिक पचनीय दही बनता है और अतिसार (Diarrhœa) को रोकता है। इस उद्देश्य के लिए साधारणतया दुग्धाम्ल (Lactic Acid) या लिम्बकाम्ल (Citric Acid) का प्रयोग किया जाता

बच्चे का उचित आहार

जब ताजा दूध का प्रयोग किया जाए, तो विभिन्न वस्तुओं की नीचे दी हुई मात्राओं के अनुसार दूध बनाया जाता है:-

शिशु की आयु	बिना मलाई उतारा दूध	खौलाया हुआ पानी	मक्का का शर्बत	या डेक्सट्रिन माल्टोज*	योग
	आउंस	आउंस	खाने का चम्मच भर		आउंस
जन्म के समय	१०	१०	१½	३	२० लगभग
१ महीना	१४	१०	२½	५	२४
२ महीने	२०	१२	३	६	३२
३ महीने	२४	१२	३	६	३६
४ महीने	२४	८	३	६	३२
५ महीने	२६	८	३	६	३४
६-८ महीने	२६	६	३	६	३२
९ महीने	यदि बिना मलाई उतारा दूध अनुकूल हो, तो वही बच्चे को दीजिये। महीने-महीने मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाती जाइये। चौथे महीने में मात्रा इसलिए घट जाती है कि इस समय से बच्चा और कुछ भी खाने लगता है।				

जब वाष्पीभूत दूध (Evaporated milk) का प्रयोग किया जाए तो विभिन्न वस्तुओं की नीचे दी हुई मात्राओं के अनुसार दूध बनाया जाता है।

शिशु की आयु	वाष्पीभूत दूध	खौलाया हुआ पानी	मक्का का शर्बत	या डेक्सट्रिन माल्टोज*	योग
	आउंस	आउंस	खाने का चम्मच भर		आउंस
जन्म के समय	५½	१५	१½	३	२०½ लगभग
१ महीना	७	१७	२	४	२४
२ महीने	१०	२२	३	६	३२
३ महीने	१२	२४	३	६	३६
४ महीने	११	२१	३	६	३२
५ महीने	१३	२१	३	६	३४
६-८ महीने	१३	२०	३	६	३३
९ महीने	१५	१७			३२
१० महीने	१६	१६	प्याले से पिलाया जाए		३२

*Dextrin-Maltose.

है। साढ़े चौदह छटांक (एक क्वार्ट) दूध में ८५% अर्थात् कोई डेढ़ चम्मच (चाय का चम्मच) भर दुग्धाम्ल की आवश्यकता होती है—अर्थात् एक आउंस दूध में कोई पांच बूंदें। अम्ल मिलाने से पहले दूध बिल्कुल ठंडा कर लिया जाता है; फिर अम्ल एक-एक बूंद कर के डाला जाता है। इस अवधि में इसे बराबर चम्मच से मिलाते रहना चाहिये। अन्त में इसे जरा गाढ़ा रहना चाहिये; परन्तु दही अलग न हो जाए। लिबिकाम्ल (चूर्ण) २५% घोल के रूप में प्रयोग किया जा सकता है (एक आउंस लिबिकाम्ल और चार आउंस पानी) साढ़े चौदह छटांक दूध में चाय के तीन चम्मच भर यह घोल मिलाना चाहिये। साढ़े चौदह छटांक दूध में २ आउंस संतरे के रस या ३/४ आउंस नींबू के रस का प्रयोग किया गया है।

बच्चे को दूध पिलाने की विभिन्न प्रकार की शीशियां। आसानी से साफ हो जाने वाली चौड़े मुंह की शीशियां ही काम में लानी चाहिये।

कोई भी ऐसी शीशी जो सरलतापूर्वक साफ की जा सके बच्चे को दूध पिलाने के काम में लाई जा सकती है। कुछ स्थानों पर ऐसी चुसनियां भी बिकती हैं जिन में से दूध समान गति से बाहर निकलता है। यदि हिमीकरण का प्रबन्ध हो, तो कई शीशियों की आवश्यकता होती है जिस से एक ही बार चौबीस घंटों के लिए दूध बना कर और शीशियों में भर कर रख दिया जाए। गर्म देशों में बहुत से परिवारों में यह प्रबन्ध सम्भव नहीं हो सकता। फिर भी इस बात में बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है कि चुसनी और शीशी दोनों को खूब साफ रक्खा जाए। इन्हें प्रयोग करने के बाद तुरन्त

ही खंगाल डालना चाहिए और फिर साबुन और पानी से खूब साफ करना चाहिए, और दिन में कम-से-कम एक बार तो अवश्य ही शीशी को खौलते हुए पानी में दस मिनट तक डाले रखना चाहिये और फिर तीन मिनट तक चुसनी को भी खौलते हुए पानी में डाले रखना चाहिये।

साधारण परीस्थीतियों में ९ या १० महीने बाद बच्चे से मां का दूध छुड़ा दिया जाता है। परन्तु यदि परिवार निर्धन हो और दूध छुड़ाने में यह डर हो कि ऊपरी दूध पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल सकता, तो यह बात बच्चे के लिए लाभदायक होती है कि जब तक आवश्यकता हो तब तक दूध पिलाया जाए। कुछ बच्चों को प्याले से दूध पीने की आदत डाल कर मां का दूध आसानी से छुड़ाया जा सकता है। जो बच्चा चम्मच से अनुपूरक आहार ग्रहण करने में आपत्ति न करे उससे माता का स्तन-पान छुड़ाना कठिन नहीं होता।

कब्ज

स्वस्थ बच्चे को प्राय: दिन में चार बार टट्टी होती है। दूसरे या तीसरे महीने के पश्चात् नियमानुसार दो ही बार टट्टी होनी चाहिये। यदि दिन में एक दो बार टट्टी न हो, तो बच्चे के कब्ज का इलाज करना चाहिये। छोटे बच्चे के कब्ज का इलाज करने में देर नहीं करनी चाहिये, नहीं तो बीमारी बढ़ जाने का डर रहता है। कब्ज को दूर करने के निम्न उपायों में से एक, या एक से अधिक काम में लाए जा सकते हैं :—

१. भोजन में चिकने पदार्थों का अंश बढ़ा दीजिये।
२. बच्चे को पीने के लिये अधिक मात्रा में पानी दीजिये। पानी गरम और खौला हुआ होना चाहिये।
३. संतरे का रस, या टमाटर का रस या किसी दूसरे फल का रस तथा पक्का कुचला हुआ पपीता या पका केला प्रीतीदन दीजिये।
४. कड़े सफेद साबुन के टुकड़े को नुकीला कर के काटिये, उस का पतला बारीक छोर ऐसा हो जैसे सुरमे की पेंसिल का छोर होता है; पर दो इंच लम्बा हो, और मोटे छोर का व्यास आध इंच से जरा अधिक हो। प्रीतीदन प्रात:काल नियत समय पर यदि टट्टी आप-से-आप न आए, तो साबुन के छोर पर थोड़ी सी वैसलीन लगा कर गुदा के छेद में आधा घुसा दीजिये और कुछ सेकेंड तक उसी दशा में उसे रहने दीजिये फिर निकाल लीजिये। ऐसा करने के प्राय: खुल के टट्टी होने लगेगी (इस को साबुन की बत्ती कहते हैं।)

दस्त (अतिसार)

यदि बच्चे को बार-बार पानी जैसी पतली टट्टी आए और उस में दुर्गन्ध हो, तो समझ लीजिये कि उसे दस्त लग गए हैं। इस प्रकार की अधिकांश परीस्थीतियों में यह आवश्यक होता है कि बच्चे को एक दिन, दिन भर, साधारण दैनिक भोजन न दिया

जाए, वरन् केवल खौला हुआ पानी और चावल की पीच दी जाए। यह पीच, इस प्रकार तैयार की जाती है कि ढेर से पानी में थोड़े से चावल डाल कर खूब उबाल लिए जाएं यहां तक कि चावल बिल्कुल घुल जाएं। फिर पतले कपड़े में छान कर पीच निकाल ली जाए। बच्चे को जो कुछ भी खाने-पीने को दिया जाए वह साफ हो। यदि इस उपाय से भी दस्त न रुकें, तो अध्याय २२ में बताए हुए उपायों को काम में लाना चाहिये।

अध्याय २१

घर पर रोगी की सेवा-शुश्रूषा

घर पर रोगी की सेवा-शुश्रूषा

मनुष्य में अपने रोग को आप दूर करने की शक्ति नहीं होती। यद्यपि यह सत्य है, फिर भी अपनी बीमारी को ठीक होने या बढ़ाने में वह बहुत कुछ कर सकता है; और इस पुस्तक का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि बहुत सी ऐसी सीधी-सादी उन विधियों का वर्णन किया जाए जो रोगियों को अच्छा करने में प्रकृति की सहायक होती हैं।

प्राकृतिक चिकित्साएं

इस अध्याय में उन चिकित्साओं का वर्णन किया जाएगा जो विभिन्न प्रकार से उपयोगी हैं। इन से किसी भी रोगी की चिकित्सा करने में बहुत सहायता मिलेगी। ये प्राकृतिक चिकित्साएं कहलाती हैं क्योंकि इन में विषैली औषधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् ऐसी वस्तुओं की जरूरत होती है जिन से शरीर प्राकृतिक रूप से शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। इन में से कई तो बहुत साधारण और सस्ती हैं, परन्तु फिर भी अत्यन्त लाभदायक हैं।

सूर्य-प्रकाश

सूर्य-प्रकाश का स्वास्थ्य के साथ कितना गहरा सम्बन्ध है यह इस बात को देखने से ज्ञात होता है कि जब पौधों या जानवरों को प्रकाश नहीं मिलता तो उन की क्या दशा हो जाती है। यदि पौधे को प्रकाश वाले स्थान से उठा कर अंधेरे स्थान में रख दिया जाए तो वह शीघ्र ही मुरझा जाता है। अंधेरे में रक्खे जाने वाले जानवर भी कमजोर और बीमार हो जाते हैं।

जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश पौधों को हरा भरा रखता है उसी प्रकार मनुष्यों को भी स्वस्थ रखता है। सूर्य-प्रकाश से रोग-कृमि शीघ्र ही मर जाते हैं। त्वचा-रोग शरीर के उन भागों को बहुत कम लगता है जो सदा रोशनी में रहते हैं। अस्पतालों में यह कई बार सिद्ध किया जा चुका है कि खुले बरामदों में रक्खे जाने वाले रोगी या सूरज की रोशनी वाले कमरों में रहने वाले रोगी उन रोगियों की अपेक्षा जल्दी अच्छे हो जाते हैं जो कम प्रकाश वाले कमरों में रहते हैं। क्षय-रोग में तो सूर्य-प्रकाश मुख्य और परमावश्यक चिकित्सा मानी जाती है। चाहे कोई रोग हो रोगी को पूर्ण रूप से प्रकाशित कमरे में रहना चाहिये या उस से भी अच्छा है कि वह बाहर छाया में रहे। संसार में सूर्य ही समस्त उष्णता, प्रकाश तथा ऊर्जा का प्रभव है। यह जीवन प्रदान करता है। अतः इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये कि मकान के प्रत्येक कमरे में सूरज की रोशनी आए। जो लोग कम प्रकाश वाले स्थानों में रहते हैं उन्हें रोग लगते देर नहीं लगती।

स्वच्छ वायु

यदि किसी को हवा मिलना बन्द हो जाए, तो वह कुछ ही मिनट में मर जाएगा। अग्नि को यदि हवा का झोंका न मिले तो वह ठीक तरह से नहीं सुलगेगी। इसी प्रकार यदि हम निरन्तर रूप से सांस के साथ स्वच्छ वायु अपने फेफड़ों में न ले जाएं, तो हमारे शरीर में भी आवश्यक उष्णता और ऊर्जा उत्पन्न न होगी। रोगी व्यक्ति को स्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा अधिक स्वच्छ वायु की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक के छटे अध्याय में निरन्तर स्वच्छ वायु में रहने के महत्व पर बल दिया गया है।

पानी

पानी संसार की सब से साधारण वस्तुओं में से एक है और यह सब से सस्ती भी है। कोई भी पौधा या जानवर पानी के बिना जीवित नहीं रह सकता। हमारे शरीर का दो तिहाई वजन पानी का है।

जब कोई व्यक्ति अपने भोजन में और पीने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं पा सकता, तो उस की शक्ति शीघ्र ही कम होने लगती है। आठवें अध्याय में बताया जा चुका है कि प्रचुर मात्रा में पानी पीना बहुत आवश्यक है जिस से यह त्वचा और गुर्दों को शरीर में निरन्तर पैदा होने वाले विषैले पदार्थों को बाहर निकालने में सहायता दे सके। जिस प्रकार स्नान करने से शरीर का बाहर का भाग साफ हो जाता है उसी प्रकार पानी पीने से अन्दर की सफाई हो जाती है।

पानी मनुष्य के प्रायः सभी रोगों के उपचार में सहायक होता है। रोगों के उपचार में पानी का प्रयोग औषधियों के प्रयोग से पूर्व आरम्भ हुआ। प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन ढाई से लेकर साढे. तीन सेर तक पानी पीना चाहिये। पानी को पीने से पहले उबाल लेना चाहिये। पीने का पानी बहुत अधिक ठंडा न हो। बर्फ का पानी न पीजिये। रोगियों को काफी पानी पीना चाहिये। यह बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि जिन लोगों को ज्वर हो उन्हें पर्याप्त मात्रा में ठंडा पानी पीना चाहिये। यदि पेट में दर्द हो

रोगी के लिए हवादार और रोशनी वाला कमरा

और पेट कुछ खट्टा-खट्टा लगे, तो थोड़ा सा गर्म पानी पी लीजिये, दर्द दूर हो जाएगा। छोटे बच्चे को दिन में कई बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में गरम पानी पिलाना चाहिये (यह पानी उबला हुआ हो)। प्राय: जब बच्चा रोता है तो वह पानी मांगता है, कुछ खाने को नहीं।

रोग की चिकित्सा में पानी का प्रयोग

रक्त ही रोग-निवारक है। इस तथ्य की चर्चा अध्याय ७ में पूर्ण रूप से की जा चुकी है। रक्त ही देह में गर्मी कायम रखता है, रोग-कृमियों को मारता है और शरीर के रोग-ग्रस्त या चुटीले भाग की मरम्मत भी करता है। अत: शरीर के रोग-ग्रस्त भाग की चिकित्सा करने का उद्देश्य यह होना चाहिये कि उस भाग में रक्त-परिभ्रमण सक्रिया हो जाए। गर्म और ठंडे पानी के प्रयोग द्वारा शरीर के किसी भाग में भी रक्त-परिभ्रमण नियंत्रित रक्खा जा सकता है। अदल-बदल कर गर्म और ठंडे पानी से सेंकने से शरीर के किसी भाग में भी रक्त-परिभ्रमण यथेष्ट रूप से बढ़ाया जा सकता है। गर्म सेंक से जो लगभग दो मिनट तक लगनी चाहिये उस स्थान की रक्त-वाहिनियां फैल जाती हैं। रक्त-वाहिनियों के फैलते ही उन में भरने के लिए रक्त दूसरे स्थानों से दौड़ने लगता है। फिर यदि ठंडी सेंक दस से बीस सैकिंड तक दी जाए तो फैली हुई रक्त-वाहिनियां सिकुड़ जाएंगी; जब ये सिकुड़ जाती हैं तो रक्त देह के अन्य भागों की रक्त-वाहिनियों में धकेल दिया जाता है। इस प्रकार गर्म और ठंडे पानी से अदल-बदल कर सेंकने की क्रिया रक्त-वाहिनियों

में वास्तविक रूप से पम्प का काम करती है, जिस से रोग-ग्रस्त भाग में रक्त-प्रवाह बहुत अधिक बढ़ जाता है।

घर पर जल-चिकित्सा के लिए आवश्यक सामग्री

घर पर जल-चिकित्सा के लिए साधारण प्रयंत्रों की आवश्यकता होती है। यदि वे न हों, और जरूरत पड़ जाए, तो उन जैसी अन्य वस्तुओं से काम चलाया जा सकता है। परन्तु बेहतर यही होगा कि निम्नलिखित सामग्री जुटाने का प्रबंध किया जाए:—

१. पानी से सेंकने के लिए ३०×३६ इंच की नाप के कपड़े के छः टुकड़े; वे चाहे ऊनी हों, चाहे ऊनी-सूती हों। पुराने कम्बल के चार टुकड़े कर लिए जाएं, तो वे बड़ा अच्छा काम देंगे।

२. दो मामूली से मोटे दस्ताने।

३. दो गरम पानी की बोतलें।

४. एक बर्फ की थैली।

५. एक स्नान का थर्मामीटर।

६. दो अंडे की शक्ल के पैर धोने के टब जो लगभग १६ इंच लम्बे और १० इंच गहरे हों।

७. धोने का टब, तसले, केतली, तौलिये, चादरें और कम्बल जो प्राय: घर में होते हैं।

८. दो बड़े और गहरे टीन के बरतन या पीपे (या बालटियां) जिन का व्यास एक फुट और गहराई १६इंच हो।

आर्द्र सेंकें (Fomentations)

पानी द्वारा रोगों की चिकित्सा करने में सेंकें अत्यंत उपयोगी साधन हैं। सेंकने के लिये सब से अच्छा कपड़ा मोटी फलालैन होती है। फलालैन के एक कम्बल में से सेंकने के दो जोड़े कपड़े बनाए जा सकते हैं। फलालैन के बदले गरम कपड़ों से भी काम निकाला जा सकता है। सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सेंकने के कपड़े तीन फुट लम्बे और उतने ही चौड़े होने चाहियें।

रीढ़ सेंकने के लिये कपड़ा ६ या ८ इंच चौड़ा और रीढ़ की लम्बाई का होना चाहिये। छाती, पेट, एवं आंतों के लिये कपड़े को तह कर के आवश्यकतानुसार छोटा और चौड़ा कर लेना चाहिये। यदि सेंकने का कपड़ा बहुत गर्म हो, तो एक सैकिंड के लिये उसे इतना ऊपर उठा लीजिये कि उस के और शरीर के बीच में केवल तौलिया जा सके। तौलिये से शरीर को पोंछ डालिये और फिर तत्क्षण अच्छी तरह से सेंकने लगिये जब तक रोगी को तनिक आराम न पहुंचे तब तक सेंकते रहिये, फिर सूखे कपड़े की तह खोल कर उसे शरीर पर रख दीजिये और गीले कपड़े को फिर गीला कर के और निचोड़ कर फिर सेंकना शुरू कर दीजिये।

साधारण रीति से तो सेंके को प्रत्येक ३ से ५ मिनट में बदलना चाहिये। और पन्द्रह से बीस मिनट तक जारी रखनी चाहिये। प्रत्येक दशा में सेंक बहुत गरम होनी चाहिये।

सेंक से प्रायः प्रत्येक प्रकार की पीड़ा दूर हो जाएगी और इस के प्रयोग में कोई हानि नहीं. हां, यदि उदर-गह्वर में नीचे की दाहिनी ओर पीड़ा हो, तो सेंकना नहीं चाहिये—शायद पीड़ा आंत्रपुच्छ-प्रदाह (Appendicitis) के कारण हो। ऐसी दशा में बर्फ की थैली का प्रयोग करना चाहिये। सेंक हमेशा तेल की मालिश और मरहमों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होती है। प्रायः प्रत्येक पीड़ा की चिकित्सा में सेंक को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिये प्रत्येक गरम सेंक के पश्चात् थोड़ी सी देर तक ठंडे पानी की सेंक देनी भी आवश्यक है। रूमाल या छोटे तौलिये जैसे पतले कपड़े की दो तहें करके उसे ठंडे पानी में भिगो लीजिये और फिर निचोड़ कर सेंके जाने वाले भाग पर कुछ सैकिंड के लिए रख दीजिये। इस के बाद उसे वहां से हटा कर उस भाग को सूखे कपड़े से पोंछ दीजिये और फिर गरम पानी की सेंक आरम्भ कीजिये।

प्रत्येक दशा में गरम सेंक के पश्चात् कुछ सैकिन्ड तक सेंके जाने वाले भाग को ठंडक पहुंचाइये और फिर तौलिये से रगड़ कर सुखा दीजिये।

अगले अध्यायों में विभिन्न रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते समय यह भी स्पष्ट कर दिया जाएगा कि किस रोग में सेंकना, किस रोग में गर्म पानी में पैर डालना, किसी रोग में गर्म पानी में बैठना और किस रोग में अनिमा लेना उपयोगी होता है।

आर्द्र सेंकों के प्रयोग की विधि

आवश्यक सामग्री—अंगीठी, स्टोव आदि। एक ढक्कनदार गहरा बरतन या बड़ी केतली जिस में पानी खौलता रहे। सेंकने के लिए कपड़े के कम-से-कम दो टुकड़े (यदि चार हों, तो बेहतर होगा) पुराने ऊनी-सूती कम्बल के कोई एक-एक गज के चार वर्गाकार टुकड़े. एक रुएंदार तौलिया, एक छोटा तौलिया और एक कटोरा ठंडा या बर्फ का पानी।

१. सेंक के गीले कपड़े को लपेटने के लिए सूखा कपड़ा मेज पर फैला दीजिये। सेंकने के कपड़े की तीन तहें इस प्रकार कीजिये कि वह लम्बा और सकरा हो जाए। इस को वैसे ही उमेठिये जैसे पानी निचोड़ते समय उमेठते हैं, फिर इस के दोनों छोर पकड़े पकड़े खौलते हुए पानी में डुबा दीजिये। उस समय बरतन या केतली का ढकना लग दिया जाए और कपड़े के छोर बाहर रहें। इसे इतनी देर डुबाए रखिये कि यह खौलते हुए में पानी अच्छी तरह भीग जाए।

२. दोनों सूखे छोरों को मजबूती से पकड़ कर कपड़े को कई बार मरोड़िये और फिर फैला लीजिये। इस प्रकार मरोड़ने से गर्म पानी बिना हाथ जलाए निचुड़ जाता है।

३. गर्म कपड़े को सूखे कपड़े पर रखिये—यह सूखा कपड़ा इतना बड़ा हो कि गर्म कपड़े को अच्छी तरह लपेट सके।

४. इसे जल्दी-जल्दी गोलाई में लपेट लीजिये जिस से रोगी के पास ले जाते-ले जाते ठंडा न हो जाए।
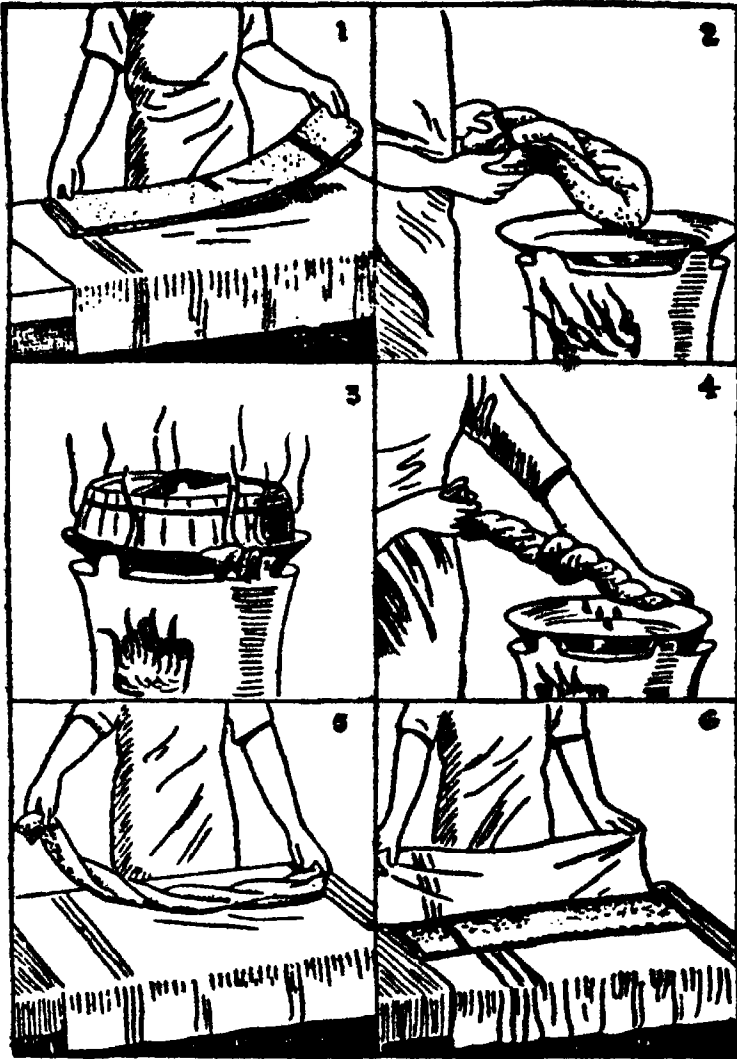
आर्द्र सेंकों के प्रयोग की विधि

१. आर्द्र सेंक का कपड़ा। २. कपड़ा खौलते हुए पानी में डुबाया जाने के लिए तैयार है। ३. कपड़ा खौलते हुए पानी में डुबा दिया गया। ४. कपड़ा निचोड़ दिया गया। ५. बटें निकाली जा रही हैं। ६. कपड़ा सूखे कम्बल में लपेटा जा रहा है।
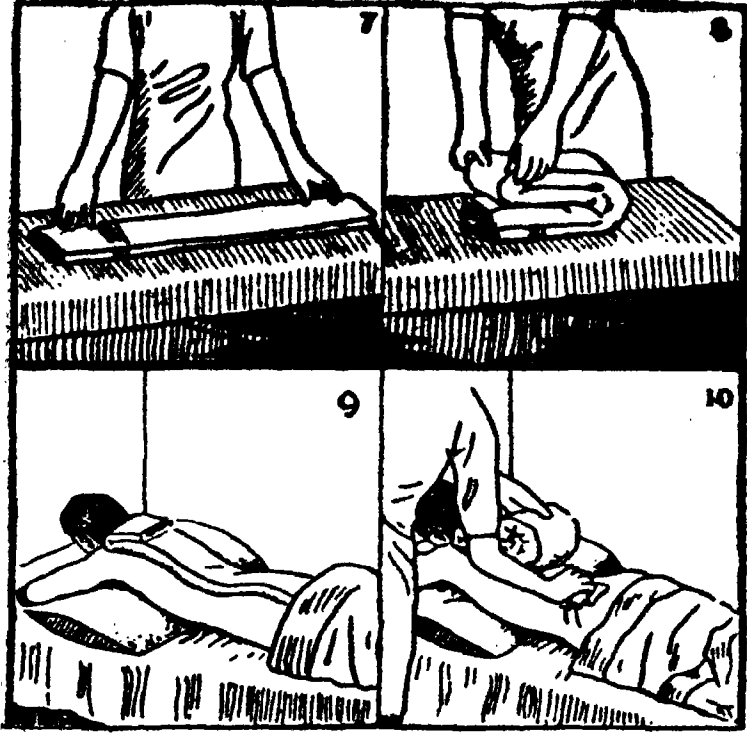
७. लम्बी तह की जा रही है। ८. चार तहें कर ली गई। ९. कपड़ा रुग्ण स्थान पर लगा दिया गया। १०. कपड़ा हटा लिया गया—और उस स्थान को ठंडे पानी में भीगे हुए तौलिये से अंगोछा जा रहा है।

५. पीड़ा वाले भाग पर तौलिया रख कर सेंक का कपड़ा रखिये और चारों ओर से ठीक कर दीजिये। सेंक के इस कपड़े पर एक तौलिया अच्छी तरह लगा दीजिये जिस से बिस्तर न भीगे। रोगी के सिर पर बर्फ के पानी में भीगा हुआ कपड़ा रखिये और जब भी यह कपड़ा गर्म हो जाए तभी बदल दीजिये।

६. एक सूखा तौलिया हाथ में लपेट कर रोगी के शरीर पर रखखे हुए सेंक के कपड़े और तौलिये के नीचे हाथ डालिये और उस भाग को पोंछ दीजिये। इस प्रकार पोंछने से नमी दूर हो जाती है और रोगी अधिक गरम सेंक को सहन कर सकता है।

७. सेंक का कपड़ा बदलने के लिए दूसरा कपड़ा लपेट कर तैयार रखिये। फिर सेंक का पहला कपड़ा हटा कर गरम कपड़ा उस के स्थान पर रखिये। जब सेंकें समाप्त हो जाएं तो शरीर के उस भाग पर ठंडे पानी में भीगा हुआ तौलिया फेरिये और फिर

काम चलाऊ चादर या कम्बल और एक छोटे से टब की सहायता से पैरों में गर्म पानी की सेंकें दी जा सकती हैं, और शरीर से खूब पसीना निकाला जा सकता है।

सुखा दीजिये। एक बार में तीन सेंकें दी जाती हैं। यदि आवश्यकता हो, तो अधिक दी जा सकती हैं।

पैरों में गरम पानी की सेंक

पैरों में गरम पानी की सेंक के लिये लकड़ी की एक बाल्टी, एक चिलमची या या एक छोटा टब भी काम में लाया जा सकता है। पानी टखनों से ऊपर होना चाहिये और आरम्भ में पानी का तापमान १०५ डिग्री फ. होना आवश्यक है। पैरों को शीघ्र ही गर्मी लगने लगती है। जब पैर पानी में हों, तो बरतन में थोड़ा-थोड़ा तेज गरम पानी डालते रहना चाहिये जिस से सहन करने योग्य तापमान बना रहे। यह क्रिया ५ से २० मिनट तक की जा सकती है। पैरों में गरम पानी की सेंक देते समय ठंडे पानी में डाल कर निचोड़ा हुआ कपड़ा रोगी के माथे पर रख देना चाहिये और इसे थोड़ी-थोड़ी देर में बदलते रहना चाहिये। इस ठंडे कपड़े से सिर की पीड़ा और सिर चकराना बन्द हो जाता है।

१५ या २० मिनट तक पैरों को सेंकने से पसीना निकलने लगता है। यदि पसीना आना आवश्यक हो तो रोगी के पैर पानी ही में रखिये और उस के चारों ओर दो-तीन कम्बल लपेट दीजिये; और उसे गरम पानी या लेमन पिलाते रहिये। सिर ठंडा रखिये। फिर उसे बिस्तरे में लिटा दीजिये और अच्छी तरह ढांक दीजिये, पसीना निकलने दीजिये।

पैरों में गरम पानी की सेंक से सिर का दर्द बड़ी जल्दी जाता रहता है। ज्वर के आरम्भ में ही वस्ति-गह्वर के अवयवों की सूजन के लिए, ठंड लग जाने पर, पसीना निकालने के लिए और सूजे, दर्द करते या ठंडे पैरों के लिए यह लाभदायक होता है।

एक या दो चम्मच पिसी हुई राई गरम पानी में डाल देने से इस का प्रभाव और भी बढ़ जाएगा। जब रोगी को ज्वर हो या वह कमजोर हो तो लिटा कर यह सेंक देनी चाहिये।

वस्ति-गह्वर के अवयवों के लिए गरम पानी की सेंक (Sitz Bath)

वस्ति-गह्वर के अवयवों के लिए गरम पानी की सेंक के लिये एक साधारण टब का प्रयोग किया जा सकता है। इस के लिये पानी का तापमान १०५ से ११५ डिगरी फ. होना चाहिये। यह बहुत साधारण है और बड़ा लाभ पहुंचाती है। प्रायः यह ५ से १५ मिनिट तक दी जा सकती है।

इस सेंक के समय पैर गरम पानी के दूसरे छोटे से टब में हों। रोगी के शरीर का ऊपरी भाग किसी कपड़े या कम्बल से ढंक दीजिये और ठंडे पानी का गीला कपड़ा माथे पर रख दीजिये।

गर्भाशय, बीजाण्डकोषों, योनि और मूत्राशय की सूजन से जो पेड़ू में दर्द होने लगता है उस के लिये यह सेंक अत्यंत उपयोगी है। रजःस्राव के समय या उस से पहले जो पीड़ा होती है वह इस से दूर हो जाती है। जब रजःस्राव में देर हो जाती है तो कई दिन तक, दिन में दो-तीन बार, इस सेंक का प्रयोग करने से यह शिकायत दूर हो जाती है। कूल्हे की पीड़ा का भी इस से इलाज किया जा सकता है। गरम पानी में बैठ चुकने के पश्चात् गरम पानी में भीगे हुए अवयवों को ठंडे गीले तौलिये से जल्दी-जल्दी रगड़ डालिये और फिर सूखे तौलिये से उन्हें अच्छी तरह पोंछिये।

किसी पीड़ित अंग को बारी-बारी गरम और ठंडे पानी में डुबा-डुबा कर उस की चिकित्सा करना

खुले हुए घाव या फोड़े या हाथ-पैर के किसी दूसरे रोग की चिकित्सा के लिए पीड़ित अंग को बारी-बारी गरम और ठंडे पानी में डुबाना सब से बढ़िया उपाय है। एक बाल्टी में बहुत गरम पानी और दूसरी में ठंडा पानी लीजिये। वह हाथ या पैर जिस में चोट लग गई हो पहले तीन मिनिट तक गरम पानी में डाले रखिये, फिर एक मिनिट तक ठंडे पानी में। इस प्रकार यह क्रम तीस मिनिट तक जारी रखिये। प्रति बार गरम पानी में से अंग निकालने के बाद थोड़ा सा और गरम पानी मिला देना चाहिये जिस से पानी गरम रहे। यदि हो सके तो ठंडे पानी में बर्फ डाल लीजिये। पीड़ित अंग को गरम और ठंडे पानी में छः, छः बार, बारी-बारी से, इस क्रम से, डुबाइये कि अन्त में वह अंग ठंडे पानी में डुबाया जाए। इस प्रकार दिन में तीन-चार बार, आधा घंटा प्रति बार यह उपाय करने से संक्रमित घाव या खुली चोट को ठीक करने में अद्भुत परिणाम प्रकट होते हैं। गरम पानी के प्रत्येक २०० भाग में एक भाग लाइसोल (Lysol) मिला देने से या एपसम सॉल्ट (Epsom Salt) के दो चम्मच एक गैलन पानी में डालने से यह चिकित्सा अधिक लाभदायक होती है।

शरीर के कोषों को जीवन प्रदान करने के लिए, रुग्ण अंग को बारी.बारी से गर्म और ठंडे पानी में डालना एक लाभदायक उपाय है।

मोच या किसी कुचले हुए अंग की चिकित्सा में भी यह उपाय बहुत लाभदायक होता है, हां उचित औषधि की बात दूसरी है।

दस्ताना पहने हाथ को ठंडे पानी में भिगो कर शरीर को रगड.ना

इस चिकित्सा में ठंडे पानी के लिए एक बाल्टी या कोई और बरतन और अलपके जैसे मोटे कपडे. या खुरदरे तौलिये का बना दस्ताना आवश्यक होता है। दस्ताने वाला हाथ पानी में डालिये और दूसरे हाथ से रोगी को पकडे. रहिये। दस्ताने में से पानी निचोड. कर रोगी की उंगलियों से लेकर कंधे तक जल्दी से हाथ फेरिये और फिर वापस ले आइये और फिर जोर-जोर से, जल्दी-जल्दी आरम्भ कीजिये। यह रगड. ऐसी हो कि रोगी के शरीर को किसी प्रकार पीड.ा न पहुंचाए। इस क्रिया को दो-तीन बार दोहराइये। फिर एक मोटे से तौलिये से रगड. कर शरीर सुखा डालिये। फिर यही क्रिया क्रमशः दूसरी बांह, छाती, उदर, टांगों और पीठ पर कीजिये। यह सारा काम करने में १२ मिनिट से १५ मिनट तक लगने चाहिये। इस चिकित्सा की सफलता इस बात पर निर्भर है कि रगड.ते समय हाथ बड.ी फुरती से चलाया जाए। आंत्रपुच्छ-प्रदाह या मोतीझरे में उदर को न मलिये।

साधारणतया यदि इस ठंडी रगड़. से पहले गरम पानी की सेंकों का प्रयोग किया जाए, तो वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है।

गरम सेंकों के बाद यदि दिन में एक, दो या तीन बार ठंडी रगड़. का प्रयोग किया जाए तो बहुत से रोगों में यह उपाय बहुत लाभदायक होता है।

जिस रोग में शरीर में दाने निकलते हों, या किसी भी अन्य चर्म-रोग में, किसी प्रकार भी शरीर को रगड़.ना नहीं चाहिये।

जो लोग ठंडे पानी के अभ्यस्त न हों या जो बहुत कमजोर या बूढ़े हों उन के लिए आरम्भ में पानी का तापमान ८० डिगरी फ. रखिये और प्रतिदिन एक या दो डिगरी तापमान घटाते जाइये।

योनि की पिचकारी

टीन या जस्त चढ़े. हुए लोहे का एक बरतन बनवा लीजिये जो गोलाई में पांच इंच हो और १० या ११ इंच ऊंचा हो। इस की पेंदी में एक छोटा सा छेद हो जिस में एक टोंटी लग सकती हो। इस टोंटी में चार फुट या उस से लम्बी एक रबड़. की नली लगाइये और इस नली के छोर पर शीशे या रबड़. की टोंटी लगाइये (चित्र देखिये)।

रोगी स्त्री को नहाने के टब में पीठ के बल लिटाना चाहिये या उस के कूल्हों के नीचे योनी की पिचकारी का बरतन रखिये। शीशे या रबड़. की नली दोनों ओर से खुली होनी चाहिये और ३ इंच लम्बी हो। इस नली को योनि में प्रविष्ट कर दीजिये और सदा नीचे और पीछे की ओर योनि की निचली दीवार के साथ रखिये। पानी वाले बरतन में पानी कूल्हों से तीन फुट ऊंचा होना चाहिये।

दूसरे साफ करने के कामों के लिये पानी गरम हो अर्थात् उस का १०० डिगरी फ. हो।

पेड़ू. की पीड़.ा दूर करने के लिये पानी का तापमान ११० से ११५ डिगरी फ. तक होना चाहिये और पानी कम-से-कम चार सेर हो।

रज:स्राव को फिर से चालू करने के लिये १०३ डिगरी फ. तापमान का कई सेर पानी काम में लाइये यह क्रिया दिन में दो-तीन बार की जाए।

अनिमा या पिचकारी

अनिमे का प्रयोग पेट साफ करने के लिये किया जाता है। इस के लिए भी एक ऐसा ही बरतन होना चाहिये जैसा "योनि की पिचकारी" के सम्बन्ध मे बताया जा चुका है, नलियों की भी अवश्यकता होती है। बच्चों के लिये छोटी नलियां होनी चाहिये। अनिमे के लिये प्रयोग किया जाने वाला पानी पहले से खौला कर रख लेना चाहिये। इस में रोगी को चित या करवट से लेटना ही अच्छा होता है।

वयस्क व्यक्ति के लिए साधारण सफाई के लिए दो-तीन सेर पानी चाहिये जिस का तापमान १०० डिगरी फ. हो। यह पानी अनिमे के बरतन में डाल कर चारपाई से तीन फुट ऊंचे स्थान पर इसे लटका दीजिये। रबड़. की नली को दबाये रखिये जिस से पानी निकलने न पाए। कांच की नली के सिरे पर थोड़.ी सी वैसलीन या साफ तेल लगा
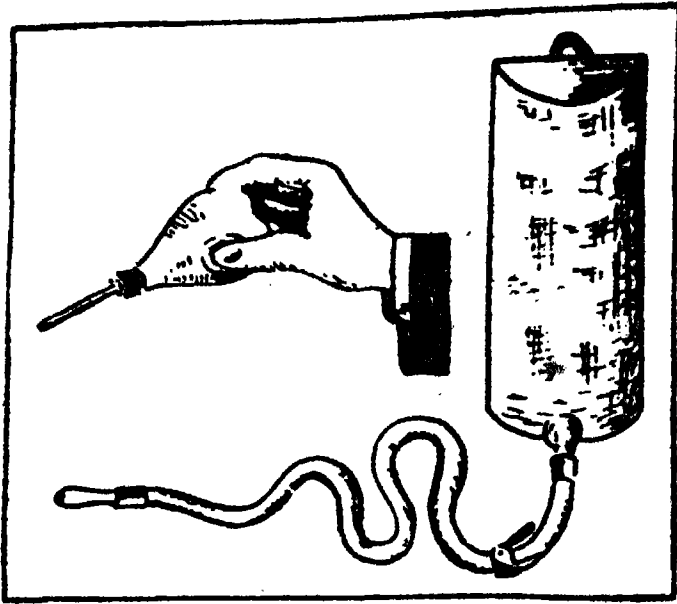
अनिमा देने का सामान—दो प्रकार की पिचकारियां

कर उसे गुदा में प्रविष्ट कर दीजिये। इसे ऊपर को पीठ की ओर डालिये। इसे दो-तीन इंच अन्दर जाने दीजिये, और फिर पानी को अन्दर छोड़ दीजिये। यदि किसी प्रकार की पीड़ा होने लगे तो उस के समाप्त होने तक नली को दबा कर पानी रोके रखिये। टट्टी लगने लगे तो रोगी को उसे तब तक रोके रखना चाहिये जब तक सारा या अधिकांश पानी अन्दर न चला जाए। जब पानी अंदर चला जाए तो हाथों से पेट को दबाइये, इस से पानी आंतों में ऊपर चढ़ जाता है और पूर्ण रूप से आंतों की सफाई हो जाती है।

जिन लोगों को पुराना कब्ज हो या जिन्हें कुछ दिन तक बराबर अनिमा लेने की आवश्यकता हो, उन के लिए ठंडा अनिमा अर्थात् ७० से ८० डिगरी फ. तापमान के पानी का अनिमा बहुत ही लाभदायक होता है।

निमोनीया या मोतीझरा जैसे ज्वर में ७० डिगरी फ. तापमान का पानी यदि कुछ मिनट अन्दर रहने दिया जाए, तो ज्वर कम करने में सहायता देता है। यह चार-चार घंटे बाद किया जा सकता है। मोतीझरे के तेज बुखार में अनिमे का बार-बार प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है। अनिमे के बरतन की नली के अंत में Y के आकार की शीशे की एक नली लगी होती है। इस के सिरे पर रबड़ की एक नली, जुड़ी होती है जिस का सिरा बाल्टी में होता है। Y के दूसरे सिरे पर एक 'कोलन' नली लगी होती है। यही भाग कई इंच गुदा में प्रविष्ट किया जाता है। ठंडे जल की धार आंतों में निरन्तर आने-जाने से ज्वर
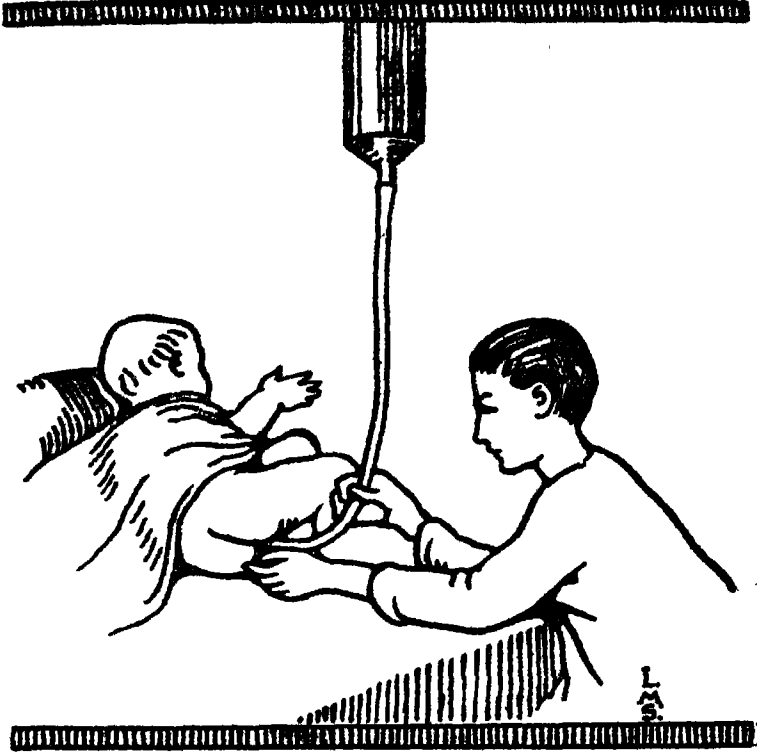
बच्चे को पिचकारी देने की विधि

धीरे-धीरे कम हो जाता है। जब बुखार दो या तीन अंश गिर जाए तो अनिमा बंद कर देना चाहिए। इस क्रिया की अवधि में रोगी को करवट से लेटा रहना चाहिये। लाल-ज्वर की भांति जब बुखार तेज हो, तो ८० या ९० डिगरी फ. के तापमान के पानी का अनिमा देना चाहिये। छोटे बच्चे को ठंडे पानी का अनिमा नहीं देना चाहिये।

जब दस्त न बन्द हों तो ११० या ११५ डिगरी फ. तापमान के पानी का अनिमा देना चाहिये। परन्तु मोतीझरे में ऐसा करना उचित नहीं। इस रोग (मोतीझरे) में टट्टी के बाद या दिन में कई बार ९० डिगरी फ. तापमान के पानी का अनिमा भी दिया जा सकता है।

गरम पानी की थैली

गरम पानी से भरी हुई रबड़ की थैली बहुत देर तक गरम रहती है और यदि इस

के चारों ओर फ्लालैन का भीगा टुकड़ा लपेट दिया जाए, तो यह वही काम देती है जो कपड़े द्वारा गरम पानी की सेंकें (fomentations) । साधारण रीति से तर गरमी खुश्क गरमी से अधिक अच्छी होती है । पीठ, दांत, आमाशय और रजःस्राव की पीड़ा दूर करने के लिये तो यह नितांत आवश्यक होती है ।

थैली के तिहाई भाग में गरम पानी भर दीजिये; फिर थैली के किनारों को दबाइये, इस से भाप निकल जाएगी । इस के बाद थैली के मुंह पर उस का पेंचदार डाक मजबूती से लगा दीजिये जिस से पानी न निकले । पांवों के पास रखने से पहले इसे फ्लालैन के एक टुकड़े में लपेट दीजिये । यदि रोगी होश में न हो, तो इस बात का ध्यान रखिये कि कहीं उस के पैर जल न जाएं ।

बिना बर्फ के ठंडी गद्दी (Compress) बनाने की विधि

इस अध्याय में ठंडी गद्दी का वर्णन कई बार किया जा चुका है । बहुत स्थानों पर बर्फ या ठंडा पानी मिलना सम्भव नहीं होता । ऐसी दशा में निम्नलिखित रीति से गद्दी बनानी चाहिये । एक पतला सा कपड़ा या तौलिया पानी में भिगो लीजिये, फिर बिना पानी निचोड़े कपड़े या तौलिये को उस के दोनों कोने पकड़ कर हवा में लहराइये । दस-बीस बार जोर-जोर से लहराने से तौलिया बिल्कुल ठंडा हो जाएगा ।

अंगोछना या स्पंज करना

स्पंज को या कपड़े के टुकड़े या केवल हाथ को पानी में भिगो कर शरीर पर फेरना अंगोछना या 'स्पंजिंग' कहलाता है । इस में मुख्य प्रभाव जल का होता है और मलने की कम पावश्यकता पड़ती है ।

सादा गरम या ठंडे पानी या नमक अथवा सोडा मिले पानी सिरके और नमक या शराब का प्रयोग किया जा सकता है । शरीर के विभिन्न भागों को उसी प्रकार से अंगोछिये जिस प्रकार दास्ताना पहने हाथ को ठंडे पानी में भिगो कर शरीर को रगड़ने की क्रिया समझाई गई है । (देखिये पृष्ठ १५२) ।

ज्वर उतारने के लिए ठंडे पानी और कपड़े के टुकड़े या स्पंज का प्रयोग करना चाहिये । इस को केवल इतना निचोड़ा जाता है कि पानी न टपके और शरीर के प्रत्येक भाग को अच्छी तरह ठंडा करने के लिये उस कपड़े को इधर-उधर फेरने में काफी समय लगता है । प्रत्येक भाग को बिना मले बड़ी सावधानी से सुखाया जाता है । जिस ज्वर में सर्दी लगती हो उस में गरम पानी से स्पंज करना चाहिये । इस की विधि भी वही होगी जो ठंडे पानी से स्पंज करने की होती है । जब हलके नमकीन जल, सोडे के पानी, सिरके और नमक और शराब का प्रयोग किया जाए तो कपड़े इत्यादि के बदले नंगे हाथ से ही काम लेना चाहिये ।

नमक मिले पानी से अंगोछना: चिलमची या बड़े कटोरे में गुनगुने या ठंडे पानी में चार आउंस साधारण नमक घोल लीजिये । यह उपाय खून की कमी वाले या कमजोर व्यक्तियों को थोड़ी-बहुत शक्ति प्रदान करता है और शरीर में रक्त परिभ्रमण को उत्तेजित करता है ।
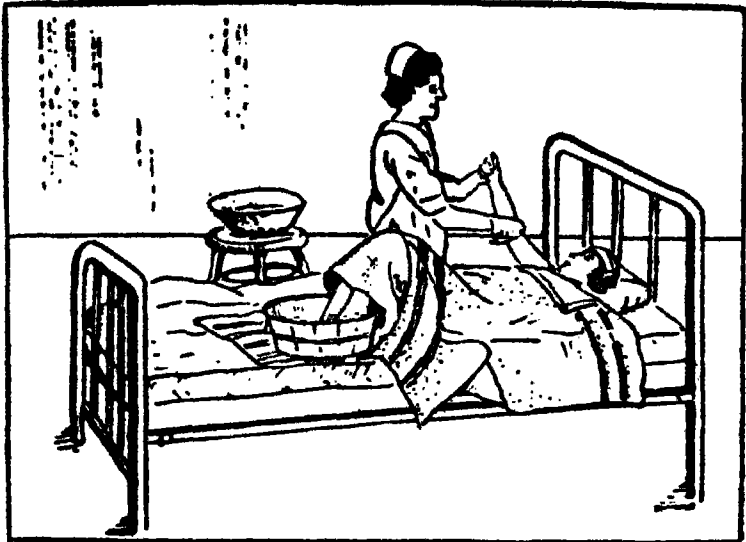
जल-चिकित्सा की विधि

क्षार मिले पानी से अंगोछना: एक बरतन में पानी लेकर उस में दो आउंस सोडा बाइकार्बोनेट (खाने का सोडा) डाल दीजिये। यह खुजली और ददोड़ों में लाभदायक होता है। इस का प्रयोग केवल रोग-ग्रस्त भागों पर ही करना चाहिये।

सिरका और नमक मिले पानी से अंगोछना: क्षय रोग में रात के समय जो पसीना आता है उसे रोकने के लिए यह उपाय बहुत लाभदायक है। सिरका और पानी आधो-आध मिला कर कोई डेढ़ पाव घोल तैयार कर लीजिये। इस में एक या दो चम्मच नमक डाल दीजिये। जिन भागों में अधिक पसीना आता हो वहां इस का प्रयोग कीजिये।

शराब मिले पानी से अंगोछना: पसीने की अधिकता और रात की बेचैनी दूर करने के लिए यह बड़ा उपयोगी साधन समझा जाता है। दस्ताना पहने हाथ को ठंडे पानी में भिगो कर शरीर को रगड़ने के बदले इस का प्रयोग हो सकता है; यद्यपि यह उतना लाभदायक नहीं होता। अन्न की शराब (grain alcohol) और पानी आधो-आध हों। काष्ठ मद्यसार (wood alcohol) त्वचा पर लगने से विषैला हो जाता है इसलिए इसे कभी काम में न लाइये।

विच-हेजल (witch-hasel) **से अंगोछना:** यह भी वही लाभ देती है जो शराब देती है। इस का प्रयोग बिना पानी मिलाए करना चाहिये।

विज्ञप्त औषधियां (Patent Medicines)

समाचार-पत्र और मासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाएं विभिन्न प्रकार की औषधियों के विज्ञापनों से भरी होती हैं। प्राय: ऐसी औषधियों को सभी रोगों के लिए "चमत्कारी औषधियां" बताया जाता है।

इन विज्ञापनों के लम्बे-चौड़े दावों और इन में छपे प्रमाण-पत्रों के धोखे में न आइये। इन औषधियों में मदिरा के समान कोई उत्तेजक पदार्थ मिला रहता है जिस के प्रभाव से रोगी को थोड़ी सी देर के लिए अपने अन्दर अधिक शक्ति का अनुभव होने लगता है, यद्यपि, वास्तव में, उस की शक्ति बढ़ती नहीं ! चिकित्सा सम्बन्धी बातों में परिगुणी लोगों से ही परामर्श करना चाहिये।

रोगी की देख-भाल

रोग को दूर करने का सब से आवश्यक साधन औषधि नहीं है, बल्कि विश्राम, अच्छा भोजन, अच्छी देख-भाल और उन सब साधनों का प्रयोग है जो रक्त को इतनी शक्ति दें कि वह रोग-कृमियों और इन के द्वारा उत्पन्न विष को नष्ट कर सके।

विश्राम

गम्भीर रोग की दशा में रोगी को रात- दिन बिस्तर में लेटा रहना चाहिये। बहुत से रोगी इसलिए पूर्ण रूप से अच्छे नहीं हो पाते कि जब उन की तबियत कुछ ठीक सी हुई और वे उठ खड़े हुए, चलने-फिरने लगे, काम-काज करने लगे और साधारण भोजन करने लगे।

यदि रोगी के पड़ोसी, मिलने-जुलने वाले और सगे-सम्बन्धी उसे बार-बार देखने न आएं, तो रोगी अधिक जल्दी ठीक हो सकता है। बात यह है कि ये लोग रोगी के लिए कुछ ऐसी खाने-पीने की चीजें और औषधियां ले आते हैं जिन का प्रयोग रोगी के लिए ठीक नहीं। ये लोग रोग को फैला कर दूसरों को भी हानि पहुंचाते हैं। बहुत से रोग संक्रामक होते हैं—एक से दूसरे को लग जाते हैं। रोगी के देखने के लिए आने वाले लोग उस से हाथ मिलाते हैं, या उस के बिस्तर पर बैठ जाते हैं, या उस के कमरे की चीजों को छूते हैं और इस प्रकार रोग-कृमि उन के हाथों और कपड़ों पर आ जाते हैं। वे इसी तरह अपने घरों को चले जाते हैं और रोग अन्य लोगों को भी लग जाता है। अच्छा तो यह हो कि रोगी की देख-भाल करने वाले दो-तीन व्यक्ति ही उस के कमरे में आएं-जाएं।

रोगी को साफ और ताजी हवा की आवश्यकता होती है; परन्तु उस से कमरे में आने-जाने वाले लोग सिगरेट या सिगार के धुएं से उस कमरे की हवा को गन्दा कर देते हैं।

प्रत्येक रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह खूब सोए। रोगी के कमरे की बत्ती देर तक नहीं जली रखनी चाहिये, बल्कि जल्दी ही बुझा देनी चाहिये जिस से रोगी सो सके।
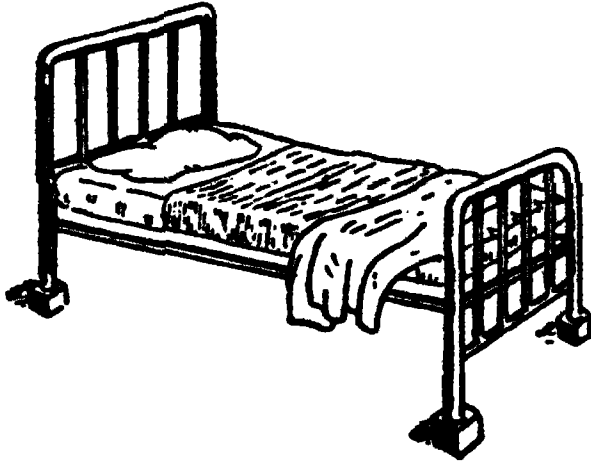
रोगी का बिस्तर। पलंग को ऊंचा करने के लिए लकड़ी की कटूटकों का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

रोगी का भोजन

रोगी की चिकित्सा में उचित भोजन बहुत आवश्यक है।

कुछ बीमारियों में रोगी साधारण भोजन कर सकता है, परन्तु बहुत से रोगों में—विशेषकर आमाशय तथा आंतों के रोगों में—उसे विशेष प्रकार का आहार करना चाहिये। चाहे कोई भी बीमारी क्यों न हो रोगी को खूब पानी पिलाना चाहिये। पानी को खौला कर ठंडा कर लेना चाहिये। ताजा पके हुए फल और फलों का रस रोगी के लिये बहुत लाभदायक है।

आंशिक रूप से उबाल कर—'पोच' कर के या जेली बना कर अंडे खिलाने से रोगी को बहुत लाभ होता है। अंडे को तोड़ कर थोड़े से खौलते पानी में डाल कर 'पोच' किया जाता है। अंडे के स्वच्छ भाग के सफेद होते ही, अंडे को खौलते हुए पानी में से निकाल लेना चाहिये। जेली बनाने के लिए कोई तीन पाव पानी एक बरतन में खौलने के लिए आग पर रख दीजिये। जैसे ही पानी खौलने लगे, उसे आग पर से उतार कर अलग रख दीजिये और उस में दो साबुत अंडे डाल दीजिये। आवश्यक आंच लगने पर दस-पन्द्रह मिनट में छिलके के अन्दर अंडे 'जेली' बन जाएंगे अर्थात् लसलसे हो जाएंगे। इस प्रकार तैयार किए अंडे जल्दी पच जाते हैं। अंडे से एक पेय बनता है जो जल्दी पच जाता है इसे 'एग नोग' (Egg-nog) कहते हैं। यह इस प्रकार बनता है कि अंडे की सफेदी को खूब फेंटा जाए यहां तक कि वह खूब उठ जाए अर्थात् कड़ा फेन बन जाए, फिर उस में जर्दी (पीला भाग) मिला दिया जाए और फिर फेंटा जाए। इस के बाद थोड़ी सी चीनी और

रोगी के पलंग पर आसानी से लगाई जाने वाली मेज।

एक दो चम्मच अनानास का रस डाल दिया जाए। फिर इस फेंटे हुए अंडे को आधे गिलास दूध या फलों के रस में मिला कर रोगी को दिया जाए।

दस्त, पेचिश आमाशय या आंतों के किसी गम्भीर रोग में कभी-कभी रोगी को केवल अंडे का पानी ही दिया जाता है। दो अंडों की सफेदी को खौला कर ठंडा किये हुए एक गिलास पानी में घोलने से यह तैयार हो जाता है। स्वाद के लिये इस में कागजी नीबू का या बड़े नीबू का थोड़ा सा सत मिला दीजिये।

"कंजी" (पचपचे चावल) या भुने हुए गेहूं के आटे की लपसी भी रोगी के लिये उत्तम आहार है, रोगी चाहे बच्चा हो चाहे बड़ा हो। खौलाया हुआ ताजा दूध, भुने हुए आलू, शक्कर डाल कर उबाले हुए फल, अरारूट की कंजी, डबल-रोटी के पतले टोस्ट रोगी के लिए उत्तम आहार हैं।

रोगी को खाने-पीने की जिन चीजों से परहेज करना चाहिये वे ये हैं—केक, मिठाइयां,

सामान्य प्रकार की मिठाइयां, मसालेदार सब्जी या गोश्त (मांस), काली या लाल मिर्च अदरक और बहुत नमक वाली चीजें।

रोगी के लिये भोजन बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा साफ भोजन बने जिस से रोगी की भूख बढ़े, और जो आसानी से पच सके।

यदि रोगी की दशा अधिक गम्भीर हो तो उसे एक कमरा अलग मिलना चाहिये। इस कमरे में रोशनी अधिक चाहिए। इस में दो या दो से अधिक खिड़कियां हों। हैजे, झिल्लीक-प्रदाह और लाल ज्वर आदि में रोगी एक ऐसे मकान में रखना चाहिये जिस में दूसरे लोग न लाल ज्वर आदि में रोगी को एक ऐसे मकान में रखना चाहिये जिस में दूसरे लोग न रहते हों; क्योंकि ये रोग इतने संक्रामक होते हैं कि रोगी के मकान में रहने वाले दूसरे लोगों को भी लग सकते हैं।

शरीर का तापमान नापना

त्वचा का स्पर्श कर के ही सदा पता नहीं लगाया जा सकता कि अमुक व्यक्ति को ज्वर है या नहीं ? इस को जानने के लिये थर्मामीटर लगा कर देखना चाहिये। थर्मामीटर ९० डिग्री से लेकर ११० डिग्री फ. तक के चिन्ह होते हैं। एक तीर का निशान ९८ डिग्री फ. पर होता है, यह स्वस्थ व्यक्ति का "टेम्परेचर" होता है। यदि थर्मामीटर का पारा १०० डिग्री या इस से ऊपर चला जाए, तो समझना चाहिये कि रोगी को ज्वर है। १०३ डिग्री का ज्वर ज्वर साधारण होता है और १०४ या १०५ डिग्री को बढ़ा हुआ ज्वर समझना चाहिए।

थर्मामीटर का प्रयोग करने के लिये उस के ऊपर के सिरे को अच्छी तरह पकड़िये। पारेवाला सिरा नीचे की ओर हो। उसे जल्दी-जल्दी कई बार इस प्रकार झटकिये मानो आप उंगलियों पर से कुछ फेंक रहे हों। ऐसा करने का मतलब यह है कि पारा थर्मामीटर के दूसरे सिरे पर आ जाए। तब थर्मामीटर का पारे वाला सिरा रोगी की जीभ के नीचे रख दीजिये। फिर रोगी से कहिये कि दांत न भींचे बल्कि मुंह बन्द कर ले। जीभ के नीचे थर्मामीटर तीन चार मिनट तक रक्खा रहने देना चाहिये।

बगल को पोंछ कर उस में थर्मामीटर लगाया जा सकता है। बांह को खूब दबा कर छाती के निकट रखिये।

बच्चे मुंह में रख कर थर्मामीटर को तोड़ न डालें इसलिए उसे कुछ इंच गुदा में घुसा कर या जांघ के बीच में लगाने से भी काम चल जाता है।

थर्मामीटर का प्रयोग करने से पूर्व और पश्चात् उसे साबुन और पानी से धो लेना चाहिये। गरम पानी का प्रयोग न कीजिये। पानी और साबुन से धो कर इसे शराब या लाइसोल के घोल में डाल कर धो लेना चाहिये। एक गिलास पानी में एक चम्मच शराब या लाइसोल हो।
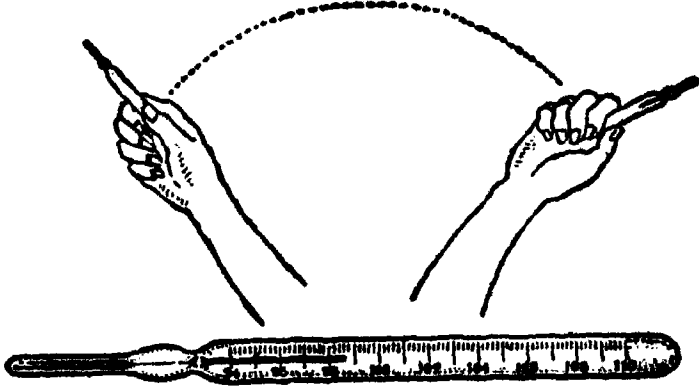
ऊपरः— थर्मामीटर को झटक कर पारा नीचे उतारने की रीति।
नीचेः— थर्मामीटर शरीर का प्रसम तापमान विदित कर रहा है।

नाड़ी

आयु के अनुसार नाड़ी की गति निम्नलिखित होनी चाहिये:—

पैदा होने पर	एक मिनट में १३०-१५० बार
१ से २ साल तक	एक मिनट में ११०-१२० बार
२ से ४ साल तक	एक मिनट में ९०-११० बार
६ से १० साल तक	एक मिनट में ९०-१०० बार
१० से १४ साल तक	एक मिनट में ८०- ९० बार
वयस्क व्यक्ति की	एक मिनट में ७२ बार

नाड़ी की धड़कनें गिनने के लिये तीन उंगलियों के सिरे कलाई के बाहरी सिरे से एक इंच भीतर की ओर अंगूठे से एक इंच नीचे को रखिये।

श्वास-गति

भिन्न-भिन्न आयु में श्वास-गति इस प्रकार होती है:—

पैदा होने पर	एक मिनट में ४० बार
२ वर्ष में	एक मिनट में २८ बार
४ वर्ष में	एक मिनट में २५ बार
१० वर्ष में	एक मिनट में २० बार
वयस्क व्यक्ति की	एक मिनट में १६ से १८ बार
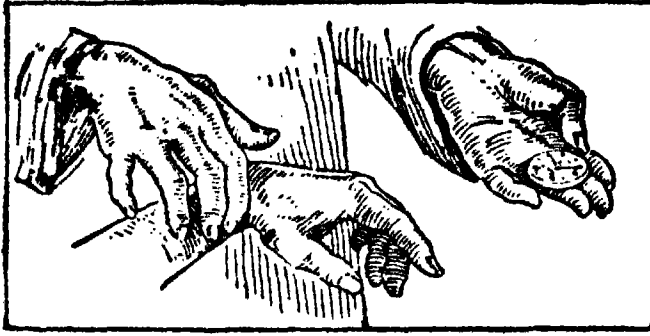
नब्ज या नाड़ी देखने की रीति

श्वास गिनने के लिये अपने एक हाथ में घड़ी लीजिये और दूसरा हाथ रोगी की छाती पर रखिये। प्रत्येक बार जब छाती फूले, तो गिनिये।

स्नान कराना

बहुत से लोग सोचते हैं कि रोगी को स्नान नहीं कराना चाहिये। यह एक बड़ी भारी गलती है क्योंकि रोग को स्वस्थ लोगों की अपेक्षा बार-बार स्नान कराने की आवश्यकता होती है। शरीर के एक भाग को स्नान करा के शीघ्र ही उसे सुखा देने से रोगी को सर्दी लगने का बिल्कुल भय नहीं रहता बहुत सी बीमारियों में तो स्नान कराना उतना ही उपयोगी है जितना औषधि का प्रयोग।

निःसंक्रमण (Disinfecting)

सामान्य संक्रामक रोगों के अध्याय में मल-मूत्र में के रोगाणुओं को नष्ट करने की विधि बताई गई है।

निःसंक्रमण की सब से अच्छी विधि है जलाना या उबालना। रोगी के थूक से भरे हुए कागज या कपड़े के टुकड़ों को जला देना चाहिये।

लगभग सभी पहनने के कपड़ों और बिस्तर की चादरों आदि को बिना हानि के उबाला जा सकता है। रोगी द्वारा प्रयुक्त वस्त्र-कपड़ों को जब अन्य लोग काम में लाएं तो उन्हें सदैव पहले उबाल लेना चाहिये।

मल-मूत्र को टीन के डिब्बों में बन्द कर के और उन्हें उबाल कर फेंकना चाहिये या मल-मूत्र में कूड़ा-करकट डाल कर जला देना चाहिये।

यदि कीटाणु अधिक समय तक सूर्य के प्रकाश में रहें तो वे मर जाते हैं। इस कारण रोगी के कमरे में अच्छी तरह सूर्य का प्रकाश आना चाहिये और रोगी के वस्त्रों एवं बिस्तरे को कई घंटे तक धूप में डाले रखना चाहिये।

जिस मकान के खिड़की-दरवाजे अच्छी तरह बन्द किये जा सकते हों, वहां निःसंक्रमण के लिए बढ़िया-से बढ़िया चीज होती है फॉर्मलडीहाइड (Formaldehyde or formalin) जो कपड़े, या बिछौने आदि धोए या उबाले न जा सकते हों, उन्हें अच्छी तरह बन्द होने वाले एक बक्स में रखिये। एक तह लगाइये और उस पर एक छोटा चम्मच भर फॉर्मेलिन (formalin) छिड़क दीजिये; फिर दूसरी तह लगाइये और उस पर भी इसी प्रकार फॉर्मेलिन छिड़क दीजिये। अब बक्स को अच्छी तरह बन्द कर दीजिये और इसी तरह चौबीस घंटे तक बन्द रक्खा रहने दीजिये।

"बाइक्लोराइड आव् मरकरी" (Bichloride of mercury) एक बहुत प्रचलित निःसंक्रामक या कीटाणु नाशक पदार्थ है। बहुत तेज विष होने के कारण बाजार में आसानी से नहीं बिक सकता। प्रायः इस की गोलियां बिकती हैं। तीन पाव पानी में इस की दो टिकियां डाल कर ऐसा घोल बनाइये जिस से १,००० भाग पानी और एक भाग "बाइक्लोराइड आव् मरकरी" हो। रोगी को छूने के बाद हाथ धोने के लिए यह घोल काम आ सकता है। जब तौलिये या रूमाल रोगी के थूक में भरे हों तो उन्हें आध घंटे तक इस में भिगो कर धोना चाहिये।

"कार्बोलिक एसिड" के घोल में प्रत्येक १०० भाग पानी में दो से लेकर ५ भाग तक कार्बोलिक एसिड के होते हैं। यह भी एक प्रचलित निःसंक्रामक या कीटाणुनाशक पदार्थ है।

लाइसोल भी बड़ा अच्छा कीटाणुनाशक द्रव्य है। इस के घोल में १०० भाग पानी और एक भाग लाइसोल हो। (एक गिलास पानी में एक छोटा चम्मच भर लाइसोल)

चूना भी एक उपयोगी निःसंक्रामक पदार्थ है। इसे घर के फर्श और चारों ओर डाल देते हैं। जब मल-मूत्र बाहर फेंक दिया जाए तो उस के ऊपर चूना डाल देना चाहिये।

नीला तूतिया (Sulphate of Copper) भी इस काम में लाया जा सकता है। इस का चम्मच चार गिलास पानी में मिलाना चाहिये।

जिस घर में कोई रोगी रह चुका हो वहां निःसंक्रमण के लिए फर्श, दिवारें और फरनीचर को पानी और साबुन से धो दिया जाए और यदि कार्बोबोलिक या "बाइक्लोराइड ऑव् मरकरी" मिल सके तो उपर्युक्त विधियों द्वारा उस का घोल बना कर उस से फर्श आदि धोने चाहिये।

अध्याय २२

बच्चों के रोग

दस्त या अतिसार (Diarrhœa)

साधारण अतिसार, गम्भीर अपच (अजीर्ण) और शिशु-विशूचिका (Cholera in fantum) जैसे कई रोगों का मुख्य लक्षण है दस्त या पतली टट्टी। परन्तु चूंकि इन सब का कारण और उपचार होता है, इसलिए इन सब की चर्चा एक साथ प्रस्तुत अध्याय में की जाएगी।

किसी-न-किसी प्रकार के अतिसार से प्रतिवर्ष हजारों बच्चों की मृत्यु हो जाती है। अतिसार कृमियों द्वारा लगता है। छोटे बच्चों के पाचन अवयव इतने कमजोर होते हैं कि वे कृमियों को नष्ट नहीं कर सकते। यह बात तो सभी जानते हैं कि वयस्क व्यक्ति की अपेक्षा बच्चे को मारने के लिए थोड़ा सा भी विष बहुत होता है। यह सत्य है कि थोड़ा सा गन्दा या दूषित, अपचनीय भोजन करने से वयस्क व्यक्ति को मामूली दस्तों की शिकायत हो सकती है, परन्तु बच्चे में यह अवस्था बहुत गम्भीर प्रकार की हो सकती है—यहां तक कि बच्चा मर भी सकता है। बहुत से लोग इस बात को नहीं समझते और वे बच्चे को सब प्रकार का भोजन दे देते हैं और सोचते हैं कि बच्चा भी बड़े की भांति कोई भी चीज खा सकता है।

बच्चों में दस्तों की आम शिकायत का एक दूसरा कारण यह है कि बच्चों को मुख्यतः दूध या लपसी आदि दी जाती है और इन पदार्थों में रोग-कृमि बहुत जल्दी बढ़ जाते हैं।

बच्चों को अधिकतर दस्त लग जाने का तीसरा कारण यह है कि उन्हें बहुत जल्दी ठंड लग जाती है और इसी सर्दी से उन्हें दस्त लग जाते हैं। बच्चों को बहुत गर्मी में भी सर्दी लग सकती है और इस कारण रात को कोई कपड़ा उन के पेट पर डाले रखना चाहिये जिस से पेट नंगा न रहे।

दस्तों में भोजन नहीं पचता और वह बिना रक्त में मिले, जिस से शरीर के विकास के लिये गर्मी और शक्ति मिलती है, अन्न-मार्ग में से निकल जाता है। इस रोग में बच्चा न केवल खाने से कोई शक्ति प्राप्त नहीं करता, बल्कि उस के शरीर का अधिक रस बाहर निकल जाता है। इसी से ऐसे रोगी बच्चे की टट्टी बहुत पतली और पानी के समान होती है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए छोटे बच्चों के इस रोग को कम गम्भीर

उचित ढंग अनुचित ढंग

नहीं समझना चाहिये, वरन् जब कभी पतला पानी जैसा दस्त आए तभी उस की उचित चिकित्सा करनी चाहिये।

दस्तों को रोकना

छोटे बच्चों को दस्त लग जाने के कारण जानकर समझदार माता-पिता को उन को रोकने में समर्थ होना चाहिये।

चारों ओर की गन्दगी

सब से पहले बच्चे को गन्दे फर्श या सड़क पर पड़ने, बैठने या खिसकने न दीजिये। विशेषकर मिट्टी और ईंट के फर्श बहुत गन्दे होते हैं। सड़कों और टट्टियों से जो गन्द और धूल जूतों के साथ फर्श पर आती है इस से फर्श बहुत ही गन्दे हो जाते हैं। यदि घर में जानवर हों तो वे भी फर्श की गन्दगी को बढ़ा देते हैं।

गन्दे घरों में रहने वाले बच्चों को लगने की अधिक सम्भावना रहती है। कमरे के कोनों और फर्नीचर के नीचे से धूल आदि का साफ कर के मकान साफ रखना चाहिये। यदि फर्श मिट्टी या ईंट का हो, तो उस के कोनों और फर्नीचर के नीचे चूना डाल दीजिये। मुर्गियों के बच्चों तथा दूसरे जानवरों को घर के भीतर न आने दीजिये। बच्चों को फर्श पर टट्टी-पेशाब कभी न कराइये। यदि फर्श भूमि से कुछ ऊंचा है तो उस भूमि को साफ रखना चाहिये। स्नान-गृह तथा रसोई-घर का गन्दा पानी भूमि पर नहीं फेंकना चाहिये। आंगन को बार-बार झाड़-बुहार कर साफ रखना चाहिये। गोबर के ढेर या कूड़े-कचरे या आंगन

की गन्दी नालियों में हजारों रोग-उत्पादक कृमि पलते हैं। जो छोटे-छोटे बच्चे आंगन में खेलते हैं उन के अन्दर ये कृमि घुस जाते हैं।

मक्खियां अतिसार फैलाती हैं

मक्खियां बच्चों को मार डालती हैं! वे मल, गोबर और कूड़े-कचरे के ढेर और सब गन्दे स्थानों से रोग कृमि लाकर बच्चे के भोजन पर छोड़ देती हैं। बच्चे के लिये भोजन तैयार करने के बाद ढंक कर रखना चाहिये ताकि मक्खियों से बचा रहे, क्योंकि जब कोई मक्खी बच्चे के दूध पीने की बोतल की चुसनी पर या उस के खाने पर आ बैठती हैं, तो उस पर गन्दगी और विषैले रोग-उत्पादक कृमि छोड़ जाती है। जब बच्चा दूध पीता है या वह खाना खाता है तो ये रोग-कृमि उस के पेट में चले जाते हैं और परिणाम यह होता है कि उसे दस्त लग जाते हैं। मक्खियों के विषय में और बहुत सी बातें और उन्हें नष्ट करने की विधि अध्याय १६ में दी जा चुकी हैं।

गन्दा दूध और दूध पिलाने की मैली बोतलें

रोग कृमियों को मारने के लिये दूध को उबालने की आवश्यकता अध्याय २० में बताई जा चुकी है। यदि बच्चे का दूध आदि उबाल कर साफ कर लिया जाए और फिर किसी बरतन में ढंक कर रख दिया जाए; और यदि दूध पिलाने की बोतल और चुसनी को बार-बार उबाल कर साफ रक्खा जाए, तो अतिसार और बहुत से अन्य रोगों से बच्चों को सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

बच्चों के बहुत से रोगों का कारण मक्खियां होती हैं।

अनुचित व अनियमित खान-पान

रोते हुए बच्चे को केक-मिठाइयां दे कर थोड़ी देर के लिये चुप कराया जा सकता है, परन्तु इन को खाकर दस्त और जो दूसरी बीमारियां लग जाती हैं उन के कारण बच्चे को घंटों रोना पड़ता है और अन्त में बच्चा मर भी सकता है। मक्खियों को मिठाइयां बहुत भाती हैं, इसलिए वे इन पर आ बैठती हैं, इन्हें खाती हैं और टट्टी और पैरों और टांगों में लिपटी हुई गन्दगी इन पर छोड़ जाती हैं। मिठाइयों आदि को मक्खियां ही नहीं गन्दा करतीं और खतरनाक बनाती, बल्कि सड़कों में की धूल और फेरी-वालों के हाथों से भी वे गन्दी हो जाती हैं। इसलिए सब से अच्छी बात यही है कि फेरी-वालों से बच्चों के लिये इस प्रकार की चीजें न खरीदी जाएं और यदि खरीदी जाएं तो ऐसी हों जो धो कर बच्चों को दी जा सकें। इस प्रकार की चीजें यदि बच्चे को असमय दी जाएं, तो दुगनी हानि होती है। प्रत्येक बच्चे को निश्चित समय पर खिलाना-पिलाना चाहिये। खान-पान के नियमित समयों के बीच कुछ नहीं देना चाहिये।

माता की किसी बीमारी के कारण, या माता के किसी औषधि के सेवन के फलस्वरूप, या माता के अपने दूध में गड़बड़ी पैदा करने वाली कोई चीज खाने-पीने से दूध पीते बच्चे को गम्भीर प्रकार के दस्त लग जाते हैं। दूध पीते बच्चे को दस्त लग जाने पर उस की सफल चिकित्सा के लिए इन बातों का मालूम करना आवश्यक हो जाता है कि कहीं माता को कोई ऐसा रोग तो नहीं, या कहीं माता ने किसी ऐसी औषधि का सेवन तो नहीं किया, या कोई ऐसी चीज तो नहीं खा-पी ली जिस ने बच्चे को दस्त लगा दिए हों।

छोटे बच्चों के अतिसार की चिकित्सा

सफल चिकित्सा के लिए ये तीन उपाय बहुत ही आवश्यक हैं:—

१. जब तक दस्त बन्द न हो जाएं, तब तक बच्चे को दूध किसी रूप में भी न दिया जाए।

२. उसे खूब पानी पिलाया जाए।

३. उस के अन्न-मार्ग को साफ किया जाए।

इन तीन उपायों के अतिरिक्त और भी कुछ उपाय हैं, परन्तु सब से पहले इन्हीं तीनों पर ध्यान देना चाहिये।

बहुत छोटे बच्चे को चाय का एक चम्मच भर और चार-से-पांच वर्ष तक के बच्चे को चाय के दो चम्मच भर अरंडी का तेल (Castor Oil) दीजिये।

दस्तों से पीड़ित बच्चा यदि दूध पीता हो, तो कम-से-कम पूरे एक दिन तक उसे दूध न दीजिये। ऐसे बच्चे का आमाशय और उस की आंतें दूध नहीं पचा सकतीं। जो दूध पचता नहीं वह अन्न-मार्ग में पड़ा रहता है और दस्तों के कृमियों का आहार बन जाता है जिस से और भी विष पैदा होता है।

दूध के बदले बच्चे को पीच (Rice Water) पिलाइये (देखिये परिशिष्ट, नुस्खा न. २८) अंडे की फिंटी हुई सफेदी (egg-albumin) मिलना पानी और खूब पका हुआ केला

कुचल कर दो-दो घंटे बाद दीजिये। इन चीजों के अतिरिक्त दस्त बन्द हो जाने तक और कुछ न दीजिये।

बच्चे को अच्छी तरह तरल पदार्थ (fluids) दिए जाएं क्योंकि दस्तों के वेग में जब हर बार बच्चे को दस्त होता है तो उस के शरीर से बहुत सा तरल पदार्थ निकल जाता है। यह तरल पदार्थ उस के खून से आता है; इसीलिए उसे खौला हुआ गरम पानी यथेष्ठ मात्रा में देना चाहिये। बीच-बीच में साधारण जल न देकर उसे पीच भी देनी चाहिये।

जब दस्त और कै (उल्टी) साथ-साथ होते हैं तो इस से पता चलता है कि शरीर कोई ऐसी चीज बाहर निकालने का प्रयास कर रहा है जो अन्न-मार्ग को हानि पहुंचा रही है। बच्चे के अन्न-मार्ग में सड़ा हुआ और अपचनीय भोजन ही दस्तों और कै का कारण होता है। जिस प्रकार आंख में मिर्च पड़ जाने पर आंख से पानी निकलने लगता है और आंख फड़कती है ताकि मिर्च को बाहर निकाल दे, उसी प्रकार अन्न-मार्ग भी पीड़ा पहुंचाने वाले पदार्थ को बाहर निकालना चाहता है। अन्न-मार्ग को साफ करने के लिए बच्चे को आध-आध घंटे बाद जितना खौला हुआ गरम पानी वह पी सके पिलाइये। यह पानी अन्न-मार्ग में पहुंच कर उसे साफ करने में सहायता देता है। डेढ़ पाव पानी में आधा चम्मच नमक मिला दीजिये। हर बार दस्त होने के बाद बच्चे को इसी नमकीन पानी का अनिमा दीजिये। (देखिये अध्याय २१) अनिमा देने के पानी का तापमान १०५ डिगरी फ. होना चाहिये। हर तीन घंटे बाद बच्चे के पेट को गर्म पानी की सेंक दीजिये। बच्चे को बिस्तर में चुपचाप लेटा रहना चाहिये। उसे बिस्तर से बिलकुल न उठने दीजिये क्योंकि कोई भी शारीरिक काम करने से रोग बढ़ जाता है।

एक दिन तक इस प्रकार चिकित्सा करके दस्त रोकने के लिए हर तीन या चार घंटे बाद गरम पानी का अनिमा और परिशिष्ट में न. ७ (ख) की औषधि का एक चम्मच चार-चार या पांच-पांच घंटे बाद दीजिये। श्वेतसार (Starch) का अनिमा देने के लिये श्वेत सार का घोल इस प्रकार बनता है: पहले कई चम्मच श्वेतसार (मक्का, चावल या गेहूं का) थोड़े से ठंडे पानी में मिलाइये और फिर एक गिलास पानी डाल कर उसे खौलने को रख दीजिये। फिर उसे ठंडा कर लीजिये। श्वेतसार का घोल काफी पतला होना चाहिये। सेंकने की क्रिया पहले दिन की चिकित्सा की भांति ही जारी रहे। पहले दिन की अपेक्षा रोगी को कम पानी देना चाहिये।

बच्चे के पेट को किसी हल्के कपड़े से ढंके रखना चाहिये जिस से कहीं ऐसा न हो कि बच्चे को सर्दी लग जाए और दस्तों की दशा और गम्भीर हो जाए।

बच्चे को जल्दी-जल्दी नहलाना चाहिये और उस के बिस्तर को साफ रखना चाहिये। मक्खियों से उसे बचाने के लिये उस के पलंग पर मच्छरदानी लगी रहनी चाहिये। जो चम्मच और बरतन रोगी बच्चा इस्तेमाल करता है उन्हें घर के दूसरे बच्चों को इस्तेमाल न करने दीजिये। रोगी के सब बरतनों और चम्मचों को उस के इस्तेमाल करने के बाद उबाल लेना चाहिये।

क्रीमो-सौक्सडाइन (Cremo-Suxidine) नाम की औषधि अतिसार के उपचार में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई है। डॉक्टर के आदेशानुसार ही उसे देना चाहिए। यदि दस्त

किसी प्रकार बन्द ही न हों, तो पीड़ा-शमन-औषधि (Paregoric) मिले "चपल-दुग्ध"* (Milk of bismuth) का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

मुंह आना

दूध पीते बच्चों में यह बीमारी आम होती है, क्योंकि बच्चे की दूध पीने की बोतल और चुसनी को साफ न रखने से ही यह होती है। अपनी उंगली पर जाली या पतला कपड़ा लपेट कर और उसे बोरिक एसिड के घोल में डुबा कर दूध पिलाने से पहले और बाद बच्चे का मुंह साफ कीजिये (देखिये परिशिष्ट, नुसखा नंबर १) एक या उस से अधिक वर्ष की आयु के बच्चे का मुंह आ जाने पर उस के मुंह को पोटोशियम क्लोरेट (Potassium chlorate) के सम्मिश्रित घोल से धोने पर बहुत लाभ होगा। यदि मुंह के अन्दर छोटे-छोटे सफेद छाले निकल आए हों तो फिटकरी का भस्म (देखिये परिशिष्ट, नुसखा नम्बर ८) लगाइये। यदि रोग निरन्तर बढ़ता जाए तो किसी योग्य डॉक्टर को दिखाना चाहिये।

उदर-शूल या वायु-शूल (Colic)

उदर-शूल के आक्रमण के साथ ही बच्चा अचानक जोर-जोर से रोने लगता है; ज्यों-ज्यों पीड़ा बढ़ती है, त्यों-त्यों वह अधिक जोर से रोता है और पीड़ा कम होने पर उस का रोना भी कम हो जाता है। आमाशय और आंतों में वायु भर जाती है और पेट तन जाता है और सख्त हो जाता है। इस पीड़ा के होने पर बच्चा अपनी जांघें सिकोड़ कर पेट के ऊपर ले जाता है। यह रोग प्रायः उन बच्चों को होता है जिन्हें ऊपरी दूध दिया जाता है या जिन को बार-बार दूध पिलाया जाता है या बहुत मीठा दूध दिया जाता है या ऐसा दूध दिया जाता है जिस में कोई कमी या दोष हो। बच्चों को ठीक तरह से न पकाया हुआ कोई भी भोजन देने से बहुधा उदर--शूल उत्पन्न हो सकता है।

चिकित्सा

चम्मच या बोतल से गरम पानी पिलाने से रोग जाता रहता है। कपड़े के टुकड़े को गरम करके बच्चे के पेट पर रखिये। यदि इस से भी लाभ न हो तो १०५ डिगरी फ. के तापमान के डेढ़ पाव पानी से बच्चे को अनीमा दीजिये। पानी में एक चम्मच नमक, दो चम्मच (एक औंस) ग्लिसरीन मिलाइये। अनिमे से आंतों का ऊपरी भाग साफ न हो सके, इस से अनिमे के अतिरिक्त एक खुराक अरंडी के तेल (Castor Oil) की भी देनी चाहिये। यदि शूल बार-बार हो, तो परिशिष्ट में दिये हुए नुस्खे नम्बर ७ (ख) की औषधि तीन दिन तक, दिन में दो-दो बार दीजिये।

नोटः आयुर्वेदिक ग्रंथों में Bismuth के लिए 'चपल' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार यहां Milk of bismuth के लिए 'चपल-दुग्ध' बनाया गया है—अनुवादक

गन्दे और अपचनीय भोजन से ही यह रोग होता है। इस उद्देश्य के लिए कि वह रोग फिर कभी न हो इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि भोजन साफ और अच्छा हो।

शरीर (पेशियों) में ऐंठन (Convulsions)

छोटे बच्चे में इस रोग के दौरे के कई कारण होते हैं, जैसे अनुचित और अपचनीय भोजन, सूखे का रोग, आंतों में परजीवी —parasites— (कृमि), मलेरिया और हैजा। इस का दौरा पड़ने पर मुंह या हाथों की पेशियां अकड़ने या ऐंठने लगती हैं, चेहरा अचानक पीला पड़ जाता है, आंखें स्थिर हो कर ऊपर को चढ़ जाती हैं, सिर पीछे को ढलक जाता है, हाथों की मुट्ठियां बंध जाती हैं और टांगें ऐंठन से ऊपर खिंच जाती हैं।

चिकित्सा

जितनी जल्दी हो सके बच्चे को नहलाने के लिये १०५ डिगरी फ. तापमान का पानी तैयार कीजिये। बच्चे को पानी में बिठाइये और उस के सिर पर ठंडे पानी में भिगो कर निचोड़ा हुआ कपड़ा रखिये। चूंकि यह रोग आंतों में सड़े हुए या अपचनीय भोजन के कारण होता है इसलिए बच्चे को गरम पानी में बिठाने के बाद उसे गरम पानी का अनिमा और चाय का एक चम्मच भर या इस से कुछ अधिक आरंडी का तेल (Castor Oil) देना लाभदायक सिद्ध होता है। बच्चे को दिये जाने वाले भोजन के विषय में विशेष सावधानी बरतिये क्योंकि यह रोग सड़े या अपचनीय भोजन से ही होता है। कभी गाय या बकरी का दूध बन्द करना आवश्यक हो जाता है और उस के बदले बाष्पीभूत दूध (Evaporated Milk) या बच्चों का कोई बना-बनाया खाना दिया जाता है। बालक की टट्टी पर बड़ा ध्यान देना चाहिये जिस से कब्ज को दूर किया जा सके।

सूखे का रोग

यह अस्थि-रोग है जो प्राय: ऊपरी दूध पीने वाले बच्चों को हो जाता है। जब बच्चा ६ से १५ महीने का होता है तब यह रोग होता है। "सिर के कोमल स्थान" (Fontanels) ठीक समय पर बन्द नहीं होते। टांगों की हड्डियां टेढ़ी हो जाती हैं। उदर प्राय: बढ़ जाता है और बच्चा कमजोर और छोटा रह जाता है। इस का कारण अक्सर बच्चे को धूप न लगना होता है।

चिकित्सा

यह रोग उचित भोजन—वह पदार्थ जिस की आवश्यकता हड्डियां बनने के लिये होती है—न मिलने के कारण होता है। अत: पहला काम उसे ठीक तरह का दूध देना होगा। दिन में कई बार उसे फलों का रस देना चाहिये। एक साल का या उस से अधिक आयु

के बच्चों को दूध के अतिरिक्त अंडे और फलों का रस भी देना चाहिये। दवा के रूप में इन बच्चों को प्रतिदिन हेलीबट लिवर आयल (Halibut Liver Oil) की १५ या २० बूंदें या शार्क लिवर आयल (Shark Liver Oil) चाय का एक चम्मच भर देना चाहिये। यह अच्छी तरह उबाले हुए दूध में या ऐसे ही दे देना चाहिये। कॉड लिवर आॅयल दिन में दो बार डेढ़ चम्मच तक दिया जा सकता है।

खांसी और जुकाम

बहुत से बच्चों को खांसी और सर्दी सदा सताया करती है। खांसी के कितने ही कारण हो सकते हैं। अतः यह सोच लेना महान् मूर्खता है कि कोई विशेष औषधि प्रत्येक प्रकार की खांसी का इलाज कर सकती है। खांसी को दूर करने की बहुत सी विज्ञप्त औषधियों में अफीम या मारफिया (Morphine) होता है। ये चीजें बहुत खतरनाक होती हैं, और उन्हें कभी बच्चों को नहीं देना चाहिये। खांसी का सब से अच्छा इलाज उस के कारण को नष्ट कर देना है। इस का कारण गद्दूद या गल-ग्रंथियां (Adenoids), या बढ़े हुए जाना गलसुए (Tonsils) या तालू का लम्बा और नरम हो जाना है। इन दशाओं में रोगी को किसी योग्य डॉक्टर के पास ले जाना चाहिये और गद्दूदों, गलसुए या तालू का इलाज करवाना चाहिए। खांसी सर्दी लग जाने से या फेफड़ों के क्षय रोग से भी होती है। हर दशा में चिकित्सा का उद्देश्य खांसी के कारण को नष्ट करना होना चाहिये। यदि कारण ठीक तरह से मालूम न हो सके तो परिशिष्ट (न. ३१) में वर्णित बफारे (the steam inhalation) से अवश्य लाभ होगा।

जुकाम और उस की चिकित्सा

सब से पहले गरम पानी के अनिमे से पेट को साफ कर लीजिये। (देखिये अध्याय २१) अनिमे के साथ एक चम्मच कैस्टर आयल को भी दीजिये। (बच्चों को यदि संतरे के रस या किसी दूसरे फल के रस में कैस्टर आयल मिला कर दिया जाए तो वह उसे आसानी से पी लेगा)। बच्चे को कोई गरम चीज पीने को दीजिये, या तो एक-दो प्याले फलों का (मीठी मुसम्मियां हों तो अच्छा है) गरम रस या कोई गरम शोरबा (Soup)। बच्चे को बिस्तरे पर लिटा दीजिये। उसे उस कमरे में रहना चाहिये जिस की खिड़कियां खुली हों और जहां रोशनी और हवा ठीक से आ सके। कुछ दिन तक उस का भोजन कम कर दीजिये। पसीना निकल जाने के पश्चात् बच्चे के शरीर को अच्छी तरह अंगोछ कर उसे सुखा डालिये। यदि खांसी बन्द न हो तो सेंकों का प्रयोग (देखिये अध्याय २१) आवश्यक हो जाएगा। यह सेंक दिन में दो बार छाती पर १५ मिनट तक देना चाहिये। यह काम ऐसे कमरे में करना चाहिये जहां प्रत्यक्ष रूप से रोगी पर हवा न आए। जब तक खांसी दूर न हो जाए तब तक चिकित्सा लगातार करनी आवश्यक है। सर्दी की चिकित्सा यदि यत्नपूर्वक न की जाए तो यह फेफड़ों का गम्भीर रोग बन जाएगा। सर्दी का रोग बिगड़ कर निमोनिया का रूप धारण कर लेता है और कभी छाती के गह्वर में पीप जमा हो जाती है या क्षय रोग हो जाता है।

अध्याय २३

उचित बाढ़

सामान्यतया बच्चों को प्रति मास एवं प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होना चाहिये। साधारणत: हर महीने बच्चे एक ही स्थिर गति से नहीं बढ़ते, प्रत्युत कुछ समय तक तेजी से बढ़ते हैं और फिर अगली बाढ़ के वेग के लिये पर्याप्त ऊर्जा संचय करने के लिये रुक कर आराम लेते मालूम पड़ते हैं। अस्तु, सारे बाल्यकाल में तथा बचपन से कौमार्य अवस्था में बच्चों की बाढ़ की प्रक्रिया समान रूप से चालू रहनी चाहिये। यदि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक-ठीक बना रहे, तो नियमित रूप से उस का वजन भी बढ़ना चाहिये।

अनेक बार किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि ऊंचाई, वजन और उम्र का परस्पर निश्चित सम्बन्ध होता है। ये सम्बन्ध लड़कों और लड़कियों के लिए इस के साथ दी हुई तालिका में प्रदर्शित किए गए हैं।

यह बात जान लेनी चाहिये कि यौवनारम्भ-काल में बालक की ऊंचाई और वजन में जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। लड़कों की अपेक्षा लड़कियां जल्दी यौवनारम्भ-काल को प्राप्त हो जाती हैं। ११ या १२ वर्ष की अवस्था की बालिका उसी अवस्था वाले या अपने से एक दो वर्ष बड़े बालक की अपेक्षा कद में बड़ी और प्रत्येक दृष्टि से अधिक परिपक्व (विकसित) हो सकती है। यदि किसी कुटुम्ब में ऐसा हो तो चिन्ता की कोई बात नहीं। बालक को इन दिनों इस बात का विश्वास दिलाया जाए या इस अवस्था को प्राप्त होने से पहिले ही उसे सब बातें समझा कर तैयार कर दिया जाए, जिस से वह अपनी बहन का अपनी अपेक्षा अधिक तेज रफ्तार से बढ़ना स्वाभाविक बात समझे।

दी गई तालिकाएं बड़े विश्वास के साथ प्रयोग में लाई जा सकती हैं, यद्यपि स्वभावत: यह बात स्मरणीय है कि कुछ जातियां लम्बी होती हैं और कुछ छोटी (नाटी)। इसी प्रकार कुछ कुटुम्ब के सदस्य लम्बे होते हैं तो कुछ के छोटे (नाटे)। अतएव ऊंचाई, वजन और अवस्था पर विचार करते समय ये जातीय अथवा पारिवारिक अंतरों का ध्यान रखना चाहिये। यह भी महत्वपूर्ण बात है कि किसी बच्चे की ऊंचाई और वजन की वृद्धि में किसी गम्भीर रोग से रुकावट पड़ सकती है, परन्तु उचित देख-रेख और पोषक भोजन द्वारा बीमारी के समय की कमी पूरी हो जानी चाहिये। यह नितांत सत्य है कि लम्बे समय तक पोषक भोजन की कमी से बालक की वृद्धि सदा के लिये कुंठित हो सकती है— जिस से वह उस ऊंचाई और वजन को कभी पूरा नहीं कर सकता जो वह साधारणतया

बालकों के लिये ऊंचाई तथा आयु की तालिका

इंचों में ऊंचाई	५ वर्ष	६ वर्ष	७ वर्ष	८ वर्ष	९ वर्ष	१० वर्ष	११ वर्ष	१२ वर्ष	१३ वर्ष	१४ वर्ष	१५ वर्ष	१६ वर्ष	१७ वर्ष	१८ वर्ष	१९ वर्ष
३८	३४	३४													
३९	३५	३५													
४०	३६	३६													
४१	३८	३८	३८												
४२	३९	३९	३९	३९											
४३	४१	४१	४१	४१											
४४	४४	४४	४४	४४											
४५	४६	४६	४६	४६	४६										
४६	४७	४८	४८	४८	४८										
४७	४९	५०	५०	५०	५०	५०									
४८		५२	५३	५३	५३	५३									
४९		५५	५५	५५	५५	५५	५५								
५०		५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८							
५१			६०	६१	६१	६१	६१	६१							
५२			६३	६४	६४	६४	६४	६४	६४						
५३			६६	६७	६७	६७	६७	६८	६८						
५४				७०	७०	७०	७०	७१	७१	७२					
५५				७२	७२	७३	७३	७४	७४	७४					
५६				७५	७६	७७	७७	७७	७८	७८	८०				
५७					७९	८०	८१	८१	८२	८३	८३				
५८					८३	८४	८४	८५	८५	८६	८७				
६०						९१	९२	९२	९३	९४	९५	९६			
५९						८७	८८	८९	८९	९०	९०	९०			
६१							९५	९६	९७	९९	१००	१०३	१०६		
६२							१००	१०१	१०२	१०३	१०४	१०७	१११	११६	
६३							१०५	१०६	१०७	१०८	११०	११३	११८	१२३	१२७
६४								१०९	१११	११३	११५	११७	१२१	१२६	१३०
६५								११४	११७	११८	१२०	१२२	१२७	१३१	१३४
६६									११९	१२२	१२५	१२८	१३२	१३६	१३९
६७									१२४	१२८	१३०	१३४	१३६	१३९	१४२
६८										१३४	१३४	१३७	१४१	१४३	१४७
६९										१३७	१३९	१४२	१४६	१४९	१५२
७०										१४३	१४४	१४५	१४८	१५१	१५५
७१										१४८	१५०	१५१	१५२	१५४	१५९
७२											१५३	१५५	१५६	१५८	१६३
७३											१५७	१६०	१६२	१६४	१६७
७४											१६०	१६४	१६८	१७०	१७१

बालिकाओं के लिये ऊंचाई तथा आयु की तालिका

इंचों में ऊंचाई	५ वर्ष	६ वर्ष	७ वर्ष	८ वर्ष	९ वर्ष	१० वर्ष	११ वर्ष	१२ वर्ष	१३ वर्ष	१४ वर्ष	१५ वर्ष	१६ वर्ष	१७ वर्ष	१८ वर्ष
३८	३३	३३												
३९	३४	३४												
४०	३६	३६	३६											
४१	३७	३७	३७											
४२	३९	३९	३९											
४३	४१	४१	४१	४१										
४४	४२	४२	४२	४२										
४५	४५	४५	४५	४५	४५									
४६	४७	४७	४७	४८	४८									
४७	४९	५०	५०	५०	५०	५०								
४८		५२	५२	५२	५२	५३	५३							
४९		५४	५४	५५	५५	५६	५६							
५०		५६	५६	५७	५८	५९	६१	६२						
५१			५९	६०	६१	६१	६३	६५						
५२			६२	६४	६४	६४	६५	६७						
५३			६६	६७	६७	६८	६८	६९	७१					
५४				६९	७०	७०	७१	७१	७२					
५५				७२	७४	७४	७४	७५	७७	७८				
५६					७६	७८	७८	७९	८१	८३				
५७					८०	८२	८२	८२	८४	८८	९२			
५८						८४	८६	८६	८८	९३	९६	१०१		
५९						८७	९०	९०	९२	९६	१००	१०३	१०४	
६०						९१	९५	९५	९७	१०१	१०५	१०८	१०९	१११
६१							९९	१००	१०१	१०५	१०८	११२	११३	११६
६२							१०४	१०५	१०६	१०९	११३	११५	११७	११८
६३								११०	११०	११२	११६	११७	११९	१२०
६४								११४	११५	११७	११९	१२०	१२२	१२३
६५								११८	१२०	१२१	१२२	१२३	१२५	१२६
६६									१२४	१२४	१२५	१२८	१२९	१३०
६७									१२८	१३०	१३१	१३३	१३३	१३५
६८									१३१	१३३	१३५	१३६	१३८	१३८
६९										१३५	१३७	१३८	१४०	१४२
७०										१३६	१३८	१४०	१४२	१४४
७१										१३८	१४०	१४२	१४४	१४५

आवश्यक वृद्धि के समय ठीक-ठीक प्रकार का भोजन प्राप्त करने पर सुगमता से प्राप्त कर सकता है।

ऊंचाई, वजन और उम्र की तालिका बुद्धिमता से प्रयोग करने के लिये सब से पहले ऊंचाई को लेना चाहिये। दीवार पर सही प्रकार अंकित नाप लगा दी जाए। इस के लिये दो गजों या फीते को दीवार के साथ बांध दिया जाए या ठीक-ठीक प्रकार से खींचे हुए पैमाने का प्रयोग किया जा सकता है। बच्चे के जूते उतरवा कर उसे दीवार के सहारे इस प्रकार खड़ा कीजिये कि उस की एड़ियां कंधे और सिर दीवार को छूते रहें। तब लकड़ी का एक समकोण टुकड़ा (कभी-कभी एक छोटा हल्का बक्सा या बढ़ई की गुनिया) दीवार से बच्चे के सिर के ऊपर नापने के पैमाने के सहारे रखिये। इस से ऊंचाई का ठीक-ठीक पता चल जाएगा क्योंकि यदि लकड़ी का समकोण टुकड़ा दीवार के सहारे चपटा हो और बच्चे के सिर को ठीक तरह छूता हो तो ऊंचाई सही की जा सकती है। ऊंचाई बच्चे के सिर की चोटी (चांद) से लेनी चाहिये। गुंथे बालों के ऊपर से नहीं।

इस के बाद बच्चे की आयु का निश्चय करना चाहिये। बच्चे की उम्र का हिसाब लगाने में गिनती के लिए सब से निकट का जन्म-दिन गिनना चाहिये। इस तालिका में जन्म के बाद एक वर्ष के बालक की अवस्था एक वर्ष की मानी गई है।

तीसरी बात इस बालक के ठीक-ठीक वजन की जानकारी के लिये उम्र और ऊंचाई को देखना चाहिये। पहले बाएं स्तम्भ में ऊंचाई ज्ञात कीजिये। इस प्रकार ज्ञात किया हुआ अंक यह विदित करेगा कि इस बच्चे की ऊंचाई और उम्र के अनुसार इस का वजन क्या होना चाहिये। चौथी बात—बच्चे का वजन लेना—बच्चे को सामान्य कपड़े पहनाइये परन्तु जूते पहनाने की आवश्यकता नहीं। वजन की मशीन के बीच में उसे खड़ा कर दीजिये। आसानी से बच्चे का वजन ले लिया जा सकता है, परन्तु नियमित रूप से मासिक वजन लेने पर ऊंचाई और वजन का लेखा रखने वाला व्यक्ति ही बच्चे के वजन का भी लेखा रक्खे।

इस के बाद वह व्यक्ति नियमित तालिका के रूप में वजन, ऊंचाई और अवस्था का लेखा रक्खा करे।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ये तालिकाएं किसी दी हुई अवस्था में ऊंचाई और वजन के खास नमूने न हो कर मुख्यत: अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती हैं। महत्व की बात जिस पर बल दिया जाना चाहिये प्रतिमास वजन में वृद्धि और किशोरावस्था प्राप्त होने तक ऊंचाई इत्यादि की सर्वांगीण उन्नति का अध्ययन है।

ऊंचाई और वजन की वृद्धि के सम्बन्ध में माता-पिता तथा शिक्षकों को भोजन के तत्व और बच्चों की बाढ़ से उन के सम्बन्धों का अध्ययन करना चाहिये। इस के अतिरिक्त स्वास्थ्य के अनुकूल आदतों और बच्चों की ऊंचाई तथा वजन पर उन के प्रभाव का भी अध्ययन करना चाहिये।

अध्याय २४

सामान्य संक्रामक रोग

झिल्लीक-प्रदाह (Diptheria)

यह एक बहुत खतरनाक बीमारी है जो बच्चों को हो जाती है। यह झिल्लीक-प्रदाह के कृमियों द्वारा होती है। गले और नाक में जहां ये कृमि इक्ट्ठे हो जाते हैं, वहां न केवल घाव कर देते हैं बल्कि एक प्रकार का विष भी पैदा करते हैं जिस से हृदय को हानि पहुंचती है।

झिल्लीक-प्रदाह संक्रामक रोग है। जिन्हें यह रोग हो या जिन को हाल में ही हो चुका हो और जिन के गले में अभी तक रोग-कृमि हों और जो छींक कर या खांस कर उन्हें फैलाते हों, उन से बच्चों को यह बीमारी लग जाती है।

बच्चों को यह रोग उन चम्मचों और प्यालों से भी लग जाता है जिन का प्रयोग पहले रोगी द्वारा किया जा चुका हो और फिर जिन को खौलते हुए पानी से साफ न किया गया हो। दूसरों के खेले हुए खिलौने, विशेषकर सीटियां और ऐसी चीजें जिन्हें बच्चे मुंह में डाल लेते हैं, इस बीमारी को फैलाने के साधन होते हैं।

झिल्लीक-प्रदाह से पीड़ित जब कोई बच्चा खांसता या छींकता है तो वह कमरे की हवा में हजारों-लाखों झिल्लीक-प्रदाह के कृमि फैलाता है। यही कारण है कि यदि कोई दूसरा बच्चा उस कमरे में आए तो निश्चित रूप से उसे यह रोग लग जाएगा। यदि यह रोग मुहल्ले में फैला हुआ हो तो अपने बच्चों को उन घरों के पास तक न जाने दीजिये जहां रोगी बच्चे हों। झिल्लीक-प्रदाह फैला हुआ हो तो बच्चों को घर ही में रखना चाहिये और बाहर जा कर दूसरे बच्चों के साथ नहीं खेलने देना चाहिये।

लक्षण

झिल्लीक-प्रदाह का प्रथम लक्षण गला दुखना है। यह लक्षण रोग लगने दो दिन से सात दिन के बाद प्रगट होता है। यदि आप के पड़ोस में झिल्लीक-प्रदाह फैला हुआ हो और आप का बच्चा गला दुखने की शिकायत करे, तो उस की उपेक्षा न कीजिये, बल्कि गले का निरीक्षण कीजिये। हो सकता है कि पतली चपटी साफ लकड़ी या बांस के टुकड़े से जीभ को दबा कर गले को देखना आवश्यक हो

पहले-पहल गला गहरे लाल रंग का दिखाई देगा, परन्तु तीसरे दिन गलसुओं या तालमूलों (Tonsils) पर धूसर रंग की झिल्ली सी दिखाई देगी (पृष्ठ २० पर चित्र देखिये । बच्चे को निगलने में भी कठिनाई होती है और थोड़ा-बहुत ज्वर भी रहता है ।

चिकित्सा

ज्योंही पता चले कि बच्चे को झिल्लीक-प्रदाह है त्योंही किसी योग्य डॉक्टर को बुलाना चाहिये । यह सोच कर कि हम स्वयं ही रोग की चिकित्सा कर लेंगे डॉक्टर को बुलाने में विलम्ब न कीजिये । केवल एक औषधि है जो इस को ठीक करती है और वह है 'डिप्थीरिया एन्टी-टॉक्सिन' (Diptheria Anti-toxin) । यह रक्त-रस (Serum) घोड़े के रक्त में से निकाला जाता है और झिल्लीक-प्रदाह के विषैले कृमियों का अवरोध करता है । जितनी जल्दी इस का प्रयोग किया जाए, उतना ही अच्छा है । यदि इसे बीमारी के पहले दिन ही लगा दिया जाए तो १०० में से ९९ रोगी अच्छे हो जाएंगे । यदि बीमारी के तीसरे या चौथे दिन लगाया गया तो १०० में से ७५ से लेकर ८५ तक ठीक हो जाएंगे, और यदि इस का प्रयोग बिलकुल न किया गया तो रोग ग्रस्त बच्चों में से आधे मर जाएंगे ।

यह तरल औषधि है और मांस में सुई (Hypodermic Needle) द्वारा प्रविष्ट की जाती है । इसे डॉक्टर या प्रशिक्षित नर्स ही ठीक तरह लगा सकती है । कभी-कभी डॉक्टर की सहायता पाना सम्भव नहीं हो सकता इस दशा में बच्चे को मरने देने की अपेक्षा माता-पिता को स्वयं उस के यह टीका लगा देना चाहिये । टीका लगाने की सुई और 'एन्टी- टॉक्सिन,' ये दोनों चीजें औषधि-विक्रेताओं की दूकानों से मिल सकती हैं । इस का टीका इस प्रकार लगाइये । टीका लगाने की सुई को कुछ मिनट तक खौला लीजिये, फिर कुछ मिनट तक एन्टी टॉक्सिन की छोटी सी शीशी को शराब में डाले रख कर शीशी का एक सिरा तोड़ दीजिये और सुई में औषधि भर लीजिये । कंधे के कुछ इंच नीचे बांह की बाहर की ओर की त्वचा को साबुन और गरम पानी से अच्छी तरह धोइये । फिर उसे सुखा कर थोड़ी 'टिंक्चर आव् आयोडीन' लगाइये । त्वचा को उंगलियों में दबा कर ऊपर कीजिये । फिर टीके की सुई को त्वचा की सतह की सीध में रख कर एक इंच तक इस प्रकार प्रविष्ट कीजिये कि वह त्वचा में हो कर त्वचा और मांस के बीच के स्थान में पहुंचे ३,००० ५,००० यूनिट का टीका लगाइये । यदि १२ घंटे तक कोई विशेष लाभ दिखाई न दे, तो, ३,००० से ५,००० यूनिट तक का एक और टीका लगाइये । गंभीर परिस्थिति में टीका तीसरी बार भी लगाया जा सकता है ।

ज्योंही बच्चे को झिल्लीक-प्रदाह होने का पता चले, त्योंही उसे अलग कमरे में लिटा दीजिये और दूसरे बच्चों को उस के पास बिलकुल न आने दीजिये । रोगी की देख-भाल करने वाले दो-तीन व्यक्तियों के अतिरिक्त वहां और कोई न आए । बच्चे की सेवा-शुश्रूषा करने के लिये जो कोई आए उसे अपने कपड़ों के ऊपर ढीला-ढाला एक और वस्त्र पहन लेना चाहिये और बाहर जाते समय उस वस्त्र को उसी कमरे में छोड़ जाना चाहिये । कमरे के बाहर जाने से पूर्व उसे हाथ-मुंह अच्छी तरह धो लेना चाहिये क्योंकि

वह दूसरे लोगों से मिलेगा और परिवार के दूसरे सदस्य जिन वस्तु का प्रयोग करते हैं वह उन को छूएगा। कोई खिलौना या कपड़ा दूसरों के प्रयोग के लिये कमरे से बाहर न जाने दीजिये।

रोगी बच्चे के खाने-पीने के बरतनों को उसी कमरे में रखना चाहिये और हर बार काम में ला चुकने के बाद उन्हें खौलते हुए पानी में धोना चाहिये। रोगी को तरल पदार्थ दीजिये।

बालक को नाक पोंछते या छिनकते समय कागज या पुराने कपड़ों का प्रयोग करना चाहिये; इन्हें बाद में जला देना चाहिये।

बच्चे को चुपचाप बिस्तर में लिटाए रखना आवश्यक है। जब तक बच्चा पूर्ण रूप से अच्छा न जाए तब तक उसे बिस्तरे से उठ कर खेलने-कूदने न दीजिये। बाहर खेलने-कूदने और चलने-फिरने से रोग के विष से हृदय को हानि पहुंच सकती है, और इस के फलस्वरूप बच्चे की अचानक मृत्यु भी हो सकती है।

परिशिष्ट में दिए हुए नुसखे न. १० या ९ की दवा घंटे-घंटे भर बाद फुरेरी से अन्दर गले में लगाइये। नुसखे न. १० की दवा रबड़ की पिचकारी द्वारा धीरे-धीरे नाक में डाली जाए। बच्चे का गला या मुंह साफ करते समय नर्स को अपने मुंह और नाक पर कई तहें किया हुआ स्वच्छ कपड़ा बांध लेना चाहिये।

गले के सामने और दोनों ओर गरम पानी की सेंकों से भी पीड़ा कम हो जाती है। बच्चे को गरम पानी का अनिमा प्रतिदिन देना चाहिये। बच्चा जितना पानी और फलों का रस पी सके पिलाइये।

जब परिवार में किसी बच्चे को झिल्लीक-प्रदाह हो जाए, तो परिवार के दूसरे सदस्यों को 'अन्टी टॉक्सिन' का टीका लगवा लेना आवश्यक होता है, क्योंकि यह पता चला है कि जो दवा झिल्लीक-प्रदाह का इलाज करती है वही उसे रोक भी सकती है। ५०० से लेकर १००० यूनिट तक का टीका बच्चे के और १००० से २००० तक का टीका वयस्क के लगना चाहिये। यदि एक महीने बाद भी यह रोग पड़ोस से न जाए तो इन टीकों को फिर लगवाना आवश्यक हो जाता है।

ज्योंही बच्चा इस रोग से छुटकारा पा ले त्योंही उस के कपड़े, बिस्तर और कमरे का विसंक्रमण करना चाहिये जिस से दूसरों को यह बीमारी न लग सके। (देखिये विधि, अध्याय २१ में)।

इस ज्ञान-वृद्धि के युग में प्रत्येक बालक को झिल्लीक-प्रदाह जैसे भयंकर रोग से बचाए रखने के लिए 'डिप्थीरिया टॉक्साइड' का टीका लगवा देना चाहिये। आठ महीने से कम की अवस्था के बच्चे के—अच्छा हो कि चार महीने के बच्चे के---किसी डॉक्टर या प्रशिक्षित नर्स से यह टीका लगवा दिया जाए।

खसरा (Measles)

यह एक छूत का बहुत आम रोग है। प्राय: इस रोग को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, परन्तु जिस बच्चे को खसरा हो उस का बहुत ध्यान रखना चाहिये जिस से इस के बाद ही रोगी को कोई और भीषण रोग न आ घेरे।

खसरा बहुत जल्दी फैल जाता है। यदि कोई बच्चा खसरा वाले बालक के कमरे में आए या उस के समीप आ जाए तो दस या बारह दिन में उस बच्चे को भी इस रोग का शिकार बनना पड़ेगा। इस के पहले लक्षण नाक में सर्दी लगना, नाक का बहना, आंखों का लाल होना और कुछ-कुछ बुखार आना है। रोग आरम्भ होनेके तीन-चार दिन पश्चात् खसरे के दाने निकल आते हैं। पहले-पहल ऐसे छोटे-छोटे लाल दाने निकल आते हैं। ये दाने फैल जाते हैं और एक या दो दिन में सारे शरीर में हो जाते हैं। चेहरे के दाने बड़े-बड़े हो जाते हैं और कई दाने मिल कर एक बड़ा सा चकत्ता बना देते हैं।

खसरे के बाद जिन खतनाक बीमारियों का डर रहता है वे कानों या फेफड़े या गुर्दे की बीमारियां हैं। अधिक गम्भीर दशाओं में हृदय पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

चिकित्सा

कोई भी औषधि खसरे को ठीक नहीं कर सकती। यदि बच्चे की देख-भाल ठीक तरह से रक्खी जाए तो दाने निकलने के पश्चात् यह रोग अच्छा हो जाता है। बच्चे को साफ कमरे में साफ-सुथरे बिस्तर पर लेटना चाहिये। उसे गर्म रखना चाहिये, क्योंकि जब बच्चे को खसरा निकलता है तो सदैव उस के ठंड खा जाने का डर रहता है। यदि उसे सर्दी लग गई तो फेफड़ों की गम्भीर बीमारी हो सकती है। दूसरे बच्चों को कमरे के अन्दर नहीं आने देना चाहिये क्योंकि उन को भी यह रोग लग जाने का डर रहता है।

जब तक दाने न निकल आएं तब तक प्राय: यह पता नहीं चलता कि उसे कौन सा रोग है। ऐसी दशा में बच्चे को चाय के दो चम्मच कैस्टर आयल और (१०८ डिगरी फ. के तापमान के) पानी का अनिमा दीजिये। मुंह साफ करने की औषधि से बच्चे का मुंह दिन में कई बार साफ कीजिये। (परिशिष्ट दिए गए नुसखे न. ९ का प्रयोग कीजिये)। नमक के पानी (डेढ़ पाव पानी में एक चम्मच नमक डाल कर) से नाक के भीतरी भाग को दिन में कई बार फव्वारे की पिचकारी से साफ करना चाहिये। यदि छाती में किसी प्रकार का दर्द हो या खांसी हो तो दिन में दो बार छाती सेंकिये। डॉक्टर को बुला लेना चाहिये जिस से वह सल्फा ड्रग्ज (Sulpha Drugs) या पीनीसिलिन (Penicillin) का प्रयोग करे। इन से निमोनिये का खतरा नहीं रहता। डॉक्टर इन दवाइयों की उचित खुराक जानता है जो बच्चे की उम्र, उस के स्वास्थ्य और उस की दशा पर निर्भर होती है।

खसरे के समय नेत्रों का ध्यान रखना चाहिये। नेत्रों की रक्षा के लिये कमरे को अंधेरा रखना चाहिये; बोरिक एसिड के घोल (देखिये परिशिष्ट नुसखा न. १) से आंखें दिन में कई बार धोइये। आंखें लाल और फूल जाने पर उन का पूरा इलाज अध्याय ३ में दी हुई अधिसूचनाओं के अनुसार करना चाहिये।

इस बात को सदा याद रखिये कि खसरा एक गम्भीर रोग है जिस से बहुत से बच्चों की मृत्यु हो जाती है। जब रोग पड़ोस में फैला हुआ हो तो माता-पिता को अपने बच्चों को ऐसे स्थानों पर नहीं आने देना चाहिये जहां इस रोग के लग जाने का खतरा हो। जब परिवार में एक बच्चे को खसरा हो जाए तो उसे अलग कमरे में रखिये जिस से परिवार के दूसरे बच्चे इस रोग से बचे रहें।

मोतिया-चेचक (Chicken-pox)

मोतिया-चेचक भी छूत की बीमारी है, परन्तु यह बहुत भयंकर नहीं होती। धड़, खोपड़ी या कलाई पर पहले कुछ दाने निकलने लगते हैं। इस के दाने बहुत कुछ शीतला (Small-pox) के से होते हैं। इस की चिकित्सा यही है कि बच्चा जितना पानी पी सके पिलाइये, और गरम पानी के अनिमे से उस का पेट प्रतिदिन साफ कीजिये। (देखिये अध्याय २१)

जब दानों में पानी भर जाए तो उन पर वैसलीन लगानी चाहिये (देखिये परिशिष्ट नुसखा न. ११)। इन दानों को खुजाने न दीजिये नहीं तो दाग पड़ जाएंगे। नुसखे न. १ के अनुसार आंखों को दिन में तीन बार धोना चाहिये।

कन-सुए (Mumps)

इस रोग का पहला लक्षण यह है कि कान के नीचे पीड़ा होने लगती है। थोड़ा सा बुखार भी आ जाता है। कोई वस्तु चबाने या निगलने से यह पीड़ा और भी बढ़ जाती है। एक या दोनों कानों के नीचे या सामने थोड़ी सूजन दिखाई देने लगती है। यह सूजन बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाती है। कुछ दिन बाद यह सूजन कम होने लगती है और प्रायः एक सप्ताह में गायब हो जाती है।

इस की चिकित्सा में इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि बच्चे को ठंड न लग जाए। नुसखे न. १० के अनुसार मुंह को कई बार धोइये। (देखिये परिशिष्ट) सूजे भाग को सेंकने से दर्द कम हो जाता है। रोगी को दूसरे लोगों से अलग रखना चाहिए।

इस बात को याद रखना चाहिये कि जब तक सूजन बिल्कुल उतर न चुके, तब तक रोगी को अक्रिय रहना चाहिये, नहीं तो पुरुष-जननेंद्रियों को सदा के लिए बहुत भारी आघात पहुंच सकता है।

शीतला (Small-pox)

सब से भयंकर संक्रामक रोगों में से एक है शीतला। यह रोग बहुत जल्दी फैलता है। जब यह रोग फैलने लगता है तो बिना टीका लगे हुये प्रत्येक १०० व्यक्तियों में से एक या दो ही इस से बच पाते हैं। यह बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष किसी को नहीं छोड़ती। पुराने समय से आज तक प्रत्येक देश के लोग किसी और रोग से इतना नहीं डरते आए हैं जितना शीतला से, क्योंकि यह न केवल फैलने वाली बीमारी है, बल्कि बिना टीका लगे हुए लोगों पर जब इस का आक्रमण होता है तो लोगों के मरने की संख्या २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत तक पहुंची जाती है। यदि कोई रोगी मरने से बच भी गया तो उस का मुंह शीतला के दानों से बड़ा भद्दा हो जाता है और वह काना या अंधा भी हो जाता है।

डॉक्टर एक मत से कहते हैं कि शीतला एक प्रकार के संक्रामक विष (Virus) द्वारा होती है। यह तो सब को मालूम है कि रोगी के नाक और मुंह से जो कुछ निकलता है,

और अच्छा होते समय उस की त्वचा से जो सूखे छिलके आदि गिरते हैं वे शीघ्र ही दूसरों को यह रोग लगा देते हैं। यह स्पष्ट है कि बिना टीका लगे प्रत्येक १०० व्यक्तियों में से ९८ या ९९ अवश्य इस के शिकार बनेंगे; फिर भी जो लोग शराब या तम्बाकू नहीं पीते और जो सदाचारी होते हैं उन की इस रोग के आक्रमण के पश्चात् अच्छे होने की अधिक सम्भावना रहती है, उन लोगों की अपेक्षा जो ऐसी बातों में संयमी नहीं होते।

लक्षण

यह रोग लग जाने के पश्चात् १२ दिन तक इस का पता नहीं चलता। बच्चों को आरम्भ में सर्दी लगने के पश्चात् सिर-दर्द शुरू हो जाता और फिर पीठ एवं दूसरे अंगों में पीड़ा होने लगती है। पहले ही दिन बुखार १०३ डिगरी फ. पहुंच सकता है। रोग आरम्भ होने के चौथे दिन दाने निकलने लगते हैं, और प्राय: पहिले माथे और कलाइयों पर ही दिखाई देते हैं। दाने पहल लाल मसूर के दानों की भांति दिखाई देते हैं परन्तु एक या दो दिन में फूल जाते हैं और उन के अन्दर दूधिया सा लस भर जाता है और फिर एक या दो दिन में लस पीप बन जाता है।

चिकित्सा

शीतला की कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। सब से मुख्य बात है सावधानी से रोगी की देख-रेख करना। रोगी को चुपचाप बिस्तर में लेटा रहना चाहिये। कमरे को बिल्कुल बन्द न कीजिये बल्कि ऐसा प्रबन्ध कीजिये कि कमरे में रोगी को अधिक मात्रा में ताजा हवा मिले। खौला कर ठंडा किया हुआ पानी रोगी जितना पी सके पिलाइये। जब ज्वर बहुत तेज हो तो रोगी को ठंडे पानी से अंगोछिये। पेट साफ रखने के लिए रोज अनिमा दीजिये।

पीप भरे दानों (Vesicles and Pustules) की चिकित्सा इस प्रकार कीजिये—मुलायम कपड़े से एपसम साल्ट का घोल (डेढ़ पाव पानी में एक आउंस नमक मिला कर) रोगी के मुंह और हाथों पर निरन्तर लगाइये। जब दाने सूखने लगें और खुरंड बनने लगें तो उन पर बार-बार सल्फाथियोजोल आयन्टमेंट (Sulfathiazole-Ointment) का लेप कीजिये। बच्चे को दानों को खुजलाने या रगड़ने न दीजिये, नहीं तो शीतला के गहरे दाग पड़ जाएंगे।

आंखों की देख-भाल करना बहुत आवश्यक है। बोरिक एसिड के घोल में मुलायम कपड़े के एक टुकड़े को भिगो कर तीन-तीन, चार-चार घंटे पश्चात् पलकों को धोइये (देखिये परिशिष्ट, नुसखा न. १)। पलकों को धो कर और फिर सुखा कर उन के किनारों पर थोड़ा सा सल्फाथियोजोल मरहम लगा दीजिये। बोरिक एसिड के सम्मिश्रित घोल की थोड़ी बूंदें प्रति तीन-तीन घंटे बाद या उस से भी जल्दी-जल्दी आंखों के अन्दर डालनी

चाहिये। मुंह और गले को कुल्ली और गरारे कर के साफ रखना चाहिये। (देखिये परीशिष्ट नुस्खा न. ९)

शीतला का टीका

१७९६ ई. से पूर्व शीतला की चिकित्सा का कोई उपाय नहीं था और न ही कोई ऐसे उपाय ज्ञात था जिस से इस रोग की रोक-थाम की जा सकती, परन्तु उसी वर्ष एक अंग्रेज डॉक्टर जीनर ने शीतला से बचाव के लिए टीका लगाने की ऐसी विधि सोच निकाली।

मनुष्य में शीतला का रोग पैदा करने वाले अदृश्य रोग-कृमि इसी प्रकार की बीमारी गाय में भी उत्पन्न करते हैं जिसे 'गाय-मसूरिका' या 'गो-चेचक' (Cow-pox) कहते हैं गो-चेचक से पीड़ित बछड़े के शरीर से लसीका (Lymph) ली जाती है जो टीका लगाने में काम आती है। इस लसीका का टीका जब मनुष्य के लगाया जाता है तब टीका लगे स्थान पर टीके का एक दाना निकल आता, इस के बाद सारे शरीर में थोड़ा ज्वर होता है। इस के परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति अल्प या दीर्घ काल तक शीतला के रोग से बचा रहता है, चाहे वह शीतला से पीड़ित रोगी के साथ एक चारपाई पर ही क्यों न सो जाए।

जेनर (Jenner) की टीका लगाने की इस खोज के पश्चात् पश्चिमी राष्ट्रों ने इस उपाय का प्रयोग आरम्भ किया जिस से पिछले १०० वर्षों में इस रोग से मरने वालों की संख्या बहुत कम हो गई है। उदाहरण के लिये, १८७४ में जर्मनी में एक कानून बना जिस के अनुसार सब को टीका लगवाना और कुछ समय बाद फिर टीका लगवाना अनिवार्य हुआ। इस कानून के अनुसार सब बच्चों के १२ महीने की आयु से पहले और फिर बारह वर्ष की आयु में टीका आवश्यक है। उस वर्ष के बाद शीतला का रोग जर्मनी में कभी नहीं फैला। जर्मनी में प्रति वर्ष ६ करोड़ ४० लाख की आबादी में से दस व्यक्तियों (जिस में बड़े और बच्चे शामिल हैं) से अधिक शीतला से नहीं मरते।

फिलिपाइन के टापुओं में, मनीला राजधानी के अधिकारियों ने पहले शीतला को रोकने के लिये इस टीके पर कोई ध्यान नहीं दिया इस लिए प्रति वर्ष ६,००० लोग वहां मर जाते थे। बाद में जब टीका लगाने का नियम चालू किया गया तो उस क्षेत्र में शीतला के रोग से एक भी मौत नहीं हुई।

अब जब कि यह पता लग गया है कि गो-चेचक से ली हुई लसीका शीतला से रक्षा करती है तो प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है कि एक वर्ष का होने से पूर्व बच्चे के (लड़का हो या लड़की) टीका लगवाएं और दस वर्ष का होने से पूर्व एक बार फिर लगवाएं।

कुकर खांसी (Whooping Cough)

कुकर या काली खांसी के बीमारों को "तरल अर्द्ध तरल आहार" चाहिये इस का कोई विशेष उपचार नहीं है और माता-पिता को अधिक औषधियों आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मादक दवायें देने से ऊंघाई और बेहोशी तक आ सकती है। बेलाडोना (Bella donna—एक विषैली बूटी) के प्रयोग से चित्त-विभ्रम उत्पन्न हो सकता है। इस

से आंखों की पुतली फैल जाती हैं और तेज रोशनी से इस दशा में आंखों को स्थायी रूप से हानि पहुंच सकती है। पेट बिगड़ जाता है और कुनीन खाने से अन्य हानियां भी हो सकती हैं। विज्ञप्त औषधियों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये और डॉक्टर की बताई हुई दवा को नियमित मात्रा और नियमित समयों से अधिक नहीं देनी चाहिये और न ही डॉक्टर से बिना पूछे इस दवा को अन्य बच्चों को देना चाहिये।

रोग को हल्का करने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। स्वास्थ्य-कर उपायों का बहुत महत्त्व है। यदि मौसम ठीक हो तो रोगी को बाहर आराम करना चाहिये। धूप और ताजी हवा बहुत लाभप्रद है। बहुत अधिक सीलन, धूल और तेज हवा में रोगी को नहीं रखना चाहिये। बिस्तर को हवा और धूप लगानी चाहिये और फिर बच्चे को उस में सुलाने से पूर्व उसे गरम कर लेना चाहिये। बच्चे को किसी बात से चौंकाना नहीं चाहिये। भोजन हलका, पर पौष्टिक होना चाहिये। केवल दूध ही सब से अच्छा आहार है, विशेष कर जब बच्चा उल्टी करता हो।

औषधिके रूप में बफारा लेना लाभप्रद है। बफाराके लिए यूकेलिप्टस (eucalyptus) के तेल और बेनजोइन (Benzoin) का प्रयोग किया जाता है। इन में से किसी भी दवा का एक चम्मच खौलते हुए डेढ़ सेर पानी में डाल कर बफारा लेना चाहिये। जब खांसी तेज हो तो दिन में कई बार या रात को भी बफारा दिया जाए। (देखिये परिशिष्ट, उपचार न. ३१)।

छाती और गले को यदि सावधानी से गरम कमरे में गरम पानी की दी हुई सेंक से भी रोगी को लाभ होगा। सेंकने के बाद सोते समय यदि छाती पर कपूर मिले हुए तेल की मालिश की जाए तो कोई आपत्ति नहीं।

अब काली खांसी का उपचार क्लोरोमाइसिटिन (Chloromycetin) के द्वारा सफलता पूर्वक होता है और रोग की अवधि भी घटाई जा सकती है।

जब बच्चा छः मास का हो जाए तो उस के कालीखांसी का टीका लगवाना चाहिये जिस से काली खांसी से बचाव हो जाए। इस के टीके में काम आने वाली लसीका (Vaccine) हानि-रहित भी होती है और गुणकारी भी।

कोढ़

कोढ़ भी क्षय रोग की भांति कृमि-रोग है। इस रोग के कृमि रोगी के घावों और नाक के स्राव में मिलते हैं।

इस बात का निश्चयपूर्वक पता चल गया है कि कोढ़ किसी विशेष भोजन—जैसे मछली—से नहीं होता न ही यह रोग पशुओं द्वारा लगता है बल्कि यह उस व्यक्ति से लगता है जो पहले से ही इस से पीड़ित हो।

यह भी सम्भव है कि कोढ़ जूं, खटमल और पिस्सू जैसे कीड़ों द्वारा फैलता हो। जब घर में किसी एक को कोढ़ होता है तो परिवार के दूसरे सदस्यों को भी लग जाता है। अतः यह पता चल गया कि कोढ़ी व्यक्ति के बहुत निकट रहने और स्पर्श आदि से यह रोग फैलता है। यह रोग प्रायः उन लोगों को होता है जो गन्दे, जो बहुत ही घनी
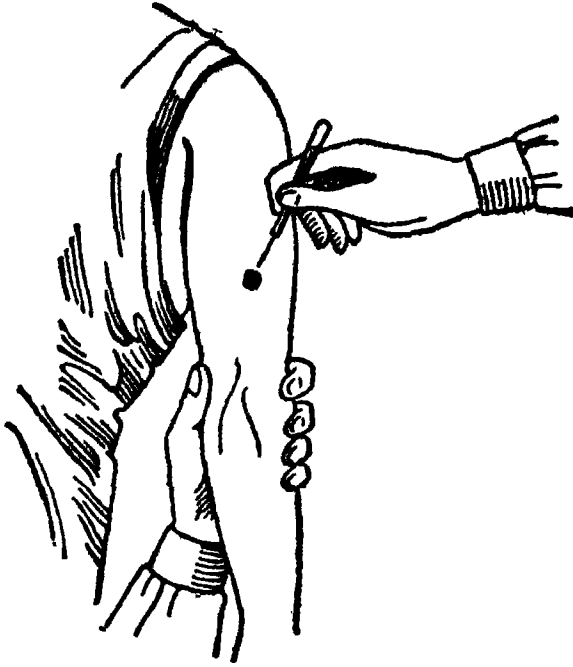
शीतला का टीका

आबादी वाले मुहल्लों में रहते हैं और जो अपने शरीर या कपड़ों को बार-बार साफ नहीं करते।

लक्षण

कोढ़ दो प्रकार का होता है, परन्तु दोनों का कारण एक ही कृमि है। कोढ़ का प्रथम चिन्ह है ज्वर, सिर-दर्द, शरीर के विभिन्न भागों में पीड़ा या सर्दी लगना और शरीर के अवयवों का सुन्न हो जाना। प्रथम अवस्था में दूसरा चिन्ह पसीना आना है। पसीना सारे शरीर में भी आ सकता है और शरीर के केवल एक भाग—हाथ, पैर या सिर में भी आ सकता है। फिर चेहरे और दूसरे अंगों में दाने निकलने लगते हैं और त्वचा—विशेषकर माथे, गालों, नाक, कानों और होंठों की त्वचा—पर गांठें भी निकलने लगती हैं। दाढ़ी, मूछों और भौंहों के बाल झड़ने लगते हैं। बाद में पलकें, नाक, उंगलियां, पंजे और शरीर के दूसरे भाग सड़-सड़ कर गिरने लगते हैं।

दूसरी तरह के कोढ़ में केवल चेताओं (Nerves) पर ही प्रभाव पड़ता है और सम्पूर्ण स्पर्शेन्द्रिय ज्ञान जाता रहता है। परन्तु इस ज्ञान के समाप्त होने के पूर्व तीक्ष्ण पीड़ाएं विशेषकर हाथों और टांगों के सामने वाले भाग में होने लगती हैं। बाद में त्वचा पर धब्बे से दिखाई देने लगते हैं। यह दाग पहले लाल होते हैं और थोड़ी देर में इन दागों का केन्द्र सफेद हो जाता है और इन में कुछ भी स्पर्श-ज्ञान नहीं रहता, बाल झड़ने लगते हैं और झुर्रियां और छिलके दिखाई देने लगते हैं। कालांतर में हाथ और पैर की पेशियां सुन्न पड़ जाती हैं। हाथ, पांव, उंगलियां और शरीर के दूसरे भाग सड़ कर गिर जाते हैं।

चिकित्सा

कोढ़ के प्रत्येक रोगी का समाचार स्वास्थ्य-अधिकारियों को देना चाहिये। बहुत सी सरकारें कोढ़ियों के लिये अस्पताल खोलती हैं। इन अस्पतालों में बहुत अच्छी चिकित्सा की जाती है और रोगियों से कोई पैसा भी नहीं लिया जाता। यदि रोगी अस्पताल चला जाए तो उस के अच्छा होने की आशा रहती है। जब रोगी पर इस का आक्रमण हो तो उस की जांच तत्क्षण करा लेनी आवश्यक है क्योंकि जितनी जल्दी चिकित्सा होगी उतनी ही अधिक आशा रोगी के अच्छा होने की होगी। अतः ज्योंही रोगी कोढ़ के किसी लक्षण को अपने शरीर में देखे तभी उसे किसी अच्छे अस्पताल में जाना चाहिये।

मोतीझरा या आंत्रिक ज्वर (Typhoid Fever)

मोतीझरा (Typhoid Fever) ऐसा ज्वर है जो मोतीझरे के कीटाणुओं द्वारा होता है। यह ज्वर प्रायः तीन सप्ताह या उस से अधिक दिन तक रहता है परन्तु कभी-कभी केवल

केतली की टोंटी में लगे हुए कागज के चोंगे द्वारा औषधि-युक्त भाप बच्चे के मुंह पर जा रही है—बफारे की एक गुणकारी विधि।

सात से दस दिन तक ही रहता है। इस के आरम्भ के लक्षण बे-चैनी, सिर-दर्द और आलस्य व दुर्बलता हैं। सारे शरीर में या केवल आमाशय में ही पीड़ा होने लगती है। बहुधा आरम्भ में जाड़ा भी लगता है।

इस के बाद सवेरे ज्वर १०१ डिगरी और शाम को १०३ या १०४ डिगरी फ. तक पहुंच जाता है। नाड़ी एक मिनट में ८० या ९० की चाल से चलती है। बहुत बार यह ज्वर एक या दो दिन के बाद कुछ जाता रहता है और रोगी ८, १० दिन तक थोड़ा बहुत ज्वर अनुभव करने पर भी यदि रोगी पड़ा न रहे और थोड़ा-बहुत घूमे-फिरे तो कोई हानि नहीं।

रोग के प्रथम कुछ दिनों के पश्चात् ज्वर नियमानुसार १०३ डिगरी फ. रहता है। रोगी को सिर-दर्द की शिकायत रहती है, जीभ पर सफेद तह सी जम जाती है। खाना खाने की इच्छा बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती, यदि खाना खा लिया तो उल्टी हो सकती है। पेट तन जाता है और दुखता रहता है। या तो कब्ज हो जाता है, या फिर दस्त लग जाते हैं। रोगी अधिक समय तक ऊंघता रहता है।

रोग के दूसरे सप्ताह में ज्वर साधारणतः बढ़ जाता है। पिस्सू के काटे जैसे लाल दाग पेट या छाती पर प्रकट होने लगते हैं। साधारणतः होंठ और जीभ पर गहरे भूरे रंग की पपड़ी जम जाती है। प्रत्येक आठ या दस ऐसे रोगियों में से एक की आंतों में से खून निकलने लगता है, कभी-कभी तो इतना निकलता है कि मल को हल्के लाल रंग का कर देता है। परन्तु कभी-कभी इतना अधिक निकलता है कि रोगी की मृत्यु ही हो जाती है। कभी-कभी रोगी भ्रान्तचित्त रहता है। बहुधा रोगियों को कब्ज रहता है।

तीसरे सप्ताह में ज्वर धीरे-धीरे उतरने लगता है और बीमारी के २१ दिन बाद प्रसम अवस्था में आ जाता है। आंतों में से रक्त बहने और उन में छेद हो जाने का खतरा रोग के तीसरे सप्ताह में अधिक होता है।

निरन्तर ज्वर रहने पर किसी योग्य डाक्टर को बुलाना चाहिये क्योंकि रोगी के खून की परीक्षा कर के डॉक्टर ही बता सकता है कि मोतिझरा है या नहीं ? मोतीझरे के ज्वर में रोगी की देख-भाल बहुत सावधानी से करनी चाहिये और उसके मल-मूत्र का विसंक्रामण आवश्यक है, इस कारण रोग का जल्दी ही पता लगा लेना बहुत आवश्यक है।

चिकित्सा

मोतीझरे की सब से नवीन चिकित्सा क्लोरोमाइसिटिन (Chloromycetin) का प्रयोग है। उस के प्रयोग के लिए पूर्ण अधिसूचना उस कागज में होती है जो उस दवा की शीशी के इर्द-गिर्द लिपटा रहता है। डॉक्टर के कहने पर ही दवा देनी चाहिये। इस औषधि से रोग की अवधि बहुत ज्यादा घट जाती है।

उचित देख-रेख और उचित आहार का बड़ा महत्व है। रोगी को रोशनी वाले और हवादार कमरे में रखना चाहिये आरम्भ से ही उसे बिस्तर में लिटा देना चाहिये।

आहार का अधिकांश भाग तरल पदार्थ हों। यदि अच्छा ताजा दूध मिल सके तो वह भी भोजन का एक भाग होना चाहिये। रोगी को देने से पूर्व दूध को उबाल लेना

चाहिये। ठोस पदार्थों से छना हुआ शोरबा, अंडे—या तो जेली बना कर या आंशिक रूप से उबाले हुए, चावल की लपसी, लाल आटे की लपसी, कस्टर्ड (Custard), मिल्क टोस्ट (Milk toast)---इस को अच्छी तरह चबाया जाए---भुने हुए आलू (Baked Potatoes), उबले हुए या भुने हुए चावल—ये सब चीजें रोगी को दी जा सकती हैं। (इन भोजनों को बनाने की विधि के लिए देखिये अध्याय २१) एक समय में बहुत सा भोजन न करने दीजिये। यदि रोगी की निरन्तर देख-रेख करने के लिये कोई नर्स न हो तो रोगी की चारपाई के पास सुराही या किसी और बरतन में साफ खौला हुआ पानी रख दीजिये जिस से वह बार-बार आसानी से पानी पी सके।

मुंह को बार-बार साफ करना चाहिये और दांतों और जीभ को ब्रश से बार-बार साफ किया जाए। नुसखा न. ९ का प्रयोग कीजिये (देखिये परिशिष्ट)।

यदि पेट में दर्द हो तो दर्द दूर करने के लिए एक बार में १५ या २० मिनट तक रोगी का पेट गरम पानी से सेंकिये।

यदि रोगी को दस्त आएं तो श्वेतसार (Starch) का गरम अनिमा दीजिये। (देखिये अध्याय २२)। यदि कब्ज हो तो प्रतिदिन गरम पानी का अनिमा देना चाहिये (देखिये अध्याय २१)।

बुखार कम करने के लिये रोगी को ठंडे पानी से अंगोछिये। १५ या २० मिनट तक या इस से भी ज्यादा देर तक अंगोछिये। त्वचा को हवा कर के सुखाइये, तौलिये से पोंछ कर न सुखाइये। यह बहुत लाभदायक चिकित्सा है क्योंकि इस से ज्वर कम होता है जिस से रोगी का चित्त प्रसन्न हो जाता है। अंगोछने में रोगी को ठंड लग जाने का कोई खतरा नहीं है। यदि ज्वर तेज हो तो ठंडे पानी से दिन में कई बार अंगोछा जा सकता है। (देखिये अंगोछना, अध्याय २१)

जब बुखार बहुत बढ़ गया हो तो लगातार अनिमा देने से ताप कम किया जा सकता है। विधि अध्याय २१ में वर्णित है।

रोगी का सिर-दर्द दूर करने के लिये एक कपड़ा बहुत ठंडे पानी में भिगो कर उस के सिर पर रखना चाहिये। थोड़ी-थोड़ी देर (कुछ मिनट) बाद कपड़े को फिर ठंडे पानी में भिगो लेना चाहिये।

यदि रोगी के मल में खून दिखाई दे तो १० या १२ घंटे तक उसे कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिये। यदि थोड़ा बर्फ मिल सके तो उस के कुछ टुकड़े एक कपड़े में लपेट कर रोगी के पेट पर रखिये। इस ठंडक से मल में खून आना बन्द हो जाएगा।

जब ज्वर कम हो जाए और रोगी को भूख लगने लगे, तो उसे सख्त मांस और सब्जी खाने को न दीजिये।

मोतीझरे के रोगी की देख-भाल करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह रोग फैले न। मल-मूत्र और थूक में इस रोग के कृमि होते हैं। अत: विसंक्रामक डाल कर इन तीनों के कृमि मार डालना आवश्यक है। यदि, 'बाइक्लोराइड ऑव् मरकरी' (Bichloride of Mercury) मिल सके तो कोई एक सेर में १५ ग्रेन के हिसाब से डाल कर मल-मूत्र को फेंकने से पूर्व एक घंटे तक ऐसे ही रक्खा रहने दीजिये। मल-मूत्र के विसंक्रामण की विधि अध्याय २१ में देखिये। थूक को कागज के टुकड़ों में लपेट कर जला डालना चाहिये।

रोगी की अपनी थाली, चम्मच आदि अलग होने चाहियें और ये बरतन परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले बरतनों से अलग रहने चाहियें। उन्हें रोगी के कमरे में ही रखना चाहिये और खाने के बाद उबाल लेना चाहिये। रोगी के बचे हुए भोजन को नहीं खाना चाहिये। रोगी की टहल करने वाले व्यक्तियों को रसोई-घर से बाहर रहना चाहिये जहां दूसरों का भोजन तैयार हो रहा हो।

रोगी द्वारा प्रयोग किए गए तौलिये और रूमाल उबाल लेने चाहियें।

नर्स को अपनी रक्षा भी करते रहना चाहिये। एक सेर जल में १५ ग्रेन 'बाइक्लोराइड ऑव् मरकरी' डाल कर उस का घोल बना लेना चाहिये और उसे कमरे में रख लेना चाहिये। प्रत्येक बार रोगी को साफ कर के या उसे खाना खिला कर नर्स को इस घोल से अपने हाथ धोने चाहियें।

रोगी के ठीक हो जाने पर चारपाई पर बिछी हुई चटाई को जला देना चाहिये और उस के पहनने के कपड़ों और बिस्तर की चादर आदि को अच्छी तरह उबाल लेना चाहिये। कमरे में अच्छी तरह से सफेदी करानी चाहियें। प्रत्येक एक सेर पानी में १५ ग्रेन 'बाइक्लो-राइड ऑव मरकरी' डाल कर घोल बना लेना चाहियें और फर्श को अच्छी तरह साफ करना चाहिये। कमरे की सफाई आदि के विषय में अतिरिक्त बातों के लिए (देखिये अध्याय २१)।

रोग के समय और उस के बाद कुछ हफ्तों तक दस ग्रेन 'यूरोट्रोपिन' (Urotropin) मूत्र में के रोग-कृमियों को नष्ट करने के लिए प्रति दिन देनी चाहियें।

मोतीझरे की रोक-थाम

मोतीझरा एक ऐसी बीमारी है जिस को मुंह में जाने वाली प्रत्येक वस्तु के विषय में सावधान रह कर रोका जा सकता है। कृमि केवल मुंह द्वारा ही शरीर में प्रवेश करते हैं और प्राय: पानी और भोजन में होते हैं। प्राय: मल ऐसे स्थानों में फेंक दिया जाता है जहां से इस का कुछ अंश अन्त में कुओं, नदियों और तालाबों में पहुंच जाता है। इस कारण पीने या मुंह धोने के लिये या बिना पकाया हुआ पदार्थ धो कर खाने के लिये सदैव खौले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिये। मोतीझरा ज्वर बहुधा दूध से भी लगता है; अत: पीने से पूर्व दूध को उबाल लेना बहुत आवश्यक है।

जिस भूमि में सब्जी उगती है वहां कभी-कभी मनुष्य के मल की खाद डाली जाती है। मल में के रोग-कृमि सब्जी की पत्तियों तथा जड़ों पर चिपटे रहते हैं। अत: ऐसे स्थानों में उगी सब्जियों को खाने से पूर्व पका लेना चाहिये। फलों के तोड़ने वालों के हाथ गन्दे होते हैं और फलों को पेड़ों से तोड़ कर बहुत गन्दे स्थानों में रख दिया जाता है। इस कारण फलों को पहले खौलते पानी से साफ कर के और छील कर खाना चाहिये।

मक्खियां मोतीझरा फैलाती हैं। इसे फैलाने में वे इतना बड़ा काम करती हैं कि साधारण मक्खी को 'मोतीझरे' की मक्खी कहा जाता है। दरवाजों और खिड़कियों पर जाली लगा कर मक्खियों को रसोई-घर से बाहर ही रखना चाहिये। पके हुए भोजन को ऐसी जगह रखिये जहां मक्खियां न पहुंच सकें। जब भोजन मेज पर खाने के लिये

रक्खा जाए तो उस के ऊपर एक जाली डाल दीजिये जिस से मक्खियां दूर ही रहें।

रोगी द्वारा प्रयोग किए हुए किसी बरतन, प्याले, चम्मच, तौलिये या रूमाल को कुछ मिनट तक उबाले बिना किसी दूसरे व्यक्ति को उस का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मोतीझरे के रोगी के कमरे के अन्दर रक्खा भोजन कभी नहीं खाना चाहिये।

हाल ही में मोतीझरा ज्वर को रोकने का एक नया उपाय निकला है। यह बहुत कुछ उसी प्रकार का है जैसा बड़ी माता को रोकने के लिए टीका लगाने का होता है। मोतीझरा ज्वर का टीका हाईपोडरमिक (Hypodermic) पिचकारी से लगाया जाता है। टीका लगवा कर आदमी- दो-तीन साल तक सुरक्षित रहता है। मोतीझरे से प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षित रह सकता है यदि वह प्रथम बार इस की तीन सूइयां लगवा ले और फिर हर साल एक सूई लगवाता रहे। यह सुरक्षित युक्ति है। यह तरीका उन लोगों को अवश्य अपनाना चाहिये जो *ऐसे स्थानों में रहते हैं जहां मोतीझरे का रोग फैला हुआ हो और जो लोग अधिक यात्रा* करने के कारण अपने भोजन और पीने के पानी के विषय में अधिक सावधान न रह सकते हों।

मोतीझरे को रोकने का एक और तरीका यह है कि रोग के विरुद्ध शरीर प्राकृतिक रूप से संघर्ष करे। शराब, तम्बाकू, पान-सुपारी या अफीम आदि शरीर को निर्बल बनाती हैं और मोतीझरे के कीड़ों को शरीर में घुसने का आसानी से रास्ता मिल जाता है। यदि किसी को अपच या दस्त हो तो उस का अन्न-मार्ग ऐसी दशा में है कि उसे मोतीझरा उस व्यक्ति की अपेक्षा शीघ्र ही लग सकता है जिस का अन्न-मार्ग अच्छी दशा में रहता है।

हैजा

इस पृथ्वी पर कोई ऐसा देश नहीं जहां कभी-न-कभी हैजा न फैल चुका हो। इस रोग के प्रत्येक दस रोगियों में से पांच मर जाते हैं। यह बीमारी एशिया के बड़े-बड़े सब शहरों में फैली है। सभी को जानना चाहिये कि यह किस प्रकार फैलती है जिस से लोग इस बीमारी से अपनी रक्षा कर सकें। इस का रोगी सदा ही मरता नहीं इस कारण इस की लाभकारी चिकित्सा भी प्रत्येक को जाननी चाहिये।

इस रोग का कारण हैजा-कृमि है। यह कृमि भोजन या पानी के साथ मुंह में से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं या उंगली या कोई और वस्तु मुंह में डालने से शरीर में पहुंच जाते हैं। शरीर में घुसने के एक दो दिन पश्चात् वे रोग फैलाने लगते हैं जिस का पता बाहर से पांच दिन में लगता है। हैजा के कीटाणुओं वाली कोई वस्तु खाने-पीने के कुछ ही घंटे बाद हैजा हो जाता है।

लक्षण

हैजे के प्रमुख लक्षण ये होते हैं: हैजे के कीटाणुओं वाला भोजन करने या पानी पीने के १२ या १८ घंटे बाद पेट में पीड़ा होने लगती है। थोड़ी देर में दस्त शुरू हो

जाते हैं और थोड़ी ही देर में इन की स्थिति गम्भीर हो जाती है यहां तक कि पतली पीच की भांति दस्त लगातार होने लगते हैं।

कुछ दशाओं में यह रोग सर्दी लगने, प्यास लगने, जीभ पर पपड़ी जम जाने, पेट में धीमा-धीमा दर्द होने और दिन में तीन चार बार पानी जैसे दस्त आने से आरम्भ होता है। रोगी बहुत कमजोरी अनुभव करता है। उस से अगले दिन दस्त और भी तेजी से होने लगते हैं। दस्त पीच जैसे सफेद और पतले होते हैं। ये बड़े. वेग से होते हैं। उल्टी भी जोर से होने लगती है। उल्टी में निकलने वाला पदार्थ तो किए हुए भोजन जैसा ही होता है, परन्तु बाद में वह दस्त जैसा ही दिखाई देता है। प्यास बहुत लगती है और टांगों, बांहों, पीठ और शरीर के दूसरे भागों में सख्त दर्द होने लगता है।

ज्यों-ज्यों बीमारी गम्भीर होती जाती है त्यों-त्यों रोगी की दशा बाहर से चिन्ता-जनक प्रतीत होने लगती है। आंखें भीतर की ओर धंस जाती हैं और उन के चारों ओर काले गड्ढे पड़ जाते हैं, नाक पतली और नुकीली दिखाई देने लगती है, गाल पिचक जाते हैं, होंठ नीले पड़ जाते हैं, शरीर ठंडा और पसीने से चिपचिपा रहता है, हाथों और उंगलियों की त्वचा उस धोबी की त्वचा जैसी दिखाई देने लगती है जिस ने सारा दिन साबुन और गरम पानी में हाथ डाले काम किया हो, स्वर धीमा पड़ जाता है, सांस ठंडी हो जाती है, मूत्र बहुत थोड़ा-थोड़ा होता है।

हैजे का रोग सदा ऊपर लिखी परिस्थितियों में ही नहीं होता। कभी-कभी साधारण दस्त लग जाते हैं जो बाद में हैजे में बदल जाता है।

हैजे की बहुत सी दशाएं ऐसी भी हैं जिन में रोगी पलंग पर लेटा नहीं रहता। उसे दस्त आते हैं, वह बहुत कमजोर हो जाता है और उसे बहुत कम मूत्र होता है। हैजे के ऐसे रोगी बीमारी को अधिक दूर तक फैलाते हैं क्योंकि वे चल-फिर सकते हैं और दूसरे लोगों से मिल-जुल सकते हैं।

हैजे की गम्भीर दशाओं में रोग का आक्रमण इतना प्रबल हो सकता है कि टांगों और बांहों में जोर की अकड़न होने लगती है और बिना दस्त हुए रोगी कुछ घंटों में मर जाता है।

जब रोग के भयंकर लक्षण नहीं रहते हों तो भी रोगी को पेशाब न उतरे तो उस के मरने का डर रहता है।

रोग-निदान

हैजे की व्यापकता के समय दस्त किसी भी प्रकार के क्यों न हों इन का उपचार इसी प्रकार करना चाहिये मानो हैजा ही हो। पीच की भांति पतले दस्त आना, कमजोरी, त्वचा का चिपचिपाना और ठंडा पड़ जाना, मुखाकृति का बिगड़ जाना, पैरों की उंगलियों और पंजों का सिकुड़ जाना, अकड़न, थोड़ा-थोड़ा मूत्र आना— ये सब हैजे के मुख्य लक्षण हैं।

बच्चों में हैजा

बच्चों को हैजा हो जाने पर भी प्रायः यह पहचाना नहीं जाता, इस का कारण यह

है कि वयस्कों और बच्चों में इस रोग के लक्षण भिन्न होते हैं। बहुत से बच्चों में इस रोग के लक्षण दस्तों या पेचिश के लक्षणों जैसे होते हैं। इस रोग में बहुत से बच्चों के हाथ-पैरों में बहुत अधिक एंठन होने लगती है और थोड़े-थोड़े दस्त भी होते हैं। जब किसी मुहल्ले में हैजा फैला हुआ हो और कोई बच्चा बीमार पड़ जाए, उसे दस्त आने लगें, पेट में मरोड़े होने लगें, या शरीर में एंठन हो, तो उस का इलाज उसी प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार हैजे के रोगी का किया जाता है।

चिकित्सा

जितनी जल्दी हो सके चिकित्सा आरम्भ हो जानी चाहिये। रोग-निदान के पश्चात् ही सब से पास के स्वास्थ्याधिकारी को सूचना दे दी जाए, और सम्भव हो सके तो किसी योग्य डाक्टर की सहायता प्राप्त की जाए।

रोगी को मरोड़े और दस्त आरम्भ होते ही पलंग पर लिटा देना चाहिये। उस के पास ही एक 'बेड पैन' (बिस्तर में लेटे-लेटे मल त्याग करने का बरतन) और पेशाब करने का बरतन रख दीजिये जिस से रोगी को पलंग से उठना न पड़े। खौला हुआ ठंडा पानी उसे अधिक मात्रा में पीने को दीजिये, पानी में नीबू या कागजी नीबू का अर्क मिला सकते हैं। पीच और अंडे की सफेदी के पानी के अतिरिक्त रोगी को और कोई चीज खाने-पीने को न दीजिये। (देखिये अध्याय २१) यदि वमन हो जाए तो कुछ देर तक कुछ भी खाने को न दीजिये, केवल पानी जितना रोगी मांगे, उतना पिलाइये। गरम पानी से पेट सेंकने से लाभ होता है।

हाल ही में हैजे की चिकित्सा का एक अधिक प्रभावशाली उपाय खोज निकाला गया है, इस के अनुसार नमक के घोल की सूई शिराओं में लगाई जाती है। डेढ़ पाव खौले हुए पानी में १२० ग्रेन साफ नमक मिलाया जाता है और खौला कर इसे कृमि-मुक्त कर लिया जाता है। इस के बाद उसे ठंडा कर के पैर या बांह की किसी शिरा में इस की सूई लगाई जाती है। हैजे का यह सब से अच्छा इलाज है। प्राय: ये सूइयां कई बार लगानी पड़ती हैं और इन्हें कोई योग्य डाक्टर या प्रशिक्षित नर्स ही लगा सकती है।

यदि डाक्टर या प्रशिक्षित नर्स न मिल सके तो नीचे लिखी हुई चिकित्सा कीजिये: रोगी को गरम रखिये। उस के शरीर के पास ही गरम पानी की बोतलें कपड़ों में लपेट कर रखनी आवश्यक हैं। प्रत्येक तीन घंटे के बाद १०५ डिगरी फ. तापमान के दो सेर नमकीन पानी से अनिमा दीजिये। पानी में चाय के आठ चम्मच भर नमक मिलाइये। दिन में तीन बार १०५ डिगरी फ. तापमान के टैनिक एसिड (Tannic Acid) का अनिमा दीजिये। यह डेढ़ पाव पानी में ७५ ग्रेन 'टैनिक एसिड' मिला कर तैयार किया जाता है। यह दस्तों को रोकने में सहायता देता है।

हाल ही में एक और नया इलाज निकला है जो बहुत प्रचलित और गुणकारी है उस के अनुसार नमक के अनिमे के अतिरिक्त पोटैशियम परमैंगनेट (Potassium Permanganate) दिया जाए। रोगी को पानी के बदले पोटैशियम परमैंगनेट का घोल जो डेढ़ पाव पानी में ६ ग्रेन पोटैशियम मिला कर तैयार किया जाता है। एक बार में घोल दो या तीन आउंस पीना चाहिये। इस के अतिरिक्त प्रत्येक आधे घंटे बाद पोटैशियम परमैंगनेट की दो ग्रेन की

मोतीझरे, हैजे और अन्य आंत्रिक रोगों के संक्रमण का प्रभव ।

गोली भी देनी चाहिये ।

दस्तों के बंद होते ही रोगी को थोड़ी-थोड़ी चावल की लपसी देनी चाहिये ।

यद्यपि लक्षण जाते रहें और रोगी तनिक स्वस्थ अनुभव करने लगे, तो भी नमक का अनिमा देते रहना चाहिये । (दस्त बन्द होने के पश्चात् टैनिक एसिड का अनिमा बन्द कर देना चाहिये) रोगी को पानी अधिक मात्रा में पीने पर बाध्य कीजिये । इस में नीबू का अर्क मिला हुआ हो । हैजे के उपचार में एक दवा जिस का नाम टूम्स मिक्चर (Tomb's mixture) है बड़ी गुणकारी है ।

जब तक रोगी को मूत्र न आने लगे तब तक उसे खतरे से बाहर नहीं समझना चाहिये । इस कारण नमक का अनिमा तब तक जारी रखिये जब तक गुर्दे मूत्र निकालने का काम ठीक तरह से न कर सकें । पीठ के निचले भाग में गरम पानी की सेंकें कीजिये और मालिश जारी रखिये ।

दस्त या पेचिश की विज्ञप्त औषधियों का प्रयोग कभी न कीजिये । शराब या किसी दूसरी मादक वस्तु का प्रयोग भी न कीजिये ।

हैजे में रोगी की परिचर्या करने वाली परिचारिका (नर्स) के लिए अधिसूचनाएं

हैजे के रोग में सब से पहला काम यह है कि रोगी को छूत की बीमारियों के अस्पताल में ले जाना चाहिये । यदि ऐसा अस्पताल न हो तो रोगी को एक ऐसे कमरे में रखना चाहिये जिस में केवल एक चारपाई, एक मेज और एक कुर्सी हो । खिड़कियों को खुला

रखना चाहिये और यदि सम्भव हो तो दरवाजे और खिड़कियों पर चिकें लगा दी जाएं जिस से मक्खियां अन्दर न आ सकें।

यदि हैजे के रोगी के मल-मूत्र का निःसंक्रमण न किया जाए, तो एक रोगी सारे गांव और शहर में हैजा फैला सकता है। उस के मल को एक टीन में डालिये और फिर १ से १००० 'बाईक्लोराइड आॅव् मरकरी सल्यूशन' (जो डेढ़ पाव पानी में साढ़े सात ग्रेन 'बाईक्लोराइट आॅव् मरकरी' मिला कर तैयार किया जाता है) समान मात्रा में मिलाइये। और फेंकने से पहले एक घंटे तक उसे ऐसे ही रहने दीजिये। इसे तालाब में या नदी में या कुएं के पास कभी न फेंकिए।

यदि 'बाईक्लोराइड आॅव् मरकरी' न प्राप्त हो सके तो कुएं या तालाब से कम-से-कम १०० फुट दूर एक गड्ढा खोदना चाहिये और उन में यह मल फेंक कर ऊपर से चूना या राख डाल कर दबा देना चाहिये। यह उपाय केवल खुले मौसम में ही काम में आ सकता है, बरसात में नहीं। बरसात में यदि निःसंक्रामक प्राप्त न हो तो मल को एक टीन में डाल कर फेंकने से पूर्व खौला देना चाहिये।

हैजे के रोगी का मल इतना विषैला होता है (हैजे के कृमिओं के कारण) कि उस की एक बूंद भी जो राई के दाने से भी बड़ी न हो यदि भोजन में या पीने के पानी में चली जाए, तो उसे खाने या पीने वाले व्यक्ति को हैजा हो जाएगा।

जिन बरतनों में हैजे के रोगी ने खाया-पिया हो उन में एक भी बरतन बिना उबाले रोगीके कमरे से बाहर नहीं ले जाना चाहिये। जो वस्तु भी हैजे का रोगी अपने होठों या हाथों से छूता है वह विषैली हो जाती है, क्योंकि उस के हाथों और होठों में हैजे के कृमि होते हैं, अतः उसे दूसरों को नहीं छूना चाहिये। रोगी की देख-भाल करने वाली नर्स को बार-बार १ से १००० 'बाईक्लोराईड आॅव् मरकरी सल्यूशन' से अपने हाथ धोने चाहिये। उसे अपनी उंगलियां अपने मुंह में कभी नहीं डालनी चाहिये और रोगी के कमरे में बैठ कर कुछ भी नहीं खाना चाहिये। खाना खाने के पूर्व उसे अपने हाथ साबुन और पानी से धोकर १ से १००० 'बाईक्लोराइड आॅव मरकरी सल्यूशन' में कुछ मिनटों तक भिगोए रखने चाहिये।

रोगी के ठीक हो जाने के पश्चात् उस कमरे और उस में के सारे फरनीचर का अध्याय २१ में दी हुई अधिसूचनाओं के अनुसार निःसंक्रमण कीजिये।

हैजे से बचने के उपाय

यह पता लगा है कि यदि हैजे के कृमि अधिक संख्या में शरीर में न हों, तो स्वस्थ व्यक्ति का जठर रस इन्हें नष्ट कर देता है। अतः इस रोग से बचने का एक महत्वपूर्ण और आवश्यक उपाय यह है कि आमाशय और आंतों को स्वस्थ रक्खा जाए जिस से सारा शरीर शक्तिशाली और स्वस्थ रहे। हैजे की व्यापकता में मदिरा का सेवन करने वाले अशक्त लोग सब से पहले इस रोग का शिकार बनते हैं और मर जाते हैं।

जब आमाशय खाली हो और शरीर थका हुआ हो तो यदि उस समय हैजे के कृमि शरीर के अन्दर प्रवेश कर जाएं तो हैजे हो जाने का अधिक भय रहता है।

हैजे के कृमि सदा मुंह से अन्दर पहुंचते हैं । अतः इस रोग से बचने के लिए निश्चय कर लेना बहुत आवश्यक है कि खाना अच्छी तरह पका हो, और पानी खौला लिया गया हो और इन पर मक्खियां ने बैठ चुकी हों ।

उंगलियां कभी मुंह में नहीं डालनी चाहियें

बहुधा कच्चे फल और सब्जी खाने से यह रोग लग जाता है ।

जो सावधानी की बातें अतिसार और मोतीझरे के सम्बन्ध में लिखी जा चुकी हैं उन्हीं पर अमल कर के हैजे से भी बचा जा सकता है । उन्हें एक बार फिर दोहराया जाता है ।

जो लोग हैजाग्रस्त क्षेत्रों में यात्रा करते तथा जो उन इलाकों मे रहते जहां हैजे का प्रकोप हो, उन को हैजे का टीका लगवा कर सुरक्षित हो जाना चाहिए । यह टीका स्वास्थ्य-केन्द्रों में लगाया जाता है ।

हैजे से बचने के १० नियम

१. हैजे का टीका अवश्य लगवाइयें ।

२. पूर्ण रूप से इस बात का निश्चय कर लीजियें कि पीने के लिए या दांत और मुंह साफ करने के लिए जिस पानी का प्रयोग करें, वह खौला हुआ हो ।

३. कोई भी ऐसा खाना न खाइयें जो पकाया हुआ न हो और जिस में से भाप न निकल रही हो ।

४. खरबूजे, खीरे और कच्चे फल कभी न खाइये ।

५. सड़क के किनारे खरीदी हुई प्रत्येक वस्तु हानिकारक होती हैं और उसे बिना उबाले हुए कभी नहीं खाना चाहियें ।

६. जिन वस्तुओं का हैजे के रोगी ने प्रयोग किया हो—जैसे तौलिया, रूमाल, बिस्तरा, कटोरे और चम्मच आदि—उन को रोगी के कमरे से बाहर ले जा कर उबाले बिना उन का प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

७. मक्खियां, किलचट्टा और च्यूंटियां अपने साथ हैजे के कृमि लाती हैं । भोजन को ढक कर रखना चाहियें जिस से ये उस तक न पहुंच सकें । इस विषय में सावधानी चाहियें कि पकाने के पश्चात् भोजन पर कोई मक्खी न बैठ सके ।

८. खाने या पानी को छूने से पहले अपने हाथों को साबुन और पानी से अच्छी तरह धो लीजियें ।

९. जिन परिवारों या मुहल्लों में हैजा फैला हुआ हो उन से घनिष्ट सम्पर्क न रखियें ।

१०. यात्रा करते समय पानी पीने का गिलास, चिलमची, तौलिया आदि साथ रखियें क्योंकि होटल आदि के या स्टेशनों पर के प्यालें आदि का प्रयोग करना खतरनाक है ।

अध्याय २५

पाचन संस्थान के रोग

संसार में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिन को कभी-न-कभी निम्न रोगों में से एक या सब ने न आ घेरा हो। यद्यपि ये रोग मोतिझरा या मलेरिया जैसे गम्भीर नहीं होते, परन्तु फिर भी बहुत कष्ट देते हैं और दूसरी खतरनाक बीमारियों के लिये रास्ता बना देते हैं।

अजीर्ण (Dyspepsia) के कारण और लक्षण

अजीर्ण के सब से साधारण लक्षण हैं पेट-दर्द, छाती में जलन, पेट के ऊपर हाथ लगाने से पीड़ा, जीभ का मैला होना, खट्टी डकारें या डकार द्वारा पेट में से वायु निकालना। सिर दर्द और वमन भी हो सकता है। कभी-कभी पीठ के पीछे कंधों के बीच में दर्द होने लगता है। प्राय: कुछ भोजन करने से पेट की पीड़ा कम हो जाती है, परन्तु फिर और भी तेजी से दर्द होने लगता है। यकृत अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता जिस के परिणाम स्वरूप टट्टी हलके रंग की होती है।

अजीर्ण के कारण इतने अधिक हैं कि उन का वर्णन विस्तार पूर्वक नहीं किया जा सकता। सब से साधारण कारणों में से एक है जल्दी-जल्दी खाना। जल्दी-जल्दी खाने का मतलब है कि खाना ठीक तरह से चबाया नहीं जाता, बल्कि बड़े-बड़े निवाले (ग्रास) यूंही पेट में उतारे जाते हैं। इस ठोस भोजन को पचाने में पेट को बहुत सा जठर रस बनाना पड़ता है जिस से छाती में जलन होने लगती है और खट्टी डकारें आने लगती हैं। आवश्यकता से अधिक खा लेने पर भी यह रोग हो जाता है। बहुत अधिक मात्रा में बढ़िया खाना खाने से भी बदहजमी हो जाती है, और अधिक मात्रा में मोटा-झोटा खाने से भी (गरीब लोगों में इस रोग का यही कारण होता है)। अचार-मुरब्बे, या ऐसा भोजन जिस में मिर्च, मसाले, अदरक आदि होते हैं—ये सब पेट को हानि पहुंचाते हैं और वह अपना काम करने में अयोग्य हो जाता है।

जिन को शराब पीने की आदत पड़ जाती है उन सब को अजीर्ण रोग होता है, उन को भूख कम लगती है विशेष कर सुबह को भोजन करते समय। वे पेट-दर्द की शिकायत किया करते हैं और बार-बार उल्टी कर देते हैं। तम्बाकू भी शरीर के लिये उतनी ही हानिकारक है जितनी शराब, और अजीर्ण होने का एक साधारण सा कारण है। बहुत से लोगों में, विशेषकर अधिकारियों, विद्यार्थियों तथा व्यवसायी लोगों में अजीर्ण का कारण यह है कि ये लोग प्रतिदिन व्यायाम नहीं करते। मनुष्य के रचयिता ने कहा था "तू अपने ही पसीने की रोटी खाएगा।" शरीर का स्वास्थ्य भोजन और व्यायाम पर निर्भर होता है। जो व्यक्ति

खाना खाता है परन्तु व्यायाम (शारीरिक परिश्रम) नहीं करता, उस की पाचन-क्रिया बिगड़ जाएगी और उसे दु:ख भोगना पड़ेगा।

ऊपर दिए हुए कारणों के अतिरिक्त कुसमय भोजन करने से भी अजीर्ण होता है अर्थात् भोजन के नियमित समयों के बीच-बीच में कुछ खाना और रात को देर में पेट भर कर भोजन करना, ये दोनों आदतें कभी-न-कभी मनुष्य को इस रोग का शिकार बना देती हैं। कौन सा भोजन लाभदायक और कौनसा हानिकारक है—इस के विस्तार के लिये अध्याय १४ देखिये।

चिकित्सा

अजीर्ण रोग का इलाज करने के लिये इस के कारण का पता लगाना और उस का उन्मूलन आवश्यक है। तम्बाकू और और अन्य प्रकार के सभी मादक पदार्थों का परित्याग भी आवश्यक है। अस्वस्थ पेट इतना काम नहीं कर सकता जितना स्वस्थ पेट करता है। इस कारण भोजन की मात्रा को कम कर देना उचित होता है। केवल वही भोजन करना चाहिये जो आसानी से पचाया जा सके। ऐसे पचनीय भोजन की सूची यह है: गेहूं की अच्छी तरह सेंकी हुई रोटी, अच्छी तरह गलाए हुए पचपचे चावल (कंजी), दम किए हुए चावल, पानी में पकाए हुए (पोच किए हुए) अंडे,* अंडे की जेली, पकाए या बिना पकाए हुए आड़ू, नाशपाती और अमरूद।

मिठाई न खाना ही अच्छा है; तला हुआ भोजन भी नहीं करना चाहिये।

यदि अजीर्ण गम्भीर हो तो एक खुराक जुलाब (cathartic) की ले लीजिये और २४ घंटे तक कुछ न खाइये। उपवास से अजीर्ण रोग की चिकित्सा करने में सहायता मिलती है क्योंकि इस से पाचन क्रिया के अवयवों को आराम करने का अवसर मिलता है।

जब हृदय में जलन हो और खट्टी डकारें आएं, तो श्वेतसार वाला (starchy) भोजना कम करना चाहिये और उसे के बदले चिकनी चीजें खानी चाहियें। यदि हृदय की जलन और खट्टी डकारें बहुत कष्टदायक हों, तो परिशिष्ट में दिए हुए नुसखे नं. १२ की दस या बीस ग्रेन दवा खाइये। प्रात:काल उठते ही और रात्रि को सोने से पूर्व थोड़ा सा बहुत गरम पानी पीने से पेट के रोग में कमी होती है। इस के अतिरिक्त जब पेट में दर्द हो तो दिन में दो-तीन बार बीस-बीस मिनट तक सेंक देने से भी बहुत लाभ होता है।।

अजीर्ण किसी प्रकार का क्यों न हो इस की चिकित्सा में इस बात पर बल दिया जाए कि रोगी भोजन करते समय प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह चबाए और भोजन धीरे-धीरे करे। इस उद्देश्य के लिए कि पाचन-क्रिया के अवयव ठीक तरह काम कर सकें प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम आवश्यक है। जल्दी-जल्दी स्नान कर के त्वचा को साफ रखना चाहिये।

अजीर्ण के साथ प्राय: जो कब्ज होता है, उस की चिकित्सा नीचे के अनुभाग में दी गई औधसूचनाओं के अनुसार की जाती है। ऊपर दिए गए चिकित्सा के नियमों से अजीर्ण का प्रत्येक रोग ठीक नहीं हो सकता। कभी-कभी रोगी के लिये यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौनसा-कौनसा भोजन मेरे लिये ठीक नहीं और उसी-उसी भोजन से उसे बचना चाहिए।

---

*विधि के लिए पृष्ठ १५९ देखिये
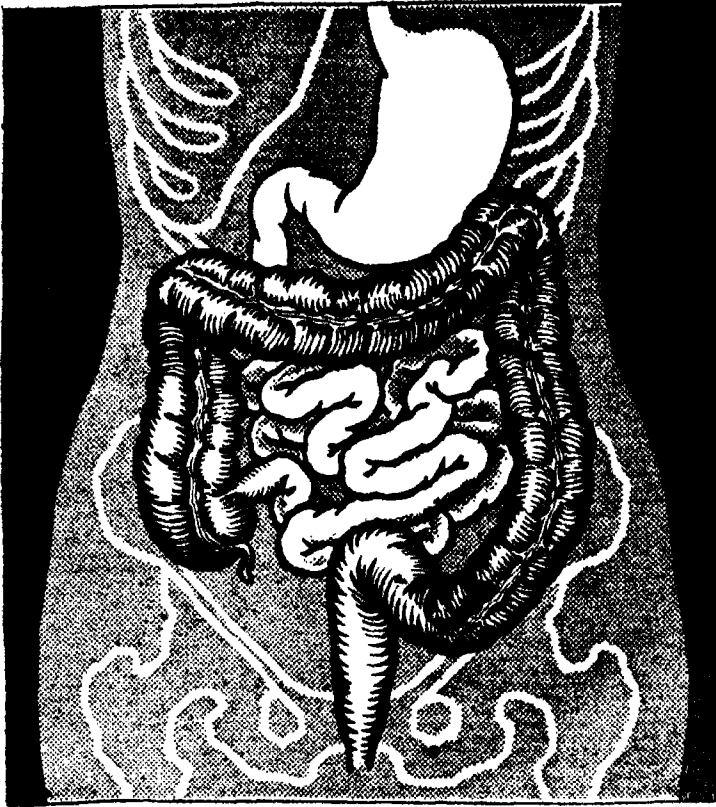
आमाशय और आंतों का चित्र। बड़ी आंत (वृहदन्त्र) में का बहुत सा तरल शरीर द्वारा शोषित हो जाता है।

कब्ज (Constipation)

दिन में एक बार या अधिक बार टट्टी होना आवश्यक है। परन्तु जब दो या तीन दिन में केवल एक बार टट्टी हो तो इसे कब्ज कहते हैं। कब्ज उन लोगों को भी होता है जो टट्टी के उतरने के लिये रोज जुलाब लेते हैं। कब्ज के दूसरे लक्षण हैं जीभ का मन्दा होना, श्वास में दुर्गन्ध आना कभी-कभी सिर में दर्द होना, विशेषकर चांद में और पीछे, और कभी-कभी पेट में भी बेचैनी होती है।

कब्ज का कारण सदा बैठे रहने की आदत, चाय, कॉफी, तम्बाकू या नशे की चीजों का सेवन है। कभी-कभी पेट की व्यवस्था के प्रतिकूल दशाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं जिन

से कब्ज हो जाता है। निरन्तर जुलाब लेने से कब्ज का रूप बिगड़ कर बहुत भयंकर अवस्था पैदा कर देता है। स्त्रियों को मुख्यतः यह रोग इस कारण होता है कि जब मल-त्याग की आवश्यकता होती है, तो वे इस पर ध्यान न देकर इसे दबा लेती हैं। समय बीत जाने पर जब मल आंतों के निचले सिरे पर पहुंच जाता है तो फिर मल-त्याग की इच्छा भी जाती रहती है और कब्ज बहुत भयंकर रूप धारण कर लेता है ।

चिकित्सा

बहुधा कब्ज का इलाज गलत आदतों को सुधारने से होता है। उचित भोजन और प्रतिदिन शारीरिक व्यायाम (परिश्रम) करने से विज्ञप्त औषधियों की अपेक्षा बहुत अधिक लाभ होता है। घूमना या बगीचे में काम करना या इसी प्रकार का कोई शारीरिक व्यायाम प्रतिदिन करना चाहिये । एक बहुत लाभप्रद व्यायाम यह है कि—चित्त लेट कर कमर के नीचे कम्बल या कोई और कपड़ा तह कर के रखिये और दोनों पैरों को सीधा ऊपर उठाइये। प्रतिदिन बीस या तीस बार कीजिये। टांगों को ऊपर उठाने से पहले लम्बी सांस लीजिये और टांगें नीचे करके एक बार लम्बी सांस लेकर थोड़ी देर विश्राम कीजिये। टांगों को ऊपर उठाते समय जल्दी न कीजिये। घुटने मुड़ने न पाएं। टांगों को धीरे-धीरे नीचे लाइये एक दम गिरने न दीजिये इस व्यायाम से पेट के स्नायु पुष्ट होते हैं और इस प्रकार कब्ज के बहुत से रोग दूर हो जाते हैं।

प्रातःकाल उठ कर एक प्याला गर्म या ठंडा पानी धीरे-धीरे पीने से बड़ा लाभ होता है। बहुत से लोग यथेष्ट मात्रा में पानी आदि नहीं पीते और उन के कब्ज का कारण यही हो सकता है। इसलिए कब्ज के रोगियों को भोजन के समय पानी आदि पीने के अतिरिक्त पांच या छः गिलास पानी पीने का नियम बना लेना चाहिये । पानी के कुछ भाग के बदले फलों का रस पीना चाहिये।

कब्ज की कुछ दशाओं में टट्टी का रंग सफेद सा होता है। पर कब्ज के इस कारण का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जिगर (यकृत) अपना काम ठीक तरह से नहीं कर रहा है। इसे प्रसम गीत में लाने के लिये इसे दिन में दो बार १५ से २५ मिनट तक गरम पानी की सेंक पहुंचानी चाहिये और प्रतिदिन सवेरे १/४ ग्रेन इपेकाक (Ipecac) का सेवन करना चाहिये।

कब्ज को दूर करने के लिये जुलाब लेने की आदत नहीं डालनी चाहिये, क्योंकि जब कोई व्यक्ति गोलियां खानी आरम्भ कर देता है, तो उन का प्रतिदिन खाना आवश्यक सा हो जाता। जुलाब लेने की इस विधि से एक बड़ी हानिकारक आदत पड़ जाती है। दवा के बदले प्रतिदिन एक या आधा आउंस 'agar-agar' का सेवन कीजिये । इस को थोड़ी देर चूल्हे में भून कर खाना चाहिये । इसे उबालना नहीं चाहिये ।

किसी भी समय अनिमा द्वारा आंतों को साफ किया जा सकता है, परन्तु प्रतिदिन इस का प्रयोग करना ठीक नहीं। सब से अच्छा उपाय तो यह है कि टट्टी उतारने के लिये पहले एक दो दिन तक तो डेढ़ पाव या अधिक मात्रा में गरम पानी का अनिमा लीजिये, तीसरे दिन थोड़ी मात्रा में ठंडे पानी का अनिमा लीजिये और चौथे दिन उस से भी कम ठंडे पानी का अनिमा लीजिये। इस प्रकार एक या दो सप्ताह में बिना अनिमा लिये टट्टी अपने आप ही उतरने लगेगी।

कोष्ठबद्धता (कब्ज) को रोकने में सहायता देने वाले दो व्यायाम

साधारण कब्ज को दूर करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि एक छोटी रबड़ की पिचकारी लीजिये (देखिये २०२ पृष्ठ पर चित्र)। इससे आंतों के निचले सिरे में ठंडा पानी अन्दर पहुंचाइये। साफ खौले हुए पानी का प्रयोग कीजिये। पानी अन्दर पहुंचा कर कुछ मिनट ठहरिये और फिर टट्टी करने जाइये। थोड़ा सा ठंडा पानी आंतों को उत्तेजित करने के लिये पर्याप्त होता है जिस के परिणाम स्वरूप टट्टी उतरती है। यह तरीका अनिमे की अपेक्षा अधिक सहज है और उतना ही गुणकारी भी है।

कब्ज की प्रत्येक दशा की चिकित्सा करने के लिये रोगी को नियमित समय पर मल-त्यागने के महत्व को समझ लेना चाहिये। सब से अच्छा समय प्रातःकाल नाश्ते के बाद का होता है। प्रतिदिन इसी समय टट्टी जाना उचित है चाहे मल-त्यागने की इच्छा भी न हो, क्योंकि कुछ समय बाद आंतें समय पर टट्टी उतारने की अभ्यस्त हो जाएंगी।

यदि जुलाब लेना आवश्यक ही हो तो सब से अच्छा जुलाब यह है कि १५ बूंदें कैसकेरा सैगरेडा (cascara sagrada) की पी लीजिये या हर सुबह पांच ग्रेन की कैसकेरा सैगरेडा की गोलियां खा लीजिये।

बवासीर—Hæmorrhoids (Piles)

गुदा के ठीक मुंह पर या अन्दर छोटी-छोटी झिल्लियां हो जाती हैं। ये झिल्लियां इस भाग की नसों (नाड़ियों) के फैल जाने के कारण बढ़ जाती हैं। बवासीर का एक कारण कब्ज भी है।

चिकित्सा

बवासीर या अर्श रोग (Hæmorrhoids) की चिकित्सा करने का सब से आवश्यक उपाय कब्ज का इलाज करना है। इस के लिये पहले अनुच्छेद में वर्णित उपचारों को

काम में लाइये। यदि किसी को गम्भीर अर्श रोग हो तो उसे किसी योग्य डॉक्टर को दिखाना चाहिये क्योंकि ऐसी दशा में सफल चिकित्सा करने के लिए किसी अच्छे डॉक्टर की ही आवश्यकता होती है।

जब यह रोग गम्भीर न हो तो निम्नलिखित उपाय अधिक लाभदायक होंगे। टट्टी जाने का एक समय निश्चित कर लेना चाहिये, हो सके तो नाश्ते के बाद, कब्ज वाले अनुच्छेद में बताई गई छोटी पिचकारी के समान पिचकारी में एक या दो बार साफ ठंडा पानी भर कर आंतों में पहुंचाइये, इस के बाद कुछ मिनट ठहरिये और फिर मल-त्याग के लिए जाइये। आंतों को इस प्रकार साफ करने के पश्चात् ठंडे पानी की एक और पिचकारी अन्दर डालिये और तत्क्षण उसे बाहर निकाल लीजिये। इस से आंतों का निचला सिरा साफ हो जाता है और यह चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण अंग है। आंतों को साफ करने के बाद एक साफ कपड़े को पानी में भिगो कर गुदा साफ कीजिये। उसे सुखा कर फिर थोड़ा सल्फाथियोजोल मरहम चारों ओर गुदा पर लगाइये। यह मरहम दिन में दो तीन बार लगा सकते हैं। इसे गुदा के मुंह पर और भीतर आंत में लगाइये।

अतिसार या दस्त (Diarrhœa)

दस्त स्वयं तो कोई रोग नहीं है परन्तु यह दूसरे रोगों का लक्षण अवश्य है। यदि पड़ोस में हैजा फैला हुआ हो तो दस्तों का आना उस का पहला लक्षण है और इस की चिकित्सा भी अध्याय २४ में वर्णित विधि के अनुसार करनी चाहिये। यदि दस्त कुछ दिनों तक जारी रहें और मल लाल रंग का हो, जिस में आंव भी हों, तो जो चिकित्सा इस अध्याय में पेचिश के लिये बताई गई है उस का प्रयोग कीजिये।

दस्त का साधारण आक्रमण बहुधा अनुचित भोजन करने या खराब पानी पीने से होता है। जिस भोजन ने किसी को दस्त लगा दिये हों, सम्भव है वह अपचनीय हो, या ठीक तरह से पकाया न गया हो, या बासी हो, या कच्चे फल हों, या केकड़ा हो, या सूखी मछली हो। दस्तों का एक बहुत बड़ा कारण है मक्खियां। किसी भी रूप में अधिक खाना खा लेने, खराब पानी पीने, आंतों में कीड़े हो जाने और पेट में ठंड लग जाने से भी दस्त लग जाते हैं।

चिकित्सा

बार-बार मल-त्याग की आवश्यकता से यह स्पष्ट हो जाता है कि आंतें अपने अन्दर से विकार उत्पन्न करने वाले किसी पदार्थ को बाहर निकाल-फेंकने का प्रयत्न कर रही हैं; और इसलिए बार-बार पानी पी कर और प्रत्येक बार मल-त्यागने के बाद १०५ डिगरी फ. तापमान के पानी के अनिमे का प्रयोग कर के, और कुछ खुराकें कैस्टर आयल की पी कर आंतों की इस काम में सहायता करनी चाहिये। पानी थोड़ा-थोड़ा और धीरे-धीरे पीना चाहिये। यदि साधारण पानी अनुकूल न हो, तो पतली-पीच (rice water) पीनी चाहिये (डेढ़ पाव पीच में चाय का एक चम्मच नमक मिला हुआ हो)। पानी आंतों में से गुजरता
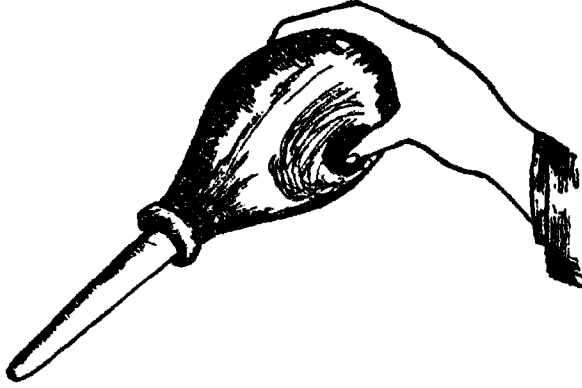
साधारण कोष्ठबद्धता (कब्ज) की चिकित्सा में एक छोटी पिचकारी का प्रयोग किया जा सकता है।

है और उस पदार्थ को जो दस्तों का कारण बना हुआ होता है, धो कर बाहर निकाल देता है। तीन-तीन, चार-चार घंटे बाद पंद्रह-बीस मिनट तक पेट को गर्म पानी से सेंकना चाहिये जिस से दर्द कम हो जाए और रोग दूर हो।

एक दिन अनिमा लेने और बताई हुई रीति से पानी-पीने के बाद दस्तों को रोकने के लिए यह उपाय कीजिये। पीने के पानी की मात्रा कम कर दीजिये और प्रत्येक बार मल-त्याग के पश्चात् गर्म श्वेतसार (Starch) के अनिमे का प्रयोग कीजिये (देखिये अध्याय २२)। चार-चार घंटे बाद परिशिष्ट में दिए हुए नुसखे नम्बर सात की दवा का प्रयोग कीजिये।

दस्तों की सब दशाओं में रोगी का चुपचाप बैठा रहना आवश्यक है। बिस्तर पर लेटा रहना और भी लाभदायक है। चलना-फिरना या हिलना-डुलना चोट लगी हुई आंख या हाथ को हिला कर दर्द बढ़ाने ही के समान है।

२४ या ४८ घंटों तक केवल पीच और अंडे की सफेदी का पानी ही पीना चाहिए। (देखिये परिशिष्ट, नुसखा नं.२७)। जब तक दस्त रुक न जाएं तब तक कोई ठोस भोजन नहीं करना चाहिये और रोग के ठीक हो जाने के पश्चात् भी कुछ दिनों तक ठोस भोजन कम करना चाहिये दस्तों के पूर्ण रूप से बंद हो जाने पर भी सब्जी या मांस का एक ग्रास रोग को फिर उभार सकता है।

दस्तों के रोगी का भोजन और पानी बहुत साफ रहना चाहिये; और जिन बरतनों और चम्मच आदि का वह प्रयोग करता हो, उन्हें भी खौलते हुए पानी में धो कर साफ रखना आवश्यक है। रोगी को खाना खाने से पूर्व सदा अपने हाथ धो लेने चाहिये। जब तक दस्त पूर्ण रूप से न रुक जाएं तब तक रोगी के पेट पर १० या १५ इंच की फलालैन की पट्टी बंधी रहनी चाहिये। इस से पेट को सर्दी नहीं लग सकती।

पेचिश या संग्रणी (Dysentery)

पेचिश के रोग में भी दस्तों की भांति पतली टट्टी होती है, परन्तु पेचिश में नीचे की आंतों में मरोड़ा और जलन होती है। मल-त्याग की इच्छा तो बार-बार होती है परन्तु उस की मात्रा बहुत कम होती है, और उस में आंव और रक्त रहता है। कभी-कभी यह रोग तेज ज्वर के साथ अचानक आ घेरता है।

पेचिश एक साधारण रूप में एशिया के लगभग सब देशों में अमीबा (Amœba) के कारण होती है। अमीबा एक अत्यंत सूक्ष्म रोग-कृमि होता है जो भोजन और पानी के साथ आंतों में चला जाता है। जब अमीबा की पेचिश होती है तो मल में रक्त और आंव होते हैं, पेट में दर्द रहता है, मल-त्याग के समय आंतों के निचले सिरे पर जलन होने लगती है। एक दिन में तीस बार या उस से अधिक बार मल-त्याग की आवश्यकता होती है। रोगी कमजोरी महसूस करता है और उस का वजन भी बहुत कम हो जाता है। यह रोग प्रायः जड़ जमा लेता है; कुछ दिन तक दस्त होते हैं, इस के बाद बन्द हो जाते हैं और कुछ दिन तक कब्ज रहता है जिस के बाद फिर दस्त और भी गम्भीर रूप में शुरू हो जाते हैं।

अमीबा की पेचिश बहुत दिनों तक रहने पर भोजन किया जाने के पश्चात् तुरन्त ही अ-परिवर्तित दशा में शरीर से निकलता है।

जिन लोगों को अमीबिक की पेचिश होती है उन के कलेजे (यकृत) के अन्दर कभी कभी पीप पड़ जाती है जिस के परिणाम स्वरूप पसली के निचले सिरे पर दाईं और सामने की ओर दर्द होने लगता है। कभी-कभी पीठ में दाएं कंधे के नीचे भी पीड़ा होती है।

चिकित्सा

पेचिश प्रत्येक रूप में एक खतरनाक रोग होता है, इसलिए यदि सम्भव हो सके तो किसी अच्छे डॉक्टर की सहायता लेनी चाहिये। पेचिश की चिकित्सा पेचिश के रूप को ही देख कर की जा सकती है, और इस के विभिन्न रूपों में अन्तर केवल डॉक्टर ही बता सकता है।

रोगी को बिस्तर में आराम से लिटा देना बहुत आवश्यक है। उसे बिस्तर में लेटे-लेटे ही मल-त्याग के बरतन (bed pan) में मल त्यागना चाहिये। पेचिश के प्रत्येक रूप में बिस्तर में आराम करना एक आवश्यक चिकित्सा है। किसी भी विज्ञप्त औषधि का प्रयोग न किया जाए। ऐसी बहुत कम दवाएं हैं जिन का प्रयोग इस रोग की चिकित्सा के लिये किया जा सकता है। बिना सोचे-समझे आम दस्तों की दवाएं खा लेने से रोग बढ़ जाता है। शराब का किसी भी रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये। इस से हानि होती है।

पेचिश के साधारण रूप

पेचिश के साधारण रूपों और दांतों के रोग के आरम्भ में क्रीमो-सक्सीडाइन (Cremo-Suxidine) जैसी किसी औषधि के प्रयोग से तुरन्त ही लाभ होता है। वयस्क रोगी के लिए इस दवा की पहली खुराक खाने के दो चम्मच भर होनी चाहिये; और फिर जब तक रोग ठीक न हो जाए, तीन-तीन घंटे बाद एक-एक चम्मच दवा देते रहना चाहिये। बच्चों को यह औषधि अवस्था आदि के अनुसार देनी चाहिये।

अमीबा की पेचिस में भोजन बहुत नर्म और द्रव्य पदार्थों तक सीमित रखना चाहिये। ठोस सब्जियां, मिर्चें, चटनी और मसालों का प्रयोग बंद कर दीजिये। भोजन प्रोटीन की अधिक मात्रा वाला होना चाहिये .... जैसे दूध और दूध से बने दूसरे पदार्थ, अच्छी तरह पकाई हुई मटर, बीन, दालें आदि। उपर्युक्त भोजनों की यथार्थ मात्रा के साथ-साथ चावल भी साधारण मात्रा में दिए जा सकते हैं। विशेष औषधि के प्रयोग में —कुरची बिस्मथ टिकियां (Kurchi bismuth tablets), प्रतिदिन तीन बार एक-एक कर के १०० टिकियां खाई जाएं। एक सप्ताह तक विश्राम कीजिये, और यदि आवश्यक हो तो फिर ये टिकियां खाना आरम्भ कर दीजिये। दूध अथवा दही का प्रयोग प्रतिदिन तीन बार किया जाए।

क्वीनेक्राइन (quinacrine) और कार्बारसोन (carbarsone) को मिला कर प्रयोग करने से भी चिकित्सा में लाभ होता है, और यदि रोग तीव्र हो तो औरिओमाइसिन (aureomycin) भी मिला लेनी चाहिये।

अमीबा की पेचिश की आधुनिक चिकित्सा

एक सप्ताह तक प्रति दिन तीन बार दो-दो टिकियां "डाइओडोक्विन" (Diodoquin) की दी जाती हैं। यदि रोगी अच्छा न हो तो दस दिन के पश्चात् ये टिकियां फिर से इसी रीति से दी जाएं।

अमीबा की पेचिश के रोगियों की चिकित्सा किसी अच्छे डॉक्टर से करानी चाहिए।

रोग की गम्भीर अवस्था में जब पेट में मरोड़, और जलन हो तो पेट को गर्म पानी में कपड़ा भिगो कर तथा खूब निचोड़ कर इस से सेंकना चाहिये अथवा पत्थर या ईंट के टुकड़े को गर्म कर के और मोटे कपड़े की तह में रख कर उस से पेट को सेंकने से दर्द दूर होता है। गर्म श्वेतसार (Starch) का अनिमा दीजिये (देखिये अध्याय २२); डेढ़ पाव गर्म श्वेतसार में अफीम के तत्व (Laudanum) की ४० या ५० बूंदें मिला ली जाएं; इस से पीड़ा दूर हो जाती है। तेज गर्म पानी का अनिमा देने से आंत का नीचे का भाग साफ हो जाता है और बार-बार मल-त्यागने की इच्छा कम हो जाती है; डेढ़ पाव पानी में चाय का एक चम्मच भर नमक मिला लिया जाए।

पेचिश के दोनों रूप

पेचिश के दोनों रूपों में "औरिओमाइसिन" (Aureomycin) का प्रयोग किया जा सकता है। यह औषधि २५० मिलीग्राम के 'केप्सूल्स' में आती है। इस दवा के खिलाने की साधारण रीति यह है कि जब तक रोग के लक्षण दूर न हो जाएं, तब तक छः-छः घंटे बाद दो-दो केप्सूल्स खिलाते रहिये। फिर दवा कम कर दी जाती है, अर्थात् प्रत्येक छः घंटे के पश्चात् केवल एक 'केप्सूल' दी जाती है, और इस प्रकार २ या ३ दिन तक दवा देते हैं। बालकों के लिए "औरिओमाइसिन" (Aureomycin) की एक विशेष प्रकार होता है जिसे "स्परसोडिस" (Spersodis) कहते हैं। यह दवा पिसी हुई चॉकलेट में मिला देते हैं; एक छोटे चम्मचे भर चॉकलेट में ५० मिलीग्राम दवा मिलाते हैं। इस दवा के

साथ प्रयोग करने की जो अधिसूचनाएं होती हैं, उन से पता लग जाता है कि कितनी उम्र के बालक को कितनी दवा देनी चाहिए।

पेचिश के सब रूपों में उचित भोजन का ध्यान रखना। बहुत आवश्यक है। पेचिश की भांति जब आंतों में सूजन या कोई दूसरी बीमारी हो जाती है, तो साधारण भोजन करने पर भी आंतें छिल जाती हैं और रोग बढ़ जाता है। पेचिश के रोगी के लिये साधारण व्यक्ति की भांति भोजन करना वैसा ही है जैसे दुखती आंखों में रेत डाल देना। आहार की मात्रा भी जितनी कम की जा सके कर देनी चाहिये। यदि जीभ पर गन्दी तह जम जाए तो चावल का मांड या अंडे की सफेदी का पानी देना चाहिए। कच्चे अंडे साधारण रीति से या परिशिष्ट में दिये हुए एग-नोग (Egg-Nog) की तरह खाने चाहिये। दो-दो घंटे पश्चात् थोड़ा-थोड़ा भोजन करना दिन में तीन बार छक कर खाने की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। भोजन बहुत ठंडा नहीं होना चाहिये। खट्टा और बासी भोजन कभी नहीं करना चाहिये। यदि जीभ गन्दी न हो तो दूध पिया जा सकता है। दूध का साफ और ताजा होना आवश्यक है और उस का प्रयोग करने से पहले उसे उबाल लेना चाहिये। रोगी के अच्छा होने के साथ-साथ भोजन की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते रहना चाहिये। ठोस पदार्थ खाने के विषय में अत्यन्त सावधान रहिये। सब्जियां नहीं खानी चाहियें, और बहुत से फल भी ऐसे होते हैं जिन्हें रोगी सहन नहीं कर सकता। प्रत्येक ठोस भोजन निगलने से पहले बहुत अच्छी तरह से चबा लेना चाहिये। यदि एक कण भी बिना चबाए हुए निगल लिया गया तो वह पूर्ण रूप से दूर हुए रोग को फिर से उभार सकता है। नुसखे नम्बर ९ (देखिये परिशिष्ट) की दवा से मुंह को बार-बार धोकर साफ रखना चाहियें।

दस्त और पेचिश को रोकने की विधि

दस्त और पेचिश को रोका जा सकता है और यह दूसरी बीमारियों की अपेक्षा अधिक आसान भी है। रोग कृमि सदा शरीर में प्रवेश करते हैं; अत: रोग को दूर रखने के लिए केवल साफ भोजन करना और साफ पानी पीना चाहिये और मुंह में कोई गन्दी वस्तु नहीं रखनी चाहिये।

जो लोग निम्नलिखित नियमों का पालन करेंगे उन्हें दस्त (अतिसार) और पेचिश नहीं हो सकती।

१. दस्त और पेचिश के रोग बहुधा गन्दा पानी पीने से लगते हैं। इन रोगियों के मल में इस प्रकार के बहुत से रोग-कृमि पाए जाते हैं। बहुत सी टट्टियां कुओं और नदियों के पास होती हैं। कभी-कभी असावधान लोग उस मल को कुएं और नदियों में फेंक देते हैं। अत: जो लोग कुएं या नदी में से पानी लेकर उसे बिना उबाले हुए पी लेते हैं उन्हें सदा दस्त और पेचिश होने का खतरा रहता है। इस कारण पीने या मुंह और दांत साफ करने के लिए पहले पानी को उबाल लीजिये।

२. जब तक हाथों को धोकर साफ न कर लिया जाए तब तक पीने के पानी या भोजन को हाथ न लगाइये।

३. यदि भोजन उन बरतनों में परोस दिया गया हो जिन्हें पहले से साफ नहीं किया जा चुका हो या बरतन जमीन पर गिर पड़ा हो तो उस में रोग कृमि लग सकते हैं जिस से दस्त और पेचिश हो जाती है। इसलिए हर बार जब भोजन के बरतन या कपड़े का प्रयोग किया जाए तो उस को गर्म पानी में उबाल लीजिये। यदि खाने की चीज जमीन पर गिर जाए तो उसे फेंक देना चाहिए या उस को उबाल कर स्वच्छ कर लेना चाहिये या उस भाग को काट कर फेंक देना चाहिए।

४. सारे भोजन को मक्खियों से बचाइये। मक्खियां उन लोगों का मल खाती हैं जो दस्त या पेचिश से पीड़ित होते हैं। यह मल मक्खियों के परों पर भी लग जाता है। ये मक्खियां साफ भोजन पर बैठती हैं और लाखों रोग-कृमि इन पर छोड़ जाती हैं। (मक्खियों को दूर रखने के उपाय के लिये देखिये अध्याय १६)।

५. भोजन का बहुत सा भाग पका हुआ होना चाहिये। भोजन बनाने के पश्चात् उसे ढंक कर रख देना चाहिये जिस से मक्खियां उस तक न पहुंचें। बाजार से खरीदी हुई सब सब्जियों को पकाना चाहिये सिवाए उन के जो खीरे-ककड़ियों के समान उबलते हुए पानी में साफ करके और छिलका उतार कर खाई जाती हैं। बाजार से खरीदे हुए सब फलों को खाने से पहले उन का छिलका उतार देना चाहिये। यदि फल को पहले साबुन और पानी से धो लिया जाए और फिर उस का छिलका उतारा जाए, तो उस के साफ हो जाने में संदेह नहीं रहता।

खरबूजों और तरबूज की फांकें बाजार में बिकती हैं; उन से पेचिश दस्त के रोग बहुत अधिक संख्या में फैलते हैं।

६. यदि परिवार के किसी सदस्य को दस्त या पेचिश हो तो उस के मल को फेंकने से पूर्व कीटाणु-मुक्त कर लेना चाहिये। यह उपाय अध्याय २१ में बताया जा चुका है। रोगी द्वारा प्रयोग किए जाने वाले किसी भी प्लेट, प्याले, चिलमची या तौलिये का प्रयोग परिवार के किसी दूसरे सदस्य को नहीं करना चाहिये।

७. उंगलियों को मुंह से दूर रखिये। उंगलियां बहुत सी गन्दी वस्तुओं को छूती हैं और यदि उन्हें मुंह में डाला जाए तो दस्त के कीड़े शरीर के अन्दर घुस आते हैं। साफ भोजन और पानी के अतिरिक्त पैसा या कोई दूसरी वस्तु मुंह में न डालिये।

८. जब भी मल में पतलापन दिखाई दे, तभी उस का उपचार आरम्भ कर दीजिये —चलना-फिरना बन्द कर के आराम कीजिये और भोजन को केवल द्रव्य-पदार्थों तक सीमित रखिये। उपचार जल्दी आरम्भ करने से रोग गम्भीर स्थिति को प्राप्त नहीं हो पाता।

कृपया याद रखिये:— जब कभी 'सल्फा' श्रेणी की औषधि नुसखे में हो, तो इस बात का विशेष ध्यान रखिये कि जब तक औषधि का सेवन किया जाए, तब तक पानी अधिक मात्रा में पिया जाए, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि गुर्दों (वृक्कों) को किसी प्रकार की क्षति पहुंचे।

तीक्ष्ण आन्त्रपुच्छ-प्रदाह (Acute Appendicitis)

लक्षण: आन्त्रपुच्छ उदर के दाहिनी ओर स्थित है। यह कूल्हे की हड्डी तथा नाभि के बीच लगभग मध्यबिंदु पर स्थित है। आन्त्रपुच्छ-प्रदाह का प्रथम लक्षण बेचैनी अथवा

वास्तविक वेदना हो सकती है। रुग्ण स्थान को दबाने पर कोमलता भी हो सकती है। शीघ्र ही दर्द अत्यंत तीव्र हो जाता है। कई उदाहरणों में शुरु में दर्द आन्त्रपुच्छ के स्थान पर, मालूम न पड़ कर सम्पूर्ण पेट में फैल जाता है परन्तु नाभि में अधिक तीव्रता का अनुभव होता है। अतः पेट-दर्द को भी मामूली बात नहीं समझना चाहिये।

यदि रुग्ण तंतु-जाल शांत रक्खे जाएं और उन्हें छेड़ा न जाए तो आन्त्रपुच्छ की सूजन कम हो सकती है। यदि अरण्डी के तेल (Castor Oil) अथवा किसी अन्य रेचक की एक खुराक दे दी जाए, तो आंतें उत्तेजित हो कर अधिक क्रियाशील हो जाती हैं और आन्त्रपुच्छ फट सकती है। फटी हुई आन्त्रपुच्छ को काबू में लाना साधारण रूप से सूजी हुई आन्त्रपुच्छ की अपेक्षा अधिक कठिन है।

केवल दर्द ही आन्त्रपुच्छ का निश्चय करने के लिये काफी नहीं है और न दबाने पर कोमलता का अनुभव ही इस का विश्वस्त लक्षण हो सकता है, किन्तु यदि कठोरता, दृढ़ता तथा पेट की दीवार की पेशियों, विशेष रूप से दाहिनी ओर की पेशियों की कोमलता आदि लक्षण भी उपस्थित हों तो बहुत संभव है कि आन्त्रपुच्छ-प्रदाह का ही आक्रमण हो। खांसी तथा गहरी सांस दर्द को तीव्रतर करती हैं। इस का आक्रमण चाहे 'कपकंपी लग कर शुरु हो या न हो किन्तु शुरु से थोड़ा-बहुत ज्वर होगा ही। आम तौर पर रोगी को कोष्ठबद्धता (कब्ज) होती है तथा वह भूख न लगने, जी मिचलाने व उल्टी की शिकायत करता है। बिस्तरे पर लेटने पर रोगी पीड़ा-युक्त भाग के तनाव से मुक्ति पाने के लिये अपनी दाहिनी टांग ऊपर को खींचता है।

यदि इन लक्षणों से आन्त्रपुच्छ-प्रदाह की पीड़ा का संदेह हो तो शीघ्र ही डॉक्टर को बुला लीजिये। उस के आने तक रोगी को बिस्तरे में पूर्णतया शांत लिटाए रखिये। यदि डॉक्टर को संदेह हो तो वह कुछ परीक्षण कर सकता है जिन के लक्षणों से वह रोग का पक्का निर्णय कर सके। वांछित सूचना मिल जाएगी।
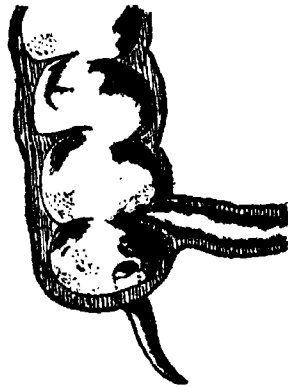
स्थूल आंत्राशय और आंत्र-पुच्छ

साधारणत: आन्त्रपुच्छ-प्रदाह प्रतिरोध-शक्ति (resistance) की दुर्बलता के कारण होता है। खाने-पीने की अधिकता, कोष्ठबद्धता (कब्ज), कार्य की अधिकता, चिन्ताएं, ठंड लगना तथा गिरा हुआ स्वास्थ्य इन में से एक या सब, रोगों के प्रति अवरोध-शक्ति के क्षीण होने का कारण हो सकते हैं।

अगली अवस्था सूजन उत्पन्न करने वाले अथवा मवाद उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं का सम्पर्क हो सकती है। कष्ट का ठीक-ठीक क्या रूप होगा यह इस बात पर निर्भर है कि किस अंग पर रोग-आक्रमण हुआ है। यदि आन्त्रपुच्छ पर आक्रमण हुआ है तो रोग आन्त्र-पुच्छ-प्रदाह (Appendicitis) होगा। जब डॉक्टर द्वारा आन्त्रपुच्छ-प्रदाह की पुष्टि हो जाए तो शल्यक्रिया की जाए या नहीं यह रोगवृद्धि तथा रोगी की सामान्य अवस्था द्वारा ही निश्चित होगा। यदि हालत बदतर होती जाए या गिल्टी की वृद्धि से मवाद उत्पन्न होने का पता चले, तो शल्य चिकित्सा करनी होगी।

सौभाग्यवश आन्त्रपुच्छ के अनेक रोगी बिना शल्यक्रिया के ही ठीक हो जाते हैं। यदि शल्यक्रिया आवश्यक हो और इसे करने में अधिक देर न की जाए तो रोगी के जल्दी अच्छा हो जाने का अच्छा अवसर होता है।

यदि आन्त्रपुच्छ के सीधे ऊपर बर्फ की थैली रख दी जाए तो वेदना कम हो जाएगी और रोग-वृद्धि विलम्बित हो जाएगी रुग्ण स्थान को सेंकना नहीं चाहिये, परन्तु रोग की जगह बर्फ का प्रयोग करते समय यदि टांगों और पैरों में गर्मी पहुंचाई जाए तो उस से लाभ होगा।

बहुमूत्र-रोग (Diabetes)

बहुमूत्र-रोग क्लोम-ग्रंथि (Pancreas) की रुग्ण अवस्था से उत्पन्न होता है। इस अवयव से 'इन्सुलिन' (insulin) निकलता रहता है जिस की आवश्यकता साधारणतया शरीर के उस ईंधन को जलाने के लिये पड़ती है जो शक्कर के रूप में जिगर द्वारा रक्त को प्रदान किया जाता है। जब 'इन्सुलिन' की कमी अथवा उस का नितान्त अभाव हो जाता है, तो रक्त में उपस्थित शक्कर प्रयोग में नहीं आती और फलत: मूत्र में दिखाई देने लगती है। बहुमूत्र-रोग के अन्य विशेष लक्षण, शरीर के वजन में द्रुतगामी कमी, कमजोरी, असामान्य रूप से क्षुधा-वृद्धि, तीव्र प्यास, पीठ में दर्द, फोड़े-फुंसी इत्यादि, रक्त-विकार, विषैले फोड़े, (carbuncles), चर्मरोग (eczema) और खाज के रूप में प्रगट होते हैं।

बहुमूत्र-रोग के बढ़ जाने पर बार-बार आंखों में अन्य लक्षण उपस्थित होने लगते हैं। तब नेत्र-रोग विशेषज्ञ (आंख के डॉक्टर) को रोगी की आंखों में बहुमूत्र जनित मोतिया-बिन्द, नाड़ी-पटल अथवा नेत्र-चित्र-पट-प्रदाह (inflammation of retina) या आंख के गोलक (ढेले) की कोमलता इत्यादि लक्षण दिखाई देने लगते हैं। बहुमूत्र-रोग किसी भी उम्र में बिना किसी जाति अथवा यौन-भेद के हो सकता है। यदि आप के कुटुम्ब में किसी सदस्य को यह रोग हो तो आप को भी यह बीमारी हो जाने की सम्भावना है। बहुमूत्र-रोग चालीस वर्ष से अधिक अवस्था वाले लोगों में अधिकतर होता है विशेषत: जब उन का वजन अनुचित रूप से अधिक हो। स्त्रियों को यह रोग पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता है।

बहुमूत्र-रोग एक चिरस्थायी रोग है। इस की कोई चिकित्सा ज्ञात नहीं है। इन्सुलिन (insulin) की सुइयों और सुनियमित आहार द्वारा यह नियंत्रित किया जा सकता है। प्रत्येक रोगी को उस की दशानुसार चावल, रोटी साबूदाना, शक्कर इत्यादि का प्रयोग करने को कहना चाहिये। हरी पत्तेवाली सब्जी का अधिक प्रयोग किया जा सकता है।

अध्याय २६

कृमियों द्वारा फैलने वाले रोग

मोह ज्वर (Typhus Fever)

मोह-ज्वर एक ऐसा रोग है जिस के कितने ही नाम हैं जैसे जेल (बन्दी-गृह) का ज्वर, जहाज का ज्वर, अकाल का ज्वर। इन नामों से ज्वर के स्वरूप का पता चल जाता है अर्थात् यह एक ऐसा ज्वर है जो उन लोगों को होता है जिन को पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और जो घनी और गन्दी बस्तियों में रहते हैं। अकाल के स्थानों में यह महामारी के समान फैल जाता है।

इस बात का निश्चयपूर्वक पता चल गया है कि यह रोग शरीर की और सिर की जुओं से फैलता है। चारपाई के खटमल जैसे दूसरे कीड़ों द्वारा भी इस रोग का फैलना सम्भव होता है इस के लगने की एक और सम्भावना यह भी है कि मोह-ज्वर के रोगी के मल-मूत्र पर से मक्खियां उड़ कर रोग-कृमियों को भोजन और पीने के पानी पर ले जाती हैं, जिस से यह रोग फैलता है।

लक्षण

मोह-ज्वर के रोगी को काटने के पश्चात् जब जूंएं किसी दूसरे व्यक्ति को काटती हैं तो उसे बहुत जल्दी १२ दिन से पहले-पहले ही रोग लग जाता है। पहले-पहल सर्दी लगती है, इस के बाद ज्वर तेजी से बढ़ता है और चित्तविभ्रम (delirium) की संभावना भी रहती है। आंखें लाल हो जाती हैं और उन में से पानी निकलने लगता है। तीसरे या चौथे दिन बुखार १०४ डिगरी फ. या १०५ डिगरी फ. १०६ डिगरी फ. तक जा सकता है। फिर अगले चार या पांच दिन तक प्रतिदिन प्रातःकाल ज्वर पहले की अपेक्षा कम होगा, परन्तु शाम को १०३ डिगरी फ. १०४ डिगरी फ. तक पहुंचता रहेगा। साधारणतया रोग के १४वें दिन ज्वर अचानक उतरने लगता है। ज्वर के उतरते समय बहुत पसीना आता है।
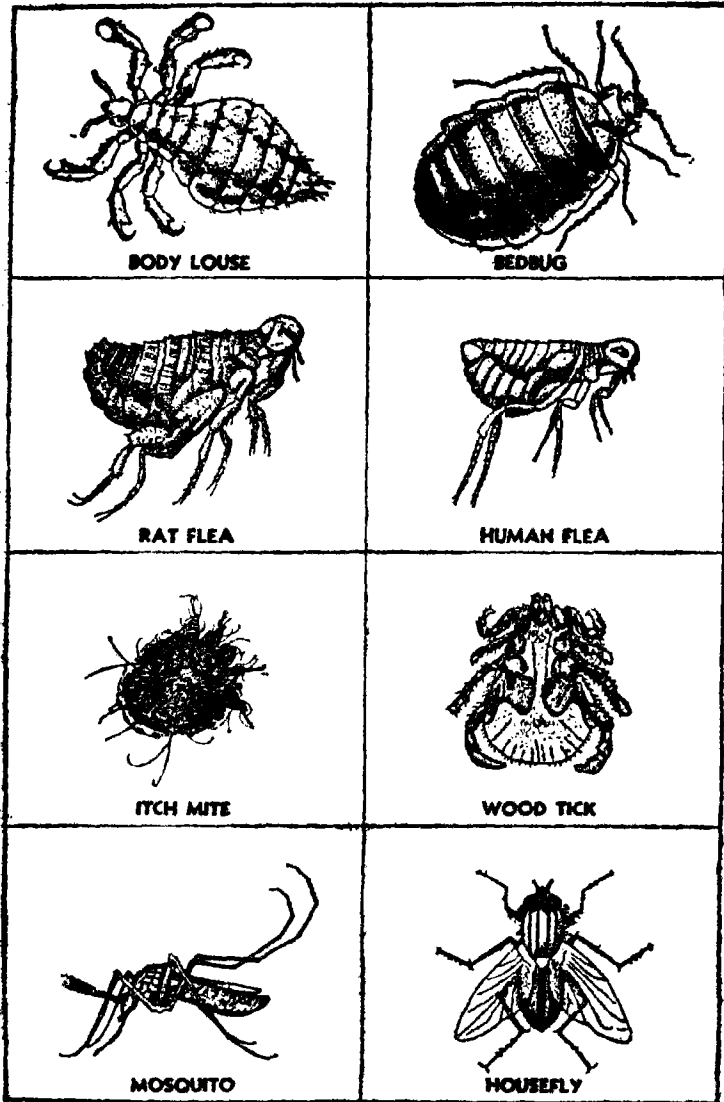
शरीर की जूं या चीलर (Body Louse) चूहे का पिस्सू (Rat Flea) खुजली का कीटाणु (Itch Mite) मच्छर (Mosquito) खटमल (Bedbug) मनुष्य का पिस्सू (Human Flea) काष्ठ-कीटाणु (खून चूसने वाला) (Wood Tick) मक्खी (House-fly)

रोग के दूसरे या तीसरे दिन शरीर में कुछ दाने से निकल आते हैं और ये अग्र-बाहुओं और कंधों पर अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेंगे। ये दाने पहले खसरा के दानों की भांति दिखाई देंगे, थोड़े समय बाद पहले निकले हुए दानों के बीच में गहरे नीले रंग का बिन्दु दिखाई देने लगेगा।

चिकित्सा

दवाइयां न तो इस रोग का इलाज कर सकती हैं और न ही इस की मियाद को कम कर सकती हैं। २४वें अध्याय में मोतीझरा ज्वर की जो चिकित्सा बताई गई है वही मोह-ज्वर के लिये भी बहुत लाभदायक होती है। रोगी को चारपाई पर लिटा देना चाहिये। मकान के बाहर बरामदे में या किसी सायेदार स्थान में जहां धूप न आ सके, वहां रोगी का बिस्तर लगाना चाहिये। रोगी को खौला हुआ पानी बहुत अधिक मात्रा में पीने को दीजिये, उसे फलों का रस भी दीजिये। चावल का मांड, शोरबा, कसटर्ड, डबल रोटी के टोस्ट और खौला हुआ दूध आदि भोजन दीजिये।

रोग से बचे रहने का उपाय

जो लोग साफ स्थानों में रहते हैं और जो साफ सुथरे कपड़े पहनते हैं, उन्हें प्रायः यह रोग नहीं लगता क्योंकि उन के कपड़ों या बिस्तरों में जूंएं नहीं होती।

यदि पड़ोस में कहीं मोह-ज्वर हो तो इस बात में पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि जूं न काटने पाए अर्थात् साफ सुथरे रहना चाहिये। यदि किसी व्यक्ति को रोगी के पास जाना ही पड़े तो उसे रोगी के कपड़ों को नहीं छूना चाहिये, उस की चारपाई पर नहीं बैठना चाहिये और रोगी के किसी भी कपड़े, हैट, टोपी, जूते, मोजे को बिल्कुल नहीं पहनना चाहिये।

रोगियों की देख-भाल करते समय उन की चारपाइयां और बिछौने साफ रखने चाहियें और उन के बालों को भी छोटा करवा देना चाहिये। रोगी के निरोग हो जाने पर उस के बिस्तर और कपड़ों का निःसंक्रमण कर लेना चाहिये।

लंगड़ा-ज्वर (Dengue Fever)

लंगड़ा-ज्वर एक ऐसा रोग है जो मच्छरों से फैलता है। लंगड़े-ज्वर वाले मच्छर जब किसी व्यक्ति को काटते हैं तो रोग के उभरने में तीन से छः दिन तक लग जाते हैं। इस का आक्रमण सहसा होता है। पहले थोड़ी ठंड सी लगती है और उस के बाद हाथ पैर, सिर या पीठ में तीक्ष्ण पीड़ा होने लगती है। सिर में बहुत तीव्र पीड़ा होती है विशेष कर माथे में, और आंखों के पिछले भाग में। आंखें लाल हो जाती हैं और उन में से पानी निकलने लगता है। ज्वर बहुत तेजी से १०३ से १०५ डिगरी फ. तक पहुंच जाता है। भूख मर जाती है। जी मिचलने लगता है और कै होने की सम्भावना भी रहती है।

बच्चों को बेहोशी सी आने लगती है और हाथ-पांव ऐंठने लगते हैं। तीसरे दिन सहसा ज्वर उतर जाता है और उस के साथ-साथ पसीना आने लगता है और कभी-कभी पेशाब बहुत तेजी के साथ आता है और दस्त भी आने लगते हैं। इस के बाद रोगी एक-दो दिन तक ठीक रहता है और फिर पीड़ा होने लगती है, और ज्वर भी बढ़ जाता है। हाथों, शरीर और टांगों में दाने भी निकल सकते हैं। दूसरी बार का यह ज्वर बहुत थोड़े समय तक ही रहता है, और फिर तापमान प्रसम अवस्था में आ जाता है।

चिकित्सा

रोगी को बिस्तर में लेटा रहना चाहिये और रात-दिन मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिये जिस से मच्छर उसे काट न सकें और फिर यह रोग फैल न सके। चावल का मांड, आंशिक रूप से उबले हुए अंडे और फलों तक ही उस को भोजन सीमित रखना चाहिये। आरम्भ में ही उसे एक खुराक कैस्टर आयल या एपसम साल्ट की दीजिये। सिर का दर्द दूर करने के लिये ठंडे पानी में भिगो कर निचोड़ा हुआ कपड़ा या बर्फ उस के सिर पर रखिये। रोगी को खौला हुआ ठंडा पानी और फलों का रस या लेमन पीने को दीजिये। शरीर के जिन भागों में दर्द होता हो उन पर गर्म पानी की सेंकों का प्रयोग कीजिये।

रोग को रोकने के लिये मच्छरों से अपने आप को बचाना आवश्यक है। अपनी चारपाई पर मच्छरदानी लगाइये, और सफर करते हुए उसे अपने पास रखिये।

महामारी (Plague)

प्लेग को, 'काली मृत्यु' या 'गिल्टी का प्लेग' या 'ताऊन' भी कहते हैं। यह रोग कृमि द्वारा फैलता है। ताऊन-कृमि चूहों में एक प्रकार का व्यापक रोग (Epizootic) उत्पन्न करते हैं और यह रोग-उत्पादक कृमि चूहों से मनुष्य में पिस्सुओं द्वारा फैल जाता है। प्लेग मनुष्य को लगने वाली बीमारियों में से एक भीषण रोग है। जब यह बीमारी किसी स्थान में फैलती है तो लोगों को लाखों की संख्या में मार डालती है।

लक्षण

प्लेग-कृमियों के शरीर में प्रवेश करने के पश्चात् यह रोग बहुत जल्दी फैल जाता है प्रायः तीन दिन में। आरम्भ में एक दम सर्दी लग कर ज्वर बहुत तेजी से १०३ या १०४ डिगरी फ. तक पहुंच जाता है। सिर-दर्द, हाथ-पैरों में पीड़ा, वमन और दस्त भी आने लगते हैं। कुछ ही घंटों में आंखें लाल हो जाती हैं और चेहरे की मुद्रा डरावनी और चिन्ताजनक हो जाती है। ज्वर शीघ्र ही १०७ डिगरी फ. तक पहुंच सकता है और फिर रोगी शीघ्र ही मर जाता है।

यदि रोग कम गम्भीर प्रकार का हो तो ज्वर प्रायः १०४ डिगरी फ. तक ही पहुंचेगा। भिन्न-भिन्न आकार की गिल्टियां जांघ के जोड़, बगल या गर्दन में निकलती हैं। इन

से बहुत पीड़ा होती है। रोग के बढ़ने के साथ-साथ रोगी प्रति दिन कमजोर होता जाता है और प्राय: बेसुध (भ्रांतचित्त) सा हो जाता है।

रोग के आरम्भ होने के कुछ घंटे बाद ही मृत्यु हो सकती है। इस रोग के एक रूप "काली मृत्यु" में त्वचा पर काले दाग पड़ जाने से मृत्यु दो दिन में अवश्य ही हो जाती है। इस का एक और रूप है जिसे फुप्फुसीय महामारी (Pneumonic Plague) कहते हैं, इस में फेफड़े, मुख्य रूप से रोग-ग्रस्त होते हैं, इस से दो या तीन दिन में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

प्लेग की सब से अच्छी चिकित्सा प्लेग का टीका लगवाना है जो प्लेग के कृमियों द्वारा फैलाए हुए विष पर काबू पा लेता है। सल्फाडायजीन (Sulfadiazine) या सल्फाथियाजोल (Sulfathiazole) की खुराक भी लाभप्रद होती है (वयस्कों के लिये प्रत्येक चार घंटे पश्चात् दो गोलियां)। प्लेग की बीमारी की सूचना तुरन्त स्वास्थ्याधिकारी (Health Officer) को पहुंचा देनी चाहिये। रोगी को किसी कुशल डॉक्टर की देख-रेख में रखना उचित है।

रोगी को बिस्तरे में लिटाए रखना चाहिये और उस के कमरे की खिड़कियां खुली रहनी चाहियें। उसे पानी यथेष्ट मात्रा में पीने को दीजिये। ज्वर होने पर ठंडे पानी से अंगोछना चाहिये, देखिये अध्याय २१। ठंडे पानी में कपड़ा भिगो कर रोगी के सिर पर रखना चाहिये। कपड़े को बार-बार भिगोइये। भोजन में शोरबा, चावल का मांड और आंशिक रूप से उबाले हुए अंडे होने चाहियें (देखिये अध्याय २१)।

रोग की रोक-थाम

प्लेग की रोक-थाम करने के लिये अधिकारियों को जनता की भलाई के लिये और लोगों को व्यक्तिगत रूप से वही प्रतिबन्धक उपाय करने चाहियें जो हैजा फैलाने पर किए जाते हैं।

जिस क्षेत्र में महामारी फैली हुई हो वहां के अधिकारियों और दूसरे लोगों को चाहिये कि सारे चूहों को नष्ट कर दें। यह बहुत पहले ही पता चल चुका है कि मनुष्यों से पहले चूहों को यह रोग लगता है। चूहों के मरने के पश्चात् उस के चूहे शरीर के पिस्सू निकल कर लोगों के शरीरों में घुस जाते हैं। प्लेग के चूहों को काट कर पिस्सू उन के कृमि अपने शरीर में ले लेते हैं और जब वे आदमी को काटते हैं तो वे कृमि उस के शरीर में चले जाते हैं जिस से उसे प्लेग हो जाती है।

जहां चूहे नहीं होंगे, वहां प्लेग भी नहीं हो सकती। चूहों को मारने वाले लोगों की टोलियों को नियमित रूप से चूहे मारने चाहियें। चूहेदान, जहर, बिल्लियां और चूहे पकड़ने वाले कुत्ते चूहों को मारने का काम भली प्रकार से कर सकते हैं। परन्तु इस का सब से बढ़िया उपाय यह है कि भोजन और खाने पीने का सामान घरों में ऐसे स्थानों में रखना चाहिए जहां चूहे न पहुंच सकें। चूहे बिना भोजन के जीवित नहीं रह सकते। इस के अतिरिक्त जिन दीवारों और फर्शों में चूहों ने अपने भट बना रक्खे हों उन

के स्थान पर ऐसी दीवारें और फर्श बनवाइयें कि वहां चूहे न आ सकें। शहर के विभिन्न भागों में पकड़े हुए चूहों की परीक्षा करने से यह बता सकते हैं कि शहर के किस भाग में प्लेग है और किस में नहीं है।

प्लेग की दवा रक्त-रस (Serum) होती है जो टीका लगाने के काम में आती है। यह ज्ञात हुआ है कि बिना टीका लगे लोगों को प्लेग होने की अधिक आशंका रहती है और टीका लगे लोगों को कम, और बिन टीका लगे लोगों को यह रोग हो जाता है उन की मृत्यु की सम्भावना बिना टीका लगे रोगियों से कम होती है। यदि प्लेग किसी मुहल्ले में फैल जाए तो वहां के सब रहने वालों के, बूढे हों या जवान, प्रतिबन्धक उपाय के तौर पर, इस का टीका लगा देना चाहिये।

जब किसी मुहल्ले में प्लेग फैलती है तो रोग का मनुष्य पर आक्रमण होने से पूर्व चूहे मरने लगते हैं। बीमारी के दिनों में जब कभी कोई मरा हुआ चूहा घर में या घर के आस-पास मिले तो तुरन्त इस की सूचना स्वास्थ्याधिकारी को दीजिये। उस के आने तक मरे हुए चूहे को अपने पास रक्खे रहिये। चूहे को हाथ से न उठाइये। चूहे को बाहर फेंकने से पूर्व उस पर कार्बोलिक एसिड (Carbolic Acid) या खौलता हुआ पानी डाल दीजिये।

प्लेग वाले पिस्सुओं से अपने आप को बचाने के लिये उन घरों में नहीं जाना चाहिये जहां प्लेग के रोगी हों। घर के फर्श पर मिट्टी का तेल, फिनाइल, कोयले का तेल (Crude Coal Oil) जेज् फ्ल्यूइड (Jees' Fluid) सिलियम (Cylliom) छिड़कने से उस घर में पिस्सू प्रवेश नहीं कर सकेंगे। यह तेल दीवारों की जड़ों में और कमरे के कोनों में छिड़किये। पिसी हुई फिटकरी या डी. डी. टी. पाउडर भी फर्श पर छिड़कने से पिस्सू कमरे के अन्दर नहीं आएंगे।

यदि प्लेग के रोगियों वाले मकान में जाना आवश्यक हो तो पहले प्लेग का टीका लगवा लीजिये और उस के अतिरिक्त मोमजामे या प्लास्टिक का बूट जो पैरों को भी ढक ले पहन लीजिये। यह शरीर की रक्षा करेगा और पिस्सू उस के अन्दर घुस कर त्वचा को काट न सकेंगे।

यदि यह फुप्फुसीय महामारी (Pneumonic Plague) हो, तो नर्स और रोगी के घर में रहने वाले दूसरे लोगों को अपने मुंह पर एक ऐसा मुखावरण (Mask) लगा लेना चाहिये जो रुई की पतली तह का बना हो और जिस के दोनों किनारों पर गॉज (Gauze) के दो टुकड़े हों।

फुप्फुसीय महामारी (Pneumonic Plague) सब से अधिक संक्रामक रोगों में से एक है। श्वास लेते समय रोग-कृमि हमारी नाक में घुस जाते हैं, इसी लिये मुखावरण चेहरे पर लगाना चाहिये।

मलेरिया

मलेरिया भारतवर्ष में एक आम बीमारी है और प्रति वर्ष इस से हजारों आदमी मरते हैं। मलेरिया एक ऐसा रोग है जिसे बड़ी आसानी से रोका जा सकता है, क्योंकि वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह रोग केवल एक ही तरीके से लग सकता है अर्थात् मच्छर

मलेरिया-बुखार वाले किसी व्यक्ति को काट कर किसी दूसरे व्यक्ति को काट लेता है और रोग लग जाता है।

मलेरिया, मलेरिया के रोग-कृमि द्वारा होता है जो रोगी के रक्त में पलता है। जब कोई मच्छर मलेरिया के रोगी को काटता है तो वह उस व्यक्ति का थोड़ा सा रक्त चूस लेता है। इस रक्त में मलेरिया के कीटाणु होते हैं और कुछ दिनों बाद जब यह मच्छर किसी दूसरे व्यक्ति को काटता है तो उस के शरीर में मलेरिया के कुछ कीटाणु प्रविष्ट कर देता है और इस के परिणाम स्वरूप शीघ्र ही सर्दी लगने लगती है और ज्वर आने लगता है।

सब मच्छरों में मलेरिया के कीटाणु नहीं होते। इस रोग को फैलाने वाले मच्छरों की पहिचान उन के आकार और किसी वस्तु पर खड़े होने के ढंग से की जा सकती है। चित्र में मलेरिया वाले मच्छर और दूसरे मच्छरों में अन्तर स्पष्ट रूप से विदित हो रहा है।

यद्यपि मलेरिया वाले मच्छर दूसरे मच्छरों की अपेक्षा इतने आम नहीं हैं फिर भी यह कहा जा सकता है कि जहां दूसरे मच्छर होते हैं वहां ये भी प्रायः उपस्थित रहते हैं।
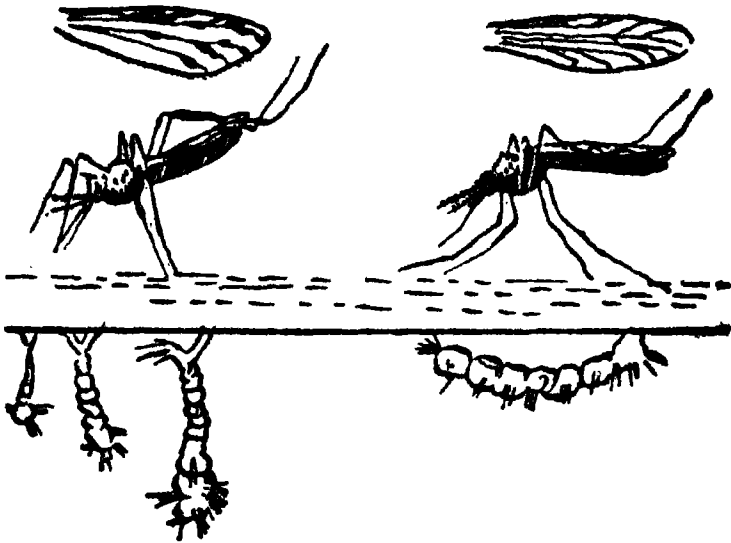
बांईं ओर: मलेरिया का मच्छर और अंडे से निकलने के बाद उस की प्रथम अवस्था; ऊपर पंख दिखाया गया है।

दाहिनी ओर: सामान्य मच्छर और अंडे से निकलने के बाद उस की प्रथम अवस्था; ऊपर पंख दिखाया गया है।

मलेरिया को फैलने से रोकने की विधि

मलेरिया को फैलने से रोकने के लिये मच्छरों को नष्ट कर देना आवश्यक होता है। इस का सब से अच्छा उपाय यह है कि उन्हें पैदा ही न होने दिया जाए। मच्छर केवल पानी में ही उत्पन्न हो सकते हैं। मादा मच्छर तालाब के पानी, धान के खेतों, पोखरे, बाल्टी, घड़े, खाली टीन, खाली नारियल की खोपड़ी और हर उस पात्र में जिस में पानी भरा हो अंडे देती है। ये अंडे दो या तीन दिन में रेंगने वाले कीड़ों का रूप धारण कर लेते हैं। तालाब और पोखरों में रेंगने वाले कीड़ों की गति और आकार को प्रत्येक व्यक्ति ने देखा होगा। दो हफ्ते में ये रेंगने वाले जन्तु पूर्ण रूप से विकसित मच्छर बन जाते हैं।

मच्छरों को बढ़ने से रोकने के लिये तालाबों और पोखरों में नालियां बना देनी आवश्यक हैं। मच्छर बहते हुए पानी में कभी पैदा नहीं होते। खाइयां गहरी खोदनी चाहियें और इन के किनारे सीधे (लम्बाकार) होने चाहियें जिस से घास-पात इन में न जा सके। बरसात के मौसम में तालाबों और पोखरों में पानी जमा होने से रोकने के लिए बहुत से स्थानों पर नालियां बनाना सम्भव नहीं होता। यदि किसी तालाब में नालियां न बन सकें तो उस में बहुत सी छोटी-छोटी मछलियां डाल दीजिये या बतखें पालिये क्योंकि मछलियां और बतखें दोनों इन कीड़ों को खा लेंगी—इस प्रकार मच्छरों को बढ़ने से रोकिये। मच्छरों को न बढ़ने देने का सब से अधिक गुणकारी और उत्तम उपाय यह है कि तालाबों या पानी के अन्य स्थानों पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया जाए। तेल पानी पर फैल कर अपनी तह जमा देता है जिस से उन कीड़ों को सांस लेने को हवा नहीं मिलती और वे शीघ्र ही मर जाते हैं। इस में अधिक तेल की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। एक बड़े पीपे या उतने ही बड़े दूसरे बरतन में भरे पानी के लिये मिट्टी के तेल का एक बड़ा चम्मच काफी है। बीस फुट लम्बे और बीस फुट चौड़े तालाब के लिये मिट्टी के तेल का एक गिलास पर्याप्त है। यदि प्रतिदिन या तीसरे दिन बारिश हो तो हफ्ते में एक बार तेल छिड़क देना चाहिये।

अब इस बात का पता चल चुका है कि यदि हवा अनुकूल हो तो मच्छर बहुत दूर-दूर उड़ कर जा सकते हैं। यह बात कुछ वर्षों पहले ज्ञात नहीं थी; इसलिए मच्छरों को नष्ट करने और पैदा होने से रोकने का काम किसी अकेले परिवार या किसी व्यक्ति विशेष का उत्तरदायित्व नहीं, वरन् सारे मुहल्ले और पास-पड़ोस वालों का है।

इस बात में भी सावधानी की आवश्यकता है कि पुराने टीनों, घड़ों या बांस के खोखले ठूंठों में पानी जमा न होने दिया जाए। यदि मकान की छत के किनारे परनाला हो तो उसे कुछ सप्ताह बाद साफ करवाते रहना चाहिये जि से उस में पानी जमा न हो जाए।

मलेरिया को रोकने का एक और उपाय है जिस का प्रयोग बूढ़े-जवान प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये और वह है मच्छरदानी लगा कर सोना। मलेरिया को फैलाने वाले मच्छर लोगों को दिन में बहुत कम काटते हैं, वे रात को अपना काम करते हैं। मच्छरदानी पतली जाली की होनी चाहिये जिस से कोई मच्छर अन्दर न घुस सके। हर रात को इस का प्रयोग करना चाहिये। यात्रा करते समय इसे अवश्य अपने साथ ले जाना चाहिये और हर रात को इसे लगा कर सोना चाहिये। बच्चों की चारपाई पर भी मच्छरदानी लगानी चाहिये।
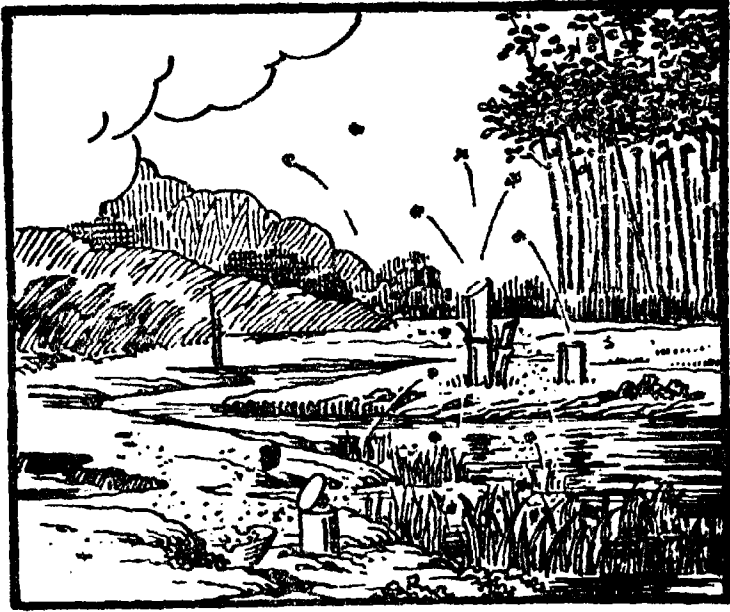
मच्छरों के सामान्य उत्पत्ति-स्थान

लक्षण

मलेरिया के साधारण लक्षणों से तो सभी लोग परिचित हैं, वे लक्षण ये हैं—पहले सर्दी लगती है, फिर ज्वर चढ़ता है और उस के बाद पसीना आता है और सिर में दर्द होता है। साधारण सर्दी लगने से पहले रोगी कमजोरी का अनुभव कर सकता है। सिर-दर्द, जी मिचलाना और कै करना भी सम्भव है। छोटे बच्चों के शरीर में (पेशियों में) कभी-कभी ऐंठन भी होने लगती है। सर्दी लगने के पश्चात् ज्वर १०३ या १०४ डिगरी फ. तक पहुंच जाता है। ज्वर दो तीन घंटे तक रहता है फिर रोगी को पसीना आने लगता है; इस के बाद ज्वर कम हो जाता है। इस प्रकार का आक्रमण प्रतिदिन, तीसरे दिन या दो दिन छोड़ कर हो सकता है। यह ज्वर अनियमित रूप से एक हफ्ते में दो बार या महीनों में एक आध बार भी हो सकता है।

मलेरिया कई प्रकार का होता है। कुछ लोगों में लक्षण मलेरिया के मोतीझरे जैसे होते हैं, परन्तु कुछ रोगियों में सब से प्रमुख लक्षण तीक्ष्ण सिर-पीड़ा भी हो सकती है। बच्चों में कभी-कभी मलेरिया के लक्षण दस्त और कमजोरी ही होते हैं।

चिकित्सा

मलेरिया के रोगी छोटे बच्चों को दिन में पांच बार एक-एक ग्रेन कुनीन देनी चाहिये। एक से तीन साल तक के बच्चों को एक या दो ग्रेन कुनीन दिन में पांच बार देनी चाहिये। दस साल तक के बच्चों को दो से तीन ग्रेन, कुनीन दिन में पांच बार देनी चाहिये।

६ साल के बच्चों को प्रीतीदन दो ग्रेन कुनीन देना चाहिये जिस से रोग को रोका जा सके। परन्तु बहुत दिन तक कुनीन का सेवन करना उचित नहीं है क्योंकि इस से स्वास्थ्य को हानि पहुंचती है।

चूंकि मलेरिया कितने ही प्रकार का होता है इसीलिए जिस प्रकार का मलेरिया हो उसी प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिये। मलेरिया के विशेष प्रकार का निदान तो अस्पताल या प्रयोगशाला में ही सम्भव होता है, परन्तु घर पर सब प्रकार के मलेरिया की चिकित्सा का प्रबन्ध रखना चाहिये। इस रोग की चिकित्सा के लिए कई प्रकार की औषधियां हैं और कई मालूम की जा रही हैं। साधारणतया प्रयोग में आने वाली दो औषधियां हैं—कुनीन और अटाब्रीन (Quinacrine, Mepacrine)। अटाब्रीन अधिकांश अवस्थाओं में गुणकारी सिद्ध होती है। वयस्कों को (१½ ग्रेन की) एक-एक या दो-दो गोलियां, दिन में तीन बार, पांच दिन तक दी जाएं, और इस के बाद पंद्रह दिन तक प्रतिदिन एक गोली दी जाए। कम वजन के और कमजोर लोगों के लिए दिन में तीन बार एक-एक गोली काफी होती है। बाहर काम-काज करने और चलने-फिरने वाले मोटे-ताजे लोगों के लिए दिन में तीन बार दो-दो गोलियां अधिक लाभकारी होती हैं।

दस दिन तक, दिन भर में—सवेरे, दोपहर को और रात को—कुल दस ग्रेन कुनीन खिलानी चाहिये, इस के बाद बीस दिन तक, दिन भर में—सवेरे और शाम को—कुल पांच ग्रेन कुनीन देनी चाहिये। बच्चों को उन की आयु के अनुसार कुनीन दी जाए। कुनीन की मात्रा निश्चित करने के लिये यह सुझाव ध्यान में रखना चाहिये। मलेरिया के रोगी छोटे बच्चों को दिन में पांच बार एक-एक ग्रेन कुनीन देनी चाहिये।

मलेरिया को दूर करने की एक तीसरी औषधि भी है। यह दवा पॅलुड्रिन (Paludrine) के नाम से बिकती है। अटाब्रीन की भांति इस का त्वचा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अधिकतर मलेरिया के रोगी को तीन गोलियां एक साथ देने से तुरन्त आराम होता है। पूरी चिकित्सा के लिये दस दिन तक एक-एक गोली दिन में तीन बार खानी चाहिये। हफ्ते में दो बार-बुधवार और रीववार को एक-एक गोली खाने से मलेरिया नहीं हो सकता। दस साल से ऊपर के बच्चों को वयस्क मानना चाहिये। दस साल से कम आयु वाले बच्चों को ¼ (एक चौथाई) गोली देनी चाहिये।

मलेरिया की चौथी औषधि विशेष कमोक्विन (Camoquin) है। वयस्क व्यक्ति को तीन गोलियों की एक खुराक करके दी जाए तो मलेरिया ज्वर जाता रहता है। बालकों को भी यह दवा दी जाती है परन्तु कम मात्रा में। यह मलेरिया का सब से नया इलाज है।

काला आजार

काला आजार गर्म देशों का रोग है। यह मुख्यत: आसाम, मद्रास और गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के किनारों पर पाया जाता है। शायद यह एक छोटी सी मक्खी (Phlebotomus) के काटने से होता है। यह मक्खी अपने साथ बहुत ही नन्हा सा परजीवी (Parasite) लिए फिरती है। इस परजीवी को लेशमानिया डोनोवानी (Leishmania donovani) कहते हैं। इस अण्डाकार परजीवी के चेंप को शीशे के टुकड़े पर लगा कर सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से जब इस का परीक्षण किया जाता है, तो इस के अनुभावपूर्ण चिन्ह (Characteristic markings) दिखाई देते हैं। ये नन्हे-नन्हे परजीवी शरीर के कोषों (Cells), विशेष कर अस्थि-मज्जा, (हड्डियों के गूदे), जिगर (यकृत), तिल्ली (प्लीहा) और रक्तवाहिनियों में भर जाते हैं।

इस रोग का आक्रमण यकायक या धीरे-धीरे होता है। आरम्भ में ही प्राय: तेज बुखार चढ़ता है और कभी-कभी इस बुखार से पहले ठंड लगती है या कै होने लगती है। यह ज्वर संकटमय तिजारी मलेरिया ज्वर के समान दो से छ: सप्ताह तक रहता है, या यह बुखार लहरों क भांति आता है और इसे घटने-बढ़ने वाला ज्वर समझा जाता है। प्राय: पहले तिल्ली बढ़ने लगती है और कुछ महीने पश्चात् जिगर भी बढ़ने लगता है। रोगी की दशा सुधरने लगती है परन्तु इस के बाद फिर तेज बुखार चढ़ने लगता है और तिल्ली और जिगर सूजने लगते हैं। अन्त में कई महीने तक ज्वर और बिना ज्वर की दशा के पश्चात् ज्वर कुछ कम हो जाता है और निरन्तर बना रहता है। मरीज कमजोर हो जाता है और पीला पड़ जाता है और उस का पेट फूल कर बढ़ जाता है। इस रोग का नाम काला आजार इसीलिये पड़ गया है कि रोगी की त्वचा का रंग विशेष कर पैरों, हाथों और पेट की त्वचा का काला सा हो जाता है। बाल झड़ने लगते हैं और रोगी के मसूड़े और नाक में से खून निकलने लगता है।

ज्वर होने, पेट बढ़ जाने, दुबले होने और पीला पड़ जाने पर भी रोगी की भूख सदा बढ़ती रहती है, उस की जीभ साफ रहती है और वह अच्छी तरह काम भी कर सकता है। प्राय: यह रोग कई-कई साल तक लगा रहता है, और श्वेत रक्त-कोष बहुत घट जाते हैं इस का परिणाम यह होता है कि रोगी को श्वासनली-वायुनली प्रदाह (Broncho-Pneumonia) और मुंह में छाले जैसे संक्रामक रोग लगने की सम्भावना रहती है। इस रोग के ९० प्रतिशत रोगी अतिसार से मर जाते हैं।

बच्चों में यह रोग ज्वर और जठर-आंत्र-विकार (Gastro-intestinal upset) के साथ लुप्त रूप से आरम्भ होता है। बच्चे की न केवल तिल्ली ही बढ़ जाती है, बल्कि प्राय: उस की लसिका-ग्रंथि भी बढ़ जाती है।

इस रोग का एक और रूप है जो त्वचा से सम्बन्ध रखता है और इसे पूर्वीय क्षय (Oriental Sore) इस में परजीवी त्वचा की छोटी-छोटी गांठों में, गन्दे घावों में, या शरीर के खुले भागों की श्लैष्मिक झिल्ली में होते हैं।

इस रोग का निदान रक्त, हड्डी के गूदे, जिगर या तिल्ली के छेद या त्वचा के घावों का परीक्षण करने से होती है।

चिकित्सा

इस की चिकित्सा अन्जन के पंच योजी मिश्रणों के टीके (Injections of Pentavalent Compounds of Antimony) द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ, यदि 'नीस्टीबोसन' (Neestibosan) नामक बनी-बनाई औषधि का प्रयोग हो रहा हो, तो प्रतिदिन दस या इस से अधिक सुइयों की आवश्यकता होती है और वह इस प्रकार के घोल में पच्चीस प्रतिशत यह औषधि हो। जब तक शरीर में २.७ ४.० तक ग्राम तक औषधि न पहुंच जाए, तब तक सुइयां जारी रहें। इस चिकित्सा में कै होने की सम्भावना होती है, इसलिए पहले दिन इस की खुराक ०.१ ग्राम, दूसरे दिन ०.२ ग्राम और तीसरे दिन ०.३ ग्राम होनी चाहिये। यदि रोगी को अधिक उल्टियां हों, सिर चकराए, चित्तभ्रम हो, ज्वर में (तापमान में) विशेष परिवर्तन हों, या टांगों में ऐंठन हों, तो इस चिकित्सा को बन्द कर देना चाहिये। पूर्वीय क्षन कितनी ही विधियों से ठीक किया जा सकता है क्योंकि उस की कोई निश्चित औषधि नहीं है। कई अधिकारियों ने इस के इलाज के लिए कार्बोन डायऑक्साइड स्नो (Carbon Dioxide Snow) एक्स-रेज (X-rays) जीव-देह के तन्तुओं को जलाने वाला पदार्थ (Cautery), रोग ग्रस्त भाग को काट कर अलग करना (Excision), टीके और मरहम बताए हैं। मेथीलोन ब्ल्यू (Methylone blue) वेसालीन और लैनोलीन (Lanolin) बराबर-बराबर मात्रा में मिला कर बनाया हुआ मरहम कोई हानि नहीं पहुंचाता।

इस रोग में शरीर की स्वच्छता और स्वास्थ्य के नियमों पर जोर डालना चाहिये और इस के साथ मलेरिया जैसी कोई और बीमारी लग जाए तो उस का इलाज अवश्य करना चाहिये। जब काले आजार के साथ रक्ताभाव (Anæmia) हो तो उस के लिए लोहा मिश्रित किसी औषधि का सेवन करना चाहिये और भोजन तथा विटामिन की मात्रा भी उचित होनी चाहिये।

रोग की रोक-थाम

काला आजार फैलाने वाली मक्खी (Phlebotomus) सीलन वाले गन्दे स्थानों, दरारों, सुराखों, नालियों के किनारों, कूड़े-करकट के ढेरों में पैदा होती है। अतः अपने आंगनों को साफ-सुथरा और दीवारों को अच्छी हालत में रखना चाहिये। अंधेरे और सीले स्थानों को प्रकाशमय बनाना चाहिये और सूखा रखना चाहिये। सफेदी और चूना भी सहायता देते हैं। कमरे में धुंआ हानिकारक होता है और सोने वाले स्थानों पर समय-समय पर गन्धक और क्रिसोल (Cresol) की धूनी देनी चाहिये। इस मक्खी के पैदा होने के सभी स्थानों पर मिट्टी का तेल पानी में मिला कर (Kylpest) छिड़कना चाहिये। डी. डी. टी. से भी निस्सन्देह यह काम हो सकता है।

मकानों के पास पौधे नहीं उगाने चाहियें और दीवारों पर बेलें नहीं चढ़नी चाहियें। कुछ जानवर छूत के रोगों का प्रभव होते हैं, अतः बत्तखें, मुर्गियों, गायों और सुअरों को सोने वाले स्थान के नीचे या पास नहीं रखना चाहियें। कुत्ते भी यह रोग फैलाते हैं। रोगों वाले मकान और स्थानों में नहीं जाना चाहियें। ३०० गज की दूरी वाले घरों पर इन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जिन इलाकों में ये बीमारियां फैली हुई हैं वहां पर रात को बड़ी महीन जाली की मच्छरदानी लगा कर सोना चाहिये। बिजली के पंखे जैसी हवा की जोर की गति इस सूक्ष्म मक्खी को दूर रख सकती है। मकानों की ऊपर की मंजिलें सोने के स्थानों के लिये उपयुक्त होती हैं। त्वचा पर तेज मरहमों के लगाने से भी लाभ होता है। अच्छे मरहम में ओलियम एनिसी (Oleum Anisi) युकेलिप्टी (Eucalypti) और टेरेबिंथ (Terebinth) मिला हुआ होता है। हर एक की मात्रा ३ बूंदें (minims) और लैनोलिन (Lanolin) एक आऊंस होता है।

फीलपांव (Elephantiasis or Filariasis)

शरीर के विभिन्न भागों की दृढ़, रबड़ के किस्म की और धीरे-धीरे बढ़ने वाली सूजन का नाम फीलपांव या फीलपाया है। इस रोग को दो प्रकार के परजीवी उत्पन्न करते हैं। अपरिपक्व परजीवी को भिन्न-भिन्न प्रकार के मच्छर मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट कर देते हैं इस रोग में बहुधा टांगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। शरीर के अन्य प्रभावित होने वाले अवयव, पैर, बांहें, अंडकोष, स्तन और योनि-कपाट हैं।

फीलपाए की पूरी तथा वास्तविक चिकित्सा के लिये कोई युक्ति अभी तक ज्ञात नहीं हुई है।

अध्याय २७

हीनान्न रोग

(Food Deficiency Diseases)

बेरीबेरी (Beri-beri)

कुछ समय पहले तब यह रोग एशिया के बहुत से भागों में बहुत अधिक पाया जाता था। इस रोग के लक्षण विभिन्न दशाओं में एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। इस रोग के कुछ रोगियों के हाथ और बांहें आंशिक रूप से पक्षाघात-ग्रस्त हो जाते हैं और उन की त्वचा विशेषकर पिंडलियों के ऊपर, पैरों के पीछे और उंगलियों के सिरों पर सुन्न पड़ जाती है। रोगी की टांगें पतली हो जाती हैं और यदि उस की पिंडली को दबा दिया जाए तो वह दर्द के मारे चिल्लाने लगता है। टांगों के आंशिक रूप से पक्षाघात-ग्रस्त हो जाने पर रोगी कुछ लंगड़ा कर चलता है और उस का सांस बहुत जल्दी फूल जाता है। हृदय कभी-कभी बहुत जोर से धड़कने लगता है। उसका स्वर बहुत धीमा हो जाता है और कभी-कभी तो सुनाई ही नहीं पड़ता।

बेरीबेरी के दूसरे रोगियों की बांहें और टांगें बुरी तरह फूल जाती हैं। उन्हें सांस लेते समय बहुत कठिनाई होती है। इन का हृदय बहुत जोर-जोर से धड़कता है। यदि उन की पिंडली दबाई जाए तो वे दर्द से कराहने लगेंगे। इन दशाओं में ज्वर बिल्कुल नहीं होता। जीभ विशेषकर किनारों पर लाल-लाल चमकने लगती है।

बेरीबेरी में सारे शरीर की चेताएं सूज जाती हैं और इस कारण चेताओं द्वारा नियंत्रित पेशियां आंशिक रूप से या पूर्णतया अ-क्रिया हो जाती हैं। इस सूजन का प्रभाव शरीर के विभिन्न भागों में पीड़ा होने से स्पर्शेन्द्रिय द्वारा प्रगट होता है। रक्त-वाहिनियों पर नियंत्रण रखने वाली कुछ चेताएं भी इस सूजन के प्रभाव को प्रकट करती हैं और वह इस प्रकार कि रक्त-वाहिनियां में से रक्त निकलने लगता है। इस से टांगों, बांहें और धड़ में सूजन चढ़ जाती है।

बेरीबेरी के कारण

बेरीबेरी प्रायः उन्हीं लोगों को होता है जो सफेद चावल को अपने भोजन का मुख्य पदार्थ बना लेते हैं। रसायन-विज्ञाताओं ने इन चावलों का परीक्षण कर के यह पता

लगाया है कि चावल के बाहर का भाग भीतर जैसा नहीं होता। चावल को साफ कर के चिकनाया जाता है तो उस के बाहर की तह उतर जाती है। यह ऊपर का भाग चावल का छिलका नहीं होता। धान से छिलका उतारने के पश्चात् चावल पर लाल से रंग की तह जमी रहती है। इस लाल रंग की तह में बहुत से ऐसे सार हैं जिन्हें विटामिन कहते हैं, विशेषकर विटामिन 'बी', और शरीर को उचित पौष्टिक पदार्थ देने के लिए ये आवश्यक हैं। यदि चावल को साफ कर दिया जाए तो यह लाल तह उतर जाती है। जो विटामिन इस लाल तह में पाए जाते हैं वही दूसरे खाद्य पदार्थों—विशेषकर सेम में भी मिलते हैं। अतः जो लोग साफ किये हुए चावलों के साथ सेम या दूसरी सब्जियां तथा मछली भी खाते हैं उन्हें बेरीबेरी नहीं होता।

बच्चों को भी बेरीबेरी का रोग लग जाता है और एक साल से कम उम्र के बच्चों की जो मौतें होती हैं वे इसी रोग के कारण होती हैं। यह सच है कि छोटे बच्चे चावल नहीं खाते, परन्तु उन की माताएं तो खाती हैं। जब उन की माताएं अधिक मात्रा में साफ किया हुआ चावल खाती है तो उन के दूध में विटामिन 'बी' कम होता जाता है, यह विटामिन चावल की ऊपर की तह में होता है और इस की आवश्यकता शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पड़ती है। इस कारण केवल मां के दूध पर निर्भर रहने वाले बच्चे बेरीबेरी के शिकार बन जाते हैं।

बच्चों में बेरीबेरी के लक्षण निम्नलिखित होते हैं: जिन बच्चों को बेरीबेरी रोग होता है वे केवल मां के दूध पर निर्भर रहने वाले होते हैं और जब वे दो महीने के हो जाते हैं, तब उन्हें यह रोग लगता है। बच्चा रोगी नहीं दिखाई देता क्योंकि उस का मुंह भरा हुआ होता है और वह बड़ी प्रसन्नता से दूध पीता है और यह स्वस्थ और निरोग बच्चे की भांति मुस्कराता और खेलता है। परन्तु उस के मुंह और नाक पर कुछ नीलापन-सा दिखाई देता है, वह बेचैन सा रहता है, उसे नींद नहीं आती और उस का रोना धीमा पड़ता जाता है। कुछ दशाओं में बच्चा यकायक रोने लगता है; रोना बढ़ता जाता है यहां तक कि उस का शरीर एंठने लगता है और कुछ ही घंटे में उस की मृत्यु हो जाती है। बेरीबेरी से पीड़ित बच्चों को कठिनाई से सांस लेने का रोग (dysponœa) हो जाता है। बच्चा कराहता है, उस का चेहरा नीला पड़ जाता है और सांस और नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। ज्वर नहीं होता। यदि इस की पूछताछ की जाए तो पता चलेगा कि बच्चे की मां केवल चावलों पर ही निर्भर रहती है।

बेरीबेरी को रोकने की विधि

जो कुछ ऊपर कहा गया है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि बेरीबेरी को किस प्रकार रोका जा सकता है। इस का सब से आसान तरीका यह है कि बिना पालिश किया चावल ही खाना चाहिये। यह भीषण बीमारी बिना कुछ खर्च किये ही रोकी जा सकती है। बिना पालिश किया हुआ चावल भी खाने में उतना ही स्वादिष्ट होता है जितना पालिश किया हुआ चावल। यदि चावल पर से लाल तह साफ करने की प्रथा प्रचलित न हो गई होती, तो बेरीबेरी गत वर्षों में जितनी प्राणघातक सिद्ध हुई, न होती।

जो बेरीबेरी का कारण जानते हैं उन्हें दूसरे लोगों को पालिश किए हुए चावल का प्रयोग करने का खतरा बताना आवश्यक है। बिना पालिश किया हुआ चावल सफेद चावल से अधिक गुणकारी होता है; अत: सब को बिना पालिश किया हुआ चावल खा कर दूसरों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करना चाहियें। चावल और मछली पर इतना अधिक निर्भर न रह कर दाल या दूसरी तकारियों को भोजन का प्रमुख भाग बना लेने का महत्व भी सब को जान लेना चाहियें।

चिकित्सा

बेरीबेरी की चिकित्सा मुख्यत: भोजन पर निर्भर होती है। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हीनान्न (भोजन में आवश्यक तत्वों की कमी) को दूर करना हमारा पहला काम है। बिना पालिश किये हुये चावलों का प्रयोग ही करना चाहियें और प्रमुख भोजन के साथ सब्जियां, फल, दाल आदि का प्रयोग करना चाहिए। इन चीजों को या तो अलग-अलग बनाना चाहियें या मिला-जुला कर जैसा चाहें बनाएं।

पौष्टिक पदार्थों के उचित सेवन के साथ-साथ विटामिन 'बी' अधिक मात्रा में खानी चाहियें। यह ब्रुवर्स ईस्ट गोलियों (Brewer's Yeast Tablets) के रूप में दिया जा सकता है, चार गोलियां दिन में तीन बार दीजिये या विटामिन बी कम्पलेक्स का कोई ब्रांड दीजिये।

विटामिन कहां मिलते हैं

भोजन की जानकारी रखने वाले एक योग्य मनुष्य ने अगले पृष्ट वाली तालिका तैयार की है जिस में x साधारण भोजन में किसी विशेष विटामिन की उपस्थिति प्रगट करता है, xx उस से अच्छे और xxx सर्वोत्तम के लिये हैं। अस्थिरता (variability) v द्वारा प्रगट की गई है और जहां सन्देह है वहां ? चिन्ह लगा है। यह ध्यान रखियें कि विटामिन ए, बी, और सी सामान्य होते हैं और विटामिन डी कुछ थोड़े से भोजनों में होता है।

खाद्यपदार्थ	विटामिन ए	बी	सी	डी
सेब	 x	x से xx तक	xx	—
एसपैरेगस	 v	xxx	—	—
केला	 xxx	x से xx तक	xx	—
सेम (सुखाई हुई, या डब्बे में बन्द)	 x	xx	—	—
चुकन्दर	.... —	x	x	—
रोटी मैदे की	.... ?	x	—	x
रोटी (मोटे आटे की)	 x	xx	?	x
मक्खन	 xxx	—	—	x
मट्ठा	 x	xx	xv	—
गोभी (कच्ची)	 xx	xxx	xxx	—
गाजर (कच्ची)	 xxx	xx	xx	—
पनीर (दूध की)	.... xx से xxx तक	—	—	—
मछली का तेल	 xxx	—	—	xxx
मक्का (पीली)	 xx	xx	xv	—
मलाई	 xxx	xx	—	x
अंडे	 xxx	x	?	—
मछली	 xx	x	xx	—
नीबू का रस	—	xx	xxx	x
सलाद	.... x से xx तक	xx	x	x
कलेजी	.... xx से xxx तक	xx	xxv	xx
दूध (कच्चा)	 xxx	xx	xv	x
दूध (जमाया हुआ)	 xxx	xx	—	—
बकरी का मांस	 x	xx	—	—
जई का आटा	 x	xx	xxx	—
संतरे का रस	 xx	xx	xx	—
आड़ू (कच्चा)	.... x से xx तक	xx	xxx	x
मटर (ताजी)	 xx	xx	xxx	—
अन्नानास (कच्चा या डब्बे का)	 xx	xx	xx	—
आलू	 x	xx	xx	—
शकरकन्दी	 xx	xx	xxx	—
पालक	 xxx	xx	xxx	—
स्ट्राबेरी	 x	x	xxx	—
टमाटर	 xx	xx	—	—
अखरोट	 x	xx	—	—
खमीर	.... —	xxx	—	—

अध्याय २८

पशुओं द्वारा फैलने वाले रोग

अनेक प्रकार के परजीवी ऐसे होते हैं जो मनुष्य के शरीर के अन्दर रह सकते हैं कुछ तो बहुत हानि पहुंचाते हैं और कुछ बहुत कम। इस अध्याय में केवल सामान्य परजीवियों का वर्णन किया जाएगा।

केंचुए (Round Worms)

केंचुओं के शरीर गोल होते हैं परन्तु किनारों पर नुकीले होते हैं। वे चार से छः इंच तक लम्बे होते हैं। यद्यपि वे प्रायः छोटी आंतों में ही रहते हैं परन्तु फिर भी वे पेट में घुस सकते हैं; कभी-कभी वे रेंग कर गले तक आ जाते हैं। वे श्वास नलिका तक पहुंच कर बच्चे का दम घोट सकते हैं। यदि बच्चे की आंतों में बहुत थोड़े केंचुए हों तो लक्षण प्रगट नहीं होते। बच्चे की आंतों में केंचुए होने के प्रायः साधारण लक्षण ये होते हैं कि उस की भूख मर जाती है और कभी-कभी जी मिचलाने लगता है। कभी-कभी बच्चा पेट में दर्द होने की शिकायत भी कर सकता है। नाक मसलना और दांत पीसना भी बच्चे के अन्दर केंचुए होने की सम्भावना प्रकट करता है। बच्चे की टट्टी का सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से परीक्षण कर के डॉक्टर निश्चयपूर्वक कह सकता है कि उस की आंतों में केंचुए हैं या नहीं।

चिकित्सा

हेट्राजन (Hetrazan) नामक औषधि मिल सके तो आंतों के परजीवियों को मारने के लिए इस का प्रयोग बेखटके किया जा सकता है। दवा के साथ इस के प्रयोग के सम्बन्ध में अधिसूचनाएं दी हुई होती हैं।

छोटे बच्चे की इस रोगकी चिकित्सा करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि दोपहर में उसे एक खुराक एपसम साल्ट दिया जाए और उसी शाम को आधा ग्रेन सॅन्टोनिन (Santonin)। सॅन्टोनिन में थोड़ी सी चीनी मिला दी जाए जिस से बच्चा उसे खाने को तैयार हो जाए। अगले दिन प्रातःकाल उसे आधा ग्रेन और दोपहर में फिर आधा ग्रेन सॅन्टोनिन दीजिये। सॅन्टोनिन की आखरी खुराक के दो घंटे बाद एक और खुराक एपस-साल्ट की दीजिये। इन दो दिनों में जब बच्चे को दवा दी जा रही हो, बच्चे को किसी प्रकार की सब्जी न खाने दीजिये, बल्कि उसे केवल चावलों के मांड और अंडों पर ही रखिये; इस आहार में मक्खन, घी या किसी भी प्रकार का तेल न हो। जब तक उस के आहार को सीमित नहीं किया जाएगा तब तक सॅन्टोनिन आंतों के सब केंचुओं को नहीं मार सकेगी।

जिन क्षेत्रों में बच्चों की आंतों में केंचुए होने की बार-बार शिकायत रहती हो,

वहां यह आवश्यक होता है कि प्रतिवर्ष प्रत्येक बच्चे की जांच करवाली जाए। यद्यपि दर्द न हो और जी न भी मतलाए फिर भी आंतों में दो या तीन केंचुए रहते हैं जो भोजन को पचाने और उस के अभिशोषण (absorption) में बाधक होते हैं, और इस प्रकार बच्चे के स्वास्थ्य और उम्र के विकास को रोकते हैं।

सन्टोनिन विषैली दवा है, इसलिए उस की बड़ी खुराकें नहीं देनी चाहियें। सन्टोनिन खाने से बच्चे का मूत्र पीले रंग का होगा और उसे सब कुछ पीला ही दिखाई देगा, परन्तु यह पीला मूत्र और पीला दिखाई देना हानिकारक नहीं, क्योंकि ये दोनों बातें शीघ्र ही जाती रहती हैं।

केंचुओं की रोक-थाम

जैसा कि कुछ लोगों का विचार है ये केंचुए बच्चों की आंतों में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न नहीं होते। इन केंचुओं के अंडे भोजन और पानी के साथ बच्चों के शरीर के अन्दर जाते हैं। आंतों के कृमि असंख्य अंडे देते हैं जो मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। ये अंडे अंत में मल के साथ भूमि में तालाबों और नदियों में और बगीचे की सब्जियों में बिखर जाते हैं।

इन कृमियों से बचने के लिए पानी उबाल कर पीना बहुत आवश्यक है। बाजार से खरीदी हुई सब सब्जियों को खाने से पूर्व पका लेना चाहिये। फलों को गरम पानी से धोकर और छील कर खाना चाहिये। बच्चों को उंगलियां मुंह में न डालने दीजिये क्योंकि उन के गन्दे हाथों में केंचुओं के अंडे और कितने ही रोग-कृमि हो सकते हैं। प्राय: उन सब वस्तुओं में जिन को बच्चा मुंह में डालता है, केंचुओं के अंडे हो सकते हैं।

आंतों के कुछ कृमि कुत्तों और बिल्लियों की आंतों में भी पाए जाते हैं। जब बिल्ली या कुत्ता बच्चे का हाथ चाटता है तो कृमियों के अंडे उस के हाथों में आ जाते हैं। यदि उस समय बच्चा अपनी उंगलियां मुंह में डाले या उन्हीं हाथों से खाना खाए, तो कृमियों के अंडे उस के मुंह में चले जाते हैं। कुत्ते-बिल्ली को घर में नहीं रखना चाहियें और उन्हें बच्चों के हाथ या मुंह को कभी चाटने नहीं देने चाहिये।

अंकुश-कृमि रोग (Hookworm Disease)

बहुत सी बस्तियों में प्रत्येक दस व्यक्तियों में से नौ को यह रोग लग जाता है। यह बहुत आम और आसानी से रोका जाने वाला रोग है। एक समय था कि कुछ क्षेत्रों के लोगों को सुस्त और निकम्मा समझा जाता था, परन्तु बाद में यह पता चला कि वे अंकुश-कृमि के रोग के कारण ही दुर्बल हो गए थे और काम-काज नहीं कर सकते थे। जब इस रोग की चिकित्सा और इसे आगे फैलने से रोकने के उपचार किए गए, तो जिन को पहले सुस्त और उत्साह-हीन समझा जाता था, वे ही परिश्रमी और उद्योगी हो गए।

अंकुश-कृमि एक छोटा गोल सफेद कीड़ा होता है जिस की लम्बाई १/३ इंच से लेकर १/२ इंच तक होती है, और यह साधारणतया सीने के धागे जितना पतला होता है। यदि सफेद धागे के आधे इंच लम्बे टुकड़े काटे जाएं, तो प्रत्येक टुकड़ा अंकुश-कृमि सा लगेगा। ये छोटे-छोटे कीड़े बच्चों और बड़ों के शरीर में घुस जाते हैं। कभी-कभी

ये संख्या में बहुत कम होते हैं, केवल दस या बीस, परन्तु एक ही समय में ये आंतों में हजारों की संख्या में हो सकते हैं। ये आंतों की भीतरी परत में चिपक जाते हैं और रोगी का खून चूसते हैं। ये घाव भी कर देते हैं जिस से रक्त रिसता रहता है। निरन्तर रक्त के कम होने और इन कीड़ों के विष पैदा करने के कारण आदमी और पीला पड़ जाता है। उस की शारीरिक शक्ति इतनी कम हो जाती है कि दूसरे रोग विशेषत: क्षय-रोग आसानी से लग जाते हैं। इस रोग से पीड़ित बच्चे पीले पड़ जाते हैं और कद में छोटे रह जाते हैं। उन की शारीरिक और मानसिक वृद्धि कम हो जाती है। शारीरिक विकास इतना अधिक रुक जाता है कि १८ या २० वर्ष का युवक दस या बारह साल का बच्चा लगता है। यदि बच्चे में ये कीड़े अधिक संख्या में प्रवेश कर जाएं, तो वह अपनी पढ़ाई-लिखाई में बहुत पीछे रहेगा।

अंकुश-कृमि रोग के निश्चित लक्षण

त्वचा का पीला पड़ जाना, सुस्ती आना, पेट के विभिन्न भागों में कभी-कभी पीड़ा होना और मानसिक आलस्य, मिट्टी या चूना खाने की आदत, कुछ ऐसे साधारण से
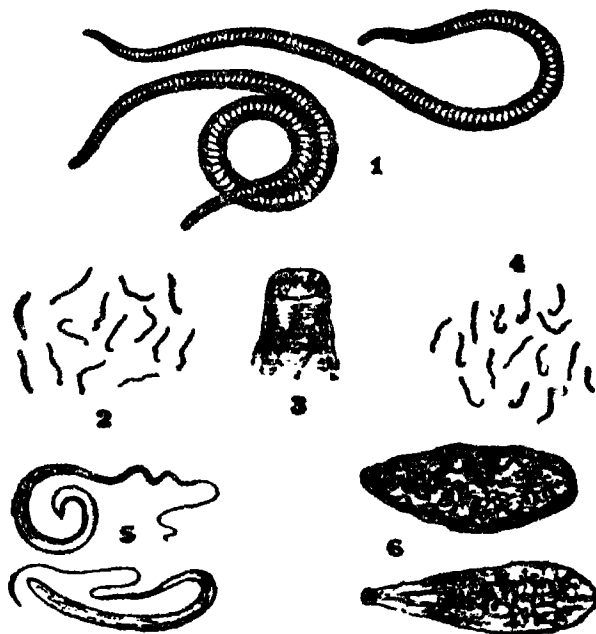
आंत्र-परजीवी

१. केंचुए २. अंकुश-कृमि ३. अंकुश-कृमि का सिर ४. सूत्र-कृमि ५. एक प्रकार के लम्बे पतले कृमि (Whipworms) ६. एक प्रकार के कीटाणु (Flukes)

लक्षण हैं जिन से यह पता चल जाता है कि बच्चे या वयस्क व्यक्ति को अंकुश-कृमि का रोग है या नहीं।

मल को सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से देख कर डॉक्टर निश्चिय रूप से कह सकता है कि किसी व्यक्ति को यह रोग है या नहीं ?

पैरों के तलुवों और उंगलियों के बीच में खुजली होना भी एक ऐसा लक्षण है जिस से पता चल जाता है कि ये कृमि पैरों की त्वचा में हो कर शरीर में प्रवेश कर रहे हैं।

अंकुश-कृमि का रोग कैसे फैलता है और उसे कैसे रोका जा सकता है

अंकुश-कृमि आंतों में असंख्य अंडे देते हैं, ये मल के साथ बाहर निकल जाते हैं और जहां मल फेंका जाता है वहीं फैल जाते हैं। ये अंडे विकसित होते हैं और दस दिन के भीतर-भीतर छोटे-छोटे कीड़े बन जाते हैं। जहां-जहां मल फेंका जाता है, वहीं-वहीं मिट्टी में ये कीड़े होते हैं। ये सब्जियों और पानी में भी पाए जा सकते हैं; परन्तु बहुधा यह रोग उन्हीं लोगों को लगता है जो नंगे-पांव चलते-फिरते हैं। जमीन पर बिखरे हुए ये अंकुश-कृमि पैरों पर और सम्भवत: हाथों और नितम्बों की नंगी त्वचा पर भी चढ़ जाते हैं और त्वचा को छेद देते हैं। त्वचा से अन्दर पहुंच कर वे अन्त में आंतों तक पहुंच जाते हैंजहां वे आंतों की भीतरी परत को काटने और रक्त चूसने लगते हैं।

बीमारी को रोकने के लिए आवश्यक बात यह है कि मल को मिट्टी पर न फेंका जाए। इस के लिए उचित टट्टियां बनाने और उन के उचित प्रयोग की आवश्यकता है। जिन लोगों को यह रोग लगा हो, यदि वे मल-त्याग के लिए पृथ्वी पर न बैठ कर उचित टट्टियों का प्रयोग करें, तो इस रोग को पूर्णतया मिटाया जा सकता है। परन्तु जब तक लोग पृथ्वी पर ही मल-त्याग करते रहेंगे या ऐसी टट्टियां का प्रयोग करते रहेंगे जहां से वर्षा के पानी द्वारा मल चारों ओर फैल सकता है और जब तक उसे सूअर, मुर्गियां या मक्खियां घरों में ले जाते रहेंगे, तब तक यह रोग अपना प्रकोप जारी रक्खेगा।

टट्टियों में ढक्कनदार बालटियां होनी चाहियें। इन बालटियों को प्रतिदिन खाली करना चाहिये। इस मल को बगीचों में नहीं फैलाना चाहिये, बल्कि जमीन के अन्दर गाड़ देना चाहिये। यदि ऐसी टट्टी बनवाना असम्भव हो जिस में जाली लगी हो और मक्खियां अन्दर न घुस सकें, तो दूसरा उपाय है कि भूमि में एकगड्ढा खोद लीजिये। लकड़ी का एक बड़ा सा बक्स लीजिये। (इस बक्स में कोई ऐसी दरार न हो कि मक्खियां अन्दर घुस जाएं)। इस बक्स के पेंदे में छेद कर लीजिये—छेद जरा अच्छा बड़ा हो—और बक्स का ढक्कन अलग कर के इसे उल्टा भूमि में खुदे गड्ढे पर रख दीजिये। बक्स के निचले किनारों पर, चारों ओर, मिट्टी थाप दीजिये। जब इस बक्स का प्रयोग न हो, तो उस के छेद पर तख्ते का एक टुकड़ा रख दिया जाए जो उसे पूरी-पूरी तरह ढांक ले। कुछ समय के बाद बक्स को हटा कर भूमि वाले गड्ढे में मिट्टी भर दी जाए। इस प्रकार के प्रबन्ध से मक्खियां मल तक न पहुंच सकेंगी और मल पृथ्वी पर इधर-उधर नहीं पड़ा रहेगा।

अंकुश-कृमि मिट्टी में छः महीने या इस से अधिक समय तक रह सकते हैं। अतः उस बगीचे या खेत में साल भर तक नंगे पांव जाना खतरनाक है जहां फैला हुआ मल हो।

अतः अंकुश-कृमि के रोग से दूर रहने के लिये नंगे पांव नहीं घूमना चाहिये, हाथों को बिना किसी चीज से ढके बगीचे या खेत में खुदाई का काम नहीं करना चाहिये और कभी बिना खौला हुआ पानी नहीं पीना चाहिये या कच्ची सब्जियों को खौलते पानी से धोए बिना कभी नहीं खाना चाहिये।

यह भी सम्भव है कि जो बच्चे नंगे फिरते हैं या जिन के चूतड़ नंगे रहते हैं, उन्हें भूमि पर बैठने से ही अंकुश-कृमि का रोग लग जाए।

चिकित्सा

अंकुश-कृमि की चिकित्सा का निम्न नुसखा कलकत्ते के ट्रापिकल स्कूल आव् मैडीसन के दो डाक्टरों—डा. पी. ए. मेपलस्टन और डा. ए. के. मुकर्जी—द्वारा लिखित "हेल्थ बुलेटिन" नं. १ से उद्धृत किया गया है।

टेट्राक्लोरीथलीन (Tetrachlorethylene) नामक औषधि दुर्बल व्यक्तियों, छोटे बच्चों और उन स्त्रियों को भी बे खटके दी जा सकती है जिन का प्रसव निकट हो।

दवा देने का तरीका सरल है। वयस्क व्यक्ति के लिए ४ सीसी और बालकों को यथाअवस्था छोटी मात्रा में देनी चाहिए। इस की मात्रा एपसम-साल्ट की एक मात्रा (४-८ ड्राम चाय का चम्मच भर) में खूब हिलाकर मिला लेनी चाहिए; इसे चिनोपोडियम (chinopodium) के तेल की दस बूंद मिला कर एक ही घूंट में निगल लेना चाहिये। शायद रोगी सिर चकराने की शिकायत करे। यदि साल्ट ने अपना गुण दिखाया तो दो तीन घंटे में पेट में गड़बड़ी होगी, फिर यदि थोड़ी-बहुत बेचैनी हुई, तो जाती रहेगी। कुछ रोगी जी मिचलाने की शिकायत अवश्य करेंगे पर थोड़ी देर के लिए। दवा देने से एक दिन पहले भोजन पर कोई प्रतिबंध आवश्यक नहीं। सवेरे-सवेरे दवा खाली पेट पर देना अच्छा है और जब अच्छी तरह पेट साफ न हो जाए भोजन न दिया जाए। यदि आवश्यकता हो घंटे के बाद साल्ट की एक खुराक फिर दी जाए।

यह खुराक हृदय, गुर्दों या जिगर को कोई हानि नहीं पहुंचाती, और रोगी तीसरे पहर फिर अपना काम-काज करने योग्य हो जाता है।

यदि रोग की स्थिति अधिक गम्भीर न हो तो एक बार की दवा ही काफी होती है। तनिक गम्भीर स्थिति में दस-दस दिन के बाद दो-तीन बार दवा देना जरूरी हो जाता है। बहुत ही गम्भीर अवस्था हो जाए, तो चार बार और बहुत कम परिस्थितियों में पांच बार यह दवा देनी चाहिये।

क्रिस्टोइड्स (Crystoids) नाम की कुछ टिकियां हैं, इन्हें सरलतापूर्वक खाया जा सकता है। एक पैकेट में पांच 'कैप्सूल्स' या टिकियां होती हैं। इन के प्रयोग आदि से सम्बन्धित अधिसूचनाएं भी इन के साथ पैकेट में रहती हैं।

जिन क्षेत्रों में अंकुश-कृमि-रोग का जोर हो, वहां हर छटे महीने यह इलाज किया जाए।

सूत्र-कृमि (Thread worms)

धागे जैसे छोटे कीडे. श्वेत रंग के और १/३ इंच लम्बे होते हैं। प्रायः वे आंतों के निचले भाग में पाए जाते हैं जहां ये गुदा के मुंह और उस के चारों ओर खुजली और जलन पैदा करते हैं। ये कीडे. मल के साथ-साथ बाहर निकल जाते हैं। आंत से निकल कर कपड़ों पर भी चढ. जाते हैं। छोटी-छोटी लड़कियों के अन्दर ये योनि में घुस जाते हैं जहां खुजली होने लगती है और पानी भी निकलने लगता है। ये कीडे. प्रायः कमजोर और गन्दे बच्चों में पाए जाते हैं।

चिकित्सा

इन कीड़ों से छुटकारा पाने के लिये यह इलाज किया जाए।

जेनशियन वायलेट (Gentian Violet—enteric coated capsules)।

बालकों के लिए: १/६ ग्रेन भोजन के साथ, दिन में तीन बार, आठ दिन तक। एक हफ्ता रुक कर फिर यह औषधि आरम्भ की जाए।

वयस्कों के लिए: आध-आध ग्राम, या ०.३ ग्राम की दो-दो टिकियां, खाने के साथ, आठ दिन तक। एक हफ्ता रुक कर फिर यह औषधि आरम्भ कीजिये।

खुजली बन्द करने के लिये गुदा के मुंह पर दो चाय के चम्मच या वेसलीन में पांच बूंदें कार्बोलिक एसिड मिला कर बनाया हुआ मरहम लगाइये।

यदि बच्चा गुदा के भाग को खुजाता या मलता हो तो उस की उंगलियों के नाखूनों के भीतर इन कीड़ों के अंडे घुस जाएंगे। इस कारण इस रोग से पीड़ित बच्चे के हाथों को बार-बार साफ करना आवश्यक है नाखूनों को बार-बार काट कर छोटा रखना चाहिये। बच्चे के चूतड़ों को प्रतिदिन साफ करना चाहिये। इन उपायों का अवश्य प्रयोग करना चाहिये जिस से बच्चे को यह रोग बार-बार लगने का भय न रहे।

सूत्र-कृमियों के इलाज की नवीनतम औषधि पिपिजन (Pipizan) है।

फीता-कृमि (Tapeworms)

फीता-कृमि लम्बे और पतले कीडे. होते हैं जो दस से बीस फुट तक लम्बे होते हैं। ये बहुधा कुत्ते बिल्लियों को पास रखने से या सूअर और गाय का दागी मांस खाने से शरीर में पहुंच जाते हैं। गाय और सूअर का दागी मांस इस प्रकार का होता है कि उस में सफेद दाग होते हैं और ये सफेद दाग ही नन्हें फीता-कृमि होते हैं। यदि कोई इस मांस को अच्छी तरह उबाले या पकाए बिना खाए तो छोटे-छोटे कीडे. आंतों में घुस जाते हैं और वहीं बहुत लम्बे बन जाते हैं।

कोई ऐसे निश्चित लक्षण इस रोग के नहीं हैं जिन से इस का पता चल सके, और यदि लक्षण हैं भी तो वे अजीर्णता और मरोड़ों की पीड़ाएं हैं। रोगी पीला पड. जाता है, उस का सिर दुखने लगता है और वह सिर चकराने की शिकायत करने लगता है। परन्तु एक निश्चय लक्षण यह है कि रोगी के मल में इस कृमि के छोटे-छोटे जोड. दिखाई देने लगते हैं।
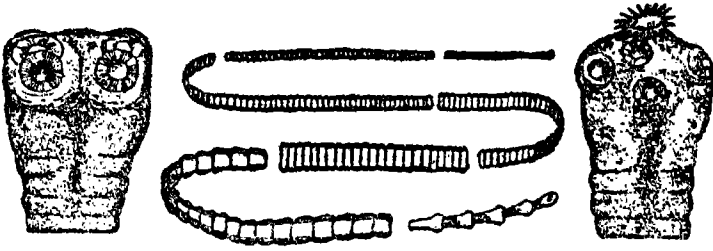
बांईं ओर: गाय के मांस वाले फीता-कृमि का सिर; बीच में: फीता-कृमि का धड़., दाहिनी ओर: सुअर के मांस वाले फीता-कृमि का सिर

चिकित्सा

चिकित्सा का एक उद्देश्य यह है कि कीडे. के सिर को निकाल दिया जाए, क्योंकि जब तक कीडे. का सिर नहीं निकाला जाएगा तब तक कीड.ा बढ़.ता ही जाएगा। चिकित्सा इस ढंग से की जा सकती है:—

चिकित्सा करने के दो दिन पहले किसी प्रकार का ठोस भोजन नहीं करना चाहिये। केवल चावल की लपसी, आंशिक रूप से उबले हुए अंडे और शोरबा देना चाहिये। रोगी को चारपाई पर लिटा दीजिये और उसे कुछ दिन तक इसी अवस्था में रहने दीजिये। पहले दिन प्रात:काल ही उसे अरंडी के तेल Castor Oil) की एक खुराक दीजिये और दिन भर उसे कोई भोजन न दीजिये। पांच साल के बच्चे को अगले दिन आधा ड्राम या ३० बूंद ओलओरेसिन आफ मेल फर्न (Oleoresin of male fern) दीजिये। इस का स्वाद बहुत बुरा होता है पीच के साथ मिला दिया जाए। दो या तीन घंटे के पश्चात् उसे फर्न का आधा ड्राम और दीजिये। इस समय रोगी को चुपचाप चारपाई पर लेटा रहना चाहिये। मेल फर्न की दूसरी खुराक खाने के चार पांच घंटे पश्चात् उसे अरंडी के तेल की बड़.ी सी खुराक देनी चाहिये। जब बच्चे को टट्टी आए तो गरम पानी के साफ सुथरे बरतन में उसे लेना चाहिये जिस से ध्यान से देखा जा सके कि कीडे. का सिर निकल चुके हैं या नहीं।

फीता-कृमि के रोग को फैलने से इस प्रकार से रोका जा सकता है कि रोगी के मल का निसंक्रमण किया जाए या सारे मल को गाड. दिया जाए और जिस मांस का प्रयोग भोजन के लिये हो उसे अच्छी तरह पकाया जाए। कुत्ते और बिल्लियों की आंतों में फीता-कृमि होते हैं अत: उन को घर में पालना नहीं चाहिये और उन को कदापि बच्चों के हाथों या मुख को चाटने नहीं देना चाहिये।

ट्रिकिना (Trichina) प्राय: सूअर के मांस में होते हैं, परन्तु जब आदमी दूषित मांस खाता है तो उस के शरीर के परजीवी बन जाते हैं।

ट्रिकिना (The Trichina)

यह एक ऐसा कीड़ा होता है जो सूअर का मांस खाने से पैदा होता है। ये कीड़े आंतों में तो नहीं रहते परन्तु मांस पेशियों में घुस कर पीड़ा पहुंचाते हैं, जिस से थोड़ा ज्वर भी आ सकता है। शरीर के विभिन्न भागों की पेशियों में पीड़ा होने लगती है। अंगों को हिलाने-डुलाने से पीड़ा तीक्ष्ण हो जाती है, परन्तु जोड़ों में दर्द नहीं होता। पेशी दबाने से दुखने लगती हैं और आंखों के नीचे सूजन भी आ जाती है, और रोगी का सांस फूलने लगता है।

इस की कोई भी चिकित्सा ऐसी नहीं जो बहुत लाभकारी हो। अरंडी का तेल और अनिमा प्रतिदिन रोगी को दीजिये, जिस से वह अपनी आंतों के कीड़ों से छुटकारा पा जाए। सारे शरीर की पेशियों में जो कीड़े होते हैं उन को निकलने के लिये कुछ भी नहीं किया जा सकता। इस रोग से छुटकारा पाने का आवश्यक उपाय यही है कि सूअर का मांस न खाया जाए।

अध्याय २९

नाक और गले के रोग

गलसुए (Tonsils) और गल-ग्रंथियां या गदूद (Adenoids)

नाक का बहना, नाक का सूज जाना, छींकना, मुंह और नाक का दुखना, आंखों का लाल होना, पढ़ने में चित्त न लगना, सोते समय खर्राटे लेना, मुंह खोल कर सोना, हाथों को कानों पर रखना मानों कान दुखते हों, मुंह खोल कर घूरना—ये कुछ ऐसे लक्षण हैं जो मुंह से सांस लेने वालों में पाए जाते हैं। बहुधा मुंह से सांस लेने का कारण गल-ग्रंथियों या गलसुओं का बढ़ जाना होता है। जिन बच्चों को पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और जो स्वास्थ्य पर बुराप्रभाव डाले स्थानों में रहते हैं, उन की गल-ग्रंथियां बढ़ने की अधिक सम्भावना रहती है।

गल-ग्रंथियां गले के पिछले भाग से निकलती हैं जहां नाक और गला मिलते हैं। उन का आकार गोभी के छोटे से फूल के समान होता है और उस का रंग लाल होता है। वे बहुत कुछ हाथ के मस्सों के समान होते हैं। वे नाक के पिछले भाग से नीचे को लटकते हैं और नाक बन्द कर देते हैं जिस से बच्चा मुंह से सांस लेने लगता है जब
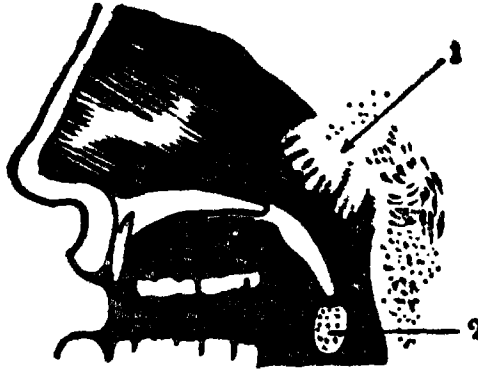
१. गलग्रंथियां २. गलसुए पर चकत्ता

मुंह से सांस लिया जाता है तो नाक से सांस लेने की अपेक्षा अधिक धूल और बहुत से कीटाणु अन्दर चले जाते हैं।

बच्चे का मुंह खुलवा कर चम्मच से उस की जीभ नीचे की ओर दबाइये और देखिये कि कहीं गलसुए गले की ओर बढ़े हुए तो नहीं हैं। जब गलसुए रोग-युक्त नहीं होते तब वे गले की ओर बढ़े हुए नहीं होते हैं और उन का रंग भी गले के दूसरे भागों की भांति गुलाबी होता है। बढ़े हुए गलसुए का रंग गहरा लाल होता है या उस पर सफेद चकते से रहते हैं या कभी-कभी उस में पीली पीप भरी रहती है। यदि गलसुए अचानक बढ़ जाएं तो बच्चे का गला दुखने लगता है और उसे ज्वर और सिर दर्द होने लगता है। खाना खाते या कुछ पीते समय गले का दर्द और भी बढ़ जाता है।

बच्चे की परीक्षा कर के देखिये कि कहीं उस की गर्दन में और कानों के पिछले भाग में त्वचा के नीचे कोई गिलटी तो नहीं है। ये बढ़ी हुई ग्रंथियां होती हैं। इन का मतलब यह होता है कि नाक, गले, कानों या दांतों में विष या कोई विकार है जिसे तत्क्षण निकाल देना आवश्यक है जिस से सारा शरीर स्वस्थ रहे।
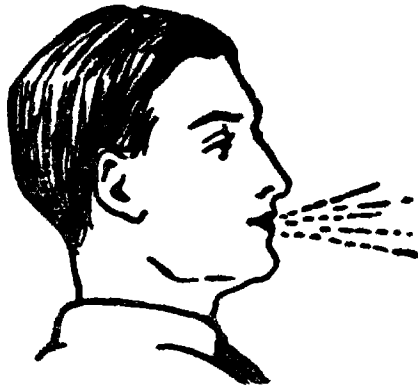
खांसने से जुकाम के कृमि फैलते हैं।

बढ़े हुए गलसुओं और गदूदों में विषैले कीड़े होते हैं और वे रक्त द्वारा हृदय में पहुंच कर हृदय-रोग उत्पन्न करते हैं या जोड़ों में पहुंच कर गठिया पैदा कर देते हैं। गलसुओं और गदूदों के कीड़े शरीर के अन्य भागों में भी पहुंचते हैं और दूसरे रोग उत्पन्न करते हैं। ये शरीर का ठीक विकास होने में बाधा पहुंचाते हैं जिस के कारण इन से पीड़ित बच्चे नाटे कद के रह जाते हैं। गल-ग्रंथियों और बढ़े हुए गलसुओं के कृमि धीरे-धीरे बच्चे के शरीर में विष पैदा कर देते हैं जिस से वह अपनी पढ़ाई-लिखाई उचित रूप से नहीं कर सकता। ऐसे बच्चों को झिल्लीक-प्रदाह, लालज्वर और खसरा होने का

अधिक भय रहता है। यदि इन में से एक भी रोग बच्चों को लग जाए तो अवस्था गम्भीर हो जाती है और फिर वह बहुत धीरे-धीरे स्वस्थ होता है।

चिकित्सा

यदि किसी बच्चे के गद्‌द निकल आएं, तो उस का केवल एक ही इलाज है कि उसे अस्पताल या किसी योग्य डॉक्टर के पास ले जा कर गद्‌द निकलवा दिए जाएं।

यदि गलसुए निरन्तर न बढ़ते रहें, बल्कि अचानक ही सूज जाएं और दर्द करने लगें तो अरंडी के तेल या एपसम सॉल्ट की एक खुराक दीजिये और जबड़ों के नीचे गर्दन के दोनों ओर गर्म पानी से सेंकिए। डॉक्टर की राय के अनुसार पैनीसिलिन या ट्रिपलसल्फा (triplesulpha) दिया जाए। रोगी को खूब पानी पीना चाहिये। यदि गलसुए बढ़े हुए हों या वे इतने बढ़े हुए भी न हों, परन्तु यदि उन पर सदा पीप के पीले चकत्ते से रहते हों, तो उन्हें निकलवा देना चाहिये।

दुखते और बैठे हुए गले का सब से अच्छा इलाज है गरम कर के पट्टी बांध देना

जुकाम

अन्य रोगों की अपेक्षा जुकाम बहुत अधिक लोगों को सताता है। जुकाम कृमियों द्वारा ही होता है। जुकाम खसरा और निमोनिया के समान ही संक्रामक है।

साधारण जुकाम इतना घातक नहीं होता परन्तु आगे चल कर इस से ऐसी खतरनाक बीमारियां पैदा हो सकती हैं जैसे निमोनिया, क्षय रोग गठिया-ज्वर तथा बहरापन ।

रोक-थाम

जुकाम का रोकना कई बातों पर निर्भर करता है । सब से मुख्य बात यह है कि शरीर को उचित भोजन और व्यायाम द्वारा ठीक रक्खा जाए । प्रतिदिन ठंडे पानी से स्नान करना एक ऐसा उपाय है जिस से शरीर ऐसी दशा में रहता है कि जुकाम का निरोध कर सकता है । जिन लोगों को जुकाम हो उन से अलग रहना चाहिये ।

वह प्याला जिस का सब प्रयोग करते हों, वह तौलिया जिसे से सब हाथ-मुंह पोंछते हों, तम्बाकू पीने का पाइप, खिलौने, उंगलियां या जिस किसी वस्तु पर भी नाक का पानी और मुंह का थूक लग जाए—ये सभी वस्तुएं जुकाम के कीटाणुओं को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचा देती हैं । कम हवा और कम रोशनी वाले कमरों में रहने से, धूल भरी हवा में सांस लेने से, ठंड लग जाने या भीग जाने से, जब कपड़े पसीने से भीगे हुए हों तो हवा में बैठने से, कम नींद आने और अधिक काम करने से किसी भी व्यक्ति को जुकाम होने की सम्भावना रहती है । जो लोग मुंह से सांस लेते हैं और जिन के दांत सड़े हुए होते हैं और जिन के गलसुए बढ़े हुए होते हैं, उन्हें जुकाम जल्दी-जल्दी आ दबाता है ।

चिकित्सा

यदि चिकित्सा जल्दी ही आरम्भ कर दी जाए तो जुकाम शीघ्र ही ठीक हो सकता है । छींक आना, आंखों से पानी निकलना, थोड़ा-थोड़ा सिर-दर्द, नाक का बन्द होना आदि लक्षण प्रकट होते ही रोगको बढ़ने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिये । इस का एक सब से उत्तम उपाय यह है कि आदमी घर से बाहर बगीचे में खोदे, तेजी से चलना या कोई दूसरा शारीरिक काम करे । जब तक पसीना न निकलने लगे तब तक व्यायाम करते रहिये और फिर गरम पानी से स्नान कर लीजिये । गरम पानी से निकल कर, थोड़ा सा ठंडा पानी शरीर पर डाल लीजिये और फिर सूखे तौलिये से अच्छी तरह अपना शरीर पोंछ डालिये ।

यदि जुकाम हुए दो दिन बीत चुके हों तो कुछ देर पैर और टांग गर्म पानी में डाल कर सेंकिये (देखिये अध्याय २१) । इस के बाद बिस्तर में लेट जाइये । आहार चावल की लपसी, आंशिक रूप से उबले हुए अंडों और फलों तक ही सीमित रखिये । इस प्रकार की चिकित्सा से जुकाम ठीक हो जाएगा । यदि जुकाम फिर से जारी हो जाए या निमोनिया में बदल जाने की आशंका हो तो डॉक्टर से पूछ कर तीन या चार दिन तक दिन में चार बार सल्फाथियोजोल या सल्फाडायजीन (Sulfathiazole or Sulfadiazine) की दो-दो गोलियां खाई जाएं । इस से सरल जुकाम के जल्दी-जल्दी उभर आने वाले जटिल उपसर्गों की आशंका कम हो जाती है । पानी अधिक मात्रा में पिलाइये । शायद डॉक्टर पैनीसीलन दे ।

इन्फ्लूएंजा (La Crippe)

इन्फ्लूएंजा प्रतिवर्ष फैलता है। उस के लक्षण भी साधारण जुकाम जैसे ही होते हैं, परन्तु अधिक गम्भीर। आरम्भ में ही नाक बन्द हो जाती है छींकें आने लगती हैं, आंखों में पानी आने लगता है, सिर में दर्द होता है, पीठ दुखती है, सूखी खांसी होती है और कुछ ज्वर भी आ जाता है।

यह बहुत गम्भीर रोग है। इस से प्रतिवर्ष बहुत से बूढ़े लोग मर जाते हैं। जब इन्फ्लूएंजा कमजोर लोगों पर आक्रमण करता है तो प्रायः उन की मृत्यु हो जाती।

चिकित्सा

इन्फ्लूएंजा बहुत शीघ्र लगने वाला रोग होता है। यदि परिवार के किसी सदस्य को यह रोग हो जाए तो उसे खांसते या छींकते समय अपने मुंह और नाक पर रूमाल रखना चाहिये। उसे कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों में थूकना चाहिये जिन्हें बाद में जला देना चाहिये। उस परिवार के दूसरे सदस्यों द्वारा प्रयोग किए हुए तौलिये, प्याले और खाने के बरतनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

रोग के आरम्भ में ही रोगी को बिस्तर में लेट जाना चाहिये और जैसा कि इस अध्याय में पहले बताया जा चुका है उसे अपने पैर और टांगें कुछ देर गर्म पानी में डाले रखने चाहियें। रोगी को घंटे भर में कम-से-कम डेढ़ पाव पानी या लेमनेड पी लेना चाहिये। पैरों को गरम रखिये। पैरों में गरम पानी की बोतलें रखना भी आवश्यक है। खाने में लपसी, शोरबा, आंशिक रूप से पके हुए अंडे और फल होने चाहियें। खांसी के लिए वही चिकित्सा कीजिये जो इस अध्याय में छाती की सर्दी के लिए बताई गई है। नुसखे नम्बर ९ (देखिये परिशिष्ट) का प्रयोग दिन में तीन बार कुल्ली के रूप में कीजिये। इस से मुंह और गला साफ रहेगा और इस प्रकार रोग को कानों तक पहुंचने पर बहरापन पैदा करने से रोकेगा।

अध्याय ३०

फेफड़े के रोग

निमोनिया

निमोनिया एक ऐसी बीमारी है जो निमोनिया के आनुवीक्षिणक कीटाणु (Pneumococcus germ) से होती है। यह रोग अचानक कड़ी ठंड लगने से शुरू हो जाता है। तापमान शीघ्र ही बहुत बढ़ जाता है और छाती में दर्द होने लगता है। थोड़े समय तक सूखी खांसी आती है जिस से पीड़ा बहुत बढ़ जाती है और श्वास-गति बहुत अधिक बढ़ जाती है। रोगी दाईं या बाईं करवट से लेटता है, पीठ के बल नहीं लेट सकता। चेहरा लाल हो जाता है, विशेष कर दोनों गाल; होठों पर ज्वर के छाले पड़ जाते हैं। रोगी के थूक में खून होता है। कुछ दिन तक बहुत तेज ज्वर रहने के पश्चात्, तापमान यकायक बहुत गिर जाता है और उस समय रोगी को बहुत पसीना आता है। इस के पश्चात् रोगी तनिक शांति अनुभव करता है और यदि कोई दुर्घटना न घटे तो वह निरन्तर अच्छा होता जाएगा और दो या तीन सप्ताहों में ठीक हो जाएगा। कुछ लोग तापमान गिरने से पूर्व ही मर जाते हैं। पहले निमोनिया के प्रत्येक दस रोगियों में से तीन या चार मर जाते थे। जो लोग मदिरा का सेवन अधिक करते हैं वे निमोनिया के आक्रमण से जल्दी छुटकारा नहीं पा सकते।

प्रतिबन्धक उपाय

निमोनिया के कीटाणु बहुत फैले हुए रहते हैं। हम उन से बच नहीं सकते, परन्तु यदि शरीर को स्वस्थ और शक्तिशाली रक्खा जाए तो निमोनिया के कीटाणु उस का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। किसी प्रकार की शराब या तम्बाकू का प्रयोग करने से रोग के कीटाणुओं के प्रतिरोध करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। पौष्टिक भोजन की कमी के कारण, या अधिक भोजन करने से, अंधेरे में रहने से, कम हवादार और कम रोशनी वाले मकानों में रहने से, दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर के सोने से, झुक कर बैठने से या सर्दी लग जाने से भी शरीर उन कीटाणुओं का प्रतिरोध करने में अपने आप को निर्बल पाता है।

निमोनिया नाक के स्राव से, थूक से, खांसने और छींकने से फैलता है। जिस प्याले का प्रयोग दूसरे लोग करते हों, उसी में कुछ पीने से निमोनिया हो जाने की

आशंका रहती है। सड़कों पर धूल भरी हवा में सांस लेने से, या घर झाड़ते-बुहारते समय उस की धूल मुंह में घुसने से हम निमोनिया के कीटाणु अपने अन्दर ले जा सकते हैं जिस के परिणाम स्वरूप हमें निमोनिया हो सकता है।

विशेष चिकित्सा

सल्फा ड्रग्ज (Sulfa Drugs) और अभी हाल में पेनीसिलिन की खोज के पश्चात् निमोनिया से मरने वालों की संख्या को बहुत कम किया जा चुका है। सल्फा ड्रग्ज, सल्फाथियोजाल और सल्फाडायजीन बहुत गुणकारी दवाएं हैं जो छोटे-से-छोटी जगह के औषधालयों में भी मिल सकती हैं। ये दवाएं किसी योग्य डॉक्टर की राय ले कर ही देनी चाहियें। ज्वर २४घंटे से लेकर ४८ घंटे में उतर सकता है। ज्वर उतरने के पश्चात् कम-से-कम तीन दिन तक इन दवाओं का सेवन करते रहना चाहियें। बहुधा ज्वर उतरते ही दवा का सेवन भी बन्द कर दिया जाता है जिस के परिणाम स्वरूप रोग फिर उभर आता है और पहले से अधिक गम्भीर होता है। पेनीसिलिन अब सब प्रसिद्ध दुकानों में मिलती है और यह सल्फा ड्रग्ज की अपेक्षा निमोनिया के उपचार में अधिक गुणकारी औषधि होती है।

उचित देख-भाल की बहुत आवश्यकता है। जहां तक हो सके रोगी को खुली हवा में लिटाना चाहियें। रोगी के पांव गरम रखिये। यदि आवश्यकता पड़े, तो उस के पैरों के नीचे गरम पानी की बोतलें रखिये। रोग के आरम्भ में ही एक खुराक एपसम सॉल्ट की दीजिये और १०० डिगरी फ. के तापमान के पानी का एनिमा दीजिये। नींबू का शरबत, नींबू का अर्क या सादा पानी रोगी को जल्दी-जल्दी पीने के लिये देना चाहियें। भोजन पतला होना चाहियें जैसे चावल की लपसी, करी या अंडे, कच्चे या आंशिक रूप से पके हुए।

रोगी को कागज के टुकड़ों या कपड़े की कतरनों में थूकना चाहियें जिन को बाद में जला दिया जा सके।

बच्चों का निमोनिया

बच्चों के निमोनिया का इलाज भी इस अध्याय के पहले भाग में बताए गए वयस्क व्यक्ति के इलाज के समान ही होता है। बच्चे को उस स्थान में रहना चाहियें जहां हवा का आवागमन भली भांति होता है। ऐसे बच्चे की भोजन मात्रा कम कर दीजिये। जैसा इस अध्याय में पहले बताया गया है, वैसे ही उस के पांव गरम रखिये। यदि ऊपर लिखी औषधियां प्राप्त न हों तो छाती के दर्द वाले हिस्से में राई का पलस्तर लगाइये। छः या सात भाग आटे में केवल एक भाग राई का डालना चाहियें। इस में गरम पानी डालिये और उस की एक मोटी तह कपड़े पर जमाइये। फिर इसे त्वचा पर लगा दीजिये। ज्योंही त्वचा काफी लाल हो जाए त्योंही राई के पलस्तर को उतार लेना चाहियें चार या पांच घंटे पश्चात् इसे कुछ मिनट के लिये फिर लगाना चाहिये। बच्चा जितना पानी पी सके पिलाना चाहियें या उसे नींबू का अर्क या रस मिला हुआ पानी दीजिये। थोड़े से गरम पानी

का अनिमा उसे प्रतिदिन दीजिये । यदि बच्चा निरन्तर खांसे परन्तु बलगम न निकले और यदि खांसी से उसे नींद न आए, तो परिशिष्ट में लिखा हुआ नुसखे नम्बर १८ के अनुसार इलाज करना चाहिये । निमोनिया की प्रत्येक दशा में यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि इस बीमारी की चिकित्सा करने का सब से उत्तम उपाय सल्फा ड्रग्ज या उस से भी अच्छी पैनीसिलिन है ।

निमोनिया के बाद क्षय-रोग की रोक-थाम

बच्चे या बड़े. को निमोनिया के बाद क्षय-रोग हो जाना बहुत ही साधारण सी बात है, अतः यह बहुत आवश्यक है कि जब तक निमोनिया का रोगी पूर्ण रूप से स्वस्थ न हो जाए और उस के शरीर में कुछ शक्ति न आ जाए, तब तक उसे चारपाई पर से उठ कर काम-काज करना या घूमना-फिरना नहीं चाहिये । इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना, चाहिये कि रोगी के सोने के कमरे की खिड़.कियां और दरवाजे बन्द न रहें । छटे अध्याय में बताई हुई विधि के अनुसार लम्बी-लम्बी सांसों का व्ययाम प्रतिदिन किया जाए ।

फुफ्फुसावरक झिल्ली-प्रदाह (Pleurisy)

इस रोग में वह पतली सी झिल्ली जो फेफड़.ों और छाती की दीवार की भीतरी ओर चढ़.ी रहती है, सूज जाती है । छाती पर प्रहार होने से या सर्दी लग जाने से यह रोग हो जाता है । सब से पहले ठंड लगती है, उस के बाद छाती में एक ओर थोड़.ा दर्द होता है, पीड़.ा चुभती सी प्रतीत होती है और लम्बी सांस लेने या खांसने से पीड़.ा बढ़. जाती है । थोड़.ा ज्वर भी आने लगता है । एक ओर दर्द होना ही प्रमुख लक्षण है । रोगी पीड़.ा वाली ओर लेट नहीं सकता । कुछ दिन बाद झिल्ली (Pleura) की दोनों तहों के बीच में कुछ तरल प्रायः जमा हो जाता है और उस के बाद पीड़.ा कम हो जाती है ।

चिकित्सा

साधारणतया इस रोग में ज्वर एक सप्ताह या दस दिन तक रहता है । यदि रोगी निरन्तर गर्मी अनुभव करता रहे या दो सप्ताह तक हर दिन दोपहर और शाम को बेचैनी अनुभव करे; तो इसका मतलब यह हो सकता है कि उसे क्षय रोग हो गया है और इस दशा में अगले भाग में क्षय रोग की चिकित्सा के लिए जो उपाय लिखे गए हैं उनका प्रयोग करना चाहिए ।

इस रोग के रोगी को ऐसे कमरे में लिटाना चाहिए जहां दरवाजे और खिड़.कियां खोलने पर ताजा हवा अन्दर आए । केवल तरल भोजन उसे देना चाहिए । एक पट्टी या तीन इंच चौड़.ा कपड़.ा उसकी छाती के गिर्द लपेट दीजिए; फिर रोगी से कहिए कि सांस बाहर निकाले । इस प्रकार जब फेफड़े. खाली हो जाएं और छाती सिकुड़. जाए, तो पट्टी को कसिए और बांध दीजिए । इस से छाती की स्वतन्त्र गति नहीं होती और दर्द भी कम हो जाती है । दर्द कम करने के लिए प्रत्येक दो घंटे पश्चात्, बीस-बीस मिनट तक, गरम पानी की सेंक भी

दीजिए। गर्म पानी में भिगो कर और निचोड़ कर कपड़े के टुकड़े से सेंकने के बदले गर्म पानी की बोतल को गर्म पानी के निचोड़े हुए कपड़े में लपेट कर भी सेंकने का काम किया जा सकता है। पेट साफ रक्खा जाए।
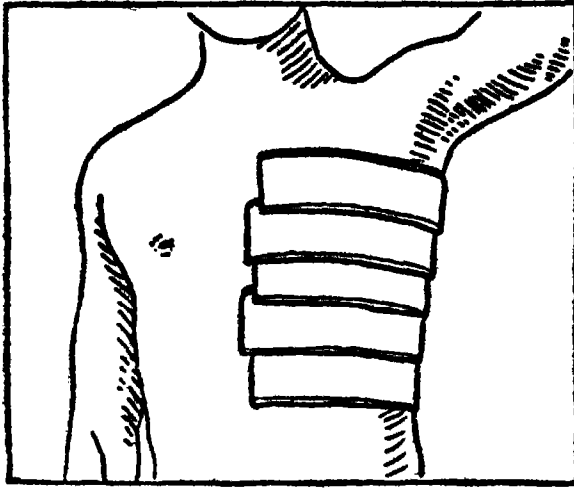
फुप्फुसावरक झिल्ली-प्रदाह के रोगी की छाती पर पट्टी

फुप्फुसावरक झिल्ली-प्रदाह बिगड़ कर एक और रूप धारण कर सकता है; इसे एम-पियमा (Empyema) कहते हैं। इस अवस्था में फेफड़ों में इकट्ठा तरल अधिक सक्रमित हो जाता है और पीप पैदा हो जाती है। डॉक्टर की राय लेकर रोगी को सल्फाड्रगज या पेनीसिलिन देनी चाहिए। एमपियमा निमोनिया की बिगड़ी हुई दशा है और इस की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

क्षय रोग या यक्ष्मा
(Tuberculosis or Consumption)

भारतवर्ष में रात-दिन, प्रति क्षण, कोई-न-कोई क्षय रोग से मरता रहता है। इस का आक्रमण विशेषकर १८ से ४० वर्ष के बीच के व्यक्तियों पर होता है। चूंकि रोग को रोका जा सकता है और इसकी चिकित्सा हो सकती है, इस लिए यह बात बहुत महत्व की है कि सब को इसके लक्षण जान लेने चाहिए और इसे रोकने के उपाय और चिकित्सा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

लक्षण

रोगी की चिकित्सा इस बात पर निर्भर करती है कि रोग का पता कितनी जल्दी लग जाए। इस कारण सब से क्षय रोग के प्रथम लक्षणों को जानना चाहिये।

जिन लोगों की छाती पतली और चपटी होती है और झुके हुए कन्धे होते हैं उन्हें इस रोग के लगने की अधिक सम्भावना होती है। धीरे-धीरे वजन कम होना एक ऐसा लक्षण है जो इस रोग के रोगियों में प्राय: पाया जाता है। त्वचा का पीला होना और कभी-कभी गालों का लाल हो जाना भी इस रोग का साधारण लक्षण है। बार-बार जुकाम होना भी एक दूसरा प्रारम्भिक लक्षण है। कुछ लोगों को जिन्हें यह रोग होता है रोग का पता ही नहीं लगता, परन्तु वे जल्दी ही थक जाते हैं और कुछ ही हफ्तों में दोपहर को हल्का सा ज्वर चढ़ने की और प्रात:काल और शाम को खांसी होने की शिकायत करते हैं। थोड़ी देर बाद उन्हें रात को पसीना आने लगता है और उसका थूक लाल होता है, क्योंकि उस में खून मिला हुआ होता है। छाती में दर्द हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। भूख का मर जाना भी एक साधारण सा लक्षण है। एक दूसरा लक्षण रोगी का स्वभाव बदल जाना है अर्थात् जो व्यक्ति सदा प्रफुल्ल चित्त और स्वभाव का अच्छा होता है, वह चिड़चिड़ा और खिन्न चित्त हो जाता है।

प्राय: थूक में इस रोग के कृमि (The Tuberculosis Bacillus) पाए जाते हैं। जब किसी व्यक्ति के प्रति क्षयरोग का सन्देह हो तो डॉक्टर को बुला कर रोगी के थूक की परीक्षा करवानी चाहिये कि उस में क्षय रोग के कीटाणु हैं या नहीं। पर यह बात भी याद रखनी चाहिए कि बहुत से लोगों थूक में क्षय रोग के कीटाणु न होने पर भी उन्हें यह रोग होता है। अत: यदि इस रोग के दूसरे लक्षण मौजूद हों तो थूक में कीटाणु न होने पर भी क्षय रोग का इलाज शुरू कर देना चाहिए।

ऊपर दिए गए लक्षण फेफड़ों के क्षय रोग के साधारण लक्षण हैं। यह रोग केवल फेफड़ों का ही रोग नहीं है बल्कि यह शरीर के दूसरे भागों पर भी आक्रमण करता है। ऊपर दिए गए लक्षणों के अतिरिक्त यह रोग गले में भी हो सकता है और कोई चीज निगलते समय गले में दर्द हो सकता है और स्वर धीमा पड़ जाता है। हड्डियों का क्षय रोग भी एक आम रोग है। क्षय रोग प्राय: कूल्हे पर आक्रमण करता है जिस से एक टांग छोटी हो जाती है। जब यह रोग रीढ़ की हड्डी में होता है तो कुबड़ निकल आता है या शरीर एक ओर को झुक जाता है। कण्ठमाला एक प्रकार का क्षय रोग होता है जो प्राय: बच्चों में पाया जाता है, गर्दन पर सामने और पीछे गिल्टियां निकल आती हैं। बच्चा प्राय: पीला पड़ जाता है और दुर्बल दिखाई देने लगता है और उस की आंखें और कान जल्दी-जल्दी दुखने लगते हैं।

क्षय-रोग के कीटाणु इस प्रकार शरीर में घुसते हैं

(१) जो हवा हम सांस के साथ अन्दर ले जाते हैं उसके साथ ये हमारे फेफड़ों में चले जाते हैं। (२) जो भोजन हम करते हैं उसके साथ ये हमारे शरीर में घुस जाते

हैं। बहुत सी गायों और दूसरे जानवरों को क्षय रोग होता है। इन जानवरों का मांस खाकर या इन का दूध पीकर हमें यह रोग हो जाता है। क्षय रोग पीड़ित व्यक्ति यदि बाजार में या रसोई घर में खाने-पीने की चीजों को हाथ लगाए तो उन के नाक, मुंह और हाथों द्वारा ये कृमि भोजन में प्रवेश कर जाते हैं और यह भोजन करके हमें क्षय रोग हो जाता है। (३) त्वचा पर कहीं घाव हो, तो उस में होकर ये कृमि अन्दर घुस जाते हैं।

क्षय रोग को फैलने से रोकने के उपाय

क्षय रोग के रोगी को यह जानना चाहिए कि यह रोग खांसने और थूकने से फैलाता है। जब वह खांसता या थूकता है तो उसके नाक और मुंह से कुछ छींटे बाहर निकलते हैं। इन छींटों में क्षय रोग के कीटाणु रहते हैं और जब ये छींटे हवा और धूल में मिल जाते हैं तो स्वस्थ लोगों के फेफड़ों में कीटाणु सांस के साथ अन्दर चले जाते हैं और उन्हें यह रोग हो जाता है। इस रोग के रोगी के थूक में अनगिनत कीटाणु रहते हैं। उसे कभी ऐसे स्थान पर नहीं थूकना चाहिए जहां उसके सूख कर धूल बन जाने की सम्भावना हो क्योंकि निःसन्देह रोग फैलाने का सब से आसान तरीका थूकना है।

इस रोग के रोगियों को कभी अपनी नाक या मुंह के सामने कपड़ा या कागज लगाए बिना छींकना या थूकना नहीं चाहिए। यदि कागज का प्रयोग किया जाए तो उसे जला देना चाहिए। यदि कपड़े का प्रयोग किया जा तो उसे इसी काम के लिए रख

रोग-कृमि इस प्रकार भी फैलते हैं

लेना चाहिए और एक साधारण रूमाल की भांति उस से काम नहीं लेना चाहिए या तो उस का प्रयोग कर के उसे जला डालना चाहिए या इसे उबाल लेना चाहिए।

क्षय रोग के रोगी को दूसरों का भोजन नहीं छूना चाहिए।

इसके रोगी को कभी अपना थूक निगलना नहीं चाहिए। ऐसा करने से रोग के कीटाणु आंतों में बढ.ने शुरू हो जाते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है।

क्षय रोग के लगने से कैसे बचें

नगर की धूल में क्षय रोग के कीटाणु होते हैं। इन से बचने का कोई उपाय नहीं और कभी-न-कभी मनुष्य के शरीर में ये अवश्य प्रवेश कर जाएंगे; परन्तु यह बात स्पष्ट है कि जब शरीर शक्तिशाली और स्वस्थ होता है और जुकाम आदि नहीं होता तो रक्त क्षय-रोग के कुछ कीटाणुओं को नष्ट कर सकता है। कम पौष्टिक या कम मात्रा में भोजन मिलने से, अधिक काम करने से, या दुराचरण से यदि शरीर कमजोर हो जाता है तो वह कीटाणुओं को नष्ट करने की अपनी शक्ति खो बैठता है। जो लोग नशे का किसी भी रूप में सेवन करते हैं वे दूसरे लोगों की अपेक्षा क्षय रोग के जल्दी शिकार बन जाते हैं और एक बार इस रोग के रोगी बन कर उस से छुटकारा पाने की बहुत कम सम्भावना होती है। तम्बाकू का प्रयोग करने से फेफड.ों और गले को आघात पहुंचता है और बहुत आसानी से क्षय रोग लग जाता है।

जब कोई व्यक्ति ऐसे स्थान पर रहता है जहां मकान बहुत सटे हुए होते हैं, जैसे कि शहरों की दशा होती है, वहां क्षय रोग फैलने का अधिक खतरा रहता है।

प्रत्येक कमरे में कम-से-कम दीवारों में दो बड.ी खिड.कियां होनी चाहिए। रात को खिड.की अवश्य खुली होनी चाहिए।

जिस प्याले, चम्मच, प्लेट, तौलियों या चिलमची का प्रयोग क्षय रोग के रोगी ने किया हो, उस का प्रयोग करना बहुत खतरनाक है जब तक कि उसे उबाल न लिया जाए। क्षय रोग मांस और दूध से भी फैलता है, अतः मांस खाने से पूर्व उसे अच्छी तरह से पका लेना चाहिए और दूध को उबाल लेना चाहिए।

कुछ विशेष काम करने वालों को सदैव इस रोग के लग जाने की सम्भावना रहती है, क्योंकि काम करने वाले को धूल भरी या धुएं से भरी वायु में ही सांस लेना पड.ता है, पर सिगार और सिगरेट बनाने वाले, पत्थर काटने वाले, और चावल पर पॉलिश करने वाली मिलों में काम करने वाले। जो लोग बैठे रहते हैं और झुक कर अपना काम करते हैं जैसे दर्जी, टोपी बनानेवाले, टोकरी बनाने वाले और टाइप ठीक करने वाले, उन्हें भी यह रोग होने की सम्भावना रहती है। स्कूलों और कॉलेजों में बहुत से छात्र क्षय रोग से पीड़ि.त हैं, क्योंकि वे अपने पढ.ने लिखने की मेजों पर झुक कर बैठे रहते हैं और घर से बाहर कोई प्रतिदिन व्यायाम नहीं करते।

क्षय रोग की चिकित्सा

इस रोग के किसी भी रोगी को निराश नहीं होना चाहिए। इस का इलाज हो सकता है। जब किसी को या रोग हो जाए, तो उसकी जितनी जल्दी चिकित्सा आरम्भ हो जाती है उस के अच्छे होने की उतनी ही आशा बढ़ जाती है।

जो लोग क्षय रोग के रोगी हैं उनके लिए निम्न औषधोपचार हितकर है। स्ट्रेप्टो-मायसिन (Streptomycin) का पेशी का इंजेक्शन (Intra-muscular injection) १ ग्राम प्रतिदिन अर्थात् आधा ग्राम प्रातः और आधा ग्राम सयंकाल में ४२ दिन तक दीजिए। इसके साथ पी. ए. एस. गोलियां ४ से ६ तक प्रति दिन तीन बार दीजिए। यदि फिर भी लक्षण विद्यमान हों तो दो माह बाद कोर्स फिर दुहराओ।

हाल ही में एक नया इलाज निकला है और वह है Streptomycin की सुइयों के साथ-साथ Isoniazid की सुइयां लगाना।

क्षय रोग का केवल एक उपचार है और वह है शारीरिक शक्ति को बढ़ाना जिस से शरीर धीरे-धीरे उन रोग कृमियों से संघर्ष करे और फिर उन्हें नष्ट कर दे। यह बहुत लम्बी विधि है, अतः इस के रोगी को यह जानना चाहिये कि एक या दो सप्ताह में अच्छा नहीं हो सकता। शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का और इस रोग का इलाज करने का सब से आसान तरीका यह है कि रोगी सदा ताजा हवा में रहे, अच्छा भोजन यथेष्ट मात्रा में करे, घर से बाहर रहे, आराम करे और सब प्रकार की चिंताओं से मुक्त रहे।

कुछ स्थानों पर क्षय रोग की चिकित्सा करने के लिए खास अस्पताल खोले गए हैं और जहां तक सम्भव हो सके, रोगी को ऐसे अस्पताल में चला जाना चाहिये। बहुत से बड़े-बड़े शहरों में क्षय रोग के रोगियों के लिए औषधालय होते हैं। इन में से कुछ औषधालयों में डाक्टरी राय और दवा गरीब लोगों को बिना पैसे दी जाती है।

यदि क्षय रोग का रोगी अपना घर न छोड़ सके तो उसे निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि नीचे लिखी हुई बातों को ध्यान में रख कर इस रोग का इलाज घर में भी किया जा सकता है।

रोगी को एक ऐसे कमरे में लिटा देना चाहिए जहां कोई और दूसरा न आ सके। उस कमरे में बड़ी-बड़ी खिड़कियां होनी चाहिए जिन को रात-दिन खुला रखना चाहिए। दिन के समय रोगी को कमरे के बाहर वृक्ष की छाया में झूले (Hammock) में लेटा रहना चाहिए। रोगी के कमरे की दीवारों और फर्श को गरम पानी से धो कर साफ रखना चाहिए।

रोगी का तकिया और बिस्तरा प्रत्येक धूप वाले दिन में कई घंटे तक डाले रखना चाहिए। धूप और ताजा हवा से क्षय रोग के कीटाणु मर जाते हैं।

भोजन (रोगी का आहार)

शायद क्षय रोग में चिकित्सा का एक आवश्यक अंग भोजन भी है। साधारणतया रोगी की भूख मर जाती है। भूख तेज करने के लिए रोगी को द्रव्य के रूप में विटामिन

बी. कम्पलेक्स या गोली के रूप में दीजिए। बी. कम्पलेक्स के साथ विटामिन बी. की गोलियां (५-१० mg) दिन में तीन बार देने से शेष पूर्ति हो जाती है। क्षय रोग के सब रोगियों को कोड लिवर आयल या हेलीबिट लिवर आयल देना चाहिए। रोगी जितना भोजन कर सके उतना दीजिए। दूध, अंडे, मांस, फल, सब्जियां, दाल, गेहूं, बिना धुला चावल, मेवा या इस प्रकार का कोई दूसरा भोजन देना चाहिए। यदि रोगी प्रसम भोजन न कर सके तो उसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में कई बार भोजन देना या एक बार और दूसरी बार के भोजन के बीच में पौष्टिक दूध देना भी लाभदायक होता है।

चिकित्सा की अन्य बातें

जल्दी-जल्दी स्नान कर के शरीर को साफ रखना चाहिए। कपड़े. भी साफ रहने चाहिए। दांतों को सुबह शाम ब्रश कर के साफ रखना चाहिए। रोगी को इतना अधिक चलना-फिरना नहीं चाहिए कि उसे थकान हो जाए या ज्वर आ जाए।

क्षय रोग के रोगी को बहुत सावधान रहना चाहिए कि परिवार के दूसरे सदस्यों को रोग न लग जाए। रोगी को अपने बरतन , प्लेटें, तौलिये और बिस्तर अलग रखना चाहिए, केवल अपने प्रयोग के लिए और किसी दूसरे को इनका प्रयोग नहीं करने देना चाहिए। उन्हें उन बर्तनों के साथ साफ नहीं करना चाहिए जिन का प्रयोग परिवार के अन्य सदस्य करते हैं।

क्षय रोग के किसी भी रोगी को किसी बच्चे को चूमना या प्यार करना नहीं चाहिये, और जो खाना दूसरे व्यक्तियों के लिए हो उसे कभी नहीं छूना चाहिये। रोगी के कमरे से मक्खियों को दूर रखिए। यदि सम्भव हो सकें तो किसी भी दशा में उन्हें रोगियों के थूक पर न बैठने दीजिए। थूक को सदा ढक कर रखिए।

क्षय रोग में एक महत्वपूर्ण बात है प्रसन्न-चित्त रहना। क्षय रोग के रोगी को परमेश्वर पर भरोसा रखने से बहुत लाभ होगा क्योंकि परमेश्वर मनुष्य के सब रोगों निवारण कर देता है। यदि कोई रोगी निराश हो बैठे और यह सोचे कि अब तो मेरी मृत्यु निश्चित है तो उसके मरने में कोई सन्देह नहीं रहता।

रोगी को प्रतिदिन मल-त्याग बहुत आवश्यक हैं। प्रतिदिन कई गिलास पानी के पीने चाहिए जिस से शरीर में से विषैले पदार्थ घुल कर बाहर निकल जाएं।

यदि खांसी बहुत कष्टदायक हो तो वही चिकित्सा करनी चाहिए जो इस अध्याय में ज़ुकाम और खांसी की चिकित्सा के अंतर्गत बताई गई है।

कभी-कभी क्षय रोग के रोगियों को प्रातःकाल खांसी उठती है। प्रातःकाल नाश्ते से पूर्व प्रतिदिन बहुत गरम दूध एक गिलास या गरम पानी के एक गिलास—जिस में नींबू का रस मिला हो—पीने से खांसी रुक जाती है।

यदि रोगी को अधिक ज्वर हो तो उसे थोड़े. ठण्डे पानी से अंगोछा जा सकता है। आध घंटे या इस से अधिक समय तक अंगोछते रहना चाहिये। (देखिये अध्याय २१)

जब रोगी के थूक में खून आए तो उसे बहुत हिलना-डुलना नहीं चाहिए। थूक

में खून आने का यह कारण यह होता है कि रोगी ने कोई भारी वस्तु उठाई है या बहुत परिश्रम किया है। यदि थूक में रक्त की मात्रा अधिक हो तो बर्फ के पानी में कपड़े को भिगो कर उस की छाती पर रखना चाहिए। कपड़ों को बार-बार भिगो लेना चाहिए जिस से वह निरन्तर ठण्डा रहे। यदि बर्फ न मिल सके तो कपड़े को ठण्डे पानी में भिगो कर और उसके दोनों कानों को पकड़ कर कुछ देर तक हवा में हिलाना चाहिए, इस से वह बहुत ठंडा हो जाएगा।

क्षय-रोग से छुटकारा पा लेने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिये कि रोग के फिर उभर आने की सम्भावना रहती है इसीलिए स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिये, और उन सब बातों को छोड़ देना चाहिये जो इस अध्याय में लिखी गई हैं और जिन से बीमारी लगती है।

दमा

दमा एक ऐसी बीमारी है जिस में सांस बड़ी कठिनाई से आता है और इसके साथ वायुनलिका से सम्बन्ध रखने वाली पेशियों में ऐंठन और वायुनलिका की श्लैष्मिक-झिल्ली में रक्ताधिक्य और सूजन उत्पन्न हो जाती है। दमे के दौरे के कई कारण हो सकते हैं, जैसे जुकाम, ग्रीष्म रितु का ज्वर (जिस में नाक, कंठ में रक्त वर्सा उत्तजना, छींकें तथा सिर दर्द होता है) धूल-मिट्टी भरी वायु में सांस लेना, या घोड़े और बिल्ली जैसे किसी जानवर की दुर्गन्ध सूंघते रहना। डर या किसी आकस्मिक भावना या उद्वेग से भी दौरा उठ जाया करता है। कभी-कभी तो यह दौरा कई-कई घंटे रहता है या हर रात को लगातार कई रातों तक यह दौरा उठा करता है। रोगी को बैठा ही रहना पड़ता है ताकि वह सांस ले सके। छाती और श्वास-प्रश्वास की सब पेशियां जोर-जोर से हरकत करती हैं। जब सांस बाहर निकलता है तो एक प्रकार की सीटी का-सा विचित्र शब्द होता है। मुंह पीला और चिन्ताजनक हो जाता है। हाथ और पैर ठण्डे पड़ जाने की भी सम्भावना होती है। खांसी दबी हुई और सूखी होती है और बलगम बड़ी कठिनाई से बाहर निकलता है। जो बलगम इत्यादि मुंह से निकलता है वह भी बहुत थोड़ा निकलता है और बहुत लिबलिबा होता है। कई घंटे के कष्ट के पश्चात् रोगी थक कर बिस्तर पर गिर पड़ता है और उसे थोड़ी नींद आ जाती है, अथवा दौरा धीरे-धीरे कम हो जाता है। अधिक खा लेने से या किसी विशेष खाद्य पदार्थों का प्रयोग करने से भी कभी-कभी दौरा उठने की सम्भावना होती है।

चिकित्सा

दमे की चिकित्सा करना कठिन कार्य होता है। भोजन का चुनाव बहुत सावधानी से करना चाहिए और भोजन नियमित रूप से करना चाहिए, और मसाला, मांस तले हुए और पके हुए पक्वान, देर से पचने वाली वस्तुएं इत्यादि नहीं खानी चाहियें। भोजन में साधारण शक्तिवर्धक वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में अवश्य होनी चाहिए, उदाहरणार्थ—

भली-भांति पका हुआ दलिया आदि, रोटी, शाक-भाजी और फल। दूध अधिक पीना चाहिए परन्तु अन्डे बहुत कम खाने चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी वस्तुओं तक सीमित नहीं रखना चाहिए। कब्ज और पेट का फूलना दूर करने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। (सर्दी और जुकाम की चिकित्सा के लिए अधिक सूचनाएं अध्याय २९ में दी गई हैं)। रोगी को यथासम्भव खुली वायु में घर से बाहर शान्तिपूर्वक रहना चाहिए, नियमित रूप से अपनी आदतें बनानी चाहिए और कभी किसी प्रकार से भी उत्तेजित न होना चाहिए।

डॉक्टर को निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए :— बेलाडोन्ना की सुइयां, नाइट्रोग्लीसरीन; या एड्रेनेलिन देना चाहिए यह अन्तिम औषधि विशेष रूप से गुणकारी है और इसे ५ से दस बूंद तक देना चाहिए। इन औषधियों से तुरन्त आराम होता है। एड्रेनेलिन को नाक में सूंघने के लिए भी प्रयोग में लाना चाहिये। यह दवा अकेली ही प्रयोग में ला सकते हैं या इस में मेन्थल (menthol) या थाइमॉल (Thymol) और एल्बोलीन (Albolene) में यूकेलिप्टस तेल मिलाकर भी प्रयोग कर सकते हैं।

छाती को गरम पानी से सेंकने से पहले पैरों को गरम पानी में कुछ देर डाले रखना लाभदायक होता है। कुछ स्थितियों में छाती पर एक बड़ी, और बहुत ठण्डी कपड़े की गद्दी रखने से भी आराम होता है। दौरों के बीच में गर्मी और ठण्डक पहुंचाने से रोगी की प्रतिकार-शक्ति कायम रहती है, और इस प्रकार दमे की तीव्रता कम हो जाती है।

पिछले कुछ बरसों में वायुनलिका के दमे के रोग सम्बन्धी बहुत अनुसन्धान किया गया है, जिस से यह आशा होती है कि यदि रोगी को धीरे-धीरे, मात्रा बढ़ाते हुए ऐसे प्रोटीन-युक्त पदार्थ खिलाए जाएं जिन का उस की प्रकृति पर विशेष प्रभाव पड़ता हो, तो बहुत-से रोगियों को बड़ा लाभ होगा, और बहुत-से तो बिल्कुल अच्छे हो जाएंगे और इस दुखदायक रोग से मुक्त हो जाएंगे। ऐसा करने से यह प्रभाव होता है कि प्रोटीन रोगी को पहले दुखी किया करते थे और जो अपने जहरीले गुणों से दमे के लक्षण उत्पन्न किया करते थे। उन के बुरे प्रभाव का प्रतिकार करने की क्षमता या सुरक्षित रहने की शक्ति रोगी में आ जाती है। प्रत्येक रोगी पर प्रयोग कर के यह पता लगाया जा सकेगा कि कौन-से पदार्थ किस रोगी के लिए विशेष रूप से हानिकारक हैं।

अध्याय ३१

गुप्त रोग (मैथुन जन्य व्याधियां)

पूयमेह या सूजाक

जब किसी व्यक्ति को सूजाक हो जाता है तो मूत्र-नली सूज जाती है और श्वेत या पीले रंग का पानी-सा गिरने लगता है। यह रोग सूजाक के रोग-कृमि द्वारा होता है और यह उस व्यक्ति के साथ सहवास करने से होता जो पहले से ही सूजाक का रोगी हो। कभी-कभी पूयमेह पीड़ित व्यक्ति के पीप लगे तौलिए आदि से इन्द्रिय पर पीप लग जाने से या उसी स्थान पर मल त्याग करने से जहां पहले सूजाक का रोगी बैठ चुका हो, यह रोग लग जाता है।

लक्षण

यह रोग प्राय: सहवास के तीन से लेकर सात दिन के बाद आरम्भ होता है। इस के लक्षण मूत्र-नली में खुजली होना, जलन और चुभने वाली पीड़ा होती है, पेशाब करते समय पीड़ा होती है और नली में से पानी सा निकलता है। यह पानी शीघ्र ही गाढ़ा पीले या श्वेत रंग का बन जाता है। यदि इस रोग की चिकित्सा न कराई जाए तो यह सारे मूत्र-मार्ग में ऊपर की ओर फैल जाती है और मूत्र-नली संकुचित हो जाती है जिस के परिणाम स्वरूप पेशाब नहीं हो सकता। यह इस रोग का जटिल उपसर्ग है और यदि इस की उपेक्षा की गई तो अन्त में रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। सूजाक का कृमि रक्त-नली द्वारा जोड़ों में पहुंच जाता है जहां वह रोग की सब से कष्टदायक स्थितियों में से कोई-न-कोई स्थिति पैदा करता है। सूजाक अन्धेपन का एक सामान्य कारण होता है, क्योंकि बच्चे को यह रोग जन्म के समय अपनी माता से लग जाता है।

जहां परिवार के एक सदस्य को यह होता है वहां दूसरे सदस्यों में भी इस के फैलने की आशंका लगी रहती है और जहां छोटे बच्चे होते हैं वहां इस के फैलने का और भी अधिक खतरा है।

चिकित्सा

इस रोग की सफल चिकित्सा तो कोई अच्छा डॉक्टर ही कर सकता है। यदि सल्फा ड्रग्ज द्वारा चिकित्सा की जाए तो सल्फाडायजीन का ही प्रयोग सब से अधिक लाभप्रद

होता है। इस की दो-दो गोलियां दिन में चार बार १५ दिन तक देनी चाहियें। इस समय रोगी को पानी या फलों का रस प्रचुर मात्रा में पीना चाहिये। रोगी को किसी डॉक्टर की निगरानी में रखना चाहिये जो दवा के संभावित हानिप्रद प्रभावों को रोकता रहे। प्रयोगशाला के निरीक्षण से ही पता चल सकता है कि यह रोग दूर हुआ है या नहीं।

पैनीसिलिन की चिकित्सा द्वारा परिणाम जल्दी निकलते हैं। पेशी के भीतर (Interamuscular) एक ४०००० यूनिट्स का इंजेक्शन दिया जाता है। जिस के २४ घंटों के बाद एक और इंजेक्शन इसी शक्ति का देना चाहिये। ये इंजेक्शन सूजाक के रोग को गम्भीर अवस्था को पहुंचने से रोकने के लिए काफी होते हैं।

स्त्रियों में सूजाक

बहुत से पुरुषों को शादी से पूर्व सूजाक का रोग लग जाता है और विवाह के उपरांत वे इस रोग को अपनी पत्नी को भी लगा देते हैं। इस रोग में पहले पहल पेशाब करते समय जलन और पीड़ा होती है। जल्दी-जल्दी पेशाब करने की इच्छा होती है और उत्पत्ति-स्थान से श्वेत या पीले रंग का पानी सा गिरने लगता है। यदि किसी स्त्री को सूजाक हो गया हो तो थोड़े ही समय में उसे गर्भाशय का रोग भी हो जाता है। तब उसे श्वेत-प्रदर (Leucorrhœa) का रोग हो जाता है (देखिये अध्याय ३२) सूजाक स्त्रियों के बांझ होने का एक सामान्य कारण होता है। यही नहीं, बल्कि यह रोग प्रायः कुछ वर्षों तक उन्हें कष्ट देता रहता है। इस की चिकित्सा वही है जो ऊपर पुरुषों के लिये लिखी गई है।

गर्मी (Syphilis)

गर्मी (फिरंग या आतशक या उपदंश) एक कृमि-रोग है और प्रायः यह उस व्यक्ति के साथ मैथुन करने से होता है जिसे गर्मी होती है। यदि मां को यह रोग हो तो गर्भाशय में पड़े बच्चे को जन्म से पूर्व ही यह रोग लग सकता है। गर्मी और क्षय-रोग संसार में दो तीव्र बहुव्यापक रोग हैं परन्तु दोनों में गर्मी का रोग अधिक व्यापक है।

गर्मी साधारणतया मैथुन क्रिया द्वारा लगती है परन्तु अन्य रीतियों से भी इस के लगने का भय रहता है—जैसे चुम्बन लेने से या रोगी के घाव से संयोगवश सम्पर्क होने से या रोगी के पाइप, प्याले, चम्मच या प्लेट का प्रयोग करने से।

लक्षण

उपदंश का पहला लक्षण लिंग या जिस किसी भाग में संक्रमण हुआ हो वहां छोटी सी फुंसी निकल आती है। यह सहवास के बाद पांच सप्ताह से पहले ही निकल आती है। इस के बाद यह फुंसी कच्चा सख्त फोड़ा सा बन जाती है और उस फोड़े के साथ-साथ जांघों में गिल्टियां सी दिखाई देने लगती हैं।

पहली फुंसी या कच्चे फोड़े के छः या सात सप्ताह पश्चात् खसरा जैसे तांबे के रंग के दाने शरीर पर निकलने लगते हैं। दूसरे लक्षण भी हो सकते हैं जैसे सिर-दर्द, जी का मितलाना, भूख मर जाना, गला भी बैठ जाता है। चेंप वाले घाव बगल, गुदा के आस-पास की त्वचा पर दिखाई देने लगते हैं। गुच्छे के गुच्छे बाल झड़ने लगते हैं। ये लक्षण उपदंश के प्रत्येक दशा में नहीं होते।

रोग की तीसरी अवस्था तब आती है जब यह रोग कुछ महीनों या कुछ वर्षों तक रहता है। गहरे घाव शरीर के विभिन्न भागों पर निकलने लगते हैं। बहुधा नाक सड़-सड़ कर गिर जाती है और उन के स्थान पर केवल एक छेद रह जाता है। उपदंश के परिणाम स्वरूप खोपड़ी की हड्डी के टुकड़े, या शरीर के दूसरे भागों की हड्डियों के टुकड़े, सड़ सकते हैं। उपदंश से मस्तिष्क, चेताओं, हृदय और रक्त वाहिनियों की बहुत से गम्भीर रोग पैदा हो जाते हैं।

चिकित्सा

इस बात की जांच कर लेना बड़े महत्व की बात है कि रोगी को उपदंश ही है या नहीं क्योंकि फिर जितनी जल्दी ही उस की चिकित्सा आरम्भ हो उतना ही उस का ठीक होना अधिक निश्चित होता है। प्रत्येक दशा में किसी कुशल डॉक्टर द्वारा रोग का निदान करवा लेना महत्वपूर्ण है। खून की परीक्षा या सूक्ष्मदर्शक-यंत्र द्वारा परीक्षा करवा कर यह पता चल जाएगा कि यह रोग है या नहीं। उपदंश के लिये कोई घरेलू दवा नहीं है। घर पर जो दवाएं मुंह द्वारा ग्रहण की जाती हैं उन से अपने आप को धोखा देना है।

डॉक्टर इस रोग की चिकित्सा की दो विधियों में से एक चुनेगा। वह पुरानी विधि भी अपना सकता है जो पिछले कई वर्षों के सफल प्रयोग के बाद ठीक मानी जाती है परन्तु साथ ही बहुत लम्बी और कष्टदायक है। इस में एक या दो साल तक आर्सेनिकल कम्पाउन्ड (Arsenical Compound) की सूइयां और बिस्मथ की सूइयां (Bismuth Injections) अदल-बदल कर लगाई जाती हैं। दूसरी चिकित्सा में अधिक मात्रा में पेनिसिलिन की सूइयां लगाने से होती है। वयस्कों के दस या बारह दिन के भीतर चालीस या पचास लाख यूनिट पेनीसिलिन की सूइयां लगानी चाहियें। उपदंश की किसी भी चिकित्सा का निर्णय खून की परीक्षा करके किया जा सकता है। इसी से यह पता चलता है कि कौन-सी औषधि लाभ करेगी।

अध्याय ३२

स्त्रियों के रोग

प्रसम मासिक धर्म की चर्चा अध्याय १२ में की जा चुकी है। बहुत से रोग जैसे मासिक धर्म का बन्द हो जाना, बहुत पीड़ा के साथ मासिक धर्म होना, अधिक मासिक धर्म होना, प्रदर (सफेद पानी-सा जो रज:स्राव के समाप्त होने और फिर आरम्भ होने के बीच महीने भर निकलता रहता है)।

अस्वाभाविक रजोरोध (Amenorrhœa)

साधारणतया लड़कियों को १२ वर्ष की आयु में मासिक धर्म आरम्भ होजाता है परन्तु ९ वर्ष में भी शुरू हो सकता है और १५ वर्ष की आयु तक भी रजोदर्शन नहीं हो सकता। यदि लड़की का शरीर पूर्ण रूप से विकसित हो चुका हो और उस का स्वास्थ्य भी अच्छा हो, तो यदि रजोदर्शन सत्तरह वर्ष की आयु तक भी न हो, तो भी चिन्ता की कोई बात नहीं।

क्षय-रोग वाली लड़की का रज:स्राव तब तक आरम्भ नहीं होता जब तक वह क्षय-रोग से मुक्त नहीं हो जाती।

गर्भाशय तथा डिम्ब-कोषों के अपूर्ण विकास से या योनि-मार्ग के बंद होने के कारण से भी मासिक धर्म नहीं होता। डॉक्टर आसानी से बता सकता है कि इन में से इस का कारण कौन सा है।

जलवायु-परिवर्तन के कारण या आंत्र-ज्वर, लाल-ज्वर या जुकाम जैसी बीमारियों में भी रज:स्राव आरम्भ होने के बाद फिर बन्द हो जाता है; यदि ऐसा हो तो चिन्ता की कोई बात नहीं, क्योंकि इस प्रकार शरीर अपनी शक्ति को सुरक्षित रखता है और रज:स्राव उचित समय पर फिर होने लगेगा।

चिकित्सा

मासिक धर्म के न होने के इतने विभिन्न कारण होते हैं कि प्रत्येक दशा में चिकित्सा कराने का उद्देश्य उस के कारण को मिटा देना चाहिये। विवाहित स्त्री को यह याद रखना चाहिये कि रज:स्राव का बन्द होना उस का गर्भवती होना भी हो सकता है।

मासिक धर्म को जारी करने के निम्नलिखित चिकित्सा आदि उपयोगी हैं: यदि लड.की को पौष्टिक भोजन न मिलता हो तो उसे अधिक मात्रा में अच्छा भोजन देना चाहिये। उसे कड.ा काम करने पर बाध्य नहीं करना चाहिये। हो सके तो घर से बाहर प्रतिदिन व्यायाम, और रात को ८ या ९ घंटे की नींद उपयोगी उपाय हैं। यह भी बहुत संभव है कि उसे कब्ज हो और इस की चिकित्सा २५वें अध्याय में वर्णित विधि के अनुसार करनी चाहिये। जिस लड.की को कभी रज:स्राव न हुआ हो उस के पेट को साफ करने के लिए उसे गर्म पानी का अनिमा दीजिये। इस के उपरांत 110 डिगरी फ. तापमान के पानी में उसे दस मिनट तक बैठाना चाहिये जिस से उस के वस्ति-गह्वर के अंगों को सेंक पहुंचे। पैर दूसरे बरतन में गर्म पानी में रहें और ठंडे पानी में भीगा कपड.ा सिर पर रख दिया जाए (देखिये अध्याय २१)। एस्ट्रोजेनिक मेटीरियल (Estrogenic Material) की सुइयां भी लाभकारी होती हैं। गरम पानी का अनिमा और वस्ति-गह्वर के अंगों को सेंकने के लिए गर्म पानी में बैठना (Sitz bath) डर या सर्दी लगने से रज:स्राव बन्द होने की चिकित्सा के लिए भी उपयोगी होता है।

अधिक रज:स्राव

अत्यधिक रज:स्राव होने के अनेक कारण हैं। गर्भाशय के रोग से भी प्राय: अधिक रज:स्राव हो सकता है। यह बहुधा प्रसव या गर्भपात के पश्चात् होता है जब कि बच्चा पैदा होने के पश्चात् झिल्लियों के टुकड़े गर्भाशय में रह जाता है, या जब गर्भाशय का मुंह फट जाता है। कभी-कभी असावधानी करने पर या प्रसव काल में मैले और गन्दे प्रबन्ध द्वारा, या रज:स्राव के समय गन्दे कागज और कपड.ों का प्रयोग करने से रोग कृमि गर्भाशय में प्रवेश कर जाते हैं। इन दशाओं में रज:स्राव प्राय: अधिक कष्ट के साथ और अधिक मात्रा में होता है।

इन दशाओं में घरेलू इलाज करना अत्यंत कठिन हो जाता है। किसी अस्पताल में जाना या किसी डॉक्टर का इलाज करना अधिक लाभप्रद होता है जब यह सम्भव हो तो योनि में गर्म पानी की पिचकारी दी जाए (देखिये अध्याय २१)। इस पिचकारी के लिए *पानी उतना गरम हो जितना सहन किया जा सकता है और इस के पश्चात् बाह्य जननेन्द्रियों* और जांघों को ठंडे पानी से अंगोछना चाहिये। रज:स्राव के समय चारपाई पर लेट कर आराम करना आवश्यक है।

इस विकार का एक साधारण कारण युवतियों में दैहिक 'हारमोन' की गड.बड.ी है। डॉक्टर ही जरूरी हारमोन दे कर रज:स्राव को प्रसम अवस्था में ला सकता है।

कष्ट रजता

प्रसमत:, रज:स्राव के समय कष्ट हो सकता है, परन्तु यदि कष्ट हो तो उस का कारण रोग की दशा होती है। अधिक मात्रा में रज:स्राव होने में भी कष्ट होता है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। दर्द वाले रज:स्राव में दर्द पीठ में या एक हिस्से में हो सकता है।

कभी-कभी उदर के निचले भाग में भार सा लगता है या गर्भाशय के भाग में तीक्ष्ण पीड़ा होने लगती है। ये पीड़ाएं लगातार नहीं होतीं, बल्कि समय-समय पर होती हैं।

चिकित्सा

पीड़ा से होने वाले रजःस्राव की बहुत सी दशाओं में जाना या डॉक्टर की सहायता लेना आवश्यक है। गर्भाशय प्रायः रोगग्रस्त हो जाता है और इस का इलाज केवल डॉक्टर ही कर सकता है।

घर में की जाने वाली चिकित्सा इस प्रकार की है। रजःस्राव के कुछ दिन पूर्व रोगिणी को कुछ देर गर्म पानी में पैर डाले रखने चाहियें और योनि में गर्म पानी की पिचकारी देनी चाहिये। अगले दिन रोगिणी गर्म पानी में बैठ कर कुछ देर वस्ति-गह्वर के अंगों को सेंक सकती है। यदि उसे कब्ज है तो उसे गरम पानी का अनिमा भी दिया जा सकता है। (योनि में गर्म पानी की पिचकारी और अनिमा आदि के लिए देखिये अध्याय २१)। ये चिकित्साएं यदि सोने से कुछ देर पहले की जाएं तो अच्छा रहता है। रजःस्राव के समय उदर के निचले भाग पर कपड़े से गर्म पानी की सेंकें या गरम पानी की बोतलों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रचुर मात्रा में गरम पानी पीना भी उपयोगी है।

श्वेत प्रदर (Leucorrhœa)

श्वेत प्रदर रोग में योनि से स्राव होता है। इस के साथ-साथ कमजोरी, सिर-दर्द, गर्भाशय में पीड़ा और योनि के मुंह पर कुछ खुजली होने लगती है। श्वेत-प्रदर की चिकित्सा करते समय डॉक्टर की राय ले लेना या अस्पताल जाना लाभप्रद होता है।

इस का कारण ठंड लगना, अधिक काम करना, पौष्टिक भोजन न करना अधिक सहवास व हस्तमैथुन या गर्भाशय का कोई रोग होता है। सूजाक श्वेत-प्रदर का एक सामान्य कारण है।

इसकी चिकित्सा रोग के कारण पर ही निर्भर करती है। घर में की जाने वाली सब से उपयोगी चिकित्सा योनि में गर्म पिचकारी देना है। १२० डिगरी फ. तापमान का तीन से चार सेर तक पानी लीजिए, उस में आठ चमच बोरिक ऐसिड या एक चम्मच परमेंगनेट ऑव पोटाश (Permanganate of Potash) मिलाइये। यदि परमेंगनेट ऑव पोटाश का प्रयोग करना है, तो उसे डेढ़ पाव पानी में मिला कर अच्छी तरह हिला लेना चाहिए जिस से वह अच्छी तरह घुल जाए और फिर शेष पानी को मिला लीजिए। यह उपचार प्रतिदिन कीजिए। गर्म अनिमा एक सप्ताह में तीन बार लेना चाहिए। योनि में पिचकारी देने का तरीका अध्याय २१ में देखिए।

बाह्य जननेंद्रियों के रोग

योनि के मुख के पास खुजली, जलन और फुंसियां गन्दगी से होती हैं। योनि के बाहरी अवयवों को धोना चाहिए। भगोष्ठ भीतरी परतों की सलवटों को धोना चाहिए।

योनि के मुख पर खुजली, लाली और सूजन हस्तमैथुन, सुजाक, श्वेतप्रदर, अप्रसम पेशाब या रजस्राव के समय कड़े, कागज या गन्दे कपड़ों का प्रयोग करने से होती है।

चिकित्सा

इसके कारण को अवश्य दूर करना चाहिए। यदि योनि से स्राव के कारण दर्द और सूजन होती हो, तो चिकित्सा उस स्राव को रोकने की ही होनी चाहिए। यदि उस का कारण हस्तमैथुन हो तो उस को छोड़ देना चाहिए।

यह जुओं के कारण से भी हो सकता है, यदि ऐसी बात हो तो परिशिष्ट में दिये हुए नुसखे नं. २१ का प्रयोग कीजिए। यदि गुदा के मुंह और आंतों के सिरे पर खुजली होती हो, तो उसका कारण सूत्र-कृमि (Thread worms) हो सकते हैं और २२ वें अध्याय में दिए उपचार प्रयोग किया जाए।

नुसखे नं. २२ के अनुसार खुजली होने वाले भाग को धोना उपयोगी सिद्ध होगा। इस दवा से धोकर, नुसखे नं. २३ या ११ की दवा मलिये। यदि छाले हों तो थियो-जोल मलहम लगाइए।

गर्भाशय और डिम्ब-ग्रन्थियों (Ovaries) के रोग

पीठ में पीड़ा, उदर के निचले भाग में प्रसव की सी पीड़ा, पेट का फूलना, ज्वर, योनि स्राव में दुर्गन्ध एवं बहुत से अन्य लक्षण गर्भाशय और डिम्ब ग्रन्थियों के किसी रोग के कारण ही प्रकट होते हैं। यदि ये लक्षण कुछ समय तक जारी रहें और ऊपर लिखी चिकित्सा से इनका इलाज न हो सके, तो रोगिणी को किसी अस्पताल या किसी योग्य डॉक्टर के पास जाना चाहिये और अपनी परीक्षा और इलाज करवाना चाहिये। इन लक्षणों को प्रकट करने वाले बहुत से रोग तो बहुत गम्भीर होते हैं और यदि उन पर ध्यान न दिया जाए तो शीघ्र ही रोगिणी की मृत्यु हो जाती है।

बांझपन

बच्चे जनने की अयोग्यता स्त्रियों में जननेन्द्रियों के अपूर्ण विकास के कारण या सुजाक से या गर्मी जैसी बीमारियों से या अन्य गंभीर कारणों से हो सकती है। जांच द्वारा डॉक्टर बतला सकता है कि शल्यक्रिया या औषधि द्वारा इस की चिकित्सा सम्भव है। चूंकि कारण सदा स्त्री में ही नहीं होता, डॉक्टर पुरुष की इस लिए परीक्षा करे। प्रयोग द्वारा डॉक्टर बता सकेगा कि 'बांझपन' पुरुष में है या नहीं।

बांझपन की कुछ स्थितियों का कारण कोई भयंकर रोग नहीं होता और इनका घर पर ही इस प्रकार उपचार किया जा सकता है—

गर्भवती न होने का कारण अधिक सहवास भी हो सकता। अधिक-से-अधिक

सहवास महीने में एक-दो बार होना चाहिए और वह भी रजस्राव से पहले या बाद (देखिए अध्याय १९)।

कभी-कभी गर्भाशय या योनि 'स्रावों' के कारण स्त्री गर्भवती नहीं हो पाती क्योंकि ये शुक्र-कीटों को नष्ट करते हैं। यह दशा प्रतिदिन योनि में बोरिक एसिड की पिचकारी देने से दूर हो सकती है। ३ सेर पानी में आधा औंस बोरिक एसिड मिलाकर घोल तैयार करना चाहिए। पानी उतना गरम हो जितना सहन किया जा सके। सहवास के समय और उसके बाद कुछ दिनों तक यह पिचकारी बन्द कर देनी चाहिए। सहवास के बाद स्त्री को कई घंटे चुपचाप बिस्तर पर लेट कर आराम करना चाहिए।

यदि स्त्री का स्वास्थ्य अच्छा न हो, तो उसे अपना शरीर बनाने के लिए चिकित्सा करानी चाहिये, उसे अच्छा पौष्टिक भोजन करना चाहिये। उसे इतना काम करने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिए कि वह निरन्तर थकान अनुभव करती रहे।

अध्याय ३३

चर्म रोग

जुलपित्ती (आम-वात)—Hives (Urticaria)

कभी-कभी शरीर-चर्म, भोजन, डंक-विष, गर्मी सर्दी, पराग (Pollen) अथवा चेताओं में गड़बड़ी इत्यादि द्वारा अत्यन्त शीघ्र प्रभावित हो जाने वाली दशा को प्राप्त हो जाता है। जब त्वचा इतनी कोमल और अ-सहिष्णु (Sensitive) हो जाती है तो प्रतिक्रिया के रूप में चर्म-कोषों में हिस्टमाइन (Histamine) नामक विष उत्पन्न होने लगता है। इस विष से छोटी रक्त-वाहिनियां फैल जाती हैं और उन में से रिस कर द्रव (Fluid) स्थान-स्थान पर त्वचा में पहुंच जाता है; जिस से उन स्थानों में सूजन और भयंकर खुजली होने लगती है।

जुलपित्ती के अन्य प्रकार हैं जिन की चिकित्सा में डॉक्टर लोग एन्टी-हिस्टमाइन (Anti-histamine) की सूइयां (इन्जेक्शन) लगाते हैं। इस के रोगी को मछली, पनीर, चॉकलेट, प्याज, लहसुन, छत्रक (Mushrooms), अचार-चटनियां, अण्डे, नींबू के समान फल (Citrus fruits), तरबूज और सूअर का मांस इत्यादि पदार्थों से परहेज रखना चाहिए; इन्हीं से यह रुग्ण अवस्था उत्पन्न होती है।

खुजली

एक सूक्ष्म कृमि के त्वचा के अन्दर घुस जाने से खुजली होती है। प्राय: यह खुजली उंगलियों के बीच में कलाई की त्वचा, नाभि या छातियों (स्तनों) में होती है।

लक्षण

खुजली होने लगती है और खुजाने के परिणाम स्वरूप, फुंसियां, लाल दाने निकल आते हैं और चकत्ते पड़ जाते हैं। यह रोग शीघ्र ही परिवार के एक सदस्य से दूसरे सदस्यों को लग जाता है।

रोक-थाम

खुजली से बचने के लिए आदमी को खुजली वाले रोगी की चारपाई पर नहीं बैठना चाहिए। खुजली के रोगी के बिस्तरे या शरीर के दूसरे कपड़ों या उसके तौलियों का प्रयोग करने से भी दूसरे को खुजली हो जाती है।

चिकित्सा

सब से पहले रोगी को अपना शरीर गरम पानी और साबुन से अच्छी तरह साफ करना चाहिए। फिर तीन भाग गन्धक और सात भाग वैसलीन या नारियल का तेल लीजिए दोनों को अच्छी तरह मिला कर यह मरहम लगाइए। गन्धक और तेल को ठीक तरह से मिला लेना चाहिये। शीशे के एक टुकड़े पर गन्धक को तेल में लम्बी छुरी से अच्छी तरह मिलाना चाहिए। प्रतिदिन सवेरे और रात को, तीन दिन तक शरीर के खुजली वाले भागों में इसे मलिये। इन तीन दिनों में बिस्तर या शरीर के कपड़े न बदलिये। तीन दिन के बाद गरम पानी और साबुन से स्नान कीजिए, साफ कपड़े पहनिये और बिस्तर में साफ चादर आदि लगाइये। पुराने कपड़ों और बिछौने की चादर आदि को फिर इस्तेमाल करने से पहले कुछ मिनिट तक उबाल लीजिए। खुजली के कीड़े को नष्ट करने के लिए यह आवश्यक है।

खुजली की अनेक औषधियां हैं जो औषधि विक्रेताओं की दुकानों पर मिलती हैं और जो न केवल अत्यन्त गुणकारी होती हैं, वरन् उन के प्रयोग की विधि भी सरल होती है। Ascaboil M & B या कोई Benzyl-Benzoate Emulsion भी इस के लिए लाभदायक है। लगाने की विधि का छपा हुआ कागज दवा के साथ मिलता है।

जूंएं (Lice)

जो लोग अपना शरीर और कपड़े साफ नहीं रखते उनके शरीर और सिर में प्राय: जूंएं पड़ जाती हैं। साफ कपड़े पहनने वाले और शरीर को साफ रखने वाले के जूंएं नहीं पड़तीं।

शरीर की जूएं खुजली पैदा करती हैं और खुजाने से शरीर के विभिन्न भागों पर घाव हो जाते हैं। जूएं कपड़ों में, विशेष कर उन की सिलाई में पाई जाती हैं। इन्हें दूर करने के लिए कपड़ों को कुछ मिनिट तक उबालना चाहिए।

एक प्रकार की ऐसी जूएं होती हैं जो जननेन्द्रियों के बालों वाले भाग में रहती हैं और कभी-कभी यहां से शरीर के दूसरे भागों में भी पहुंच जाती हैं। जूंओं को नष्ट करने के लिए शरीर के जूंओं वाले भागों को एक आउंस पानी में दो ग्रेन क्रोसिव सबलिमेट (Corrosive Sublimate) मिला कर सप्ताह में एक बार कई सप्ताह तक धोना चाहिए। क्रोसिव सबलीमेंट एक घातक विष होता है और इस के प्रयोग में बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। परिशिष्ट में दिया हुआ नुसखा नम्बर २१ भी जूंओं को नष्ट कर देगा।

सिर की जूएं (Head Lice)

जब किसी व्यक्ति के सिर में जूएं पड़ जाती हैं तो मिट्टी का तेल और नारियल का तेल मिला कर हर दिन शाम को, दो-तीन दिन तक बालों में रगड़ने से जूएं मर जाती हैं। बालों में यह तेल मलकर टोपी पहन लेनी या कपड़ा सिर पर बांध लेना चाहिए। गरम पानी और साबुन से प्रतिदिन सवेरे सिर को साफ कर लेना चाहिए। जब मिट्टी का तेल और नारियल का तेल सिर में पड़ा हुआ हो तो रोगी को स्टोव या लैंप के पास नहीं जाना चाहिये। यदि सिर में घाव हों तो थोड़ी-सी वैसलीन या नारियल का तेल लगा कर उसे दबा देना चाहिये।

लीखों को दूर करने के लिए आधा सेर पानी एक चम्मच खाने का सोडा या इतने ही पानी में दो चम्मच सिरका मिला कर हफ्ते में तीन बार सिर धोइये। इस के बाद महीन कंघी से झाड़िये।

दस दिन तक इस तरह का उपचार करते रहिये ताकि कोई लीख न रह जाए।

खटमल

खटमल काट कर केवल दुःख ही नहीं देते, वरन् वे बहुत सी गम्भीर बीमारियां फैलाते हैं। कपड़ों या चारपाई से उन्हें दूर करने का सब से अच्छा उपाय यह है कि उन्हें उबलते पानी में कुछ देर तक रक्खा जाए। यदि चारपाई के कोने में खटमल छिपे हों तो एक भाग कार्बोलिक एसिड (या क्रिसोल, या इजाल, या सैनिटास, या फिनाइल) को दस भाग पानी में मिला कर चारपाई के सब जोड़ों और सूराखों में डालिये। तारपीन का तेल भी उपयोगी होता है। डी. डी. टी. छिड़कने से और दस प्रतिशत डी. डी. टी. पाउडर से भी खटमल मर जाते हैं।

मुंहासे (Pimples) या काले मुंह वाली फुंसियां (Black Heads)

फुंसियां चेहरे, कंधों या पीठ पर निकलती हैं। काले मुंह वाली फुंसियां भी इसी प्रकार की होती हैं, केवल उन के मुंह पर एक काला चिन्ह सा होता है।

चिकित्सा

मुंहासे पेट ठीक तरह से साफ न होने तथा किशोरों में त्वचा में अत्यधिक तेल की मात्रा से पैदा होते हैं। युवक को जहां तक हो सके मुंहासे रोकने की कोशिश करनी चाहिये क्योंकि इस की रोक-थाम करना चिकित्सा से आसान है। उस को घर से बाहर व्यायाम करना तथा पर्याप्त मात्रा में विश्राम करना, अधिक पानी पीना, ताजे फल तथा सब्जियां, विशेष कर पत्तीदार तरकारियां खाना चाहिये। उस को तली हुई चीजों, मिठाइयों और चिकनी मीठी चीजों से परहेज करना चाहिये। रोज नहाना चाहिये और साधारण साबुन के खूब झाग उठा कर दिन में तीन बार मुंह धोना चाहिये। यदि मुंहासे निकल ही आएं और उन के मुंह को खोलने की जरूरत पडे, तो साफ सुई से खोल कर आहिस्ते से दबाइये, परन्तु भींचिये नहीं। जब तक दाग सूख न जाए, कपूर का सत लगाते रहिये। हाथों को मुंह से दूर रखिये ताकि संक्रामण न हो।

घमोरी

बहुत गर्म मौसम में बच्चों के और कभी-कभी बड़ों के लाल ददोडे, या बहुत छोटे-छोटे दाने त्वचा पर निकल आते हैं। ये पसीना निकलने से उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा

त्वचा को ठंडे पानी से अंगोछिये और फिर उस पर निम्नलिखित औषधि लगाइये: ५ ग्राम सल्फाथियाजोल पाउडर को एक औंस गेहूं के आटे या श्वेतसार (Starch) में मिलाइये। यदि श्वेतसार न मिल सके तो टेलकम पाउडर में ही मिलाइये।

एक्जीमा

शरीर की त्वचा पर इस के चकत्ते पड़ जाते हैं। शरीर पर लाली, खुजली होती है और खुजली वाले स्थान रिसने लगते हैं। बाद में एक पपड़ी सी बन जाती है। एक्जीमा चेहरे, खोपड़ी के पास त्वचा की तहों में होता है।

चिकित्सा

एक्जीमा प्राय: त्वचा की अत्यन्त शीघ्र प्रभावित हो जाने वाली दशा से होता है। हो सकता है कि यह रोग किसी विशेष भोजन के कारण हो। साबुन और पाउडर आदि के दुष्प्रभाव से भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि त्वचा किसी पौधे, पशु या किसी घरेलू जानवर के स्पर्श से प्रभावित हुई हो। मांस, दूध, अंडे या अन्य पशु-पक्षियों से प्राप्य खाद्य पदार्थों, गेहूं के पदार्थों, टमाटर, समुद्रीय खाद्य पदार्थों या दूसरे कम महत्व

वाले भोजों से भी यह रोग होता है। इस की चिकित्सा इस प्रकार हो सकती है कि पहले तो उस वस्तु का पता लगाया जाए जिस से यह रोग बढ़ता हो, और फिर यदि वह वस्तु खाने की हो, तो उस से परहेज किया जाए और यदि और कोई चीज हो, तो उस से अलग रहा जाए। खाने की चीज एक-के-बाद-एक छोड़ कर या जानवरों आदि को दूर कर के रोग उत्पादक वस्तु या जानवर का पता लगाना सम्भव है। उदाहरण के लिये हम एक ऐसे बच्चे को जिस को छः महीने की आयु में ही यह रोग लग जाता है और तीन साल तक बढ़ता जाता है। कोई दवा फायदा नहीं पहुंचाती। जांच-पड़ताल करने पर पता चलता है जब बच्चा ६ महीने का था तो उस की मां बीमार पड़ गई थी। बच्चे को गाय का दूध दिया जाने लगा जो अनुकूल जान पड़ा और फिर उस दूध की मात्रा बढ़ती गई। गाय के दूध के बदले बकरी का दूध आरम्भ करने पर चमत्कारी रूप से रोग दूर हो जाता है और उस के कारण के विषय में भी कोई सन्देह नहीं रहता।

कभी-कभी एक्जीमा के दानों में विष फैल जाता और इस दशा में सल्फाथियाजोल मरहम लगाना अच्छा होता है। पुराना रोग लगातार विटामिन बी. कम्पलेक्स अधिक मात्रा में प्रयोग करने से जाता रहता है।

दाद (Ring Worm)

दाद त्वचा का ऐसा रोग है जो शरीर के किसी भी भाग पर फैल सकता है। यह एक रोग-कृमि द्वारा उत्पन्न होता है। यह कृमि उस भात के ऊपर की फफून्दी जैसा होता है जो भात रात भर थाली में रक्खा रहा हो।

यह रोग इस के रोगी के शरीर या उस के कपड़े, तौलिये, बिस्तर आदि के सम्पर्क से दूसरों को लग जाता है। यह आसानी से फैल जाता है इसलिये जिन बच्चों के शरीर या सिर पर दाद हो, उन्हें तब तक स्कूल नहीं भेजना चाहिये जब तक उन का रोग ठीक न हो जाए।

दाद का आरम्भ में एक छोटा सा लाल या भूरे रंग का धब्बा बनता है और फिर चारों ओर फैल जाता है। कुछ समय पश्चात् इस धब्बे के बीच का बिन्दु त्वचा के रंग का ही हो जाता है। ऐसा होने पर यह रोग दायरा सा दिखाई देने लगता है। खुजली बहुत होती है।

चिकित्सा

व्हिटफील्ड (Whitfield's) का मरहम रुग्ण स्थान पर धीरे-धीरे रगड़ कर लगाइये। यदि दाद किसी कोमल स्थान पर या बच्चों के हो तो आधी ही शक्ति के मरहम का प्रयोग किया जाए।

दाद और छत्रक की जाति के पौधों के स्पर्श से उत्पन्न अन्य चर्म-रोगों (other fungus infections of the skin) की चिकित्सा के लिए सब से बढ़िया वह मरहम

है जो "Desenex" के नाम से (यह इस की व्यापार संज्ञा है) बिकता है और जिस में प्रमुख तत्व अम्ल होता है।

सिर का दाद

सिर का दाद प्राय: बच्चों में होता है। बाल सफेद हो जाते हैं या झड़ने लगते हैं। पपड़ी वाले बड़े-बड़े घाव सिर में हो जाते हैं। कभी-कभी सिर के सब बाल झड़ जाते हैं।

चिकित्सा

सिर का दाद सिर के बालों को छोटा कराए बिना दूर नहीं हो सकता। दाद वाले स्थानों पर उस्तरा फिरा देना सब से अच्छा उपाय है। बाल साफ कर के वही चिकित्सा की जा सकती है जो ऊपर दूसरे दादों के लिये बताई गई है। एक प्रकार का सिर का ऐसा दाद होता है जिस की चिकित्सा कठिन होती है और यदि ऊपर लिखे उपायों से वह ठीक न हो तो किसी योग्य डॉक्टर की राय लेनी चाहिये नहीं तो रोग बढ़ेगा और सिर गंजा हो जाएगा।

फोड़े और त्वचा के घाव

जिन बालकों को साफ रक्खा जाता है उन के शायद ही कभी घाव हों। घावों को साबुन और पानी से साफ करना चाहिये या किसी कीटाणु नाशक घोल से धोना चाहिये।

जो घाव अच्छे होने में न आते हों, उन को साबुन मिले गर्म पानी से धोते रहिये यहां तक कि खुरंड उतर जाए। ५ प्रतिशत सल्फाथियोजोल (Sulphathiazole) या २ प्रतिशत अमोनिया मिश्रित मरकरी (Ammoniated Mercury) मरहम लगाना चाहिये। यदि घावों को रुई से ढक कर पट्टी बांध दी जाए, तो जल्दी अच्छे होते हैं। इस से दवा घावों के ऊपर रहती है और खुरंड नहीं बन पाते, क्योंकि खुरंडों के नीचे यदि किसी पुराने घाव का मुंह बन्द हो जाए, तो घाव अच्छे नहीं होते।

फोड़े का मुंह खोलने से पहले अच्छा होगा कि उसे नरम करने के लिए गर्म पानी में भिगो कर निचोड़ा हुआ कपड़ा लगाया जाए। साफ और तेज चाकू से घाव के मुंह को खोल देने के बाद बीच में से उस को दबाइये। फोड़े के इर्द-गिर्द न दबाइये, इस से घाव बढ़ेगा। इस के बाद सल्फाथियोजोल मरहम लगाकर पट्टी बांध दीजिये।

बड़े खुले हुए कच्चे घाव की अच्छी चिकित्सा यह है कि साफ कपड़े को एक चम्मच नमक और एक प्याले पानी के घोल में भिगो कर और उस की दो-तीन तहें कर के घाव पर लगाइये। इस गीले कपड़े पर तेल-चुपड़ा कागज रख कर ऊपर से पट्टी बांध दीजिये। घंटे-घंटे भर बाद कपड़े को नमक के पानी में भिगोते रहिये। यह चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है।

Yaws—याज

(एक प्रकार का चर्म रोग जिस में फफोले पड़ जाते हैं)

यह रोग एक विशेष प्रकार के कीटाणु द्वारा उत्पन्न होता है और अत्यन्त संक्रामक होता है। प्रारम्भिक लक्षणों में सब से पहले साधारणतया टांगों या पैरों में किसी स्थान पर फफोला सा दिखाई देने लगता है। इस रुग्ण स्थान में दर्द तभी होता है जब उसे जोर से दबाया जाए। रोग की दूसरी अवस्था ६ सप्ताह से लेकर तीन महीने के बाद उत्पन्न होती है। छोटी-छोटी चपटी-सी फुंसियां पैदा हो जाती हैं और फिर ये फुंसियां अनेक आकार के पीले परत वाले घावों या व्रणों का रूप धारण कर लेती है। कुछ सप्ताह के अन्दर घाव सूख जाते हैं और परत या खुरंड गिर जाते हैं। उन के स्थान में पीले धब्बे रह जाते हैं जो कालान्तर में गहरे रंग के हो जाते हैं। तीसरी अवस्था में एक चिरस्थायी प्रकार का व्रण उत्पन्न हो जाता है जो अन्य स्थानों की अपेक्षा नाक के आस-पास अधिक दिखाई देता है। ऐसे घाव बहुधा चेहरे को विकृत कर देते हैं।

इस रोग के इलाज में मेफार्सिन (Mapharsin) नियोआर्स्फिनेमान (Neoarsphenamine) और पेनिसिलिन (Penicillin) प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। किसी सुयोग्य चिकित्सक से ही इस का इलाज करवाना चाहिये।

अध्याय ३४

आँख और कान

आंख में चिंगारी या बाहर से किसी और अन्य वस्तु का पड़ जाना

जब आंख में चिंगारी या धूल का कण आदि पड़ जाए, तो आंख को उंगली से कभी नहीं मलना चाहिये और न ही रूमाल से उसे बाहर निकालने का प्रयन्त करना चाहिये। रोगी को लिटा दिया जाए। अंगूठे और उस के पास वाली उंगली (तर्जनी) से आंख खोल कर थोड़ा सा बोरिक एसिड (boric acid) डाल दीजिये। इस से जो कुछ आंख में पड़ा होगा, निकल आएगा।

यदि इस विधि से चिंगारी आदि न निकले, तो पलक को उलट देना चाहिये। रोगी से कहिये कि नीचे की ओर देखे। अब बरोनी और पलक के सिरे को दाहिने हाथ की उंगली और अंगूठे से पकड़ लीजिये; ध्यान रहे कि हाथ अच्छी तरह धो कर साफ कर लिए गए हों। एक छोटी सी पेंसिल या बांस की चपती से ऊपर की पलक को दबाइये और उसी समय नीचे की पलक को, ऊपर को और बाहर को, उठाइये, जिस से पलक का भीतरी भाग उलट कर बाहर निकल आए (देखिये चित्र पृष्ठ २६६)। जो कुछ आंख में पड़ा हो, उसे साफ कपड़े से निकालते समय पलक को इसी दशा में रक्खा जाए। आंख में जो कुछ पड़ गया हो उसे निकालने के बाद पीड़ा को कम करने के लिए बोरिक एसिड की दो-चार बूंदें आंख में डाल दीजिये।

यदि आंख में चूने का छोटा सा टुकड़ा पड़ गया हो, तो आंख को सिरके और पानी के घोल से धो डालिये (एक छोटा चम्मच भर सिरका और आधा गिलास पानी)।

पलक के सिरे का सूज जाना—चिकित्सा

पहले पलकों को गरम पानी से धो कर सूखी पपड़ियां निकाल डालिये। पलक के ढीले बालों को खींच कर निकाल दीजिये। फिर रोज रात को थोड़ा सा सल्फाथियोजोल मरहम लगा दीजिये।

गुहेरियां (Styes)

पलक पर एक छोटी गांठ सी निकल आती है—इसे गुहेरी कहते हैं। यदि यह बार-बार निकले तो किसी आंख के डाक्टर को आंखें दिखानी चाहिये क्योंकि शायद रोगी को चश्मा लगाने की आवश्यकता हो।

चिकित्सा

पलक को बहुत गरम पानी से धो डालिये। गुहेरी में के बाल निकाल दीजिये और फिर लकड़ी की दांत खोदनी या छोटी पतली लकड़ी की सलाई के सिरे को टिंक्चर

दवा डालते समय पलक ऊपर को कर लिया गया है।

आइयोडीन में भिगो कर उसे उस छेद में डालिये जो बाल निकालने से हो गया हो। जब गुहेरी में से पीप निकल आए तो जो मरहम पलक के किनारे की शोथ के लिए ऊपर बताया जा चुका है वही इस छेद पर लगा दीजिये।

आंख का उठना (Conjunctivitis)*

आंख के उठने के साधारण कारण ये हैं—आंखों में धूल या मैल पड़ जाना, उंगलियों से आंखों को गन्दे कपड़े या रूमाल से मलना, तालाब के पानी से मुंह साफ करना, जिन चिलमचियों और तौलियों का इस रोग के रोगियों ने प्रयोग किया हो, उन्हें काम में लाना और मक्खियों को आंखों पर बैठने देना। सब प्रकार के गम्भीर नेत्र-रोग बहुत संक्रामक होते हैं और तौलिये, रूमाल, साबुन और चिलमची द्वारा एक दूसरे को

*इस रोग में आंख के परदे की भीतरी झिल्ली फूल जाती है।
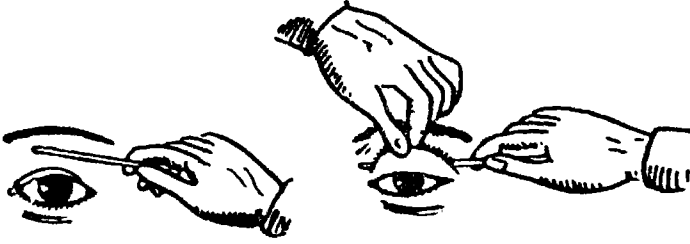
छोटी सी लकड़ी या पेंसिल पलक के ऊपरी भाग पर रख दीजिये और उंगली से पलक को आंख के ढेले (eye-ball) पर से हटाइये। इस प्रकार आंख में जो कुछ पड़ गया हो वह भी आसानी से देखा जा सकता है और पलकों का कोई रोग भी।

लग जाते हैं। अतः यदि परिवार के एक सदस्य की आंखें उठ जाएं, तो घर के किसी भी व्यक्ति को उस का प्रयोग किया हुआ तौलिया, चिलमची या साबुन नहीं छूना चाहिये। रोगी की चिकित्सा करने वाले को दवा आदि लगाने के बाद हर बार अपने हाथ गरम पानी और साबुन से धो लेने चाहियें। मक्खियां भी रोग फैलाने का एक साधारण साधन हैं, इसलिए उन्हें बच्चों की आंखों से दूर ही रखना चाहिये।

यदि बच्चे की आंखों में से बहुत गाढ़ी सफेद या पीली पीप निकले तो उस का कारण प्रमेह-कृमि होता है। यह आंख के रोगों में बहुत भयंकर होता है और प्रायः अंधेपन का कारण होता है। चिकित्सा के लिये रोगी को डॉक्टर के पास ले जाना चाहिये। यदि डॉक्टर की चिकित्सा न हो तो रोगी अवश्य अंधा हो जाएगा। इस प्रकार का रोग नवजात शिशुओं को होता है। इस रोग से बच्चे को बचाने के लिए आर्जीरोल (Argyrol) के घोल की कुछ बूंदें बच्चे के पैदा होते ही उस की आंखों में डाल देनी चाहियें। (देखिये परिशिष्ट, नुसखा नम्बर ३)

चिकित्सा

आंख उठने के रोग को प्रत्येक दशा में खतरनाक समझना चाहिये। इस का परिणाम अंधापन भी हो सकता है। आंख की बहुत सी बीमारियों में जब आंखों में से पीप निकलती है तो उस का कारण कॉक्सी (Cocci) नामक रोग-कृमि होता है। शायद उस से भी अधिक खतरनाक गोनोकॉक्सी (Gonococci) रोग-कृमि होता है जिस से सुजाक होता है। किसी-न-किसी रूप में सल्फा के प्रयोग द्वारा कॉक्सी नामक कृमियों पर नियंत्रण रक्खा जा सकता है। अतः सल्फाथियोजोल मरहम आंख में लगाना चाहिये और यदि हो सके तो मुंह द्वारा सल्फाथियोजोल शरीर में पहुंचाया जाए। इस मरहम को आंख में दिन में तीन-तीन या चार-चार बार धीरे-धीरे डालना चाहिये और आंख पर पट्टी बांध देनी चाहिये, परन्तु कस कर नहीं।

विशेष रूप से आंखों के लिए बना हुआ सल्फाथियाजोल, पैनीसीलिन, टेरा-माइसिन (Terramycin) और औरियोमाइसिन (Aureomycin) के मरहम का प्रयोग करना चाहिये।

रोहे (Trachoma)

यह बहुत गम्भीर प्रकार का नेत्र-रोग है। यदि इस के रोगी की पलकों को उलट कर देखा जाए, तो पलकों में अनगिनत छोटे-छोटे दाने दिखाई देंगे। इस की चिकित्सा वही है जो ऊपर आंख उठने के रोग के लिये बतलाई गई है और उस के साथ-साथ तूतिया (Copper Sulphate) का घोल और अन्य औषधियां भी रोग को दूर करने के लिये इस्तेमाल करनी पड़ेंगी। यह संक्रामक रोग है और इस के विषय में डॉक्टर से अवश्य परामर्श करना चाहिये।

दूर की चीजें दिखाई देना, पास की चीजें दिखाई देना—आंखों में दर्द

प्रसमत: यदि यह पुस्तक आंखों से एक फुट की दूरी पर रक्खी जाए, तो इस का छापा पढ़ा जाना चाहिये। यदि इस पुस्तक को पास रखने की आवश्यकता पड़े, तो समझ लीजिये कि चश्मा लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। पढ़ते समय अक्षरों का धुंधला हो जाना, आंख के ढेलों में दर्द होने लगना, ठीक आंख के ऊपर दर्द होना, सिर-दर्द होना— ये सब इस बात के लक्षण हैं कि आंखों की रोशनी कम है। इस का इलाज करने के लिये आंखों के डॉक्टर के पास जाना चाहिये जो आंखों की परीक्षा कर के चश्मा दे सकता है। जो लोग स्थान-स्थान पर चश्मे बेचते फिरते हैं उन पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

कान के रोग

बहरापन

कान का छेद एक इंच गहरा होता है। कान के छेद के भीतरी छोर पर एक झिल्ली होती है जो कान का परदा कहलाती है। (देखिये अध्याय ११ का चित्र)। इस छेद पर मैल जमा होने से आदमी बहरा हो सकता है। रोगी के अचानक बहरा हो जाने का कारण कान में मैल जमा हो जाना है।

इस मैल को निकालने के लिए एक छोटा चम्मच भर खाने का सोडा, तीन या चार चम्मच गरम पानी में मिला कर घोल तैयार कीजिये। बांए कान का मैल निकालने के लिये रोगी को दांई तरफ लिटाइये और थोड़ा सा कुछ गरम घोल उस के कान में डालिये। इस पानी को कान में कुछ मिनिट तक पड़ा रहने दीजिये जिस से मैल पिघल जाए, और फिर एक छोटी पिचकारी द्वारा थोड़ा सा गरम घोल कान का मैल निकालने के लिये डालिये। यदि पिचकारी न मिल सके तो लकड़ी की सलाई के छोर पर थोड़ी सी रुई

लपेटिये। यह ध्यान रहे कि सलाई के छोर पर ही रूई लगी रहे। कई बार बड.ी सावधानी से इसे कान के छेद के भीतर डालिये और बाहर निकालिये। ऐसा करने से मैल बाहर निकल आएगा। यह ध्यान रहे कि सलाई को छेद में इतना अन्दर न डाला जाए कि यह कान के परदे का स्पर्श करने लगे, क्योंकि कान के परदे पर आसानी से चोट आ सकती है।

धीरे-धीरे अनुभव होने वाले बहरेपन और बहुत दिनों से चला आने वाले बहरेपन का कारण नाक, गले या कान के बीच के भाग (मध्यकर्ण) का रोग होता है। ११वें अध्याय का चित्र देखने से पता चलेगा कि गले और कान के बीच में एक छेद होता है। जब किसी को जुकाम होता है या उस का गला बैठ जाता है, तो नाक को जोर से छिनकने से कृमि उस के कानों तक पहुंच सकते हैं और वह बहरा हो सकता है। बढे. हुए गलसुए और गद्दूद भी बहरेपन का कारण होते हैं। (चिकित्सा के लिये देखिये अध्याय २९)

जब कोई कीड.ा या दूसरी वस्तु कान में घुस जाए तो क्या करना चाहिये

जब कोई कीड.ा कान में घुस जाए तो नारियल या मूंगफली का तेल डाल कर उसे नष्ट कर डालना चाहिये और पिचकारी से उसे बाहर निकाल देना चाहिये। यदि दिखाई दे तो चिमटी से निकाल लेना चाहिये। कभी-कभी कान के पास रोशनी करने से कीड.ा निकल आता है।

कंकड. या मटर के दाने जैसे ठोस पदार्थ को निकालने के लिये कान को नीचे कीजिये, कान को पकड. कर आगे और पीछे की ओर खींचिये और कान के छेद के सामने की त्वचा को मलिये। ऐसा करने से कभी-कभी कंकड.ी या दाना बाहर निकल आता है। यदि कान में सेम का दाना या और कोई बीज पड.ा हो तो उस में थोड.ी सी शराब डाल दीजिये जिस से वह फूल न जाए। यदि ऊपर लिखे उपाय सफल न हों, तो डॉक्टर की सम्मति लेनी चाहिये, क्योंकि कान में से कोई वस्तु बाहर निकालने के प्रयास में कान को बहुत हानि भी पहुंच सकती है।

कान की पीड.ा

कान की पीड.ा बहुधा नाक और गले में सर्दी लग जाने के कारण या मध्यकर्ण में सूजन हो जाने से होती है। बढे. हुए गलसुओं और गद्दूदों द्वारा कान में बहुत पीड.ा होती है, जोर से नाक छिनकने पर भी कान में पीड.ा होती है। गोते लगाने या लहरों में स्नान करने से भी यह दर्द होता है।

चिकित्सा

रोगी को लेट जाना चाहिये और कान को गरम पानी की रबड. की थैली या बोतल पर रक्खे रहना चाहिये। जितना सहन हो सके उतना गरम पानी दो-दो घंटे बाद कान में डालिये और फिर रूई से सुखा दीजिये। ग्लीसरिन में १ प्रतिशत फिनाइल मिलाइये,

और शीशी को गरम पानी में डाल कर गरम कर लीजिये, और कान में डालिये। साधारण पीड़ा जाती रहेगी। फिर कान में रूई लगा दीजिये।

यदि यह पीड़ा १२ घंटे तक या उस से अधिक समय तक होती रहे तो डॉक्टर की राय लेनी चाहिये।

कान का बहना

कान के दर्द के पश्चात् जब कान बहने लगे तो यह स्पष्ट होता है कि कान में पड़ी पीप ने कान के पर्दे को फाड़ दिया है। कानों के बहने की सब से अच्छी चिकित्सा यह है कि रूई का फोहा बना कर और उसे अच्छी तरह पैनीसिलिन में भिगो कर कान में डाला जाए, इससे तुरन्त आराम होता है। पेशी के भीतर पैनीसिलिन की सुइयां लगाने (intramuscular penicillin injections) से या ट्रिपलसल्फा (Triplesulpha) के सेवन से भी लाभ होता है।

अध्याय ३५

नासूर (कैंसर)

कैंसर किसी जाति विशेष तक सीमित नहीं, क्योंकि सभी जाति के लोगों में यहां तक कि पशुओं, पक्षियों, मछलियों, पौधों इत्यादि में भी कैंसर का प्रभाव देखा गया है। सभ्य जातियों के कम-से-कम कुछ लोगों में यह बीमारी अधिकता से पाई जाती है, क्योंकि सभ्य जाति में जीवन-काल लम्बा होता है और कैंसर विशेषतः बुढ़ापे की बीमारी है। कैंसर की बीमारी स्त्रियों में अधिक पाई जाती है, क्योंकि इस का प्रभाव स्तनों और गर्भाशय पर अधिक पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति को कैंसर के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी अवश्य रखनी चाहिये, और आवश्यक सावधानी बरतनी चाहिये जिससे से किसी भी रूप में उन्हें कैंसर की बीमारी न होने पाए। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को कैंसर की बीमारी होना जरूरी है, परन्तु इस की सम्भावना होती ही है। अतएव हर किसी को इस का मुकाबला करना चाहिये। कैंसर के खतरों की जानकारी आवश्यक है और बुद्धिमत्ता पूर्वक तथा हिम्मत से इस का मुकाबला करना भी सीखना चाहिये। यह जानना आवश्यक है

कि अधिक-से-अधिक सिद्ध शल्य चिकित्सक भी उस हालत में कैंसर के बीमार को अच्छा करने में सहायता नहीं पहुंचा सकती जब कि कैंसर का पता लगाने में देर हो जाए और वह बहुत आगे बढ़ चुका हो।

शायद कैंसर की सब से अच्छी परिभाषा इस प्रकार हो सकती है: कैंसर जीव बिन्दुओं या कोषों (Cell) की वह अनियंत्रित तथा विस्तृत उपज है जो शरीर के दूर-दूर के भागों में फैल कर अन्य ऐसी गौण बाढ़ें, पैदा कर देती है, इन में से विष उत्पन्न हो जाने पर अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है। नासूर की वृद्धि की गति और उस के द्वारा हुआ विनाश—ये दोनों बातें कैंसर की उत्पत्ति और प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं। इस की वृद्धि की कोई निश्चित सीमा नहीं होती। इस से कोई भी हित साधन नहीं होता। यह अपने रोगी के लिये अन्त में घातक सिद्ध होता है। इस बीमारी में या तो एक ही पिंड बढ़ कर प्राण ले लेता है या प्रसम तन्तुओं के विनाश द्वारा अथवा शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में फैल जाने से उसी प्रकार की परजीविक बाढ़ें (parasitic growths) के कारण रोगी का प्राणान्त हो जाता है।

किसी स्थान विशेष में जीवबिन्दु या कोष बढ़ कर सूजन उत्पन्न कर देते हैं जिसे ट्यूमर (Tumour) या व्रण कहते हैं। सभी व्रणों या गिल्टियों को कैंसर समझना भूल होगी। इन में से कुछ तो क्षति-रहित होते हैं जो फैलते नहीं और प्राण-हीन नहीं करते। ऐसी उपजों को शांत व्रण और नासूर को द्रोही या विनाशकारी कहा जा सकता है। शांत गिल्टियों—गर्भाशय की गिल्टियों जैसी गिल्टियां—कभी-कभी बेचैनी उत्पन्न कर देती हैं और उन में से रक्त भी प्रभावित होने लगता है, अतएव उन को निकलवा देना चाहिये। परन्तु ऐसी गिल्टियों से कोई खतरा नहीं होता।

यद्यपि इस प्रकार के रोगों की वृद्धि पर नियंत्रण रखने वाले नियमों का हमें ज्ञान बहुत कम है, तथापि कैंसर के कारण और उस के नियंत्रण के विषय में बहुत कुछ सीखा जा चुका है।

कैंसर उत्पन्न करने वाले अनेक कारणों का पता चल चुका है। इन में से कुछ भाग कोलतार का है। कोलतार से उत्पन्न होने वाले दूसरे रासायनिक पदार्थ नासूर उत्पन्न करने वाले सिद्ध हुए हैं। इन रासायनिक पदार्थों के अतिरिक्त अब यह ज्ञात हो चुका है कि एक्स-किरणों (X-rays), गामा रश्मियों (Gamma rays) और नील रश्मियों (ultra-violt rays) के अधिक प्रभाव द्वारा भी कुछ व्यक्तियों अथवा पशुओं में कैंसर उत्पन्न हो जाता है। फीता-कृमि (Tapeworm), पट्ट-कृमि (Flatworm) जैसे परजीवी (Parasites) भी शरीर के किसी-किसी भाग में स्थाई-प्रदाह द्वारा कैंसर उत्पन्न कर देते हैं। कोई भी प्रदाह, होते-होते, कैंसर में परिवर्तित हो सकता है। सड़ा हुआ दांत यदि बार-बार जीभ में प्रदाह उत्पन्न करता हो, तो हो सकता है कि जीभ में नासूर पैदा कर दे।

आज-कल यह विचार प्रचलित है कि नासूर पैदा करने वाली ये सब चीजें तुरन्त ही नासूर पैदा नहीं करतीं, बल्कि उसे कुछ समय तक रोकती हैं। इस नियन्त्रणकारी प्रभाव को रोकने के लिये इर्द-गिर्द के कोषों का आवरण अनियन्त्रित बाढ़ का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार नासूर उन जीव-बिन्दुओं द्वारा निर्मित होता है जिन्हें कोष कहते हैं। ये कोष

कभी-कभी प्रसम कोष जैसे दिखाई पड.ते हैं, परन्तु वास्तव में ये शरीर के लिए चोर-डकैत और विश्वासघाती सिद्ध होते हैं। वे प्रसम शरीर पर आक्रमण करते हैं और शरीर रक्षा के सभी साधनों को तोड.-फोड. देते हैं। शरीर के प्रसम तन्तुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर के उन के ऊपर अपनी ही रचना का प्रभाव डालते हैं।

इस बात का पता नहीं कि कैंसर की क्रिया ऐसी क्यों है। प्रसम कोष और कैंसर के कोष दोनों में असीमित बाढ. के ऐसे गुण उपस्थित रहते हैं कि यदि उन्हें शरीर के बाहर उगने दिया जाए तो उन की बाढ. जारी रहेगी। जिस शरीर से इन का जन्म हुआ है यदि उसी में इन कोषों को फिर से आरोपित कर दिया जाए, तो प्रसम कोष तुरन्त ही शरीर के नियमों का पालन करने लगते हैं। परन्तु नासूर के कोष फिर भी डकैतों की तरह नियम तोड.ते रहते हैं।

अभी तक इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चला कि कैंसर कैसे उत्पन्न होता है। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि नासूर एक ऐसी रुग्ण अवस्था है जिस का उदय एक विशेष प्रकार के रोग-विष से होता है। परन्तु यह भी सर्वथा सम्भव है कि कैंसर किसी एक ही कारण से उत्पन्न न होता हो और जिन कारणों से शरीर के किसी एक अवयव या तन्तु-जाल पर नासूर उत्पन्न होता है, उन का शरीर के किसी दूसरे भाग पर नासूर उत्पन्न करने के कारणों के साथ कोई सम्बन्ध न हो। कैंसर उत्पन्न करने वाले कारणों को दूर कर देने पर भी जीव-बिन्दु या कोष अपनी अनियमित उत्पत्ति को जारी रखते हैं।

कैंसर के अनेक कारण समझे जाते हैं। अनेक लोग समझते हैं कि ये कारण बीमारी को उभारने वाली अवस्थाएं हैं। यदि इन का बिलकुल अनुकूल परिस्थितियों में आरोपण किया जाए, तो ये जीव बिन्दुओं या कोषों के अन्दर उथल-पुथल पैदा कर सकती हैं और इस प्रकार अनेक स्वाभाविक अभिवृद्धि और आस-पास के कोषों तथा समस्त कोष-समूह के साथ उस का सम्बन्ध बदल सकती हैं। यह विघटन नए पैदा होने वाले कोषों में संक्रमित हो जाता है। जीव बिन्दुओं में कोई ऐसी प्रतिक्रिया होती है जिस का उस कोष के रासायनिक तत्वों, उस की प्रक्रिया तथा उस के परम्परागत गुणों पर प्रभाव पड.ने लगता है।

किसी व्यक्ति विशेष की परम्परागत प्रवृत्ति उस में नासूर उत्पन्न का प्रमुख कारण हो सकती है। परन्तु नासूर स्वयं वंशगत रोग नहीं। जिन लोगों के पूर्वजों में से किसी को नासूर का रोग हुआ हो, उन्हें उचित है कि सदा अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूप रहें। विशेषत: ४० वर्ष की अवस्था के उपरांत शरीर की सामयिक जांच करवाते रहना बहुत आवश्यक है।

कुछ कैंसर ऐसे भी होते हैं जो प्रारम्भ में लुप्त अवस्था में होने के कारण मामूली समझे जाते हैं, और मनुष्य धोखे से उन की ओर ध्यान नहीं देता, और तब तक नहीं चेतता जब तक अच्छी तरह वे जड. नहीं जमा लेते। इसी कारण वे इतने भयंकर हो जाते हैं। यदि प्रारम्भिक अवस्था में ही उसे समझ लिया जाए, तो कैंसर असाध्य सिद्ध नहीं होता। पीड.ा तो शायद ही कभी इस का प्रारम्भिक लक्षण होती है, हां, कुछ लक्षण ऐसे अवश्य हैं जिन की ओर चिकित्सक को तुरन्त ध्यान देना चाहिये:-

स्तन में पिंड। स्त्रियों को चाहिये कि अपनी छातियों को कभी-कभी ठीक प्रकार

से टटोल कर देख लिया करें और यदि कहीं पर पिंड या सूजन मालूम पड़े, तो तुरन्त डॉक्टर का परामर्श लें।

योनि से स्राव, विशेषत: रज:स्तम्भन (Menopause) की अवधि के बीच में या उस के उपरांत रक्तस्राव।

अन्य कोई असाधारण पाचन सम्बन्धी दृढ़ लक्षण, विशेषत: वजन की कमी से सम्बन्धित।

होठों, जीभ या त्वचा पर का कोई घाव जो जल्दी न भरता हो। गुदा में पीड़ा; रक्त बहना या पुराना कब्ज। ये केवल अर्श (खूनी बवासीर) के लक्षण भी हो सकते हैं, परन्तु फिर भी इन का पता लगाना आवश्यक है।

तिल, मस्से या जन्म के किसी चिन्ह में परिवर्तन हो।

बार-बार तंग करने वाली खांसी।

असाधारण और अकारण ही वजन में कमी या खून की कमी।

पेशाब में रक्त की उपस्थिति।

इस सूची से यह स्पष्ट हो जाएगा कि नासूर के कई लक्षण हो सकते हैं; जिन में में से कई मामूली और साधारणतया नासूर के अतिरिक्त दूसरे कारणों से भी सम्बन्ध रख सकते हैं, परन्तु इस बात पर जोर देना अनावश्यक न होगा कि कैंसर से बचने के लिए आप को प्रत्येक अवस्था में अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिये। सदा अस्वस्थ रहना और छोटे-मोटे लक्षणों की चिन्ता तथा दूसरे लक्षणों की कल्पना करते रहना ठीक नहीं। असाधारण लक्षणों की बुद्धिमानी से खोज कीजिये, और बिना किसी प्रकार के लक्षणों के भी समय-समय पर स्वास्थ्य-परीक्षण कराते रहिये।

सदा असहाय अवस्था की भावना और भाग्यवाद के विचार छोड़ दीजिये, क्योंकि यदि समय रहते कैंसर का पता चल जाए तो उस का पूरा इलाज हो सकता है। आप कभी ऐसे विचार न रखिये कि "यदि नासूर को होना ही है तो होगा ही; उसे कोई रोक नहीं सकता," इस के विपरीत सदा सचेत रहिये ताकि शरीर में कोई असाधारण बात आप की नजर से न बच सके। यदि कोई शारीरिक दोष हो, चाहे कैंसर हो या कुछ और, तुरन्त उस की ओर ध्यान दीजिये, उसे ऐसे ही न छोड़िये। कुछ डॉक्टर कहते हैं कि यदि वर्ष में सावधानी से एक बार पूरी तरह स्वास्थ्य-परीक्षण करवा लिया जाए, तो कैंसर के इलाज से बाहर पहुंचने की अवस्था से पहले ही सुरक्षा हो जाएगी। इस प्रकार की जांच के दौरान में स्त्री को चाहिये कि अपने स्तनों और छाती की परीक्षा करवा ले। गर्भाशय के कैंसर के लिये "आंतरिक परीक्षा" आवश्यक है, और ४० वर्ष के उपरांत प्रति ६ मास में यह कार्य जरूरी है। गुदा की परीक्षा भी नहीं छोड़नी चाहिये। यदि पाचन क्रिया समबन्धी लक्षण हों, तो पेट और आंतों का एक्सरे करवा लेना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति के लिए छाती की सामयिक परीक्षा करवाना नितान्त आवश्यक है। इस में थोड़ा-बहुत खर्च अधिक तो होगा, परन्तु स्वास्थ्य के आगे थोड़ा-बहुत खर्च कोई वस्तु नहीं।

इस प्रकार बनाई हुई सामान्य कार्यवाही के अतिरिक्त कभी-कभी तन्तुजाल (Tissue) का एक टुकड़ा निकाल कर अणुवीक्षण-यंत्र द्वारा जांच कर के ठीक-ठीक निदान करना भी

आवश्यक हो जाता है। इस में कोई हानि नहीं और जब कभी डॉक्टर की सलाह हो, तो पीड.ा रहित छोटा सा आप्रेशन करवाने में कोई हर्ज नहीं।

त्वचा का कैंसर सब से कम भयंकर होता है, क्योंकि इस प्रकार के नासूर तक शल्य-चिकित्सक के चाकू और रेडियम (Radium) चिकित्सा का प्रभाव सुगमता से हो सकता है। इस के अतिरिक्त त्वचा का कैंसर शरीर के किसी और भाग के नासूर की अपेक्षा बहुत धीरे-धीरे बढ.ता है। जब तक कोई घाव जल्दी ही न भर जाए और कोई रोग ही सिद्ध न हो जाए, तब तक कैंसर ही समझना चाहिये।

प्रारम्भिक अवस्था में कैंसर का ध्यान न रहने या निदान न हो सकने के कारण कैंसर के ठीक इलाज में बाधा पड. जाती है। वर्तमान काल में इस पर नियन्त्रण रखने के लिये दो लक्ष्य हैं। पहला, जीर्ण व्यथा को दूर करना और कैंसर उत्पादक ज्ञात पदार्थों से सम्पर्क विच्छेद। दूसरा, यथाशीघ्र लक्षणों द्वारा कैंसर का निदान कर लेना, जिस से शल्य-चिकित्सा एवं अन्य उपायों द्वारा इस रोग का आमूल विनाश करने की अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाया जा सके। इस में से पहले लक्ष्य की सिद्धि के निमित्त शिक्षा ने लोगों को थोड.-बहुत लाभ पहुंचाया है क्योंकि उद्योग व्यवसायों के कर्मचारियों को सिखाया जाता है कि वे कोलतार या अन्य कैंसर उत्पादक पदार्थों के सम्पर्क में न आएं। दांतों की सुरक्षा सम्बन्धी विज्ञान की शिक्षा का भी यही उद्देश्य है।

जनसाधारण को कैंसर के संबंध में शिक्षित करने और शीघ्रातिशीघ्र इस के निदान करने के बावजूद अब भी बहुत कुछ करने को बाकी है। स्त्रियों को यह सिखा दिया गया है कि छाती के किसी भी पिंड को शंका की दृष्टि से देखना चाहिये, परन्तु फिर भी लोग आंतरिक नासूर के लक्षणों की उपेक्षा कर बैठते हैं।

४० वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों की सामयिक शारीरिक परीक्षा और फ्लोरस्कोपी (flourscopy) एवं एक्स-किरण परीक्षा के द्वारा सब प्रकार के कैंसरों में से दो तिहाई का और व्यथा उत्पादक गिल्टियों का प्रारम्भिक अवस्था में ही पता चल सकता है। यदि जनता को सामयिक स्वास्थ्य-परीक्षा के लिये राजी कर लिया जाए, तो कैंसर के द्वारा मृत्यु संख्या को कम करने की दिशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

यदि शीघ्र निदान हो जाए तो इलाज भी शीघ्र हो जाएगा। कैंसर के विषय में ध्यान रखिये कि जितनी जल्दी की जाएगी, उतनी जल्दी आराम होगा। विलम्ब इस विषय में घातक होता है। वर्तमान समय में कैंसर के इलाज की केवल तीन प्रभावशाली विधियां हैं: शल्य-चिकित्सा, रेडियम (Radium) और एक्स-रश्मियां। इन तीन प्रणालियों से नासूर का पूरा इलाज किया जा चुकने के हजारों उदाहरण हैं।

पूरे इलाज के पांच वर्ष के भीतर यदि नासूर फिर प्रकट न हो, तो उस का पक्का इलाज हो गया समझना चाहिये। पांच वर्ष के उपरांत इस की पुनरावृत्ति बहुत कम होती है, परन्तु हां, इस में संदेह नहीं कि "समय ही सब से महत्वपूर्ण तत्व" है।

रोगियों द्वारा घरेलू इलाज करने और तुरंत आवश्यक कदम उठाने के बदले नीम-हकीम की सहायता लेने में बहुत समय व्यर्थ चला जाता है।

दुर्भाग्यवश नीम हकीमों (सड.कों के किनारे दवा बेचने वालों) में अंधविश्वास

के कारण प्रतिवर्ष अनेक जानें चली जाती हैं। इन अनाड़ी हकीमों के द्वारा प्रचारित शर्तिया इलाज की प्रतिश्रुति लोगों को इतना प्रभावित कर देती है कि वे नागरिक डॉक्टर की सीधी और सच्ची बातें न सुन कर इन कच्चे चिकित्सकों के हाथों में अपनी जान सौंपने के बहकावे में आ जाते हैं यह "ऐसा मार्ग है जो मनुष्य को सीधा दिखाई पड़ता है, पर इस के अन्त में मृत्यु ही मिलती है।" यही बात नाना प्रकार के क्वाथ, चूर्ण इत्यादि का प्रदर्शन करने वाले नीम हकीमों पर भी पूरी तरह चरितार्थ होती है। ऐसे धोकेबाज वैद्यों को छोड़ कर किसी नामी डॉक्टर या अच्छे अस्पताल में जाकर इलाज करवाना ही सर्वथा उचित है। यदि आप को कैंसर का संदेह हो तो निम्नलिखित अवस्थाओं में से कोई भी इस का संकेत दे सकती है और आप को तुरन्त डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिये।

१. कोई घाव जो भरता न हो।
२. छाती में अथवा किसी अन्य स्थान पर पिंड या सूजन।
३. कोई असाधारण रक्त या अन्य स्राव।
४. किसी तिल या मस्से में परिवर्तन।
५. जीर्ण प्रकार की अपच।
६. निगलने में बार-बार होने वाली कठिनाई।
७. बार-बार तंग करने वाली खांसी या गला बैठना।
८. मल-त्याग की नियमित आदतों में परिवर्तन।

अध्याय ३६

विविध प्रकार के सामान्य रोग

मुंह आना

बच्चे के सामान्य प्रकार के मुंह आने का वर्णन २२वें अध्याय में हो चुका है।

बड़े लोगों में मुंह आने का कारण दांतों, जीभ और मुंह को साफ न रखना होता है। होंठों और गालों के भीतरी ओर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले श्वेत दानों के समान दिखाई देते हैं और इन में बहुत दर्द होता है।

चिकित्सा

परीशिष्ट में दिये हुए नुसखे नं. ९ और १० के प्रयोग द्वारा मुंह को साफ रखिये। सफेद दाग किसी प्रकार के क्यों न हों, सिल्वर नाइट्रेट स्टिक (Silver Nitrate Stick)

से छुलाने से ठीक हो जाते हैं। यह सिलवर नाइट्रेट स्टिक औषधि विक्रेता की दुकान से मिल सकती है।

हिचकियां

सांस रोक लेने से प्रायः हिचकियां भी बन्द हो जाती हैं। दूसरा उपाय यह है कि जीभ को पकड़ कर बाहर खींचिये और एक दो मिनिट तक उसी अवस्था में रहिये। एक और उपाय है बहुत गरम पानी पीना।

नकसीर छूटना

कभी-कभी अंगूठे और उंगली से नाक पकड़ कर दबाने से खून निकलना बन्द हो जाता है।

एक और उपाय है बर्फ का टुकड़ा नथनों के पास और दूसरा टुकड़ा मुंह में रखना है। गर्दन के पीछे बर्फ का एक टुकड़ा लगाने से खून उसी क्षण बन्द हो जाता है।

कभी-कभी नाक में बहुत नमक मिला हुआ पानी डालने से खून बन्द हो जाता है।

यदि ये सब उपाय असफल रहें तो छोटी उंगली के अन्तिम छोर के बराबर-बराबर सोखने वाली रुई के छोटे-छोटे टुकड़े लीजिये। ६ या ८ इंच लम्बी एक डोरी में रुई के इन टुकड़ों को बांध-बांध कर एक माला सी बना लीजिये। फिर रुई के इन टुकड़ों को एक-एक कर के नाक में ऊपर को तीन इंच तक चढ़ाइये यहां तक कि नाक के छेद बन्द हो जाएं। ध्यान रहे कि डोरी का सिरा नाक के बाहर लटकता रहे। इन टुकड़ों को नाक के अन्दर ३० मिनट या इस से कुछ अधिक समय तक इसी दशा में रहने दीजिये। इस के बाद डोरी के लटकते हुए सिरे को पकड़ कर रुई के टुकड़ों को बाहर खींच लिया जाए।

रोगी को आगे की ओर नहीं झुकना चाहिये क्योंकि इस से नाक की रक्त-वाहिनियों का दबाव बढ़ता है। उस को पीछे की ओर झुकना चाहिये ताकि रक्त नाक के पिछले सिरे से अन्दर जाए। फिर रक्त को बाहर थूका जा सकता है।

आंत उतरना (Hernia or Rupture)

आंत का एक भाग उदर-गह्वर के प्राचीर के एक छेद में से हो कर बाहर निकल जाता है। त्वचा के भीतर सूजन हो जाती है। यह बहुधा जांघ और उदर के बीच के स्थान या पेड़ू-स्थान पर होता है।

इस रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर की आवश्यकता होती है। यदि सूजन वाले स्थान को दबाने से आंत पेट के भीतर लौटे तो रोगी को लेटा रहना चाहिये और डॉक्टर को जल्दी ही बुला भेजना चाहिये।

आंत उतर जाने की किसी-किसी दशा में ट्रस (Truss) नाम की एक पट्टी का प्रयोग किया जाता है। यह एक पेटी होती है जो शरीर के चारों ओर लपेटी जाती है और इस

में एक कड़ी बोल गद्दी होती है उस स्थान पर जमा दी जाती है जहां आंत उदर से निकल कर पहुंच जाती है। सब से सन्तोषजनक चिकित्सा है आपरेशन। जब एक बार सर्जन ठीक तरह से उस का आपरेशन कर दे, तो फिर यह रोग कोई कष्ट नहीं देता।

पथरी

बार-बार कष्ट के साथ पेशाब आना, 'पेशाब में खून होना और कभी-कभी मूत्र के साथ पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े निकलना' ये सब पथरी रोग के लक्षण होते हैं।

चिकित्सा

रोगी को चारपाई पर लेट कर आराम करना चाहिये और कागजी नींबू का अर्क पानी में मिला कर बहुत अधिक मात्रा में पीना चाहिये। एक प्याले पानी में १५ ग्रेन पोटाशियम सिटरेट (Potassium Citrate) मिला कर दिन में तीन बार पीना चाहिये। गरम पानी से स्नान करना उपयोगी सिद्ध होता है। दिन में तीन बार दस ग्रेन यूरोट्रोपिन (Urotropin) का सेवन करना चाहिये। यदि पीड़ा अधिक है तो अस्पताल जा कर पथरी निकलवा देनी चाहिये।

पांडु रोग या कमल बाई (Jaundice)

आंखों के श्वेत भाग और त्वचा का पीला पड़ जाना पित्ताशय या यकृत (Liver) का रोग होता है।

यदि ज्वर हो तो रोगी को चारपाई पर आराम करना चाहिये। भोजन में नरम या द्रव्य पदार्थ ही होना चाहिये। पानी में नींबू का अर्क मिला कर पिया जाए। प्रतिदिन एपसम सॉल्ट की एक खुराक खाइये। दिन में दो बार बीस मिनिट तक कपड़ा गरम पानी में भिगो कर यकृत (कलेजे) के ऊपर सेंकिये।

जोड़ों और पीठ में दर्द-गठिया

इस प्रकार के दर्द की चिकित्सा में गर्मी पहुंचाना अत्यन्त लाभकारी है। गरम पानी की बोतल या आर्द्र सेंकों का प्रयोग किया जा सकता है। जोड़ों के ऊपर शिशि-हीर (Winter Green) के तेल की मालिश उपयोगी होती है। कपड़े के एक टुकड़े को तेल में भिगो कर दर्द-वाले स्थान पर रक्खा जा सकता है। इस कपड़े के ऊपर तेल के कागज का एक टुकड़ा रख कर पट्टी बांध दीजिये। शराब या मांस का प्रयोग न कीजिये। प्रतिदिन बहुत अधिक मात्रा में पानी पीजिये।

यदि गठिया के कारण जोड़ों में दर्द होता हो, तो १५ ग्रेन सोडियम सेलीसिलेट और ३० ग्रेन सोडा बाईकार्बोनेट अर्थात् खाने का सोडा (15 Grains Sodium Salicy-

late and 20 Grains Soda Bicarbonate) आधे गिलास पानी में मिला कर तीन-तीन घंटे बाद पिया जाए।

मिर्गी (Epilepsy)

मिर्गी के दौरे ऐसे गम्भीर हो सकते हैं कि रोगी अचेत हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ता है और उस के मुंह से झाग निकलने लगता है। कुछ दशाओं में दौरे बहुत साधारण से होते हैं, बातें करते समय या खाते समय रोगी अचानक आधे मिनट या अधिक समय के लिये अचेत हो जाता है। ये साधारण दौरे बेहोशी या मूर्च्छा जैसे होते हैं।

चिकित्सा करते समय यह देखना आवश्यक है कि रोगी को टट्टी प्रतिदिन आ जाती है या नहीं। शराब, तम्बाकू या मांस का प्रयोग नहीं करना चाहिये। डॉक्टर को दिखाने से पूर्व रोगी को एक दिन में ६० ग्रेन सोडियम ब्रोमाइड (Sodium Bromide) दिया जा सकता है। नींबू के अर्क (सत) में पानी मिला कर और उसे मीठा करने के लिये थोड़ी चीनी मिला कर पीने को देना चाहिये।

यह कहा जाता है कि मिर्गी-रोग पितृागत होता है। मदिरा-सेवन, शरीर में स्वयं उत्पन्न मादकता (Auto-intoxication), सिर की चोटें, आंखों पर अधिक जोर, आंत में परजीवियों की उपस्थिति—ये सब ऐसी बातें हैं जो उस व्यक्ति को मिर्गी के दौरों का शिकार बना सकती हैं जिस की चेता-व्यवस्था (Nervous Organization) में कुछ गड़बड़ी हो।

मिर्गी के दौरे के समय रोगी को प्रत्येक प्रकार की चोट से भी बचना चाहिये। उस के कपड़े ढीले कर दीजिये और उस के दांतों के बीच लकड़ी या डाट (काग) का टुकड़ा दबा देना चाहिये ताकि दांतों के बीच आकर जीभ न चिर जाए। दौरों का कारण बहुत सावधानी से मालूम करना चाहिये।

चिकित्सा

रोगी का आहार बड़े महत्व की चीज है। खाना ठीक समय पर देना चाहिये और मात्रा में भी थोड़ा होना चाहिये। मांस, चाय, कॉफी, केक-मिठाई आदि नहीं देना चाहिये। खाने में नमक बहुत कम कर देना चाहिये। खाने में केवल फल, दाल, अच्छी तरह सिके हुए टोस्ट, दूध और सब्जियां होनी चाहियें। अंडे मटर, सेम आदि, मेवों की गिरियां, और पनीर कभी-कभी खानी चाहियें।

ठीक तरह के भोजन, साधारण जुलाब या अनिमे की सहायता से रोगी का पेट साफ रखना चाहिये। नेत्रायास (Eye-strain), नाकड़ा (Nasal Polypi) बढ़े हुए गलसुए, शिश्नच्छा का पूरी तरह खुला न होना (Adherent Prepuce), और अंत्र-कृमि —ये सब ऐसी बातें हैं जिन से स्वभाव में परावर्तित झुंझलाहट (reflex irritation) पैदा हो जाती है। इसीलिए इन की चिकित्सा आवश्यक होती है।

बार-बार गरम पानी से स्नान कर के त्वचा को सक्रिय रखना चाहिये। रोगी को बहुत सा समय बाहर बिताना चाहिये और शारीरिक व्यायाम भी करना चाहिये।

पाइरिया (Pyorrhœa)

पाइरिया उस अवस्था को कहते हैं जिस में दांतों को धारण करनी वाली हड्डियां किसी संक्रमण के कारण नष्ट हो गई हों। रोग बढ़ जाने पर दांत हिलने लगते हैं। देखने में मसूड़े स्वस्थ मालूम पड़ते हैं, परन्तु दांत के इर्द-गिर्द पीप की छोटी-छोटी थैलियां पैदा हो जाती हैं।

अनेक रोगी समझते हैं कि पाइरिया के इलाज की एक मात्र विधि यही है कि दांत निकलवा दिये जाएं। बीमारी बढ़ जाने पर यह उपाय ठीक हो सकता है। बिना दांत निकाले ही सफल चिकित्सा तभी हो सकती है जब शीघ्र ही रोग का निदान हो जाए। पाइरिया की प्रारम्भिक अवस्था के चिन्ह छिद्रपूर्ण, सूजे हुए और रक्तवाही मसूड़ों को देखते ही किसी दन्त-चिकित्सक (dentist) से परामर्श करना चाहिये। मसूड़ों को मलते रहने से भी उन्हें स्वस्थ रक्खा जा सकता है। मुंह और दांतों की सफाई आवश्यक है।

हृदय-रोग (Heart Disease)

अधिक महत्व वाले हृदय-रोगों में से एक हृद्व्यास (Hypertension) है जो उच्च रक्तचाप से उत्पन्न होता है। रक्तचाप की अधिकता से हृदय की पेशियों की दीर्घता द्वारा शिथिलता और अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

इस बीमारी का दूसरा प्रकार कोरोनरी (Coronary) है. दिल की बीमारी की चौथाई संख्या इसी प्रकार के रोगियों में पाई जाती है। कोरोनरी धमनियों के तंग हो जाने से छोटी धमनियों में रुकावट और रक्त जम जाने की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इस से हृदय की पेशियों में क्षति-चिन्ह पड़ जाते हैं और उन्हें हानि पहुंचती हैं। बहुधा यह उच्च-रक्तचाप वाले और बहुमूत्र-रोग पीड़ित व्यक्तियों को प्रभावित करता है। इस के अनेक भेद हैं परन्तु अक्सर यह हृदपिंड के स्थान पर दर्द और दबाव (angina pectoris) के संक्षिप्त आक्रमण से प्रारम्भ होता है जो बांई भुजा से नीचे की ओर प्रसारित होने लगता है। समाचार-पत्रों में छपने वाला दिल का दौरा यही है और इस से अचानक ही प्राणान्त हो सकता है। इस के कुछ सामान्य रूप भी हैं जिन की अक्सर पहचान नहीं हो पाती। यदि ऐसे रोगियों में रोग का अधिक प्रभाव न हुआ हो और उन की उचित चिकित्सा की जाए, तो वे अनेक वर्षों तक जीवित रह सकते हैं।

गठिया सम्बन्धी हृदय के व्यथाओं में अर्थात् दिल की उन बीमारियों में जो वात-ज्वर (Rheumatic fever) अथवा इसी प्रकार की संक्रामक अवस्थाओं से उत्पन्न हैं। रक्त के कपाटों (Valve) को ही आम तौर पर हानि होती है। इस से दो स्थायी हानियां हो सकती हैं: पहली इन कपाटों का संकुचित हो जाना और दूसरी इन का अधूरे ढंग से बन्द होना। हृदय की धड़कन के समय रक्त प्रवाह (Valve Orifice) सम्बन्धी द्वारों के तंग हो जाने के

कारण रक्त के ठीक दिशा में स्वच्छन्दता से प्रवाहित होने में बाधा पड़ती है और धड़कनों के बीच-बीच में विपरीत दिशा में पीछे की ओर भी बहने लगता है। इस से हृदय का काम बढ़ जाता है और यदि उचित सावधानी न बरती गई तो हृदय निष्क्रिय हो जाता है।

उपदंश विषयक हृद्-रोग, जैसा कि इस शब्द से स्पष्ट है, उपदंशी की बीमारी से पैदा होता है और अवयव सम्बन्धी दिल की बीमारियों में इस का अनुपात दस प्रतिशत होता है। इस में महाधमनी का चाप, तत्सम्बन्धी द्वार का घेरा और चापीशिखर क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और बांया हृद्कोष्ठ (Ventricle) अधिक बढ़ जाता है। उपदंश जनित हृदय-रोग सामान्यतया अधेड़ अवस्था में उत्पन्न होता है और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिकता से पाया जाता है।

उपरोक्त हृद्रोग के प्रकारों के अतिरिक्त, शरीर के अवयवों में बिना किसी विकार के भी हृदय के कार्य में गड़बड़ी हो जाने की भी कुछ अवस्थाएं हैं। इन में से दिल धड़कने की शिकायत सब से अधिक आम है। इस के मुख्य कारण, डर, क्रोध, खुशी, रंज, चिन्ता इत्यादि भाव एवं अन्तर्वेग होते हैं अथवा चाय, कॉफी, तम्बाकू या अन्य मादक पदार्थों में पाए जाने वाले विष से भी दिल धड़कने की तकलीफ हो जाती है।

ज्योंही हृदय की गति बन्द होने के निकट पहुंचती हैं, दिल की बीमारी के वास्तविक लक्षण प्रगट होने लगते हैं। थोड़े से परिश्रम से भी सांस फूल जाना सब से पहला लक्षण है। भोजन के बाद तकलीफ और भारीपन एक आम शिकायत हो जाती है, दूसरे लक्षणों में कमजोरी, सहन-शक्ति का ह्रास, विशेषतः टांगों में शिथिलता का अनुभव, छाती में भारीपन (fullness) और सूखी खांसी इत्यादि होते हैं। इस के अतिरिक्त जिगर में तथा दिल में मीठा-मीठा दर्द होता है या व्यथा मालूम पड़ती है। टखनों की सूजन प्राथमिक लक्षणों में से एक है। यह शाम को बढ़ जाता और निद्रावस्था में गायब हो जाता है। कमजोरी इस हद तक बढ़ जाती है कि रोगी थोड़े से भी परिश्रम से अत्यन्त शिथिल हो जाता है। उसे बेचैनी और निद्रा-हीनता हो जाती है।

चाहे किसी भी प्रकार का हृद्रोग हो, रोगी को प्रतिदिन चिकित्सक की देख-रेख में रहना चाहिये और दिल की बीमारी के पुराने अथवा स्थायी हो जाने पर उसे बार-बार डॉक्टर को दिखाना आवश्यक है। हृदय के बारे में एक गलत धारणा यह है कि एक बार प्रभावित हो जाने पर हृद्रोग स्थायी रूप धारण कर लेता है जिस से स्थायी स्वास्थ्य-हीनता और अकाल मृत्यु हो जाती है; परन्तु ऐसी बात नहीं है, विषम हृदय भी समयोपरांत सुचारु रूप से स्वस्थ हो जाता है। शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का आराम सब से बढ़िया इलाज है। रोगी को चाहिये कि वह इस प्रकार का भोजन चुन ले जिस से वायु पैदा न हो और खाना ठीक प्रकार हजम हो जाए। साथ ही उसे मानसिक उद्वेग, विशेषतः क्रोधावेश से बचना चाहिये।

उच्च-रक्तचाप (High Blood Pressure)

प्रौढ़ व्यक्ति के लिये सामान्यतया रक्त-चाप १२०/८०, बताया जाता है जिस का अर्थ केवल यह है कि हृदय के संकुचित होने पर दबाव इतना होता है जितना पारे के

१२० मिलीमीटर ऊंचे-स्तम्भ (Column) से प्रकट होता है और इसी प्रकार उस के ढीले होने पर ८० मिलीमीटर ऊंचे स्तंभ के दबाव के बराबर होता है। वृद्धावस्था के साथ-साथ रक्तचाप बढ़ता जाता है, चाहे अवस्था कुछ भी क्यों न हो, १४० से ऊपर अविरत रक्तचाप अप्रसम समझा जाता है।

अवस्था अधिक होने के अतिरिक्त कुछ और भी कारण ऐसे हैं जिन से रक्तचाप बढ़ जाता है परन्तु उन में से सभी कारण ज्ञात नहीं हैं। आवश्यकता से अधिक भोजन करना, चाहे वह पुष्टिकारक ही क्यों न हो, रक्तचाप को बढ़ाने का एक कारण है। अधिक प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों, चाय, कॉफी, तम्बाकू और मादक पेयों में प्राप्त होने वाले उत्तेजक द्रव्यों का भी रक्तचाप पर प्रभाव पड़ता है। बहुमूत्र-रोग, गठिया, दमा, वात और गुर्दे की बीमारियां भी रक्तचाप पैदा करती हैं। आधुनिक जीवन के अधिक परिश्रम-जन्य भार एवं क्लान्ति से भी रक्तचाप बढ़ जाता है। दांतों और मसूड़ों में बीमारी या इसी प्रकार की अन्य स्थानीय रुग्णावस्थाएं भी रक्त के दबाव में वृद्धि करती हैं।

जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में संलग्न व्यक्तियों में यह रोग पाया जाता है। सादे भोजन पर निर्वाह करने वाले गरीब श्रेणी के लोगों की अपेक्षा धनी वर्ग में यह रोग अधिक प्रचलित है।

रक्तचाप-वृद्धि के लक्षणों में बड़ा भेद पाया जाता है। शरीर का असाधारणतया अधिक भार, रक्तिम वर्ण, स्वास्थ्य में तगड़ापन ही केवल बाह्य लक्षण हो सकते हैं। इन के अतिरिक्त सिर चकराना, कानों में घंटी सी बजना, सिर में दर्द अथवा धड़कन सी महसूस होना इत्यादि कष्टदायक अनुभूतियां भी इस रोग का संकेत देती हैं।

अब डॉक्टर लोग स्वीकार करने लगे हैं कि रक्तचाप को घटाने के लिये दी हुई औषधियां अधिक लाभकारी नहीं होतीं। भोजन में फल व सब्जियों की अधिक मात्रा के साथ थोड़ी-बहुत दाल अनाज, मेवों की गिरियां या अंडे सम्मिलित होने चाहियें। हर प्रकार के मांस को त्याग कर चाय और कॉफी का भी बहिष्कार कर देना चाहिये। नमक, मिर्च-मसाले की मात्रा को भी यथासाध्य सीमित कर देना उचित होगा। तम्बाकू का तो सर्वथा परित्याग ही श्रेयस्कर होगा। पर्याप्त रूप में आराम और नियमित जीवन अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। इस के रोगी को चाहिये कि सब प्रकार के मानसिक आवेगों में 'अति' से बचे और चिन्ता को यथासंभव मन में अधिक स्थान न दे।

वस्तुओं को निगल जाना

बच्चों के सिक्के, पिनें, बटन आदि निगल जाने से माता-पिता प्रायः चिन्तित हो जाते हैं। ये वस्तुएं बिना कोई हानि पहुंचाए शरीर के बाहर निकल जाती हैं। ऐसी दशा में बच्चे को जुलाब आदि नहीं देना चाहियें। रोटी, दलिया, शकरकंदी या कोई दूसरी सख्त सब्जियां जैसे भारी भोजन देने चाहियें जिस से ये भोजन आंतों पर जोर डाल कर दूसरी वस्तुओं के साथ निगली हुई वस्तुओं को भी बाहर निकाल दें।

रसौली (Tumours)

नरम मिल्टियां जो कभी-कभी सिर, गर्दन या पीठ पर निकल आती हैं वे कोई हानि नहीं पहुंचातीं। जो गिलटी होंठ, जबड़े, या छाती पर निकलती है वह खतरनाक होती है। ऐसी दशा में डॉक्टर को तुरन्त ही बुला लेना चाहिये। यह गिलटी कोई नासूर या कोई गहरा फोड़ा भी हो सकता है और उस की सफल चिकित्सा यह है कि आपरेशन करके उसे निकाल दिया जाए। (देखिये अध्याय ३५)

अध्याय ३७

विकिरण और विस्फोट

(Radiation And Blast)

यद्यपि इस अध्याय में प्रतिपादित अनेक सिद्धांत कल कारखानों वाले विस्फटों या अत्यन्त ज्वलनशीन बम के धमाकों पर लागू होते हैं, परन्तु इन पृष्ठों में चर्चा का विशिष्ट लक्ष्य अणु परमाणु विस्फोट से सम्बन्ध रखता है। मानव जाति पर इन विस्फोटों के प्रभाव का वर्णन करने से पूर्व उन आवश्यक तथ्यों में से कुछ पर विचार करना उचित होगा जिन्हें अणु आयुधों के आक्रमण के समय प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान में रखना चाहिये।

अणुबम के विस्फोट से चकाचौंध करने वाली चमक उत्पन्न होती है और समस्त आकाश प्रदीप्त हो उठता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि विस्फोट के समय यदि उस प्रचंड प्रकाश को ५.७ मील की दूरी से देखा जाए तो ऐसा लगता है मानो पृथ्वी के धरातल पर दोपहर के समय के सूर्य के प्रकाश की सौ गुनी चमक केन्द्रीभूत हो कर प्रकट हो गई हो। जब अचानक यह प्रकाश-पुंज उदय हो तो उस ज्वाला के केन्द्र की ओर न देखिये क्योंकि विस्फोट के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ "अग्निबिम्ब" धमाके के बाद भी दस या इस से अधिक सेकन्ड तक प्रदीप्त रहता है। विस्फोट के उपरान्त एक मिनट से भी अधिक देर तक 'गामा किरणें' नाम की, भयंकर छोटी-छोटी तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। पहले सेकंड के अन्दर 'गामा किरणों' की यौगिक शक्ति का आधा भाग उदित हो जाता है, दस सेकन्ड के अन्दर ८० प्रतिशत और सौ सेकन्ड के भीतर समस्त महत्वपूर्ण अंश प्रगट हो जाता है। इस प्रकार आक्रमण के समय किसी व्यक्ति को दीवार या खाई का सहारा लेकर 'गामा किरणों' की प्रचंडता से बचने का समय ही नहीं मिलता। ऐसा करने में हो

सकता है कि उस की जान बच जाए। विस्फोट जनित अग्नि की लहरें प्रज्वलन का मुख्य कारण होती हैं और वे लगभग सारी-की-सारी धमाका शुरू होने के बाद तीन सेकंड के अन्दर ही अन्दर उत्पन्न हो जाती हैं। ये तरंगें "गामा किरणों" की भांति तीक्ष्ण नहीं होतीं। यद्यपि ऐसे अवसर पर समय बहुत ही थोड़ा मिल पाता है, परन्तु फिर भी कोई व्यक्ति तुरन्त ही सिर, हाथ या शरीर के अन्य नंगे भागों को बचाता हुआ बम की विपरीत दिशा में धराशायी हो जाए तो वह उष्णता की तरंग के एक भाग से बच सकता है। नील रश्मियां (Ultra-Voilet rays) भी उत्पन्न होती हैं, परन्तु ज्वलनशीलता में उन का प्रमुख भाग नहीं मालूम पड़ता। अमेरिकन रेडक्रास के मतानुसार यदि प्रकाश पुंज के प्रकट होते ही दो सेकन्ड तक किसी व्यक्ति को शरण मिल सके तो वह उष्णता की प्रचंडता के एक तिहाई भाग से बच सकता है।

जब बम फटता है, तो उस के चारों ओर की हवा गरम हो जाती है, वह उष्ण वायु तीव्र गति से फैलती है, और ऊपर की ओर उठती हुई कुचलने वाले दाब की तरंग उत्पन्न करती है। वायुदाब की यह वृद्धि बम के निकट अत्यन्त अधिक होती है, और दूसरी के साथ-साथ घटती जाती है। फटते हुए बम के ठीक नीचे धरती पर से पांच हजार फुट की दूरी पर दाब ८.४ वायुमण्डल तक बढ़ सकता है। हिरोशिमा पर गिराए गए बम के समान बम में इस दाब का यह अर्थ होगा कि १ वर्ग इंच में १५ पौंड के साधारण दाब के स्थान पर प्रतिवर्ग इंच १२६ पौंड दाब हो जाएगा। यह बहुत सी इमारतों को गिराने के लिये पर्याप्त है। यह दाब पहले अपनी चरमसीमा तक पहुंच जाता है फिर प्रसम से नीचे गिर जाता, और बाद में प्रसम अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यह सब कुछ बहुत ही जल्दी हो जाता है। दाब का यह परिवर्तन उस वायु के द्वारा प्रकट होता है जिसे यह ऊपर की ओर धकेल देता है। जोर की हवा पहले विस्फोट के केन्द्र से विपरीत दिशा में चलती है; और फिर मन्द गति से धमाके वाली भूमि के केन्द्र की ओर चलती है। पांच हजार फुट पर बाहर की ओर चलने वाली हवा दो सौ मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलती है। स्वभावतः वायुवेग बम की दूरी के साथ-साथ बदलता रहता है और बम के परिणाम के अनुसार भी परिवर्तित होता है। इस अध्याय में प्रयोग किए गए आंकड़ें में से सभी उस परिमाण के बमों पर आधारित हैं जो हिरोशिमा और नागा साकी में प्रयोग किए गए थे।

अणुविस्फोट से उत्पन्न होने वाले झटके की तरंगों की विशेषता यह है कि इस में पहले तापमान अचानक बढ़ जाता है फिर धीरे-धीरे दबाव कम होता है; इस में एक सेकन्ड लग जाता है। तब चूषण (चूसाव) की एक अवस्था आती है जब कुछ सेकन्डों तक वायुमण्डल का दाब प्रसम से भी कम हो जाता है। विस्फोट की तरंग की पहली अवस्था के साथ दाब में अचानक वृद्धि हो जाती है और दाब की समस्त अवस्था की ओर क्रमशः घटते हुए वेग के साथ बड़ी आंधी चलती है। चूषण (चूसाव) की अवस्था में प्रारम्भ में आंधी अपनी दिशा बदल देती है, परन्तु उस का वेग धीमा हो कर कुछ देर तक चालू रहता है।

याद रहे कि किसी इमारत को नष्ट करने में दो बातें मिल कर कार्य करती हैं। पहले तो दाब का कुचलने वाला प्रभाव और दूसरे दाब के परिवर्तन की तीव्र गति।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि 'गामा किरणों,' नीले प्रकाश तथा ताप-विकिरण की सी तीव्र गति से दाबग्र (Pressure Point) यात्रा नहीं करता। विस्फोट के ५ सेकन्ड के बाद दाबाग्र एक मील दूर पहुंचता है।

अणुबम के विस्फोट से आग लग सकती है। उष्णता की तरंगें जो झुलसा कर लोगों को घायल कर सकती हैं, वे जलनशील पदार्थों के जलने की सीमा से परे तापमान बढ़ा कर आग लगा सकती हैं। परन्तु विस्फोट की तरंगें जो थोड़ी देर बाद चलती हैं ऐसी आग को आम तौर पर बहुत हद तक बुझा देती हैं। इस का कारण यह है कि उष्णता की तरंगें तापमान को केवल थोड़े ही समय के लिये बढ़ाती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि अणुविस्फोट के सम्बन्ध में अधिकांश आग लगने की घटनाएं चूल्हों, अंगीठियों के उल्ट जाने और बिजली की टूटी हुई धारा-मण्डल (Electric Circuits) से घटित होती हैं। यदि यह छोटे-छोटे अग्निकाण्ड नियंत्रित न किए जाएं तो इन के द्वारा भयंकर अग्निकाण्ड का रूप उपस्थित हो सकता है। अनुभव से ज्ञात होता है, कि विस्फोट के बाद आधे घंटे से लेकर एक घंटे या इस से अधिक समय तक कोई भयंकर अग्निकाण्ड नहीं होता।

जो कुछ अभी तक कहा जा चुका है उस में अवशिष्ट विकिरण (Residual Radiation) की कोई चर्चा नहीं की गई है। छिन्न-भिन्न पदार्थ और बम की सामग्री उपर्युक्त विकिरणों से भिन्न विकिरण उत्पन्न करते हैं, इन में से कुछ भग्नावशेष किरणोत्सर्ग (Radio active) होते हैं, या कुछ कण निकलने पर किसी अन्य पदार्थ के कणों के साथ रगड़ खा कर किरणोत्सर्गीता (Radio activites) उत्पन्न कर सकते हैं। जहां अणुविस्फोट वायुमण्डल में ऊंचाई पर होता है, जैसा कि हिरोशिमा में हुआ था, वहां अवशिष्ट विकिरण बहुत सामान्य होता है। पृथ्वी पर या जल के अन्दर के विस्फोटों से कुछ क्षेत्रों में खतरा उत्पन्न हो सकता है, इस खतरे की गम्भीरता का कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर होता है कि आदमी इस खतरे की लपेट में कितनी देर रह चुका है और इस क्षेत्र में कितनी विकिरणोत्सर्गीता प्रवाहित है।

यदि जल के अन्दर बम का विस्फोट हुआ हो तो धमाका कम होगा और ज्वलनशीलता लगभग अविद्यमान रहेगी। परन्तु पानी की बौछार से वायुमण्डल में उछाले जाने पर जहां बूंदें गिरेंगी, वहीं तुरन्त ही नाना परिमाणों में अवशिष्ट विकिरण उत्पन्न हो जाएगा और पानी की लहरें तथा विस्फोट जनित कोहरे के आच्छादित आवरण द्वारा आसपास की भूमि एवं समस्त जल प्रवाह किरणोत्सर्गी पदार्थों के कारण दूषित हो जाएगा। उस क्षेत्र के निवासियों के लिये इस कोहरे का आच्छादन भयंकर सिद्ध हो सकता है।

इस अध्याय के आरम्भ में वर्णित, ऊंचाई पर किए गए, विस्फोटों की अपेक्षा उन विस्फोटों में कम धमाका और कम ज्वलनशीलता होती, जो धरती पर या पृथ्वी के धरातल के निकट किए जाते हैं। पृथ्वी पर के विस्फोट तात्कालिक विकिरण का विस्तार-क्षेत्र छोटा होता है, और अवशिष्ट विकिरण अधिक मात्रा में होगा। हर हालत में बहुत बड़ी मात्रा में धूल के कण उठ कर किरणोत्सर्गी पदार्थों के साथ मिल जाते हैं और वायु की दिशा में हो कर धरातल पर गिर जाते हैं। ये धूलिकण खतरनाक समझे जाने चाहियें।

सन् १९४५ में हिरोशिमा और नागासाकी में अणु विस्फोटों द्वारा हजारों की मृत्यु

का समाचार सुन कर सारा संसार स्तब्ध रह गया था। यदि जापानी लोगों को पता होता कि क्या होने वाला है और ऐसी अवस्था में सर्वनाश से बचने के लिये क्या करना चाहिये, तो मृत और घायलों की संख्या बहुत कम होती।

आज संसार उस युग में प्रवेश कर चुका है जिसे परमाणु युग कहा गया है। आधुनिक युद्ध के अस्त्र-शस्त्र अणु संचालित हैं और न केवल सामरिक साज-सज्जा तथा सैनिकों के लिये विनाशकारी हैं, बल्कि साधारण जनता के लिये भी उतना ही घातक है। हमारी प्रार्थना तो यही है कि इस पुस्तक के पाठकों में से किसी को भी इस अध्याय में दी गई अधि-सूचनाओं का प्रयोग करने की आवश्यकता न पड़े, परन्तु आज के संसार की अवस्था को दृष्टि में रखते हुए ऐसा लगता है कि सभी लोगों को इस विषय में जागरूक रहना समझदारी का काम होगा।

अणुआक्रमण के समय आत्मरक्षा सब से पहली बात है। इस का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी और अपने पड़ोसियों की सहायता करने के लिये इच्छुक और समर्थ होना चाहिये। हर व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिये कि बड़ी दुर्घटना के समय केवल उन लोगों के जीवित रहने की सम्भावना अधिक रहेगी, जिन्होंने इस विषय की शिक्षा पाई हो।

अणु बम के आक्रमण के उपरांत, हमें यह ज्ञात रहना चाहिये कि शायद हमें अपने घर में अजनबी लोगों को शरण देनी पड़े, या हो सकता है कि हम स्वयं दूसरों के यहां शरण लें और थोड़ी सी उपलब्ध आवश्यक वस्तुओं द्वारा ही काम चलाना पड़े। यदि उस समय आप ने इस अध्याय में पढ़ी हुई बातों का प्रयोग किया तो आप अपने साथियों की भलाई करने में सहायक हो सकेंगे और सम्भव है कि अनेकों की जानें भी बचा सकें।

आकस्मिक दुर्घटनाओं में कोई नहीं कह सकता कि कौन व्यक्ति कैसा व्यवहार करेगा। ऐसी अवस्था में कुछ लोग तुरन्त ही अपने आप को औरों के सहायक बना देते हैं, और साहस के साथ परिस्थितियों का सामना करने को तत्पर हो जाते हैं। दूसरी श्रेणी के लोग ऐसे हैं जो ऐसे अवसरों पर घबरा उठते हैं, आतंकित हो जाते हैं और अपने को असहाय बल्कि इस से भी गए गुजरे समझने लगते हैं। आधुनिक युद्ध और बड़ी-बड़ी आपत्तियां न केवल बड़े पैमाने पर चोट-चपेट का कारण होती हैं, बल्कि प्रभावित क्षेत्र के लोगों को बीमारी इत्यादि अनेक दूसरे प्रकार के खतरों का शिकार भी बना देती हैं। इस प्रकार की आधि-व्याधियां घावों के पक जाने, शरीर की अ-रक्षित दशा और थकावट के कारण उत्पन्न होती और फैलती हैं। संक्रामक रोग भीड़-भाड़ या स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के प्रतिकूल अवस्थाओं के कारण तीव्र गति से फैलते हैं। परिवार के सदस्यों विशेषत: बच्चों तथा पड़ोसियों को झिल्लीक-प्रदाह, कुकर खांसी, चेचक, हैजा और हनुस्तम्भ या जमुहां (Tetanus) इत्यादि बीमारियों की रोक-थाम के लिये टीका लगा कर सुरक्षा प्राप्त कर लेने के लिये प्रोत्साहन देने का पूरा प्रयत्न होना चाहिये। विस्फोटों के द्वारा चोट आ जाने पर रोगों से सुरक्षित रहने के निमित्त हनुस्तम्भ के अवरोध विशेष बल देना चाहिये।

दुर्घटना के समय उपलब्ध होने वाली भोजन सामग्री बहुत ही सीमित हो सकती है, परन्तु चूंकि बीमार और घायलों के लिये पोषक पदार्थ बहुत आवश्यक हैं, इसलिये

ऐसी दशा में उन का पूरा ध्यान रखना चाहिये। भोजन द्वारा फैलने वाली बीमारियां और किरणोत्सर्गिता द्वारा भोज्य पदार्थों के दूषित होने की सम्भावना भी याद रखने वाली बात है।

किसी भी आपत्ति के समय हिम्मत न छोड़िये, और उपलब्ध साधनों का अच्छे से अच्छा प्रयोग कीजिये। ऐसे अवसर पर थोड़ी बहुत गड़बड़ी होना स्वाभाविक है। परिस्थिति का मुकाबला करने के लिये भरसक प्रयत्न कीजिये, और अपनी सूझ-बूझ व विवेक-शक्ति का अच्छे-से-अच्छा प्रयोग कीजिये। इस बात का अच्छी प्रकार प्रदर्शन हो चुका है, कि हिम्मत से काम लेने वाले थोड़े से लोगों का उदाहरण सब लोगों में साहस और दृढ़ता पैदा करने में समर्थ होता है।

बहुत बड़े और भयंकर संकट के समय अनेक लोगों में आतंक छा जाता है, और कुछ लोगों में उत्साह-हीनता दृष्टिगोचर होने लगती हैं। संकट का सामना करने की योग्यता और साधन सम्पन्नता का उदाहरण प्रस्तुत कर के आप अपने चारों ओर के लोगों को अनेक प्रकार की सहायता पहुंचा सकते हैं। लोगों को बताइये कि संकट का जोर निकल गया है। भागने से कुछ काम नहीं बनेगा। उन्हें विश्वास दिलाइये कि देश और राष्ट्र के साधनों का प्रयोग किया जाएगा, शरण, खाद्य सामग्री और दवा-दारू का प्रबन्ध होगा, यातायात के साधन स्थापित किए जाएंगे। धर्मार्थ कार्य-कर्ताओं के मण्डल कार्यशील हो जाएंगे और यह भी बताइये कि घर के अन्दर ही शांत रहना सब से अच्छा है। इस प्रकार से आप उन लोगों को कुछ ऐसा कार्य करने को दे सकेंगे जो उन की तात्कालिक समस्याओं में सहायक सिद्ध होगा। यह तो सभी भली भांति जानते हैं कि लोगों के नैतिक स्तर को बनाये रखने के लिये उन्हें किसी योग्य कार्य में लगा देना सब से अच्छा उपाय है।

साधारणतया भयंकर विस्फोटक बमों के आक्रमण के उपरांत कुछ ऐसे क्षेत्र होंगे जिन्हें "ध्वंस के टापू" कहा जा सकता है, अर्थात् कुछ ऐसे स्थान होंगे जहां भयंकर विस्फोट हुआ होगा और जहां सब कुछ तहस-नहस हो चुका होगा। अणु बमों के विस्फोट की अवस्था में एक केन्द्रीय और उस के बाहर ध्वस्त क्षेत्र क्रमशः कम होता जाता है और फिर ऐसी सीमा आ जाती है जिस के उपरांत बम का विनाशकारी वेग नहीं पहुंच पाता।

बारूद बनाने के कारखानों, तेल-शोधक कारखानों या इसी प्रकार के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में होने वाले विस्फोटों में भी धमाके का प्रभाव ऐसा ही होता है जैसा बड़े जोर से फटने वाले बमों का।

ध्वंस के केन्द्रीय क्षेत्र में तो शायद कोई जीवित बच पाता हो, परन्तु जो वहां जीवित रह गए हों उन के पास तक पहुंचना बहुत कठिन होता है। सड़कों में बाधाएं आ जाती हैं और पीड़ित लोग जीवित रहते हुए भी फंसे-के-फंसे रह जाते हैं या मलबे में दब सकते हैं। विस्फोट से दूर बाहर की ओर सहायता पहुंचाने वाली टोलियां प्रभावशाली कार्य कर सकती हैं। सहायता पहुंचाने वाली टोलियों को संगठित कर के ऐसे क्षेत्रों में भेजना चाहिये ताकि वे ठीक-ठीक प्रकार से दुर्घटना-ग्रस्त लोगों का पता लगा कर उन की सहायता करें और उन्हें प्राथमिक सहायता दें। इन दलों के लिये स्वभावतः यह बड़ा

कठिन कार्य होगा परन्तु यह अवसर ऐसा है कि कष्ट से मुक्ति और प्राथमिक सहायता के रूप में पीड़ितों की सब से अधिक भलाई की जा सकती है।

उदाहरण के लिये कल्पना कीजिये कि आप के मकान से चार मील के अन्तर पर अणु बम का विस्फोट होता है, धमाके से उत्पन्न हुई लहर से आप के घर की खिड़कियां टूट जाती हैं, दीवारों से पलस्तर उखड़ कर गिर पड़ता है और छत से खपरैलें उड़ कर दूर जा गिरती हैं। आप के बच्चे की बांह में चोट आ जाती है। आप रक्त-प्रवाह को काबू में ले आते हैं और घाव पर पट्टी बांध देते हैं। बच्चे को लेकर भीड़-भाड़ वाले दूरवर्ती दवाखाने को तुरन्त चल पड़ना भी उचित नहीं। दूसरे दिन तक ठहरना ठीक होगा ताकि तब तक अस्पताल में भीड़ कम हो जाए, अतएव अधिक प्रतिक्षा नहीं करनी पड़ेगी और अधिक ध्यान से इलाज हो सकेगा। ऐसे विस्फोट के बाद चुने हुए स्थानों में प्राथमिक सहायता-केन्द्र कई दिन तक कार्य करते रहेंगे और ऐसे पीड़ितों का उपचार करते रहेंगे जिन्हें अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता नहीं। इस बीच, जैसा कि ध्वंस की बड़ी-बड़ी घटनाओं में होता है, दूर से डॉक्टर और नर्सें सहायता के लिये बुलाई जाएंगी।

ऐसी दुर्घटनाओं में याद रखिये कि आप को अधिक-से-अधिक पीड़ितों की भरसक सहायता करनी चाहिये। असावधानी या गफलत में न पड़िये क्योंकि यह अवसर तुरंत कार्य करने का है। प्रस्तुत अवस्था में बढ़िया-से-बढ़िया प्राथमिक सहायता जो संभव हो सके दीजिये। यह सदा याद रखिये कि रक्त-प्रवाह को रोकने की ओर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता होती है, सदमे पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है और संक्रामक रोगों की संभावना पर ध्यान देना आवश्यक है। जिस क्रम से हम ने इन्हें लिखा है उसी क्रम से इन बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। कोई भी समझदार व्यक्ति इन समस्याओं का समाधान भली भांति कर सकता है। यदि आप के सामने ऐसी परिस्थितियां उपस्थित हों जिन का समाधान आप भली भांति न कर सकते हों, तो आप को अधिक जानकार और अधिक अनुभवी लोगों की सहायता लेनी चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि आप को प्राथमिक सहायता-केन्द्र के चिकित्सक की सहायता और सलाह लेनी पड़े, या निकट पड़ोस के घायल और पीड़ितों को देखने के लिये डॉक्टर को ले जाना आवश्यक हो।

अनुमान किया गया है कि हिरोशिमा के प्रकार के बम विस्फोट से निम्न प्रकार की क्षतियां हो सकती हैं। ५०% व्यक्ति घायल होंगे, ६०% जल जायेंगे और २०% किरणाग्नि से प्रभावित हो जाएंगे। इस प्रकार संभव है कि अनेक लोग एक से अधिक प्रकार से पीड़ित हों। पहले हफ्ते में घावों और जले हुए भागों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। तदनन्तर इन पीड़ाओं से ध्यान हटा कर विकिरण जनित कष्टों की ओर ध्यान देने के लिये अधिक समय देने की जरूरत होती है।

अणु विस्फोटों से उत्पन्न होने वाले अधिकांश कष्ट बहुत कुछ उसी प्रकार के होते हैं जैसे अधिक विस्फोटक बम से उत्पन्न होते हैं। उन का इस प्रकार वर्गीकरण हो सकता है। (१) धमाके के वेग से उत्पन्न होने वाली क्षतियां। ये धमाके से परोक्ष-कण में होने

वाले कष्ट हैं या कहे जा सकते हैं। तरंग के वेग से इमारतें गिर पड़ेंगी, शीशे चकनाचूर हो जाएंगे और इसी प्रकार की अन्य हानियां होंगी जिन से शारीरिक व्यथाएं होती हैं। दाब के परिवर्तन के कारण धमाके से प्रत्यक्ष रूप में नुकसान हो सकते हैं। वैसे जीवित रहने वाले लोगों में ऐसा देखने में नहीं आता या बहुत ही कम होता है। (२) जले हुए के घाव—ये घाव बम की चकाचौंध करने वाली गरम तरंगों की चमक से उत्पन्न होते हैं या लपटों अथवा अन्य गरम वस्तुओं के संपर्क में आने से हो जाते हैं। (३) विकिरण से उत्पन्न व्यथा:— ऐसा अनुमान किया जाता है कि हिरोशिमा और नागासाकी की मृत्यु संख्या में से ८५% यांत्रिक वेग जनित घावों, हड्डियां टूटने और इसी प्रकार की दूसरी क्षतियों अथवा जलने की वारदातों के कारण ही घटित हुई थीं जब कि ५ से ले कर १५ प्रतिशत मृत्युओं का कारण केवल विकिरण से उत्पन्न व्यथा सिद्ध हुई। इस पुस्तक में अन्यत्र 'आकस्मिक दुर्घटनाओं में प्राथमिक सहायता या चिकित्सा' में काम आने वाली जो बातें बताई गई हैं वे दाह, विस्फोट एवं धमाके की घटनाओं में भी समान रूप से काम आती हैं, इस कारण यहां पर उस की चर्चा नहीं की जाएगी। अस्तु, इस बात का ज्ञान मूल्यवान होगा कि कोई भी अपारदर्शी पदार्थ, चमक से दाह उत्पन्न करने वाली ताप की तरंग से थोड़ी बहुत रक्षा अवश्य करता है। वस्त्रों से भी शरीर की बड़ी रक्षा होती है। हां, बम के निकट कपड़ों से पर्याप्त रूप में रक्षा नहीं हो पाती। हल्के रंग के ढीले वस्त्र सब से अच्छे होते हैं। गहरे रंग के कपड़े रक्षा अवश्य करते हैं परन्तु ये परावर्तित करने की अपेक्षा ताप की तरंगों को शोषित करते हैं, अतएव संभव है कि गहरे रंग के कपड़े लपट पकड़ जाएं और शरीर को जला कर गंभीर रूप से घाव उत्पन्न कर दें।

यह भी जानना आवश्यक है कि उष्ण विकिरण सीधी रेखाओं के रूप में फैलता है। इस प्रकार खुले में अ-रक्षित रहने पर अथवा मकानों की खिड़कियों को विस्फोट के स्थान के समान धरातल की सीध में होने से ही हानिकर प्रभाव हो सकता है। 'गामा किरणों' की अपेक्षा, बम से बहुत दूरी पर भी खुली और अ-सुरक्षित अवस्था में रहने पर, लोगों के अंग चमक से ही जल सकते हैं। जापानियों को पता लगा कि चेहरे, हाथ या शरीर के नंगे भागों पर ही सब से अधिक व्यथाएं पहुंचीं। दूसरे प्रकार से दाहव्रणों से वे लोग सन्तप्त हुए जो मलबे में घिर गए थे अथवा जो चोट के कारण इतने पंगु हो गए थे कि विस्फोट स्थल से हट न सके।

विस्फोट के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली चोट-चपेट का जहां तक संबंध है, दाब के अधिक वेग के कारण अनेक लोग घायल हो जाएंगे। उड़ते हुए शीशे के टुकड़ों से कट जाना केवल बाहरी आघात होंगे, परन्तु कभी-कभी ये गहरे भी हो सकते हैं। ऐसे घाव शरीर के किसी भी भाग में हो सकते हैं उन के द्वारा बहुत रुधिर-स्राव और सदमा भी हो सकता है। इन से गहरे छिद्र युक्त घाव हो सकते हैं, और शीशे के टुकड़े, गारे के कण लकड़ी के टुकड़े इत्यादि शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। बहुधा शरीर पर अनेक घाव हो जाएंगे। प्राय: देखा गया है कि विस्फोटक घटनाओं में पीड़ितों के शरीर में अनेकों छोटे-छोटे शीशे के टुकड़े प्रवेश कर गए। बहुधा वे खंड इतने छोटे होते हैं कि कपड़ों से शरीर की रक्षा नहीं हो सकती। उड़ते हुए पदार्थों से हड्डियों में चोट पहुंच जाती है और उपरोक्त प्रकार के घाव हो जाते हैं। घाव का आकार भ्रांतिकारक भी हो सकता है

एक छोटा सा घाव उदर की दीवारों से होता हुआ बड़ा हो सकता है अथवा छाती में घुसता हुआ कोई टुकड़ा भयंकर चोट पहुंचा सकता है।

धमाके से पेट के अवयव, पेशाब के मार्ग या छाती इत्यादि की अन्दरूनी चोट का वैसे पता न चले तो प्रवेश करते हुए घाव, कुचले घाव, फफोले या पीड़ित की आप बीती सुन कर अंदाजा लग सकता है। यदि पीड़ित आंतरिक वेदना की शिकायत करे या शक्तिहीनता प्रकट करे, तो प्रकट लक्षण न होने पर भी अन्दरूनी चोट की आशंका करनी चाहिये। वैसे तो डॉक्टरी जांच से ही ऐसी व्यथाओं की गम्भीरता का पता चल सकता है।

हवा के बहुत बढ़े हुए दाब में अ-सुरक्षित रहने पर धमाके द्वारा शरीर को क्षति पहुंचती है। ऐसी अवस्थाएं युद्ध में, साधारण प्रकार के अधिक विस्फोटक बमों के कारण अथवा कारखानों में आकस्मिक विस्फोटों में भी हो जाती हैं। ऐसे आघातों में अन्दरूनी चोटें पहुंचती हैं। दाब के कारण शरीर का शीघ्रतया संपीड़न और फैलाव आंतरिक अवयवों में रक्त स्राव युक्त कर देते हैं। अणु विस्फोटों से तात्कालिक जीवित व्यक्तियों में ऐसी क्षतियां नहीं पाई जातीं। अणु विस्फोटों के धमाकों से मकानों के गिर जाने या मलबा बिखर जाने से लोगों को परोक्ष रूप से चोटें पहुंचती हैं। इस प्रकार की व्यथाएं ऐसी नहीं होतीं, जैसी व्यथाओं का यहां वर्णन किया जा रहा है।

विस्फोट जनित चोटों के लक्षण चोट की गंभीरता की मात्रा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। पीड़ित की छाती में दर्द हो सकता है। उसे उबकाई आ सकती है उसे उल्टी हो सकती है। उस के पेट में दर्द और उस की सांस उखड़ी हुई हो सकती है। कभी-कभी वह खांसी के साथ रक्त भी आ सकता है। कभी-कभी पीड़ित बेहोश हो जाता है। उस के कान के पर्दे फट सकते या क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। कान के पर्दे के छिद्र जाने के कारण दर्द होता है और सुनने में रुकावट पड़ती है। ऐसे कर्ण छिद्र शीघ्र ठीक हो जाते हैं यद्यपि कभी-कभी कई-कई दिन तक अथवा सदैव के लिये बहरापन बना रह सकता है।

विस्फोट से बहुधा उत्पन्न होने वाली दूसरी प्रकार की व्यथा कुचले जाने के कारण होती है। इन में हड्डियों की चोटें और अनेक आंतरिक क्षतियां हो सकती हैं। जो लोग मलबे में घिर जाते हैं और जिनके शरीर के किसी भाग पर भारी वजन पड़ जाता है उन के पुट्ठे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। जब कई घंटों तक यह दबाव पड़ता रहता है तो पुट्ठे से निकल कर हानिकर पदार्थ गुर्दों को नुकसान पहुंचाते हैं चाहे मलबे में घिरे होने की अवस्था से तुरंत निकाले जाने पर कोई व्यक्ति अच्छी हालत में क्यों न दिखाई दे। ऐसी अवस्था में व्यथित भाग में गर्मी नहीं पहुंचानी चाहिये।

मूर्छा और दूसरे प्रकार के श्वास-कष्ट ऐसे स्थान में घिर जाने वाले लोगों को पीड़ा पहुंचाते हैं जहां अधिक विस्फोट बम अथवा किसी अन्य प्रकार के धमाके हुए हों। अनेक अवस्थाओं में डूब जाने की भी संभावना होती है। बिजली की पकड़ से मृत्यु भी हो सकती है और यदि कोई भग्न इमारतों के आस-पास पीड़ितों की सहायता का कार्य कर रहा हो तो उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं अब भी तारों में बिजली की धारा प्रवाहित न हो रही हो। कुछ औद्योगिक केन्द्रों में हानिकर रासायनिक पदार्थ भी समस्या उत्पन्न कर सकते हैं।

गैस धाराओं के टूट जाने के फलस्वरूप गैस का जहरीला हो जाना अधिक संभव नहीं है परन्तु फिर भी जहां एकांत स्थल पर तहखाने में विशेष कर उस स्थान पर जहां हवा, दम घोटने लगे, वहां इस बात की संभावना पर विचार कर लेना चाहिये। अस्तु विस्फोटों के बाद दम घुट जाने और मूर्छा मुख्य कारण छाती पर दबाव डालने वाले मलबे शहतीर इत्यादि के भार ऐसे घाव हो सकते हैं जो सांस लेने में रुकावट उत्पन्न करें। अतएव छाती की ऐसी जकड़न आदि मिन्टों के अन्दर संभाल ली जानी चाहियें क्योंकि छाती का कार्य पूरी तरह रुक जाने के कारण मृत्यु होना अनिवार्य है। ऐसा बचाव कार्य वही लोग शीघ्रतया कर सकते हैं जो पीड़ितों के अत्यंत निकट हों। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि चेहरे, गर्दन, और छाती के घावों से स्वांस-प्रश्वास में कठिनाई उत्पन्न होने से पीड़ितों का दम घुट सकता है। यह भी याद रखना ठीक होगा कि यदि गले या छाती में सूजन हो गई हो तो सांस लेने में अधिक समय लगने पर अधिकाधिक कठिनाई हो सकती है।

आंख की चोट पर सब से पहले ध्यान देना चाहिये, आंख के गोलक (ढेले) को सर्व प्रथम संभालना चाहिये उस के चारों ओर के तन्तु जाल को बाद में संभाला जा सकता है, यदि पीड़ित एक आंख में बड़े धुंधलेपन या एक आंख से केवल सीमित दूरी तक दिखाई देने की शिकायत करे जो उसका तुरन्त इलाज होना चाहिए। जापान के अणु बम आक्रमण से अनेक पीड़ितों की नेत्र ज्योति लगभग पांच मिनट तक मन्द पड़ गई थी और कुछ हालतों में दो-दो दिन तक उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। आंख के गोलक (ढेले) की चोट में पीड़ितों की आंखें हलके कपड़े से ढक दीजिए, उन्हें पीठ के बल चित्त लिटाकर सुरक्षित स्थान में ले जाइये और शीघ्र उन्हें योग्य चिकित्सक को दिखा कर इलाज करवाइये।

विकिरण जनित व्यथा (Radiation Sickness) की अभी तक चर्चा नहीं हुई इसलिए अब हम इस विषय में विस्फोट और विकिरण के दूसरे रूपों की जो कुछ चर्चा की गई है उस की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार करेंगे। विकिरण से संबंध वाले खतरों के विषय में बड़ा प्रचार किया गया है। हमारे पाठकों को ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि विकिरण से व्यथा अवश्य होती है तथापि प्राथमिक सहायता पहुंचाने वाले या आकस्मिक दुर्घटना के समय यथासाध्य सहायक कार्य करने वाले जानकार व्यक्ति के समक्ष इस से कोई विशेष समस्या उपस्थित नहीं होती। स्वभावत: विकिरण से उत्पन्न होने वाली व्यथा साधारण विस्फोट या ज्वलनशील प्रकार के अग्नेय बम से अथवा कारखानों से होने वाले विस्फोटों से भी उत्पन्न नहीं होती।

अभी तक की गई सम्यक खोज-बीन और जाच-पड़ताल के अनुसार ऐसा विश्वास किया जाता है कि बिल्कुल अ-सुरक्षित अवस्था में छूट जाने पर भी जो लोग विस्फोट से ६,००० फुट या इस से अधिक दूरी पर थे उन्हें विकिरण द्वारा किसी विशेष प्रकार की क्षति नहीं पहुंची। ऐसे बहुत कम उदाहरण मिले जिन में विस्फोट स्थल से एक मील से लेकर ६,००० फुट की दूरी पर स्थित लोगों में बाद में, रक्त में थोड़े-बहुत परिवर्तन की शिकायत पाई गई। परन्तु विकिरण के प्रभाव से केवल हल्के असर और अनिश्चित लक्षणों के अतिरिक्त शायद ही कोई व्यथा प्रगट हुई हो। पाठकों को

अवश्य ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ये दूरियां केवल ऐसे लोगों से संबंध रखती हैं जो हिरोशिमा के प्रकार के, पर्याप्त ऊंचाई पर आकाश मंडल में किये गए विस्फोटों के समय बिलकुल अ-सुरक्षित अवस्था में छूटे हुए हों।

न पीड़ितों को और न उन का इलाज करने वालों को पता चल पाता है कि विकिरण से किस प्रकार की अ-सुरक्षा रही होगी। कोई नहीं जानता कि बाद में क्या खतरा होगा और उस की क्या सीमा होगी क्योंकि विकिरण दृष्टिगोचर नहीं होता। यह सत्य है कि "गामा किरणें" बड़ी तीक्ष्ण होती हैं, परन्तु यह भी सत्य है कि बम तथा व्यक्तियों के बीच जितना अधिक भारी पदार्थ होगा उतनी ही सुरक्षा उन्हें प्राप्त हो जाएगी। 'गामा किरणों' से बचने में कपड़ों से कोई लाभ नहीं हो सकता।

विकिरण जनित व्यथा (Radiation Sickness) के लक्षण बाद में प्रकट होते हैं और अनजान व्यक्ति के लिए इस बात का पता लगाना कठिन हो जाता है कि ऐसी कोई व्यथा हो गई या होने वाली है। ऐसा प्रतीत होता है कि जापान में सावधानी में कमी और सामान्य पथ-प्रदर्शन का अभाव होने पर भी पहले ही दिन जी मिचलाने और उल्टियों की शिकायत से लोग मुक्त हो गए थे। बड़े परिणाम में विकिरण द्वारा उबकाई आती है, उल्टियां होती हैं और अत्यंत चिंता एवं डर उत्पन्न होता है, किन्तु भय तथा चिंता से भी अवस्थायें उत्पन्न हो जाती हैं। विकिरण जनित क्षति के परिणाम स्वरूप थोड़े ही दिनों या हफ्तों में बिना उबकाई या उल्टियों के भी भूख में कमी, थकावट, अतिसार, प्यास एवं ज्वर प्रकट हो सकते हैं। कुछ लोगों के सिर के बाल भी कुछ समय उपरांत संभवत: एक या अनेक हफ्तों बाद उड़ जाते हैं, परन्तु वे शीघ्र ही उग आते हैं।

बम वर्षा अथवा विस्फोट के समय विकरण जनित क्षति के संबंध में औसत दर्जे का आदमी कुछ भी नहीं कर सकता अर्थात् जो कुछ भी बाद में किया जाय वह योग्य चिकित्सकों द्वारा किया जाना चाहिए। यह याद रखना ठीक होगा कि जो लोग किरण ताप में खुले छूट गए हों उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने को अधिक न थकावें और ठण्ड से बच कर रहें। उन्हें पर्याप्त मात्रा में भोजन पानी और निद्रा प्राप्त होनी चाहिए। उन्हें चाहिए कि अच्छी प्रकार पर्याप्त मात्रा में वस्त्र पहिनें, छोटे-मोटे घावों को स्पर्श-संक्रमण से बचावें। उन्हें चाहिए कि पीलेपन, असाधारण थकावट उपस्थित या बाद में विकसित होने वाले संक्रमण के विषय में डॉक्टर का परामर्श लें, परन्तु याद रहे कि अणु आक्रमण में अपंग हो जाने का मूल कारण विकिरण नहीं होता।

अध्याय ३८

सूइयां और जीवाणु-विकास-अवरोधक औषधियां

(Injections and Antibiotics)

वस्त्र, घर की सजावट और मनोरंजन आदि के विषय में तो लोगों को एक सनक सी सवार रहती ही है, परन्तु स्वास्थ्य और औषधियों के प्रयोग में भी उन का यही हाल रहता है। कुछ वर्ष हुए प्रत्येक व्यक्ति की ओर से 'सल्फा' औषधियों (Sulpha Drugs) की मांग रही। फिर लोग कुछ वर्षों तक पैनीसिलिन (Penicillin) के पीछे दीवाने रहे। इस के बाद लोगों की सनक औरियोमाइसिन (Aureomycin) की ओर घूम गई और आज-कल यह सनक उन औषधियों व उपचारों पर केन्द्रित हो गई है जिन्हें 'फ़ुल स्पेक्ट्रम एंटीबायोटिक्स' (Full Spectrum Antibiotics) कहते हैं अर्थात् ऐसी औषधियां और ऐसे उपचार जो रोगों के कीटाणुओं के विकास को रोकते हैं। कोई नहीं कह सकता कि कुछ सप्ताहों या महीनों बाद क्या हो। अत: यह जान लेना आवश्यक है कि और बातों के समान औषधियों और उपचारों में भी सनक चलती है।

यह बात विशेष रूप से भली भांति समझ लेनी चाहिये कि यद्यपि किसी खास नाम से, किसी विशेष व्यापारिक संज्ञा या किसी विशेष प्रकार के 'एंटीबायोटिक' के रूप में जब कोई औषधि बिकती है, तो चाहे वह अनुसंधान के नाते नवीनतम वस्तु ही क्यों न हो, यह नितांत आवश्यक नहीं कि वह किसी भी रोग या सभी रोगों के लिए सर्वोत्तम औषधि या उपचार सिद्ध हो। हो सकता है कि वह किसी खास बीमारी या संक्रमण के लिए बहुत सफल हो सके, परन्तु दूसरे प्रकार की व्याधियों में उस का कोई मूल्य नहीं भी हो सकता।

अनेक लोग यह समझते हैं कि हमें किसी विशेष प्रकार के 'एंटीबायोटिक' का इंजेक्शन या 'पैनिसिलिन का इंजेक्शन' लगवाना चाहिये या 'सल्फा' औषधि द्वारा उपचार कराना चाहिये। ऐसी अवस्थाओं के सम्बन्ध में चेतावनी के एक-दो शब्द आवश्यक हैं। इस बात की पूरी सम्भावना है कि 'सल्फा' औषधियों का ना-समझी से प्रयोग करने वाले लोग अपने आप को स्थायी हानि पहुंचा सकते हैं। ऐसी औषधियों का प्रयोग केवल तभी होना चाहिये जब उन बीमारियों या संक्रमणों का इलाज किया जा रहा हो जिन के लिए वे विशेषत: उपयुक्त हैं; परन्तु प्रत्येक प्रकार की व्याधि में ना-समझी से उन औषधियों के प्रयोग से मनुष्य के शरीर में ऐसी अवस्था उत्पन्न हो सकती है जो अच्छी नहीं कही जा सकती। 'पैनीसीलिन एवं अन्य एंटीबायोटिक्स' का प्रत्येक प्रकार के शारीरिक उत्पात

में बार-बार प्रयोग करने से यह संभव हो सकता है कि जब किसी ऐसे संक्रमण के इलाज के लिये उन की अत्यंत तीव्र आवश्यकता हो जिस के लिए वे प्रभावशाली सिद्ध हो सकते हों, तो बिना समझे-बूझे और बार-बार उन का प्रयोग करने से उन का प्रभाव कम हो सकता है अतएव वे तत्सम्बन्धी दोष उस प्रकार दूर नहीं कर सकते जिस प्रकार उस अवस्था में करते हैं जिस में सोच समझ कर उन का प्रयोग किया जाता है। अत: इस पुस्तक के प्रकाशक इस बात पर बल देते हैं कि 'सल्फा' के समान औषधियां तथा स्वास्थ्य-लाभ के लिए 'पेनीसिलिन' अथवा 'एंटीबायोटिक्स' का प्रयोग बहुत ही कम करना चाहिये और यदि किया भी जाए, तो केवल तभी जब स्वास्थ्य-रक्षा या किसी उपचार विशेष के लिए उन की अत्यन्त आवश्यकता पड़े.।

ऐसा लगता है कि संसार के अनेक भागों पर सूई (इन्जेक्शन) की सनक सवार है। बहुत से लोग समझते हैं कि यदि कम्पाउन्डर, डॉक्टर, वैद्य या अन्य कोई व्यक्ति उन के सूई लगा दे, तो उन के स्वास्थ्य के सुधारने में जादू का सा असर हो जाएगा। परन्तु ऐसा होना आवश्यक नहीं। दुर्भाग्य से अनेक अनैतिक व्यक्ति ऐसे लोगों के अन्धविश्वास का नाजायज फायदा उठाते हैं और बिना आवश्यकता के ही उन्हें 'इन्जेक्शन' लगा कर मनमाने दाम वसूल करते हैं जब कि ऐसी सूइयों में मामूली सा ऐसा पदार्थ होता है जिस में औषधि का कुछ भी अंश नहीं होता।

सूइयों का अपना निजी स्थान है, परन्तु वे भी लाभप्रद हो सकती हैं जब किसी व्यक्ति की बीमारी में उन के प्रयोग की आवश्यकता का वास्तविक संकेत मिले। सूइयां तभी लगानी चाहियें जब उन की अत्यंत आवश्यकता हो। सूई लगाने में खतरा हो सकता है और स्वास्थ्य लाभ एवं स्वास्थ्य रक्षा के लिये बिना विशेष आवश्यकता के उन की सिफारिश नहीं करनी चाहियें।

अध्याय ३९

पोलियो (Polio) या शिशु पक्षाघात

पोलियो एक बहुत पुरानी बीमारी है, परन्तु इस की आधुनिक जानकारी १९०५ ईस्वी से पूर्व नहीं हो सकती थी।

पक्षाघात अचानक और बहुधा बिना किसी चेतावनी के बच्चों पर आक्रमण करता है चाहे वे स्वस्थ, अच्छा भोजन प्राप्त करने वाले और अच्छे घरों के निवासी, अथवा कमजोर, भरपेट भोजन न पाने वाले और झोंपड़ी के निवासी हों। इस का प्रहार होने पर पीड़ित व्यक्ति के कुटुम्ब को अनेक दिनों या हफ्तों तक संशय और अनिश्चितता बनी रहती है और इस बात का अनुमान नहीं हो पाता कि इस आघात का अंतिम रूप क्या होगा। प्राय: देखने में आता है कि पक्षाघात से पीड़ित व्यक्ति सदा के लिये अपंग हो जाते हैं। जब यह प्राणहानि करता है तो शीघ्र ही घातक प्रहार करता है, परन्तु आम तौर पर सख्त बीमारी के बाद ही ऐसा होता है।

शिशु-पक्षाघात इस रोग के दो व्यापक रूप से प्रचलित नामों में से एक नाम है। पहले-पहल शिशु और बच्चे ही इस बीमारी के शिकार होते थे और उन्हीं दिनों इस बीमारी का नामकरण हुआ। दूसरी बात यह भी है कि रोग का प्रमुख लक्षण लकवे के रूप में प्रगट होता है यद्यपि अनेक बार यह पक्षाघात स्थायी नहीं होता। इस संज्ञा का पहला शब्द अब अधिकाधिक अनुपयुक्त होता है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में कम-से-कम इस रोग के पीड़ितों का २५ प्रतिशत दस वर्ष से ऊपर की अवस्था वाले बालक थे और अधिक अवस्था के पीड़ितों की संख्या भी दृढ़ता से बढ़ती जा रही है।

शिशु-पक्षाघात का दूसरा नाम 'पोलियो' है। यह पोलियो माइलाईटिस (Polio-myelitis) का छोटा रूप है, और तीव्र एन्टीरियर पोलियो माइलाइटिस (Acute Anterior Polio-myelitis) कहने का संक्षिप्त प्रकार है।

जो व्यक्ति तीन शब्दों का अर्थ समझता है वह इस बीमारी का अर्थ जान लेता है। यह बीमारी बड़ी तीव्र होती है अर्थात् यह अचानक तीव्र गति से आती है और बड़ी भीषण प्रकार की होती है। यह रोग सूजन उत्पन्न करने वाला है। सूजन सुषुम्ना (Spinal Cord) या लम्ब नाड़ी (Medulla) अथवा दोनों में आ जाती है। सब से अधिक गंभीरता से प्रभावित होने वाले भाग केन्द्रित चेता-संस्थान के आगे बढ़े हुए 'सींग' हैं जो 'H' आकार के और भूरे वर्ण के आंतरिक दो खंडों का रूप उपस्थित करते हैं। इन 'सींगों' पर स्नायु कोष (Nerve Cells) स्थित होते हैं जो शरीर के सभी ऐच्छिक पेशियों के कार्य का संचालन करते हैं।

केन्द्रिय चेता-संस्थान के 'पोलियो' द्वारा सब से अधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्र वे हैं जो पीठ, छाती, गर्दन, गले और कुछ सीमा तक आंखों जैसे अवयवों की पेशियों पर नियंत्रण रखते हैं। अधिकांश घटनाओं में ये सभी पेशियां प्रभावित नहीं होतीं; सामान्यतया केवल एक बांह या एक टांग ही पक्षाघात के लक्षण प्रकट करती हैं। जब छाती के सांस लेने में सहायक पेशियां बेकार हो जाती हैं, तो जीवन की रक्षा ही सब से प्रमुख समस्या बन जाती है। परन्तु चाहे बीमारी के लक्षण कुछ भी हों, हमें याद रखना चाहिये कि प्रत्येक स्थिति में शरीर के जिन अंग या उपांगों पर लकवा पड़ता है, प्राय: उन्हीं पर सीधा प्रहार नहीं होता। पहले इन भागों के कार्यों पर नियंत्रण रखने वाले केन्द्रिय चेता-संस्थान में स्थित कोषों पर क्षति पहुंचती है। चूंकि बिना स्नायु-नियंत्रण के कोई भी पेशी कार्य नहीं करती अतएव स्नायु कोष पर स्थायी या अस्थायी हानि पहुंचने का अर्थ यह हुआ कि उन के द्वारा नियंत्रित पेशी थोड़े या अधिक समय तक पक्षाघात से प्रभावित हो गई, यद्यपि कुछ अवस्थाओं में किसी पेशी विशेष को संचालित करने वाले कोष ऐसी हानि से बच भी सकते हैं और इस के फल स्वरूप सारी पेशी पक्षाघात से पूरी तरह पीड़ित न हो कर केवल शिथिल हो जाएगी।

जब गले की पेशियां, विशेषत: नरम तालु या निगलने से संबंधित पेशियां लकवे से प्रभावित होती हैं, तो खतरे की वास्तविक स्थिति उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि ये पेशियां लम्ब नाड़ी (Medulla) में स्थित उन कोषों के समूहों द्वारा संचालित होती हैं जिसे कभी-कभी सुषुम्ना-शीर्षक (Bulb) कहते हैं। इस तथ्य से सुषुम्ना-शीर्षक (Bulb) के पक्षाघात (Bulbar Polio) शब्द की उत्पत्ति होती है, और चूंकि सुषुम्ना भी सांस लेने के कार्य एवं अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में संलग्न होती है, अतएव सुषुम्ना-शीर्षक के पक्षाघात (Bulbar Polio) से प्रगट होता है कि प्राण खतरे में हैं।

अनेक अधिकारी अब इस बात पर सहमत हैं कि यह रोग संक्रामक होता है, और किसी व्यक्तिगत दशा में "रोग का संक्रामक विष" परिवार के किसी एक या अधिक सदस्यों के कारण उत्पन्न होता है।

"रोग के लक्षण"

जब पक्षाघात का रोग-विष अपने शिकार पर प्रहार करता है तो सर्व प्रथम व्यथा का मुख्य लक्षण पाचन शक्ति की गड़बड़ी के रूप में प्रकट होता है। इस का तात्पर्य यह नहीं कि यह लक्षण निश्चयत: पक्षाघात के आगमन का द्योतक हो, क्योंकि पाचन क्रिया की गड़बड़ी अनेक अन्य कारणों में से एक हो सकती है; दूसरी ओर सामान्य घटनाओं में पाचन क्रिया का अव्यवस्थित होना ही रोग का एक मात्र लक्षण हो सकता है। आज-कल अनेक चिकित्सक इसे निश्चित समझते हैं कि बहुत से सामान्य रोग अनेक दूसरे प्रकार के रोग तथा पाचन क्रिया की गड़बड़ी, जिस का वास्तविक कारण कभी ज्ञात नहीं हो पाता, इसी रोग-विष से होते हैं।

यदि वास्तव में पक्षाघात का आक्रमण होने वाला हो, तो चाहे पाचन-क्रिया में प्रारम्भिक गड़बड़ी हो या न हो, यह संभव है कि थोड़ा-बहुत बुखार और सिर-दर्द, गले की खराबी इत्यादि तुरंत ही बढ़ने लगें। औसत अवस्थाओं में सिर-दर्द बड़े जोर

का होता है और गर्दन तथा पीठ के ऊपरी भाग में शीघ्र ही कड़ापन तथा दर्द महसूस होता है। इस प्रकार पीड़ित को यदि बिस्तर में सीधे बिठाने और उस की गर्दन एवं पीठ को आगे की ओर झुकाने का प्रयत्न किया जाए, तो उसे बड़ा दर्द पहुंचता है और वह ऐसा प्रयत्न करने से रोकता है। प्रारम्भिक लक्षणों में से ये सब से अधिक निश्चित हैं, और जब वे इस प्रकार प्रकट होने लगें तो जब तक किसी दूसरी व्याधि का निर्णय न हो जाए, तब तक पीड़ित का इलाज इस तरह करना उचित है मानो पक्षाघात की प्रारम्भिक अवस्था हो।

इन लक्षणों के प्रकट होते ही चिकित्सक को बुलाना चाहिये। संभव है कि वह सुषुम्ना के इर्द-गिर्द के तरल-पदार्थ की परीक्षा के लिए कहे जिस से स्पष्ट हो जाय कि पक्षाघात का संक्रमण हुआ है या नहीं।

अभी बताए हुए पक्षाघात के लक्षणों के अनुसार आधी अवस्थाओं में बीमारी आगे नहीं बढ़ती और थोड़े दिनों में लक्षण अदृश्य होने लगते हैं। ऐसी दशाओं में पीड़ित शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं, परन्तु शेष दशाओं में पेशियों की शिथिलता निश्चित रूप से बढ़ने लगती है और न्यूनाधिक सीमा तक रोग में पक्षाघात होने लगता है। जब लकवा सामान्य सीमा का होता है, तो एक या थोड़ी सी कंधों की पेशियों, बांह या टांग की पेशियों पर ही प्रभाव पड़ता है। अधिक गम्भीर अवस्था में सभी अंगों की पेशियां तथा गर्दन एवं धड़ की पेशियां निष्क्रिय हो सकती हैं और परिणाम स्वरूप पीड़ित एक अंगुल भर भी नहीं हिल सकता और केवल रेस्पीरेटर (Respirator) अर्थात् 'लोहे के फेफड़ों' ही के द्वारा सांस ले सकता है।

पेशी के प्रभावित होने की प्रारम्भिक अवस्था में, वास्तविक पक्षाघात के असली रूप में प्रकट होने से पूर्व, कुछ प्रभावित पेशियों में बड़ा दर्द होता है जिस से प्रभावित अंग की किसी भी हरकत से बड़ी वेदना होती है। बीमारी की इस अवस्था में पक्षाघात के रोगियों की सेवा करने वाली परिचारिकाओं को यह ध्यान में रखना चाहिये कि पीड़ितों के प्रति उन का बर्ताव विशेषतः विनम्रतापूर्ण हो। कष्टप्रद पेशियों की निष्क्रियता उन में प्रवाहित होने वाले रक्त को निश्चल कर देती है। इस रक्त परिभ्रमण में बाधा और निष्क्रिय पेशियों के नष्ट होने का अर्थ है कि कुछ दशाओं में ये पेशियां अपने प्रसम आकार और कार्य-क्षमता को कभी प्राप्त नहीं कर सकतें। इस के बाद कष्टयुक्त पेशियों की सिकुड़न या क्षीणता के साथ स्थायी पक्षाघात उपस्थित हो जाता है। केनी (Kenny) इलाज की महत्ता का एक कारण यह भी है।

'केनी' (Kenny) इलाज

'केनी' इलाज की प्रथम अवस्था में दुखती हुई और कष्टप्रद पेशियों में बहुत देर तक गरम गद्दियों (Racks) का प्रयोग किया जाता है। ऑस्ट्रेलिया की सुप्रसिद्ध नर्स सिस्टर केनी द्वारा पक्षाघात में गद्दियों का महत्व सिद्ध होने से बहुत पूर्व भी गरम गद्दियां दर्द और वेदना दूर करने का साधन समझी जाती थीं; यद्यपि इन के द्वारा कोई दूसरा लाभ न हो, तो भी इन का प्रयोग करना ठीक होता है। परन्तु वे रक्त संचार को जारी रखने में भी सहायक होती हैं और इस प्रकार के पेशियों के विकार को कम करने का

कार्य भी करती हैं। इस प्रकार जब रोग की तीव्र अवस्था गुजर जाती है, तो अच्छी किस्म के तंतु बच जाते हैं और पेशियों के प्रसम कार्य को पुन: स्थापित करने का सुयोग भी बना रहता है। दूसरे शब्दों में, वे पेशियों की शिथिलता या पक्षाघात के रोग से मुक्ति में सहायता करते हैं।

पेशियों के दर्द और वेदना की इस अवस्था में पक्षाघात का अंतिम और विशिष्ट रूप अभी तक पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाया है। वास्तव में ऐसी अवस्था में पेशियां न मुरझाई होती हैं और न शिथिल, परन्तु उन में प्रसम तनाव से अधिक तनाव आ जा है। पेशियों की ऐसी अवस्था को पेशी की ऐंठन (Spasm) कहते हैं और उन के तनाव का कारण उन्हें नियंत्रित करने वाली उत्तेजित चेताएं होती हैं। यह उत्तेजना रोग-विष (Virus) के आक्रमण जनित तुरन्त प्रकट होने वाले परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। मांसपेशी की ऐंठन (Muscles spasm) एक जानकार चिकित्सक के समक्ष ऐसा लक्षण प्रकट कर देती है जिस से उसे विश्वास हो जाता है कि पीड़ित को वस्तुत: पक्षाघात की बीमारी है। यदि रोग-विष (Virus) के इस आक्रमण को न रोका गया, तो बाद में इस के द्वारा अनेक या सभी प्रभावित कोष (Cells) नष्ट हो जाएंगे। जिस से फिर पेशियों में किसी प्रकार का भी असर नहीं पड़ सकता। फलत: मांसपेशी कमजोर और असहाय हो जाती है; और इस प्रकार पेशियों आदि की कार्य-अक्षमता पोलियो (Polio) की अंतिम अवस्था होती है।

पक्षाघात की तीव्र अवस्था में पेशियों के दर्द और ऐंठन को कम करने के लिये अनेक दवाओं का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है। इन दवाओं में से कुछ स्नायु कोषों (Nerve Cells) प्रभाव डालती हैं और उन का लक्ष्य पेशियों को शांत करना व उन के कार्य को हल्का कर देना होता है। दूसरी क्रियाएं रक्त संचार पर प्रभाव डालती हैं बाहरी तौर पर यह लाभ बहुधा परिप्रक्षित होता है, परन्तु सदा यह खतरा रहता है कि कहीं इन औषधियों की क्रिया से रोगविष के आक्रमण के फल स्वरूप प्रभावित और न्यूनाधिक अवस्था में क्षति ग्रस्त स्नायु कोषों में अधिक रुकावट न पड़ जाए। चाहे तुरंत थोड़ा-बहुत आराम पहुंच जाए फिर भी यदि ऐसी दवाओं का प्रयोग न किया जाए तो अंतिम अवस्था बुरी नहीं होगी। इसीलिये पेशियों के दर्द और ऐंठन को नियंत्रण में रखने के लिए तेज दवाओं के प्रयोग की अपेक्षा केनी गद्दियों (Kenny Packs) का उचित प्रयोग बेहतर समझा जाता है। केनी गद्दियों (Kenny Packs) का अर्थ है कि उन का आकार कष्ट और वेदना के क्षेत्र के अनुरूप होना चाहिये और तंतुओं को जलाने के खतरे के बगैर उन का इतना गरम होना आवश्यक है जितना रोगी सहन कर सके। जब तक वे गरम ही रहें इसी बीच में नई गद्दियों का प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि उन्हें ठंडा और चिपचिपा होने तक छोड़ दिया गया तो रोगी की बेचैनी कम होने के बजाए बढ़ जाएगी।

आम तौर पर रोगी और उस के घर वाले दोनों अस्पताल की अपेक्षा घर ही में देख-भाल करना बेहतर समझते हैं और कभी-कभी तुलनात्मक सुरक्षा के साथ ऐसा किया भी जा सकता है। अस्तु, सामान्य अवस्थाओं को छोड़ कर शेष में इस विचार का समर्थन करने के पूर्व चिकित्सक के लिए यह उचित होगा कि वह इस बात का निश्चय कर ले कि रोगी के परिवार में से कोई-न-कोई व्यक्ति पक्षाघात के रोगी की देख-भाल करना

जानता है, और उस के पास सभी आवश्यक साज-सामान मौजूद है। उसे यह भी चाहिये कि यदि रोगी की दशा बिगड़ने लगे तो उसे शीघ्र ही अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था करे, ऐसी अवस्था बिना किसी चेतावनी के उपस्थित हो सकती है।

वायु-शोषक स्वांस-यंत्र (Respirator) का प्रयोग

सांस लेने में कठिनाई के कारण स्वांस-यंत्र (Respirator) का प्रयोग किया जाता है। यदि यह कठिनाई स्वांस लेने में सहायक छाती की पेशियों के पक्षाघात के कारण उत्पन्न हुई हो, तो तत्काल और उस के उपरांत भी स्वांस-यंत्र का प्रयोग जीवन-रक्षा में अत्यंत सहायक हो सकता है। इस सम्बन्ध में कार्य करने वाली मांस पेशियां केवल छाती की दीवारों में नहीं होतीं, बल्कि श्वासपटल या महाप्राचीरा (Diaphragm) भी इस में सहायक होता है। यह महाप्राचीरा पेशियों के तंतु-जाल का गुम्बद के आकार का एक पर्दा सा होता है और छाती और उदर-यहृत्र के बीच में विभाजक का कार्य करता है। यदि इन पेशियों की अपेक्षा अन्य मांसपेशियां प्रभावित हों, जैसा कि सुषुम्ना-शीर्षक के पक्षाघात (Bulbar Polio) में होता है, तो स्वास-यंत्र से भी जीवन रक्षा नहीं हो सकती।

जब छाती की स्वास-क्रिया में सहायक पेशियां निष्क्रय हो जाती हैं, तो रोगी केवल सांस लेने के अयोग्य ही नहीं हो जाता, बल्कि खांस भी नहीं पाता। इस का अर्थ यह है कि चाहे स्वास-यंत्र आवश्यकतानुसार हवा अन्दर पहुंचाने में सहायक क्यों न हो, रोगी का वायु-मार्ग कफ या दूसरे खखार इत्यादि मलोत्सर्गों के कारण जिन्हें वह सामान्य अवस्था में खांस कर बाहर कर देता, अवरुद्ध हो जाता है।

आज-कल रोगी द्वारा स्वास-यंत्र का प्रयोग कराते समय उस के तुरन्त बाद ट्रैकियो टॉमी (Tracheotomy) नामक शल्य-चिकित्सा की जाती है। इस शल्य-चिकित्सा में गर्दन के सामने की ओर एक सूराख कर दिया जाता है और रोगी की श्वास-नलिका (Trachea) में उस के स्वर-यंत्र (Larynx) से थोड़े नीचे एक नली डाल दी जाती है। रोगी इस प्रकार इस नली द्वारा न केवल सांस लेने में समर्थ हो सकता है, बल्कि इस में से नर्स एक शोषक नली के प्रयोग द्वारा रोगी के वायुमार्ग को बलगम या अन्य उत्सर्ग निकाल कर साफ भी रख सकती है।

जब छाती की पेशियों का पक्षाघात पर्याप्त रूप से इतना कम हो जाए कि रोगी सामान्य ढंग से सांस ले सके, तो 'ट्रैकिया टॉमी' की नली सुगमता से हटा दी जा सकती है। शल्य-चिकित्सा में किया गया सूराख शीघ्र ही बंद हो जाता है, घाव भर जाता है।

स्वांस-यंत्र के प्रयोग करने वाले रोगियों को दिन में चौबीसों घंटे नर्सों की सहायता की आवश्यकता होती है और नर्स रोगी की देखभाल और मशीन को हर समय चालू रखने के कार्य में विशेष प्रकार से प्रशिक्षित होनी चाहिये।

पूरी तरह से पक्षाघात का पीड़ित कभी-कभी थोड़े ही महीनों में पर्याप्त रूप से स्वस्थ हो कर बिना किसी इलाज के इधर-उधर चलने-फिरने और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ हो जाता है। आम तौर पर लकवे से पीड़ित को

फिर से शक्ति पहुंचाने और उनके दैनिक कार्यों को करने में फिर से समर्थ बनाने में विशेष प्रकार की दीर्घ कालिन रोग संहारक (Therapy) चिकित्सा की अवस्था होती है। इस प्रकार का इलाज सिस्टर केनी (Sister Kenny) द्वारा आविष्कृत कार्यक्रम की दूसरी अवस्था के बड़े. अंश का रूप लेती है।

पक्षाघात की घटनाओं की यौगिक संख्या का थोड़ा ही प्रतिशत ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है जब इन या अन्य प्रकार के उपचारों द्वारा रोगी की दशा में कोई सुधार नहीं होता और जब पीड़ित व्यक्तियों को अपनी अपंगता को सम्भव रूप से कम करने के लिए शल्य-चिकित्सा के सहायक बंधनों (Braces) के प्रयोग की और अन्य उपायों का अवलम्बन करने की आवश्यकता होती है। पक्षाघात की ये अवस्थाएं बहुत अधिक आकृष्ट करती हैं और जब लोगों को या उन के बच्चों को पक्षाघात के आक्रमण की संभावना प्रकट होती है तो उन का मानसिक चित्रण उन्हें बहुत विचलित कर देता है।

जब पक्षाघात का आक्रमण होता है

किसी व्यक्ति को पक्षाघात के एक आक्रमण के बाद दूसरा आघात बहुत ही कम अवस्थाओं में होता है। इस दृष्टि से यह रोग-विष (Virus) से उत्पन्न होने वाले, कनसुए (Mumps) मोतिया-चेचक इत्यादि अनेक रोगों से समानता रखता है। अतएव एक बार लकवा पड. जाने पर इस के रोगी को इस से दूसरे आक्रमण का भय नहीं होना चाहिये।

संक्रामक रोगों के दीर्घ कालिन अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि जब रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु अथवा रोगविष हम पर आक्रमण करते हैं, तो हमारा शरीर तुरंत ही विशिष्ट प्रकार के रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करना आरम्भ कर देता है, जिस से वह इन शत्रुओं का मुकाबला कर सके। इन रासायनिक रक्षा सैनिकों को सामूहिक रूप में एन्टी बॉडीज (Antibodies) अथवा 'रोग निरोधक' की संज्ञा दी जाती है। साधारणतया ये रक्त की नालियों के साथ चलते हैं और इन में से अनेक वहां जीवन पर्यन्त निवास करते हैं जिस से उसी प्रकार के रोग-विष अथवा कीटाणुओं के द्वारा कभी बाद में आक्रमण ही अवस्था में शरीर बिना क्षति उठाए हुए ही उन शत्रुओं पर सुगमता से विजय प्राप्त कर लेता है। रोग के संक्रमण का प्रतिरोध करने वाली इस योग्यता का नाम रोग-प्रवण मुक्तावस्था (Immunity) है।

जिन्हें यह बीमारी हो चुकी है उन रोगियों के रुधिर-द्रव या रक्त-रस (Serum) के अध्ययन से सिद्ध हो गया है कि रोग की तीव्र अवस्था के बीतने तक विशिष्ट प्रकार के निरोधकों (Antibodies) की मात्रा रुधिर में बहुतायत से उपस्थित हो चुकती है। पक्षाघात (Polio) के सम्बन्ध में रोग-विष (Virus) पीड़ित के शरीर के विभिन्न भागों में पाया गया है, परन्तु नाक और गले के मलोत्सर्ग में तुलनात्मक दृष्टि से इस की बहुतायत पाई जाती है और आंतों द्वारा निसृष्ट मल में तो यह सब से अधिक मात्रा में होता है।

दीर्घ काल से देखने में आया है कि एक ही कुटुम्ब में पक्षाघात की घटनाएं एक से अधिक शायद ही होती हों; और किसी व्यक्ति विशेष में यह विष कहां से आ गया यह पहेली हल करना बहुधा असंभव हो जाता है। किसी समाधान की प्राप्ति के प्रयत्न में स्वस्थ कुटुम्ब के सदस्यों के शारीरिक मलोत्सर्ग की अनेक बार जांच की गई है। बहुधा

ऐसा होता है कि इन में से सब या अधिकांश अवस्थाओं में उन सदस्यों को बिना प्रभावित किए ही रोग-विष (Virus) उन के अन्दर उपस्थित रहता है और यह भी संभव है कि यह विष उन में रोगियों से भी अधिक समय तक रहे और उन्हें हानि न करे। इस के अतिरिक्त पक्षाघात (Polio) से प्रभावित क्षेत्रों के निवासियों के सामुदायिक अध्ययन से पता चलता है कि ऐसे स्थानों में रोग-विषयुक्त लोगों की संख्या बहुत बड.ी होती है। वास्तव में इस रोग के प्रशिक्षित जानकार लोगों का अनुमान है कि पक्षाघात के संक्रमण के दिनों में किसी जन समुदाय में रोगियों की संख्या से सौ गुना या उस से अधिक स्वस्थ व्यक्ति ऐसे निकलेंगे जिन के शरीर में यह रोग-विष उपस्थित होता है।

अब विशेषज्ञ लोग विश्वास करने लगे हैं कि अधिकांश पक्षाघात के रोगियों को ऐसे स्वस्थ लोगों से यह बीमारी लग जाती है जिन में रोग-विष पहले ही से उपस्थित रहता है, परन्तु इस का पता नहीं चल पाता। इस का अर्थ यह है कि रोग पकड.ने की अवस्था का पता लगाने का कोई व्यावहारिक उपाय नहीं है और रोगियों को अलग रखना या संसर्ग-प्रतिषेध-व्यवस्था (Quarantine) इस सम्बन्ध में बहुत ही कम सहायक सिद्ध होती है।

हम अब संक्षेप में निरोधक तत्वों (Antibodies) के विषय पर दूसरे ढंग से दृष्टिपात करेंगे। ऐसा पता चला है कि बीमारी से संक्रामक रूप में प्रभावित क्षेत्र के अनेक स्वस्थ निवासी केवल रोग विष युक्त होते हैं, बल्कि उन के रुधिर-द्रव (Serum) में निश्चित प्रकार से पक्षाघात के निरोधक तत्व अत्यधिक मात्रा में विद्यामान् रहते हैं। वस्तुत: इस प्रकार के तथा दूसरी श्रेणी के उन लोगों के जिन्हें स्पष्ट रूप में कभी लकवे का रोग न हुआ हो, सम्यक अध्ययन से प्रगट हुआ है कि अनेक तरुणावस्था वालों (१३ से १९ वर्ष तक वालों) और सभी प्रौढ. लोगों में पक्षाघात विरोधी तत्वों का भंडार रहता है। वास्तव में यही कारण है कि जिन लोगों पर कभी लकवा न गिरा हो उन में से इतने अधिक व्यक्ति तीव्र पक्षाघात से पीडि.त लोगों के सम्पर्क में आने पर भी इस बीमारी से अछूते छूट जाते हैं। इस अद्भुत प्राकृतिक घटना को समझने के लिये हमें बाध्य हो कर इस निष्कर्ष पर पहुंचना है कि उन में रोग के प्रतिरोध की शक्ति का मुख्य कारण उन का एक या अधिक बार रोग के सम्पर्क में आना, अस्थायी रूप से विषयुक्त होना और सामान्य प्रकार से रोग युक्त या रहित होना ही है। इन्हीं सम्पर्कों के कारण पक्षाघात के लक्षण प्रगट हुए बिना ही उन के अन्दर निरोधक तत्वों (Antibodies) की वृद्धि में उत्तेजना मिली। अतएव यह स्पष्ट है कि १३ से १९ वर्ष तक के बच्चों में से बहुत से और प्रौढ.ों में से अधिकांश पहले ही से पक्षाघात से अनाक्रमणीय (Immune) हो जाते हैं। दुर्भाग्य से हमारे पास कोई ऐसे साधन नहीं हैं जिन से बिना थकाऊ और खर्चीली परीक्षा के किसी व्यक्ति विशेष के बारे में इस की पुष्टि की जा सके। संभवत: यह कहना विश्वस्त ही होगा कि चाहे औसत प्रौढ. व्यक्ति कितनी ही बार या रोगी के कितने ही निकट सम्पर्क में आए, उसे सौ में एक बार भी इस बीमारी से पीडि.त होने की संभावना नहीं होती।

पक्षाघात के टीकों का प्रयोग

पक्षाघात विरोधी टीके हमारे समक्ष इस रोग की रोक-थाम के लिए एक दूसरी और

अधिक आशाजनक व्यवहार विधि प्रस्तुत करते हैं। आम तौर पर इन टीकों के द्वारा शरीर में शक्तिशाली रूप में रोग निरोधक तत्व (Antibodies) उत्पन्न करने की प्रेरणा मिलती है और इस प्रकार रोग से शरीर की रक्षा हो जाती। डॉक्टर साक (Dr. Salk) द्वारा आविष्कृत पक्षाघात के टीकों की उन्होंने स्वयं तथा कुछ अन्य लोगों ने पशुओं तथा स्वेच्छा से अपने टीका लगवाने वाले व्यक्तियों पर ध्यानपूर्वक परीक्षा की और इस के उपरांत सन् १९५४ में विस्तृत क्षेत्रीय जांच द्वारा स्वीकृत होने पर संयुक्त राज्य अमेरिका में १९५५ की बसंत ऋतु में स्थानीय स्वास्थ्य संस्थाओं तथा अनेक राज्यों में शिशु पक्षाघात के निमित्त राष्ट्रीय स्थापना (National Foundation for Infantile Paralysis) के तत्वावधान में दसियों लाख बच्चों के टीका लगाया गया। अब यह टीका हानि-रहित और प्रभावशाली सिद्ध हो चुका है। पक्षाघात के ऊपर अंतिम विजय की निश्चित संभावना दिखाई पड़ती है। पक्षाघात के रोग-विष (Polio Virus) की तीनों कष्टप्रद अवस्थाओं में इस टीके की संशोधित श्रेणियां प्रभावशाली होती हुई मालूम पड़ती हैं।

इस बीमारी की रोक-थाम करने की कुछ प्रणालियां हैं जिन का संभावित मूल्य है अतएव इन का प्रयोग किया जा सकता है। रोगग्रस्त होने से कुछ सप्ताह पूर्व पीड़ितों के अनुभव और यात्राओं के अध्ययन से इस संभावना का संकेत मिलता है कि पक्षाघात के रोग के संक्रमण के निमित्त कुछ परिस्थितियां मार्ग प्रशस्त करती हैं जिस से यह सुझाव मिलता है कि कुछ आवश्यक सावधानियां बरती जानी चाहियें।

चूंकि रोग का आक्रमण होते ही बार-बार पाचन क्रिया की गड़बड़ी होने लगती है और चूंकि पेशियों पर बहुधा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। यह मुनासिब जान पड़ता है कि पक्षाघात के मौसम में, चाहे मौसम कैसा ही हो, अस्वाभाविक या कठिनता से हजम होने वाले खाद्य पदार्थों का सेवन करने में सामान्य से अधिक सावधानी बरतनी चाहिये, और साथ ही आदत के अनुसार किसी भी कठिन प्रकार के शारीरिक व्यायाम का भी परित्याग करना चाहिये। इसी प्रकार चूंकि रोग-विष (Virus) रोगी के नाक, गले आंतों के मलोत्सर्ग में बहुतायत से पाया जाता है और इस प्रकार के मल द्वारा हाथ दूषित हो जाते हैं अतएव हाथ-मुंह धोने के उपरांत प्रयोग किया हुआ जल तथा शारीरिक मल को दूर करने का विशेष ध्यान रखना चाहिये। यद्यपि यह वास्तव में सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि दूषित भोजन शरीर के भीतर रोग-विष उत्पन्न कर देता है, तथापि इस की संभावना बनी रहती है। अतएव भोजन को दूषित होने से बचाना चाहिये और विशेषत: मक्खियों से इस की रक्षा होनी चाहिये क्योंकि ये रोग-विष वाहक सिद्ध हो चुके हैं। इस के अतिरिक्त चूंकि रोग-विष (Virus) के वाहक स्वस्थ व्यक्ति भी सामान्य नागरिकों में होते ही हैं और रोग द्वारा प्रभावित क्षेत्र में तो और भी अधिक संख्या में होते हैं। अतएव भीड़-भाड़ से दूर तथा जिन के साथ हाल में या अधिक बार संपर्क न रहा हो ऐसे लोगों से भी बच कर रहने से बीमारी लगने का खतरा कम हो जाता है।

अनेक चिकित्सकों का विश्वास है कि जब पक्षाघात संक्रामक रूप में प्रकट हो रहा हो तो नाक और गले की शल्य चिकित्सा कराना बुद्धिमानी नहीं क्योंकि ऐसा मालूम पड़ता है कि इस प्रकार शल्य-क्रिया से रोग-विष के शरीर में प्रवेश करने के लिये द्वार खुल जाता है। ऐसी अवस्था में इस बात की बहुत अधिक संभावना है कि रोगी पक्षाघात के

उस भयंकर रूप से पीड़ित हो जाए जिसे सुषुम्ना-शीर्षक का पक्षाघात (Bulbar Polio) कहते हैं जब तक इस प्रकार के खतरे की संभावना हो तब तक बड़ी सावधानी बरतना उचित होगा। अनेक बार गले की शल्य चिकित्सा जैसे कि गिल्टियों को निकाल देना इत्यादि भी पीड़ित व्यक्ति के स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न किए बिना कुछ सप्ताह तक रोक दिया जा सकता है।

अध्याय ४०

आकस्मिक घटनाओं में प्राथमिक सहायता या चिकित्सा

आकस्मिक घटनाएं तो आए दिन घटती ही रहती हैं। प्रत्येक बड़े परिवार में शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो कि किसी-न-किसी के चोट-चपेट न लग जाती हो, त्वचा कहीं से छिल न जाती हो, कोई अंग कुचल न जाता हो, आंख में कुछ न पड़ जाता हो या दांत में पीड़ा न उठ खड़ी होती हो। बहुत बार तो ऐसा होता है कि ऐसी चोट बड़ी गहरी होती है, उदाहरणार्थ—कोई हड्डी टूट जाए या कहीं से इतना गहरा कट जाए कि बहुत खून निकलने लगे। ऐसी दुर्घटनाओं के समय बहुत से लोग तो बस खड़े तमाशा देखते रहते हैं और पीड़ित व्यक्ति को कोई सहायता नहीं पहुंचा सकते। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को जानना चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिये, क्योंकि तात्कालिक और उचित उपाय से किसी पीड़ित व्यक्ति के प्राण बचाए जा सकते हैं।

पट्टी बांधना

प्राय: प्रत्येक चोट पर पट्टी बांधनी आवश्यक होती है, इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को शरीर के विभिन्न भागों पर पट्टी बांधना सीखना चाहिये। पट्टियां साफ कपड़े की होनी चाहियें। हाथों और टांगों की पट्टियां दो-दो इंच चौड़ी होनी चाहियें। उंगलियों की पट्टियां एक इंच से थोड़ी कम चौड़ी होनी चाहियें। कुछ पट्टियां पहले ही से तैयार कर के रख लेनी चाहियें। इन को गोल कर के साफ कागज या साफ कपड़े में बांध कर रख लेना चाहिये। अगले तीन पृष्ठों के चित्रों द्वारा पट्टियां बांधने की ठीक रीति दिखाई गई है।

प्राथमिक चिकित्सा का बक्स

चिपकने वाली एक-एक इंच चौड़ी पट्टियां; प्रत्येक पट्टी एक अलग डब्बे में रक्खी हो।

पतले हलके कपड़े (Gauze) के लगभग तीन इंच लम्बे और तीन इंच चौड़े चौकोर टुकड़े, जो कीटाणु-रहित हों, प्रत्येक टुकड़ा एक अलग डब्बे में रक्खा हो।

भिन्न-भिन्न चौड़ाई की कीटाणु-रहित पट्टियां, ये अलग-अलग डब्बों में रक्खी हों।

तिकोनी पट्टियां।

कीटाणु-रहित पतले-हलके कपड़े (Gauze) के गज-गज भर के चौकोर टुकड़े, ये अलग-अलग डब्बों में रक्खे हों।

जले हुए पर लगाने का मरहम। यदि इस में पांच प्रतिशत जमा हुआ टैनिक एसिड (tannic acid jelly) मिला हुआ हो तो और भी अच्छा है।

ऐरोमैटिक स्पिरिट्स ऑव् अमोनिया (aromatic spirits of ammonia), यह रबड़ की डाट वाली शीशी में हो।

दो प्रतिशत आयोडीन (iodine) वाला घोल, यह रबड़ की डाट वाली शीशी में हो।

धमनी पर चाप दे कर रक्तस्राव को रोकने के लिए काम में लाए जाने वाली पट्टियां आदि (Tourniquet), ये लचकीली न हों।

कैंची।

तीन-तीन इंच लम्बी खपच्चियां।

एक-एक और दो-दो इंच चौड़ी पट्टियां जो लपेट कर गोल की हुई हों (roller bandages)।

तार या पतले तख्ते की खपच्चियां।

आंखों में लगाने के लिए कांच की नलियों में भरा हुआ कैस्टर ऑइल (Castor Oil) या मिनरल ऑइल (Mineral Oil)।
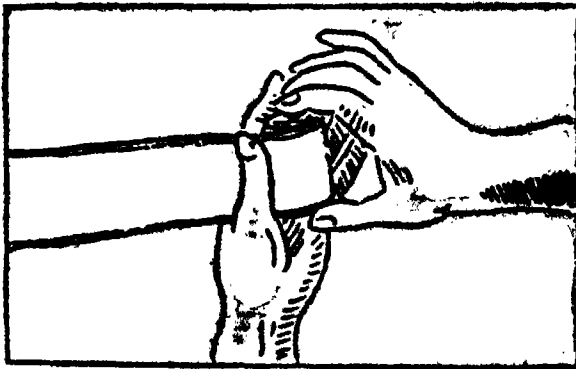
पट्टी को गोलाई में लपेटने की रीति
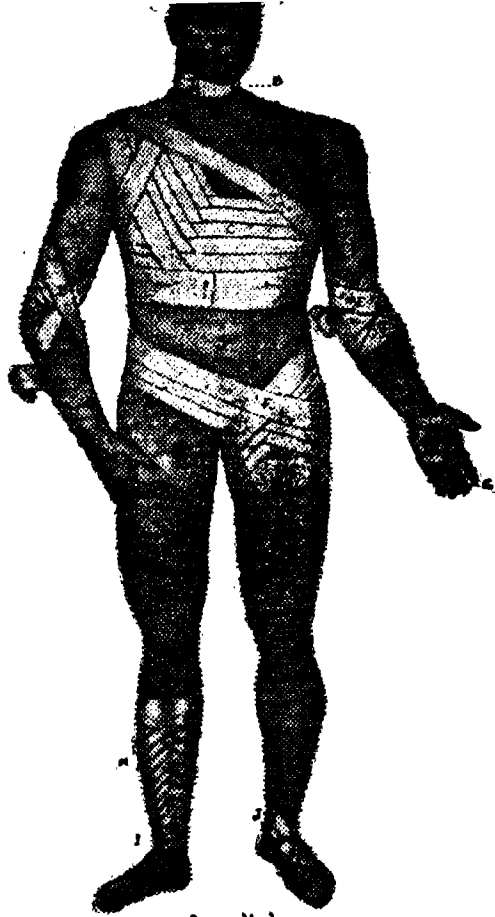
पटि्टयों के प्रकार

A. सिर की पट्टी—यह आगे से पीछे और पीछे से आगे लेजा-लेजा कर बांधी जाती है (Recurrent of head)। B. गर्दन में चारों ओर लपेटी जाने वाली पट्टी। C. छाती और कंधे की विशेष पट्टी। D. अंग्रेजी अंक 8 के आकार में बांधी जाने वाली वह पट्टी जिस के विभिन्न केन्द्र हों (Eccentric figure-of-eight)। E. अंग्रेजी अंक 8 के आकार में बांधी जाने वाले वह पट्टी जिस का एक ही केन्द्र हो (Concentric figure-of-eight)। F. उरुसन्धि (groin) की पट्टी; इस में लपेटें ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आकर चित्रित आकार ग्रहण कर लेती हैं (Spica of groin)। G. उंगली के छोर की पट्टी। H. टांग की पेंचदार वह पट्टी जिस में लपेटें एक ओर पलटा खा-खा कर नीचे की ओर उतरती हैं (Spiral reverse of leg)। I. टांग की पेंचदार वह पट्टी जिस में लपेटें एक ओर पलटा खा-खा कर ऊपर की ओर चढ़ती हैं (Ascending spiral of leg)। J. अंग्रेजी अंक 8 के आकार में बांधी जाने वाली पांव और गट्टे की पट्टी (Figure-of-eight of foot and ankle)।

शरीर के किसी अंग का कुचल जाना

जब कोई व्यक्ति गिर पड़ता है या उस के शरीर के किसी अंग पर चोट पहुंचती है तो त्वचा के भीतर के मांस को हानि पहुंचती है और छोटी-छोटी कुछ रक्त-वाहिनयां फट जाती हैं। इस से चुटीला स्थान नीला धब्बा सा दिखाई देने लगता है।

चिकित्सा

तुरन्त ही इस चुटीले स्थान पर या तो बर्फ रख दीजिये या ठंडा-ठंडा पानी डालिये। चुटीले भाग को ऊपर उठाइये; इस से पीड़ा कम होती है। यदि चुटीले स्थान का मांस फट
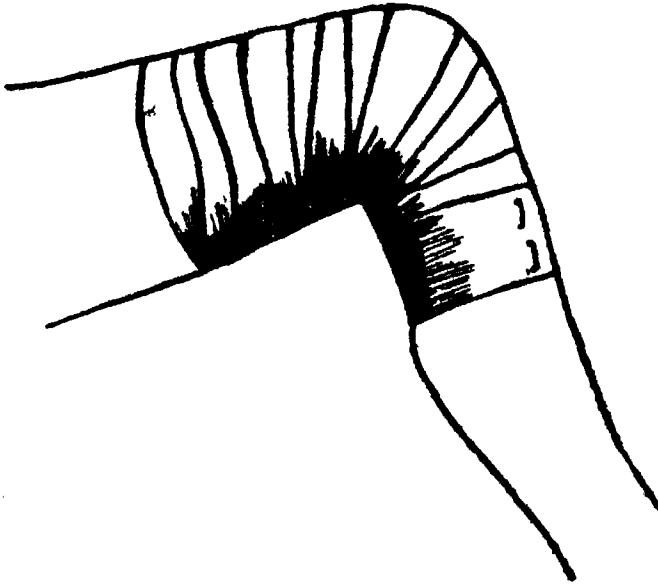
घुटने की पेंचदार वह पट्टी जिस में लपेटें एक ओर पलटा खा-खा कर नीचे की ओर उतरती हैं। घुटने की चक्की से जरा ऊपर से बांधना आरम्भ कीजिये और घुटने के नीचे पलटें दे कर अन्त में पिन लगा दीजिये।

गया हो, तो उस पर थोड़ा सा सल्फाथियाजोल का पाउडर (Sulfathiazole Powder) बुरक दीजिये और साफ कपड़े की पट्टी बांध दीजिये।

अपघर्षण और कट जाना

किसी घाव को साफ करते समय उस को जितना कम छुआ जाए, उतना ही अच्छा होता है। घाव को बिल्कुल साफ पानी, या साबुन और पानी से धोइये, साफ कपड़े से उसे सुखा दीजिये, और यदि घाव छोटा और काफी साफ है, तो उस पर सल्फाथियाजोल लगाइये और फिर पट्टी बांध दीजिये। जब तक घाव बिल्कुल भर न जाए, तब तक प्रतिदिन पट्टी खोल कर नई पट्टी बांधते रहना चाहिये।

यदि घाव बड़ा है और संक्रमित हो गया है तो एक-दो दिन तक बड़ी सी गीली पट्टी घाव पर बांधनी चाहिये जिस से वह साफ हो जाए। यह गीली पट्टी साफ पतले-हलके
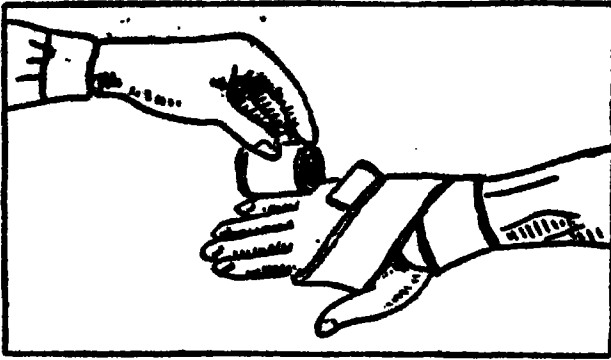
खुले हाथ या पंजे पर पट्टी बांधने की रीति।
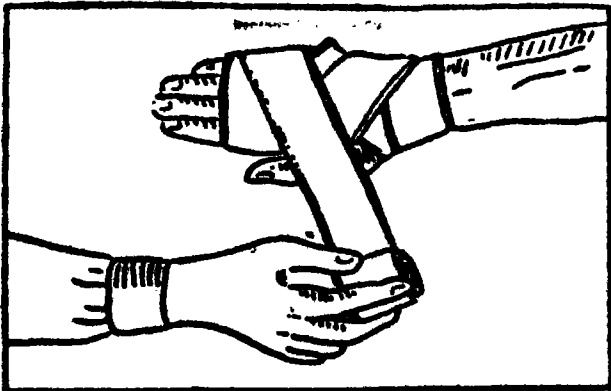
खुले हाथ या पंजे की पट्टी।
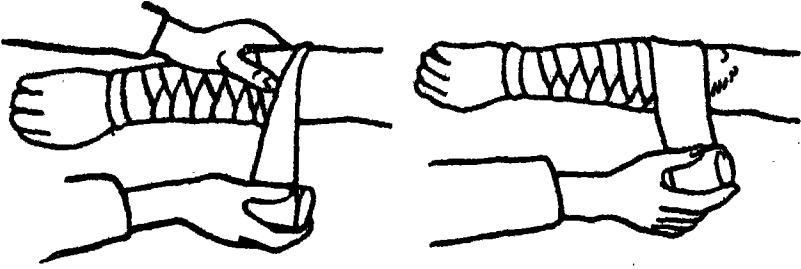
बांह की पट्टी—कलाई पर से बांधना आरम्भ कीजिये और चित्रित रीति से ऊपर की ओर बांधते जाइये।

कलाई की पट्टी—अंकों के अनुसार एक-के-बाद-एक लपेट देते जाइये।
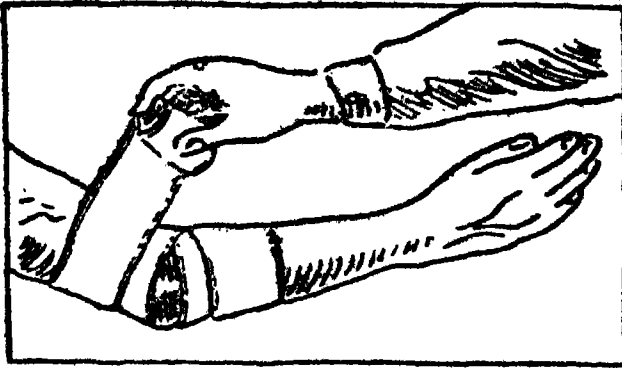
अंग्रेजी अंक 8 के आकार में बांधी जाने वाली कोहनी की पट्टी।
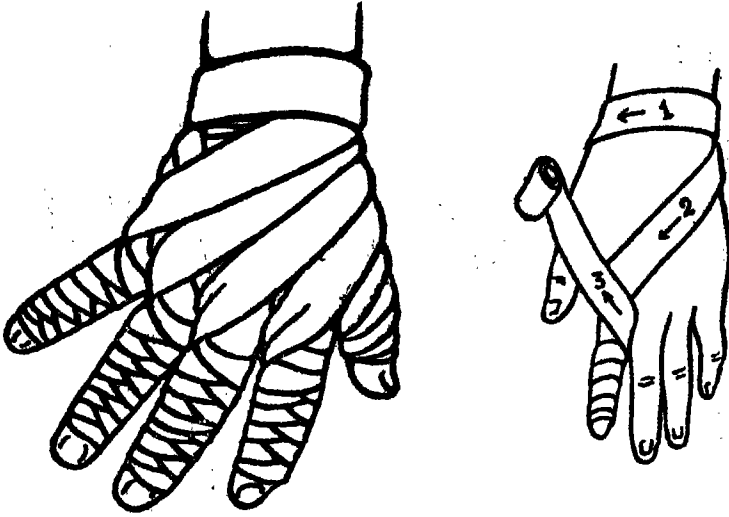
उंगली की पट्टी—प्रत्येक उंगली पर अलग-अलग बांधिये। उंगली की पट्टी—अंकों के अनुसार लपेटें दीजिये।
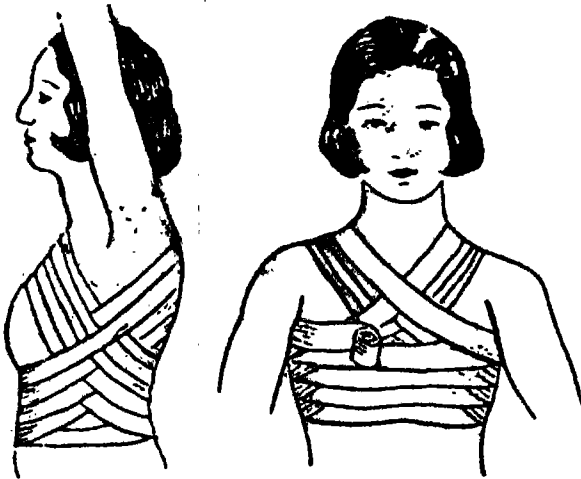
स्तन और छाती की पट्टी।
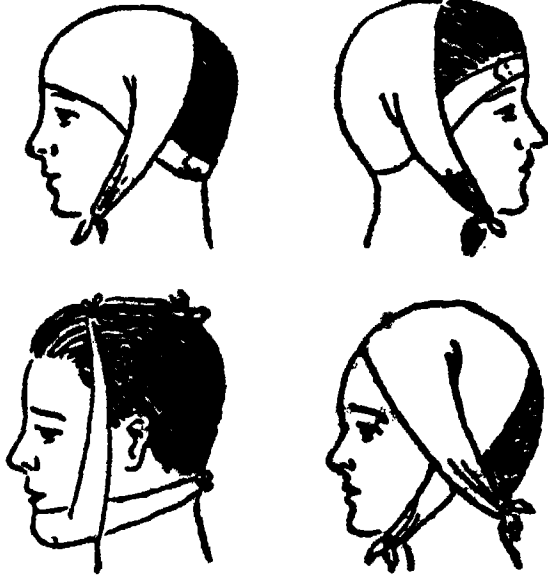
सिर की पट्टी—चित्रित रीति से कपड़े को काट कर चार छोर बना लीजिये; अंकों के अनुसार बांधिये।
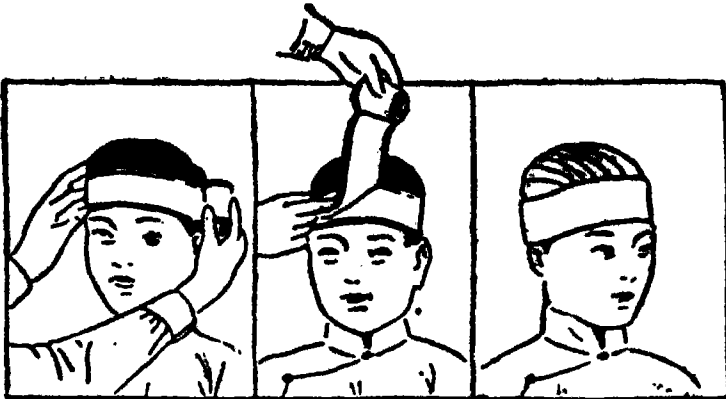
खोपड़ी की पट्टी।
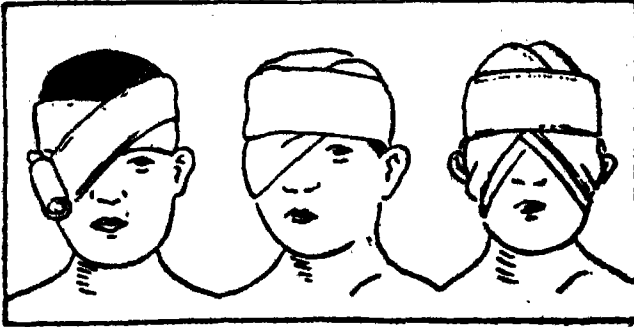
आंख पर पट्टी बांधने की रीत।

सिर की तिकोनी पट्टी—एक ओर का चित्र।
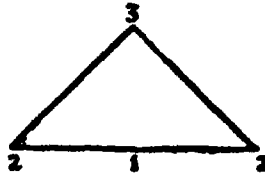
सिर की तिकोनी पट्टी
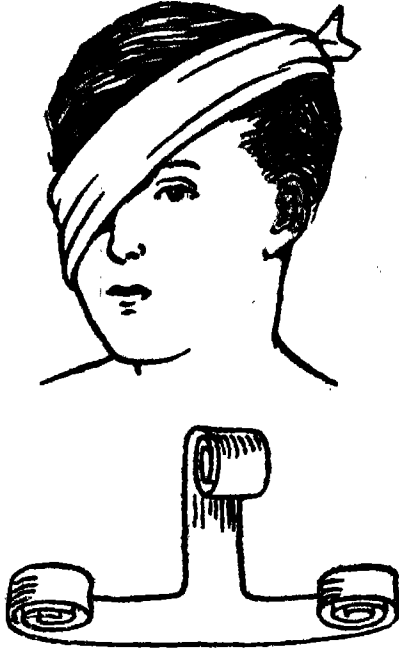
आंख की पट्टी।
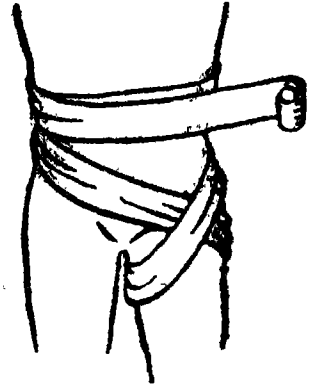
जांघ की पट्टी— चित्रित रीति से पट्टी काटिये और दर्शित रीति से बांधिये।

कंधे की पेचवार वह पट्टी जिस में लपेटें एक ओर पलटा खा-खा कर ऊपर की ओर चढ़ती हैं (Spiral bandage of the Shoulder)।
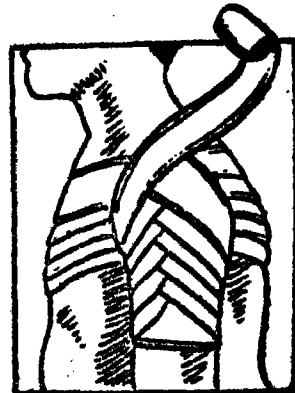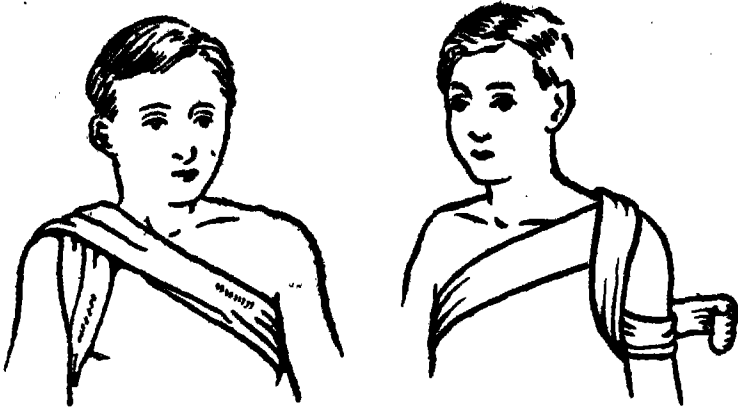
बांह के ऊपरी भाग और कंधे की पट्टी।

बांह की झोली (Sling) के लिए तिकोनी पट्टी।

कपड़े. (Gauze) या सूती कपड़े. की हो और इसे कई तहें लगा कर मोटा कर लिया जाए और फिर एपसम सॉल्ट (Epsom Salt) के घोल में अच्छी तरह भिगो लिया जाए (घोल बनाने के लिए एक प्याले गरम पानी में चाय का चम्मच भर एपसम सॉल्ट चाहिये—चम्मच खूब ऊपर तक भरा हो)। इस कपड़े. को गीला रखने के लिए बार-बार एपसम सॉल्ट का थोड़.ा-थोड़.ा घोल इस पर डालते रहना चाहिये। जब इस उपाय से घाव बिल्कुल साफ हो जाए, तो एक साफ-सुथरे कपड़े. के टुकड़े. पर सल्फाथियाजोल मरहम की पतली सी तह लगा कर घाव पर रख दिया जाए। इस से घाव जल्दी भर जाएगा। इसे साफ रखने के लिए प्रतिदिन, या यदि आवश्यकता हो, तो दिन में दो-तीन बार, पट्टी बदल देनी चाहिये।

गहरे घाव जिन में से रक्त अधिक बहता हो

यदि घाव से खून निरन्तर निकलता रहे और बन्द न हो, तो कपड़े. के एक टुकड़े. को बहुत गरम पानी में डुबा कर घाव पर रखना चाहिये और दबाना चाहिये। पानी बहुत गरम होना चाहिये, नहीं तो इस उपाय से कोई लाभ नहीं होगा।

यदि घाव में से खून बहुत तेजी से बह रहा हो, तो रोगी को लिटा दीजिये और दोनों अंगूठों से घाव के ऊपर के भाग को दबाइये। यदि हाथ या टांग पर चोट लगी हो, तो एक कपड़े. या रूमाल को तह कर के घाव के जरा ऊपर ढीला बांध दीजिये और उस में एक मजबूत लकड़.ी या डंडा डाल कर उसे ऐंठिये। एक छोटा सा गोल पत्थर या एक काग घाव के ऊपर पट्टी की तह में रक्खा जाए, तो यह केवल कपड़े. को घाव के ऊपर बांधने की अपेक्षा रक्त बन्द करने में अधिक सफल रहेगा। कपड़े. को जोर से ऐंठिये, परन्तु हर १५ मिनट के पश्चात् ढीला कर दीजिये जिस से खून का दौरा उन भागों में रुक न जाए। जिस हाथ या टांग में से रक्त बह रहा हो उसे ऊपर उठा कर किसी वस्तु पर टिका दिया जाए जिस से रक्त का प्रवाह वहां कम हो। ज्योंही रक्त का बहना बन्द हो जाए, त्योंही उस कसी हुई पट्टी को धीरे-धीरे ढीला कर देना चाहिये, एक बार में बहुत कम ढीली हो, क्योंकि यदि पट्टी एक दम ढीली कर दी गई, तो घाव से फिर खून बहने लगेगा।

ज्योंही पट्टी कस कर बांध दी जाए और खून निकलना कम हो जाए, त्योंही एक तीली या सींक के छोर पर थोड़.ी सी धुनी हुई रुई लगा लेनी चाहिये और फिर टिंक्चर आयोडीन, मरथियोलेट (Merthiolate), डेटोल (Dettol) या और किसी निःसंक्रामक द्रव्य में भिगो कर इस फाहे को घाव पर रख देना चाहिये। जब रक्त बहना बन्द हो जाए तो उस घाव पर कपड़े. की कुछ तहें रख दीजिये। कपड़.ा कुछ मिनट तक पानी में उबाल लिया गया हो। इस के बाद पट्टी बांध दीजिये।

खोपड़.ी के घाव से रक्त-स्राव बन्द करने का उपाय

घाव पर एक पतला सा कपड़.ा टिंक्चर आयोडीन में भिगो कर रख देना चाहिये;

फिर इस के ऊपर साफ कपड़े की कई तहें लगा कर गद्दी सी बना देनी चाहिये। इस गद्दी को ओर से घाव पर दबाइये।

चेहरे और गर्दन से रक्त बहना

कटे हुए होंठ से रक्त बहना इस प्रकार बन्द करना चाहिये। हाथ धोकर अंगूठे के पास वाली उंगली मुंह के भीतर और अंगूठा बाहर रख कर घाव वाले स्थान को अंगूठे और उंगली से जोर से दबाइये।

चेहरे से अधिक रक्त बहते समय रोगी का गला इस प्रकार पकड़िये मानो आप उस का गला घोंट रहे हों। उस का गला जबड़ों के नीचे से पकड़ कर जोर से दबाइये। इस से खून निकलना कम हो जाएगा। इस के अतिरिक्त गद्दी बना कर घाव को वैसे ही दबाइये जैसा कि खोपड़ी के घाव से रक्त-स्राव बन्द करने के विषय में बताया गया है।

कंधों और बगलों से खून बहना

हंसली की हड्डी के बीच के भाग को पीछे से अंगूठे की सहायता से जोर से दबाइये। (पृष्ठ ३१५ देखिये)

दबाव-बिन्दु (Pressure-Points)

पृष्ठ २४ पर तीरों द्वारा तथा पृष्ठ ३१४ पर नन्हें-नन्हें वृत्तों (Circles) द्वारा दिखाए गए स्थानों पर यदि धमनियों को दबाया जाए, तो दबाए हुए स्थान से अगले स्थानों का रक्त-स्राव बन्द करना सम्भव हो सकता है; उदाहरणार्थ—यदि टांग में से बहुत रक्त स्राव हो रहा हो, तो जांघ पर के दबाव-बिन्दु को दबाने से रक्त-स्राव बहुत कुछ कम हो जाएगा। इसी प्रकार कोई और दबाव-बिन्दु दबाया जाने से अत्यन्त रक्त-स्राव के नियंत्रण में बड़ी सहायता मिलती है।

घाव संक्रमित (infected) हो जाने पर क्या करना चाहिये

जब घाव लाल हो जाता है, उस में दर्द होने लगता है और वह सूज जाता है और उस में पीप पड़ जाती है, तो इस का सब से अच्छा इलाज यह है कि कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़ों को एक चम्मच बोरिक एसिड और आधे प्याले पानी से बने हुए घोल में भिगो कर घाव पर रक्खा जाए। कपड़े पर बार-बार थोड़ा-थोड़ा यह घोल डालते रहना चाहिये जिस से यह बराबर गीला रहे। घाव पर रक्खे जाने वाले इन सब कपड़ों को पहले गरम पानी में उबाल लेना चाहिये। यदि बोरिक एसिड के घोल से भीगे हुए कपड़े के ऊपर मोमजामे का टुकड़ा या मोम का कागज या केले के पत्ते का टुकड़ा रख दिया जाए, तो यह कपड़े

धमनियों के रक्त-स्राव को रोकने के लिए छः मुख्य दबाव-बिन्दु।

हृदय और घाव के बीच, घाव से निकटतम दबाव-बिन्दु को दबाइये।
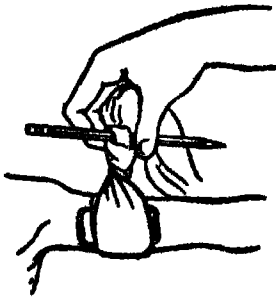
बांह के ऊपरी भाग में धमनी पर चाप दे कर रक्त-स्राव रोकने का साधन (tourniquet)।

कनपटी की धमनी पर दबाव (चाप)।
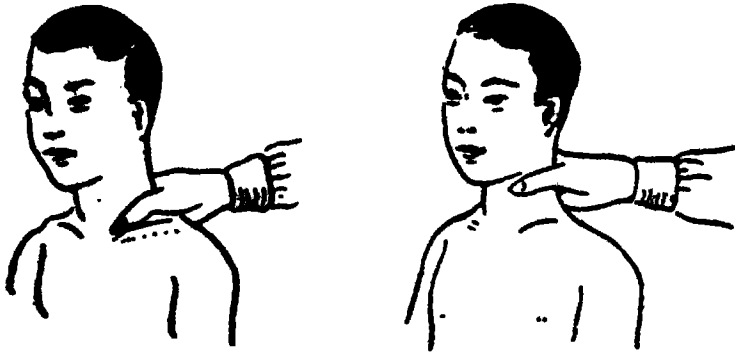
अधोजत्रु (अधोसक) धमनी (Sub-clavian artery) का दबाव-बिन्दु। बांईं ग्रीवा-धमनी पर दबाव।

बांह के ऊपरी भाग में धमनी पर दबाव ।

चेहरे की धमनी पर दबाव ।

उर्‌सन्धि (Groin) की धमनी पर दबाव ।

को जल्दी सूखने नहीं देगा। यदि बोरिक एसिड न मिल सके तो साधारण नमक, एपसम साल्ट का प्रयोग किया जा सकता है।

यदि हाथ या पैर के किसी घाव या चोट में पीप पड़ गई हो, तो बारी-बारी से गर्म और ठंडे पानी से सेंकिये। यह उपचार पृष्ठ १५१ पर देखिये।

मोच आना

मोच एक ऐसी चोट है जो जोड़ के यकायक मुड़ जाने से आती है। प्राय: कलाई और टखने के जोड़ों में मोच आ जाती है।

मोच आए हुए भाग को आधे घंटे तक ठंडे पानी में डुबाए रखिये। यदि पास नदी या चश्मा बहता हो तो इलाज और भी सरल हो जाता है। यदि टखने में मोच आ जाने के बाद चलना पड़े, तो पृष्ठ ३१८ पर के चित्रों के अनुसार पट्टी बांधिये।
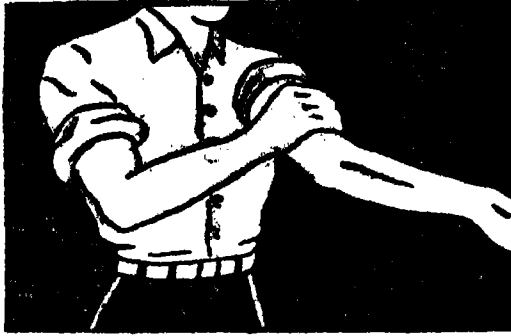
बांह के ऊपरी भाग में धमनी को अपने आप दबाना।

घर पहुंचने पर गट्टे (टखने) पर अंग्रेजी अंक 8 के आकार में पट्टी कस कर बांध दीजिये। यदि सम्भव हो, तो एक छोटी सी थैली में बर्फ भर कर दुखते हुए गट्टे पर रख दीजिये। (परन्तु यह ध्यान रहे कि थैली और गट्टे के बीच फ्लालैन का एक टुकड़ा अवश्य रख दिया जाए।) दो घंटे के बाद आध घंटे के लिए थैली हटा देनी चाहिये। बारह घंटे के बाद बारी-बारी से पृष्ठ १५१ पर वर्णित विधि के अनुसार गरम और ठंडे पानी से सेंकना चाहिये। इन इलाजों के बीच-बीच में टखने पर इस प्रकार पट्टी बांधिये कि आराम मिले; हो सके तो खिंचने वाली (elastic) पट्टी का प्रयोग कीजिये। प्राय: इस प्रकार की चिकित्सा कुछ ही दिन तक आवश्यक होती है।

टूटी हुई हड्डियां

हड्डी टूट जाने पर सदा डॉक्टर को बुलाना चाहिये। नीचे दिये हुए तात्कालिक
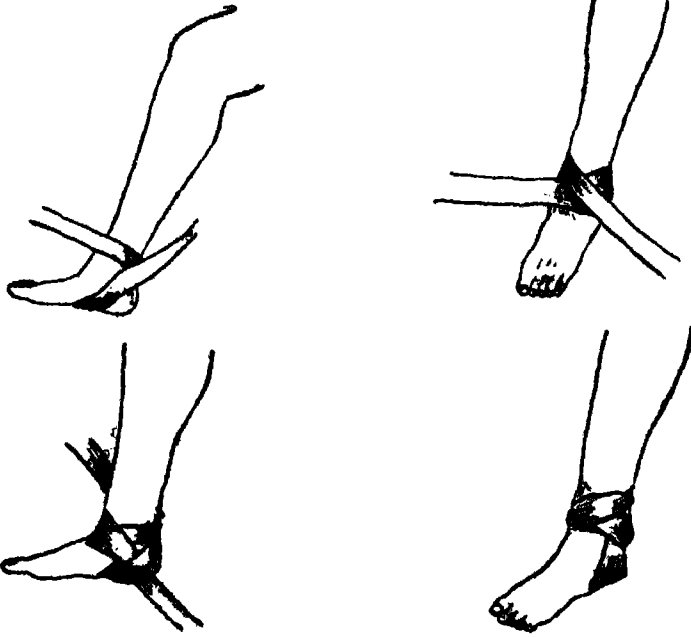
मोच आए हुए गट्टे (टखने) पर पट्टी बांधने की रीति ।

गट्टे को सुरक्षित रखने के लिए: (१) दो इंच चौड़ी एक संकरी पट्टी लीजिये और उसे पांव के नीचे एड़ी के बिल्कुल आगे रखिये । दोनों सिरों को ऊपर की ओर उठाते हुए गट्टे के चारों ओर इस प्रकार लपेटिये कि दोनों सिरे एड़ी के ऊपर आड़े हो कर एक दूसरे पर आ जाएं । (२) अब दोनों सिरों को आगे की ओर इस प्रकार ले जाइये कि वे पांव के ऊपरी भाग (instep) पर आड़े हो कर एक दूसरे पर आजाएं । फिर नीचे पांव के घुमाव (arch) की ओर लेजाइये और दोनों ओर एक-एक सिरे को पट्टी के नीचे खोंस दीजिये । (३) दोनों सिरों को पीछे की ओर ऊपर को कस कर खींचिये और पांव के ऊपरी भाग (instep) पर ला कर बांध दीजिये ।
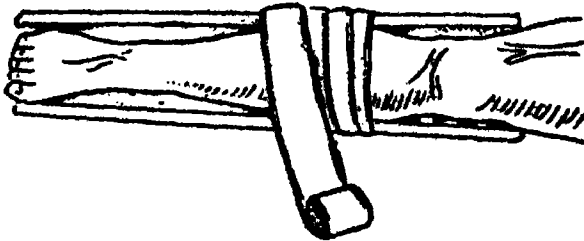
टांग के निचले भाग की टूटी हुई हड्डी के लिए अच्छी खपच्ची ।
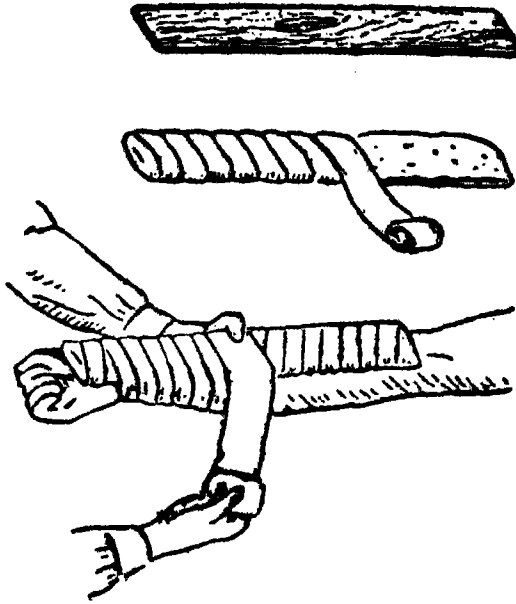
अग्र-बाहु की टूटी हुई हड्डी के लिए काम-चलाऊ खपच्ची।
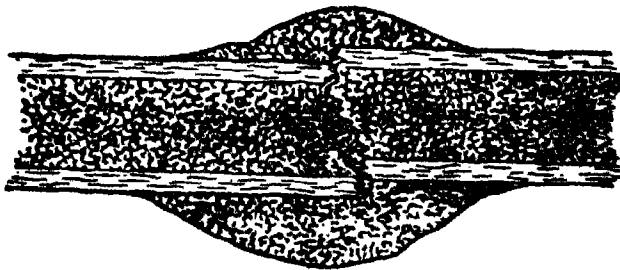
टूटी हुई हड्डी के जुड़ने में प्रकृति का उदारतापूर्ण कार्य।

उपाय उन के लिये हैं जिन्हें तुरन्त ही डॉक्टर न मिल सकता हो; और इन का प्रयोग केवल इतनी देर करना चाहिये जितनी देर डॉक्टर के आने में लगे।

जब किसी व्यक्ति की कोई हड्डी टूट जाए, तो उसे धीरे से लिटा दीजिये और कहिये कि चुपचाप रहे। जब हड्डी टूट जाती है, तो उस के दोनों टूटे सिरों पर नुकीले टुकड़े, इस प्रकार रहते हैं जिस प्रकार टूटी हुई लकड़ी के टूटे सिरों पर रहते हैं। जरा सा हिलने-डुलने से ये नुकीले टुकड़े, मांस में बुरी तरह चुभते हैं, और बहुत कष्ट और हानि पहुंचाते हैं।

जिस व्यक्ति की हड्डी टूट गई हो उसे कहीं उठा कर ले जाने से पूर्व चुटीले अंग पर किसी प्रकार की खपच्ची बांध देनी चाहिये जिस से हड्डी के टूटे सिरे हिल न सकें।

यदि बांह या टांग की हड्डी टूट गई हो तो बांस की चौड़ी-चौड़ी खपच्चियां बना लीजिये। यदि बांह की हड्डी टूटी हो तो बांस की खपच्चियां एक-एक फुट लम्बी होनी चाहियें और यदि टांग की हड्डी टूटी हो, तो खपच्चियां इतनी लम्बी हों कि पैर से ले कर कूल्हे तक पहुंच जाएं।

खपच्ची बांधने के लिए पहले टूटी बांह या टांग को बहुत ही धीरे-धीरे इतना सीधा कर लीजिये कि खपच्ची जम सके। यह काम बहुत धीरे-धीरे और सावधानी से करना चाहिये जिस से बहुत अधिक पीड़ा न हो। इस के पश्चात् टूटे हुए भाग के चारों
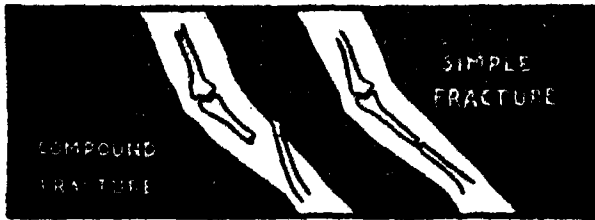
ओर ढेर सी रुई लपेट दीजिये या रुई न मिल सके तो कपड़े के टुकड़े बांध कर गद्दी सी बना लीजिये और खपच्चियां चारों ओर कस कर बांध दीजिये। यह सब कुछ करने के पश्चात् ही रोगी को घर, अस्पताल या औषधालय ले जाना चाहिये।

टूटी हड्डी को जुड़ने के लिए तीन सप्ताह या उस से भी अधिक समय लगता है, अतः उस समय तक ये खपच्चियां बंधी रहनी आवश्यक हैं।

मिश्रित या विशेष अस्थि-भंग (Compound Fractures)

जब टूटी हुई हड्डी या हड्डियां त्वचा को छेद कर बाहर निकल आती हैं, तो इस दशा को मिश्रित या विशेष अस्थि-भंग कहते हैं। इस में बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि मांस-तन्तुओं के अन्दर गन्दगी और कीटाणु घुस जाते हैं जिस से घाव

का संक्रमित होना निश्चित ही समझना चाहिये। जहां तक हो सके किसी योग्य डॉक्टर को बुला ही लेना चाहिये, इस प्रकार से टूटी हुई हड्डी की चिकित्सा खुले घाव की चिकित्सा जैसी होनी चाहिये। जब तक शरीर आवश्यक मरम्मत न कर ले, तब तक घाव में एक नली (Drainage Tube) डाले रखनी चाहिये जिस में से कीटाणु और विष निकलता रहे। इस प्रकार के अस्थि-भंग का इलाज बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

हड्डी उखड़ना

जब जोड़ पर से किसी हड्डी का सिरा अपनी जगह से हट जाता है, तो इस दशा में वह जोड़ हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता। इस से हड्डी उखड़ने और हड्डी टूटने में जो अंतर है वह समझ में आ जाएगा।

हड्डी उखड़ने की चिकित्सा करने का यह उद्देश्य होता है कि हड्डी का एक सिरा अपने स्थान पर आ जाए। इसीलिए डॉक्टर की आवश्यकता पड़ती है। अतः ऐसी दुर्घटना होने पर या तो रोगी को डॉक्टर के पास ले जाइये या उसे ही बुला लीजिये। चोट लगने के पश्चात् जितनी ही जल्दी डॉक्टर की चिकित्सा आरम्भ करवा दी जाए, उतना ही उखड़ी हुई हड्डियों को उन के स्थानों पर बैठा देना आसान हो जाएगा। एक या दो दिन की देर करने से सम्भव है कि डॉक्टर को शल्य-क्रिया द्वारा इलाज करने की आवश्यकता पड़े।

बिजली का झटका

उन नगरों में जहां विद्युत शक्ति प्राप्त है तथा उन स्थानों में जहां से हो कर बिजली के तार जाते हैं, कभी-कभी लोगों को विद्युन्मय तारों के सम्पर्क में आ जाने से बिजली के झटके लग जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति बिजली के विद्युन्मय तार के संपर्क में आ कर पृथ्वी अथवा फर्श पर पड़ा पाया जाए, तो धुएं और अग्नि के चिन्हों से बिजली का संकेत मिल जाएगा, परन्तु इन चिंहों के अभाव में भी यह निश्चय हो सकता है कि तार में हो कर खतरनाक मात्रा में विद्युत प्रवाह हो रहा है, अन्यथा मनुष्य चेतनाहीन नहीं होता।

ऐसे अवसर पर सब से पहला काम यह होना चाहिये कि झटका खाए हुए व्यक्ति को बिजली के तार के पास से दूर हटा दिया जाए, परन्तु इस में यह सावधानी होनी चाहिये कि आप के हाथ न तो विद्युन्मय तार को छुएं और न उस व्यक्ति के शरीर को, ताकि आप को भी झटका न लग जाए। यह कार्य बड़ा कठिन है परन्तु निम्नलिखित परामर्श के अनुसार चल कर किया जा सकता है।

बिजली का झटका खाए हुए मनुष्य को विद्युन्म तार के सम्पर्क से हटाने से पूर्व ऐसा उपाय कर लीजिये कि बिजली का आप पर कोई प्रभाव न हो। ऐसा करने के लिये रबड़ के जूते पहन लीजिये। या रबड़ की चटाई पर खड़े हो जाइये। यदि ये वस्तुएं न मिल सकें, तो बिल्कुल सूखे कागजों के ढेर पर, सूखे तख्ते पर या पुस्तक पर खड़े हो जाइये सूखे दस्ताने पहनिये और सूखा कोट पहन कर बिल्कुल सूखे कपड़े के टुकड़े

या बिल्कुल सूखी छड़ी से तार को उठाइये। दस्ताने पहने हुए हाथ से तार उठाने की चेष्टा न कीजिये। तब उस व्यक्ति को छुड़ा लीजिये।

उस व्यक्ति के कपड़े ढीले कर दीजिये। उसे पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ हवा मिलनी चाहिये। उस का मुंह खोल कर उस की जीभ आगे को खींचिये। यदि वह सांस न ले रहा हो, तो कृत्रिम श्वसन की विधि आरम्भ कर दीजिये (देखिये पृष्ठ ३२९)। ६ से आठ घंटे तक कृत्रिम श्वसन की आवश्यकता हो सकती है। जब रोगी सांस लेने लगे, तो उसे ठंड से बचाए रखने के लिये गरम वस्त्रों से ढांके रखिये।

इसी बीच में प्रश्वासक (inhalator) तथा डॉक्टर को बुला भेजिये।

संभव है कि रोगी का वर्ण नीला पड़ जाए, या वह बिल्कुल पीला पड़ जाए। उस की नाड़ी धीमी पड़ जाएगी या चलना बंद कर देगी। वह पूर्णतया बेहोश होगा। उस के शरीर पर जल जाने से घाव भी हो सकते हैं। उस का शरीर कड़ा हो सकता है, परन्तु बिजली के असर से ऐसा हो जाता है अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि मृत्यु के कारण ऐसा हो गया है। यह समझना भी गलत होगा कि इस चिंह के प्रकट होने से कृत्रिम श्वसन व्यर्थ होगा। घर्षण विद्युत का प्रभाव ठीक वैसा ही होता है जैसा बिजली के विद्युन्मय तार को छूने का। दोनों का उपचार भी एक ही है।

बिजली के झटके से बचे रहने के लिए:

किसी भी लटकते हुए तार को न छुइये, क्योंकि संभव है वह कहीं विद्युन्मय तार के सम्पर्क में आ रहा हो।

विद्युत का ऐसा कोई भी उपकरण (equipment) प्रयुक्त न कीजिये जिस के तारों का आवरण टूटा-फूटा हो।

विद्युत का ऐसा कोई उपकरण न खरीदिये जो अच्छी प्रकार का न हो और या भली भांति स्वीकृत न हुआ हो।

बेहोशी या मूर्छा

स्वस्थ और मजबूत रहने के लिये शरीर के प्रत्येक अंग को ठीक प्रकार क्रियाशील व सचेतन बनाये रखने के लिये मस्तिष्क में रक्त की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिये, क्योंकि मस्तिष्क का केन्द्र ही कार्यों पर नियंत्रण रख कर अंगों का और शरीर की प्रक्रियाओं का संचालन करता है। यदि मस्तिष्क में रक्त-प्रवाह रुक जाए तो महत्वपूर्ण क्रियाएं भी तुरंत रुक जाएं। मस्तिष्क में कम मात्रा में रक्त पहुंचने का पहला परिणाम बेहोशी होता है।

बेहोशी उत्पन्न करने वाली मस्तिष्क में रक्तसंचार की कमी का सदा ठीक-ठीक पता लगा लेना संभव नहीं परन्तु भोजन की कमी, बंद कमरे में रहना, थकावट, रक्तपात का दृश्य, भय, अचानक कोई बुरी खबर सुनना, पीड़ा, या कोई भी भावावेश जनित सदमा व इसी प्रकार की अन्य परिस्थितियां मूर्छा का कारण हो सकती हैं। बेहोशी में चेहरा पीला पड़ जाता है माथा या शरीर के अन्य भाग ठंडे पसीने से तर हो जाते हैं। रोगी को चक्कर आने लगता है और आंखों के सामने से काला बादल सा गुजरता दिखाई

देता है। तब वह मूर्छित हो कर फर्श पर बैठ जाता या गिर पड़ता है। उस की सांस छिछली और नाड़ी (नब्ज) की चाल धीमी हो जाती है।

तर्क के अनुसार मस्तिष्क में रक्त संचार की क्रिया को प्रसम कर देना ही उपचार का लक्ष्य होता है। रोगी को लिटा देना या किसी दूसरे ढंग से उस के शरीर को नीचा रखने में सोच-विचार कर गंभीरतापूर्वक कार्य करना रक्त संचार को ठीक रखने में सहायक होता है। किसी और प्रणाली से मस्तिष्क में सीधे रक्त-संचार को उत्तेजना देने या अप्रत्यक्ष रूप से सिर के किसी अन्य भाग में रक्त प्रवाह को प्रेरित करना भी सहायक होता है।

यदि आप को मूर्छा आती सी मालूम पड़े, और अभी आप मूर्छित न हुए हों, तो आप को चाहिये कि आप जमीन पर चित्त लेट जाएं या बैठ कर आगे की ओर इस प्रकार झुक जाएं कि आप का सिर यथासंभव घुटनों के बीच में हो जाए।

यदि कोई व्यक्ति बेहोश हो चुका हो,तो उसे पीठ के बल जमीन पर लिटा दीजिये और उस के सिर को पैरों की अपेक्षा थोड़ा नीचे कर दीजिये।

उसे यथासंभव ताजा हवा में रखिये।

यदि वह निगल सके तो उसे कोई इस प्रकार स्फूर्तिदायक द्रव्य देना चाहिये, जैसे आधा गिलास पानी में चाय का आधा चम्मच ऐरोमैटिक स्प्रिट ऑव् अमोनिया (aromatic spirits of ammonia) मिला कर दिया जाए—एक बार में केवल दो-चार बूंदें ही मुंह में डालनी चाहियें।

स्मेलिंग सॉल्ट्स (Smelling Salts)*, ऐरोमैटिक स्प्रिट ऑव अमोनिया को रूमाल में ले कर सांस के साथ खींचना, पंखा करना, चेहरे पर ठंडे पानी के छींटे देना अथवा भीगे तौलिये से धीरे-धीरे चेहरे पर थपेड़े मारना, रक्त संचार को बल प्रदान कर सकता है और रोगी को होश में ला सकता है।

जोर की या बार-बार होने वाली उल्टियां

जी मिचलाना और उल्टी करते हुए जोर की उबकाई (ओकाई) बहुत ही कष्टप्रद होती है। कारण चाहे कुछ भी हो वेदना लगभग एक सी होती है और केवल इसी वेदना से कोई यह नहीं कह सकता कि हालत कितनी गंभीर है। उल्टी काले रंग की, मटमैले रंग की या पानी के समान साफ हो सकती है। शुद्ध रक्त की अथवा भोजन के साथ मिश्रित रक्त की उल्टी भी हो सकती है। जमे हुए खून के थक्के या पित्त के साथ मिले हुए पीले या हरे तरल पदार्थ की भी उल्टी हो सकती है।

मद्यसार और अनेक प्रकार के विष से भी जोर की उल्टियां हो सकती हैं। गुर्दे की बीमारी में भी शरीर में विष संचार होने से उल्टी हो सकती है। व्रण या मस्तिष्क में अधिक स्राव, मस्तिष्क में गिल्टी (tumour) तथा रक्तसंचार में रुकावट भी भयंकर उल्टी के कारण हो सकते हैं। ऐसी हालत में प्राय: मतली नहीं होती और उल्टी रोकना कठिन हो जाता है। समुद्र-यात्राओं में उत्पन्न होने वाली मतली में जोर की उबकाई और उल्टी

---

*नौसादर और चूने का मिश्रण, इस से सिर का चक्कर, दर्द आदि कम हो जाता है।

आना प्रमुख लक्षण हैं। कान के अन्दर के भाग में गड़बड़ी होने से भी इसी प्रकार का कष्ट उत्पन्न हो सकता है। ऐनक की आवश्यकता होने से या आंख के गोलक (ढेले) की पेशियों में संतुलन के अभाव से आंख में जोर पड़ता है, फलतः जोर की उल्टी होने लगती है। गर्भावस्था की अपकारक उल्टियां भी नाड़ी-मण्डल जनित दोष से ही उत्पन्न होती हैं। मोटर में या हवाई जहाज में यात्रा करने से भी चक्कर आते हैं तथा उल्टियां होती हैं।

यदि रोगी को बिस्तर पर लिटाने और उस के भोजन को बंद कर देने के २४ घंटे बाद भी उल्टियां लगातार आती रहें तो तुरंत डॉक्टर को बुला भेजना चाहिये, क्योंकि हो सकता है कि बार-बार आने वाली उल्टियां किसी ऐसी भयंकर बीमारी के लक्षण हों जिस का शीघ्र ही उपचार और निदान न किया जाए तो रोगी के प्राण खतरे में हो सकते हैं।

जोर की और लगातार आने वाली उल्टियों में रोगी को बिस्तर पर लिटा देना चाहिये; उस के तलुवों से लगा कर गरम पानी की बोतलें रख दी जाएं और पेट पर ठंडे पानी में भिगो कर कपड़े की गद्दियां (Compresses) रखनी चाहियें।

रोगी के भोजन को थोड़े से रसे (शोरबे), पतले दलिये, हिम-शीत दूध या आंशिक रूप से उबले हुए अंडों तक सीमित कर देना चाहिये। यदि यह भी पच न सके तो 'टोस्ट वाटर' का प्रयोग कीजिये। खूब सिके हुए बादामी रंग के टोस्ट के ऊपर गरम पानी डालिये और रसा निचोड़ लीजिये। इस तरह 'टोस्ट वाटर' तैयार हो जाएगा।

यदि यह भी असफल हो, तो भोजन बन्द कर दीजिये।

बिना भोजन के आराम करते रहने पर भी यदि चौबीस घंटे उपरांत उल्टी जारी रहे, तो डॉक्टर को बुला लीजिये। उल्टी का कारण ठीक-ठीक निर्धारित हो जाना चाहिये और यदि संभव हो, तो उस को दूर भी करना चाहिये।

दांत का दर्द

जब किसी दुखते हुए दांत में कोई छेद हो तो पहले उस में से फंसा हुआ भोजन निकाल देना चाहिये। थोड़ी सी रुई में किसी प्रकार का लौंग का तेल ले कर उस छेद में रख दीजिये। दांत खोदनी से रुई के इस फाहे को अच्छी तरह अन्दर को दबा दीजिये। कभी-कभी दांत के छेद में खाने का सोडा भर देने से भी दर्द बन्द हो जाता है।

जल जाना

यदि थोड़ा सा ही जला हो तो जले हुए भाग को ठंडे पानी में डुबा देने से बड़ा आराम होता है। बीस मिनट या इस से अधिक समय तक जले हुए भाग को ठंडे पानी में डुबाए रखने के बाद कार्बोलेटेड वैसेलीन (Carbolated Vaseline; अर्थात् एक छोटे चम्मच भर वैसेलीन में दो-तीन बूंद कार्बोलिक एसिड मिला कर) जले हुए भाग पर लगा दीजिये या फिर अंडे की सफेदी (सफेद भाग) और खौला हुआ नारियल का तेल बराबर-बराबर मात्रा में मिला कर लगा दीजिये।

यदि शरीर का कोई भाग अधिक जल गया हो तो वहां से कपड़ा काट कर अलग कर

कपड़ों में लगी हुई आग को बुझाने की रीति

जिस व्यक्ति के कपड़ों में आग लग जाए, तुरन्त ही उस के चारों ओर दरी, कम्बल, कोट या जो कुछ भी हाथ आ जाए लपेट दीजिये, और फिर उसे फर्श या जमीन पर लिटा कर लुढ़काइये। चारों ओर लिपटे हुए कपड़े को ओर से दबाते हुए लपटें बुझाने की कोशिश कीजिये। फर्श या जमीन पर से लपटें सिर तक नहीं पहुंच पातीं और इस प्रकार सांस के साथ पेट में जाने से रुक जाती हैं।

दीजिये। ५ प्रतिशत सल्फाथियोजोल का मरहम (Sulfathiazole Ointment) या पेनीसीलिन का मरहम जले हुए भाग पर लगा कर पट्टी बांध दी जाए या किसी साफ कपड़े पर यह मरहम लगा कर जले हुए स्थान पर रख कर पट्टी बांध दी जाए। इसे प्रतिदिन बदलते रहना चाहिये या घाव को साफ रखने के लिए जितने समय बाद बदलना आवश्यक हो इसी हिसाब से बदलते रहना चाहिये। इस मरहम से घाव नर्म रहता है और यह जले हुए स्थान को संक्रमित (infected) होने से बचाता है। टैनीफैक्स (Tanifax) जो किसी भी औषधि विक्रेता की दूकान पर मिल सकता है जले की अक्सीर दवा है। जले भाग पर यह मरहम लगा दीजिये और जब थोड़ी देर बाद सूख जाए तो दूसरी तह जमा दीजिये। जली हुई त्वचा के लिए (Nupercainal Ointment) लाभदायक और ठंडक पहुंचाने वाला है, विशेषकर कड़ी धूप से झुलसी हुई त्वचा के लिए बड़ा गुणकारी सिद्ध होता है। एक और औषधि है जिस को Foille कहते हैं, यह बड़ी गुणकारी है।

उत्तप्ततरल से जला हुआ (Scalds)

गरम या खौलते हुए पानी या तेल से जल जाने पर भी ऊपर लिखी हुई चिकित्सा सहायता पहुंचा सकती है।

हाथ या पैर में लगी हुई फांस या कील का इलाज

सब से पहले फांस या कील को निकाल लीजिये। फिर उस भाग को सहने योग्य गर्म पानी में डुबा दीजिये और बीस मिनट तक उसी में रखिये। इस के बाद उस भाग पर ठंडा पानी डालिये और कोई निःसंक्रामक द्रव्य (disinfectant) या सल्फाथियोजोल मरहम लगा कर पट्टी बांध दीजिये। घाव को संक्रमित होने से बचाए रखने के लिए दिन में कई बार पृष्ठ १५१ पर वर्णित रीति से गरम और ठंडे पानी से सेंकना चाहिये।

सांप का काटा (सर्प दंश)

भारतवर्ष में प्रति वर्ष हजारों लोग सांप के काटे से मर जाते हैं। परन्तु यदि ठीक समय पर उचित उपचार हो जाए, तो इन में से बहुतों के प्राण बचाए जा सकते हैं। सांप प्रायः हाथ या पैर में ही काटता है। इसलिए तत्क्षण काटे हुए अंग पर घाव से जरा ऊपर अर्थात् दंश-स्थान और शेष शरीर के बीच डोरी, रुमाल, टाई या कोई कपड़ा कस कर बांध देना चाहिये। यदि इस डोरी, रुमाल आदि को एक छोटे से डंडे की सहायता से ऐंठ दिया जाए, तो बहुत अच्छा हो। इस से विषैला रक्त शरीर के अन्य भागों में (विशेषकर हृदय में) नहीं पहुंच पाता। बिना देर किए सांप के दांतों के चिन्हों पर चाकू, उस्तरे या किसी अन्य साफ और तेज अस्त्र से कई चीरे लगा दीजिये। जिस से रक्त बह जाए। घाव के चारों ओर ये चीरें इस प्रकार लगाए जाएं कि जितना रक्त निकल सके निकल जाए। यदि इस चीरे लगे भाग पर मुंह लगा कर कोई चुसकी मार-मार के

रक्त थूकता जाए, तो विषैला रक्त और रक्त-रस (Serum) बहुत अधिक मात्रा में बाहर खींचा जा सकता है। चुसकी मारने वाले को यह काम बड़ी सावधानी से करना चाहिये, ऐसा न हो कि कहीं उस का मुंह अन्दर से छिल जाए। इस प्रकार की प्राथमिक चिकित्सा के बाद, रोगी को ऐसे औषधालय जहां या ऐसे डॉक्टर के पास जिस के पास विष-हारक (anti-venin) हो ले जाना चाहियें। इस अवधि में वह डोरी, रुमाल आदि बंधा रखना चाहियें। परन्तु इसे एक घंटे से अधिक नहीं बंधा रहना चाहियें नहीं तो उस अंग के निर्जीव हो जाने का भय रहता है। एक घंटे के बाद उसे धीरे-धीरे ढीला कर देना चाहियें जिस से रक्त-प्रवाह फिर से जारी हो जाए।

यदि विष-हारक का प्रयोग समय पर किया जाए, तो इस से बढ़ कर प्राण रक्षा का और कोई साधन नहीं। इसलिए विष-हारक के मिलने का स्थान सभी को मालूम होना चाहियें।

बिच्छू और कनखजूरे के डंक

बिच्छू या कनखजूरे (Centipede) के डंक मारने पर तुरन्त ही डंक लगे स्थान पर त्वचा में सूई से गहरे-गहरे बारह-चौदह छेद कर दीजियें। फिर त्वचा को पानी से गीला कर के उस पर पोटैशियम परमैंगनेट का चूर्ण छिड़क दीजियें और कुछ मिनट तक ऐसे ही रहने दीजियें।

लू लग जाना

जब धूप में काम करते-करते लोग अचानक बेहोश हो कर धरती पर गिर पड़ें, तो उन्हें तत्क्षण छाया वाले स्थान पर ले जाना चाहियें और सिर और छाती पर ठंडा पानी छिड़कना चाहियें। जब रोगी पर ठंडा पानी छिड़का जाए तो कोई दूसरा व्यक्ति उस की छाती और बांहों को जोर-जोर से मलें। लू लग जाने पर गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो सकती है, इसलिए तत्क्षण डॉक्टर को बुला कर रोगी को दिखाना चाहियें।

विष खा लेना

जब कोई व्यक्ति विष खा ले, तो कार्बोलिक एसिड जैसे क्षारक विषयों की घटनाओं को छोड़ कर प्रत्येक दशा में सब से पहला काम यह करना चाहियें कि रोगी को उल्टी कराई जाए। इस की एक विधि तो यह है कि मुर्गियों आदि के पर से या उंगली डाल कर उस के गले को गुदगुदाया जाए। यदि इस से काम न चले, तो एक गिलास गुनगुने पानी में दो बड़े चम्मच भर पिसी हुई राई, या चार बड़े चम्मच भर नमक, या दो बड़े चम्मच भर खाने का सोडा मिला कर पिला देना चाहियें, तुरन्त उल्टी हो जाएगी।

कार्बोलिक एसिड पी लेना

जिस ने कारबोलिक एसिड पी लिया हो, उस के प्राण बचाने के लिये उसे वमन करवाना आवश्यक नहीं, बल्कि उसे शीघ्र ही चार-पांच कच्चे अंडे खिला दीजियें। इस

के बाद रोगी को एक गिलास पानी में एक बड़ा चम्मच भर मैगनेशियम सल्फेट (एपसम सॉल्ट) या सोडियम सल्फेट (Sodium Sulphate) घोल कर पिला दीजिये।

संखिया या चूहों का विष खा लेना

वमन कराने के उपर्युक्त उपायों को काम में लाइये। फिर रोगी को चार-पांच कच्चे अंडे और एक बड़ी खुराक मैगनेशियम सल्फेट या सोडियम सल्फेट की खिला दीजिये।

डूबे हुओं की जान बचाना

डूबे हुए को पानी से बाहर निकाला जाने के बाद तुरन्त ही उस के मुंह और नाक में से कीचड़ निकाल दीजिये। छाती पर के कपड़े को फाड़ कर अलग कर दीजिये। उस का मुंह खोल दीजिये और दांतों के बीच एक लकड़ी लगा कर मुंह खुला रहने दीजिये। रोगी को औंधा कर दीजिये, अपनी बांहें उस की बांहों के नीचे डाल कर शरीर के बीच का भाग ऊपर की ओर उठाइये जिस से पानी उस के फेफड़ों में से बाहर निकल जाए। ज्योंही पानी नाक और मुंह से निकलना बन्द हो जाए, त्योंही शरीर को औंधा लिटा दीजिये। कपड़े की गद्दी सी बना कर पेट के नीचे रख दीजिये। पीठ को दबाने से वायु फेफड़ों में से बाहर निकल जाती है और जब दबाव कम कर दिया जाता है तो हवा फेफड़ों में घुस जाती है। यदि रोगी में प्राणों के कुछ भी चिन्ह हों, तो एक घंटे या इस से भी अधिक समय तक कृत्रिम-श्वसन जारी रखिये। यदि पास ही कोई और सहायता देने वाला हो तो उस से शरीर को मलवा कर सुखवा लीजिये। गर्म पानी की बोतलें मंगवा कर रोगी के शरीर के पास रख दीजिये। पानी अधिक गरम नहीं होना चाहिये, क्योंकि मृत शरीर की त्वचा बहुत आसानी से जल जाती है।

कुत्ते या किसी अन्य पशु के काटे का इलाज

जब कुत्ता या कोई अन्य पशु काट ले तो घाव को निःसंक्रमक पानी या साबुन और पानी से धो कर अन्य घावों की सी चिकित्सा की जाए।

इस के बाद दूसरा काम इस बात को निश्चित करना होगा कि वह कुत्ता या पशु पागल तो नहीं। उसे ऐसी जगह बांध कर रखना चाहिये कि वह औरों को न काट सके। यदि वह पागल हो गया हो तो दस दिन के अन्दर-अन्दर मर जाएगा। यदि ऐसा हो तो रोगी को किसी अस्पताल या आरोग्य-केन्द्र में ले जाइये जहां सूइयां लगा कर पागल कुत्ते आदि के विष का इलाज होता हो। अंग्रेजी में इस इलाज का नाम है Pasteur Treatment। रोगी में पागलपन या हड़क के लक्षण प्रकट होने से पूर्व ही उपचार आरम्भ हो जाना चाहिये क्योंकि लक्षण प्रकट होने के बाद उपचार से कोई विशेष लाभ नहीं होता। यदि वह पशु भाग गया हो और यह पता न लगे कि वास्तव में वह पागल था भी या नहीं, तो यही उचित होगा कि पूर्ण चिकित्सा कराई जाए।
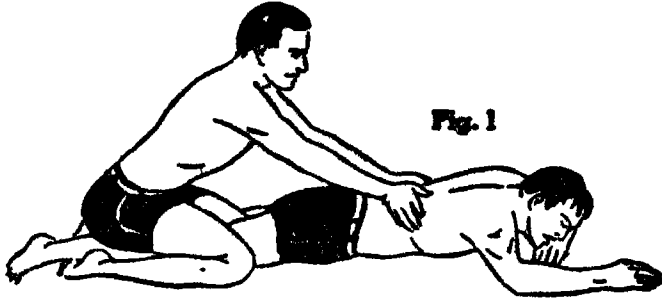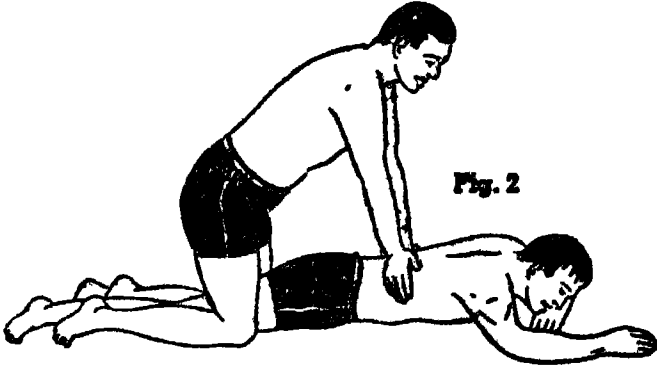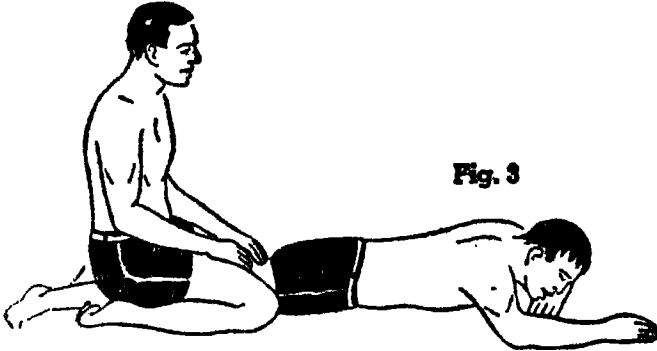
रोगी को औंधा लिटा कर कृत्रिम-श्वसन की विधि।

यदि किसी प्रकार का संदेह हो कि इस दशा में क्या किया जाए और क्या न किया जाए, तो निम्नलिखित चार 'पास्ट्यूर इंस्टिट्यूटों' में से किसी एक को तुरन्त तार भेज कर परामर्श प्राप्त कर लेना चाहिये; तार में पूरा-पूरा हाल होना चाहिये।

इन चार संस्थाओं में से प्रत्येक का पूरा पता और तार का पता इस प्रकार है:—

१. पास्ट्यूर इंस्टिट्यूट ऑव् इन्डिया, कसौली—(Pasteur)
२. पास्ट्यूर इंस्टिट्यूट ऑव् सदर्न इन्डिया, कुनूर मद्रास—(Virus)
३. पास्ट्यूर इंस्टिट्यूट ऑव् रंगून, बर्मा—(Virus)
४. किंग एडवर्ड सातवां मेमोरियल पास्ट्यूर इंस्टिट्यूट, शिलांग, आसाम—(Rabies)

पागल पशुओं के काटे की चिकित्सा (The Pasteur Anti-Rabic Treatment) के अब भारत में अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके हैं, अत: उपर्युक्त चार संस्थाओं से दूर रहने वालों को इतनी लम्बी यात्रा करने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक स्थान पर बढ़िया प्रकार के नागरिक या असैनिक अस्पताल में, सभी सैनिक अस्पतालों में, बहुत से मिशन अस्पतालों में, बड़ी-बड़ी जगहों पर रेल वालों के अस्पतालों में, जिला और केन्द्रीय जेलों में इस उपचार के लिए प्रत्येक प्रकार की सुविधाएं ऐसे कुत्ते द्वारा काटे जाने पर जिस के पागल होने में संदेह हो, सब से पहला काम जो करना चाहिये वह है ऊपर बताया गया प्राथमिक उपचार। इस के बाद तुरन्त ही रोगी को उस निकट के केन्द्र में ले जाइये जहां यह विशेष चिकित्सा होती है।

अध्याय ४१

शरीर रूपी मन्दिर

इस पुस्तक के पृष्ठों में हम ने मानव शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों का अध्ययन किया है; हमें बार-बार यह ज्ञात हो चुका है कि हमारा शरीर एक अद्भुत रचना है। इस की उपमा एक मशीन से दी जा सकती है, बल्कि, वास्तव में, यह स्वयं एक अनुपम मशीन है—मनुष्य ने आज तक जितनी मशीनें बनाई हैं, उन में से कोई भी इस चमत्कारिक मशीन की बराबरी नहीं कर सकती।

अपने मस्तिष्क तथा चेता-संस्थान पर ही विचार कीजिये जिन के द्वारा मनुष्य का मन कार्य करता है और मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह सोच सके, तर्क कर सके, योजनाएं बना सके, नए-नए आविष्कार कर सके, समझ सके, प्रेम कर सके और अपने बनाने वाले की स्तुति कर सके। टेलीफोन और तार के आविष्कार से बहुत पहले से ही मनुष्य के शरीर के अन्दर एक अद्भुत तार-प्रणाली है जिस के द्वारा मस्तिष्क अपने संदेश शरीर के प्रत्येक अवयव और पेशी को भेजता है।

आंख की सूक्ष्म रचना पर गहराई से सोचिये। इसी के द्वारा वस्तुओं आदि के चित्र बनाए जाते हैं और मस्तिष्क को भेजे जाते हैं। मनुष्य भौतिक विज्ञान के विषय में बहुत कम जानकारी रखता है, परन्तु इस से बहुत पहले कि उसे इस विषय का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ, इन विज्ञान के नियमों को अद्भुत रीति से मानव नेत्र में दर्शाया जा चुका था। छाया-चित्र विज्ञान (Photography) के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में

बहुत कुछ प्रगति हुई है, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म-ग्राही और बड़ा-से-बड़ा कैमरा (Camera) भी हमारी आंख के सामने तुच्छ ठहरता है।

पाचन-क्रिया और विपाक अर्थात् शरीर में भोजन पच कर रक्त इत्यादि बनने के कार्य (Metabolism) के चमत्कारों पर तनिक ध्यान दीजिये—इन्हीं प्रक्रियाओं द्वारा भोजन शरीर में ले जाया जाता है और वह फिर शरीर को ऊर्जा देता है, हमारे तन्तु की टूट-फूट की मरम्मत करता है, इसी से हमारे मस्तिष्क, हमारी हड्डियों और हमारी मांस-पेशियों का निर्माण होता है जिस से हम जीवित रहते हैं, चलते-फिरते हैं, काम-काज करते हैं और सोचते-समझते हैं। मनुष्य आज तक किसी ऐसे यंत्र का आविष्कार नहीं कर सका है जो इतने थोड़े से ईंधन की सहायता से इतनी अधिक ऊर्जा उत्पन्न कर सके, या जो इतनी कम मरम्मत और थोड़ी-सी देख-रेख से अधिक समय तक इतनी निपुणता से कार्य कर सके।

इन अद्भुत प्रक्रियाओं में प्रजनन की आश्चर्यजनक क्रिया और सम्मिलित कर लीजिये, तो आप को पूर्ण विश्वास हो जाएगा कि प्राणी जीवन मनुष्य के हाथों आविष्कृत और निर्मित वस्तुओं से सर्वदा भिन्न तथा अधिक उच्च कोटि का है। क्या आप कभी ऐसी कल्पना भी कर सकते हैं कि एक यंत्र अपने भीतर से दूसरा नन्हा सा यंत्र उत्पन्न करे? नहीं! कदापि नहीं!! यंत्र-विज्ञान के जगत् में ऐसा कभी नहीं हुआ, और न कभी होगा। कलन-यंत्र (Calculation Machines) तो हैं जो संख्याओं को जोड़ सकते हैं और उन्हें गिन सकते हैं, और इस प्रकार ऐसा आभास होता है कि उन में विचार करने की शक्ति है, परन्तु वे अपने अन्दर से अपने ही समान अन्य नन्हे यंत्र उत्पन्न नहीं कर सकते जो इन के घिस जाने या टूट-फूट जाने पर इन का स्थान ग्रहण कर सकें। ऐसे भी यंत्र निर्मित हो चुके हैं जो बिल्कुल मनुष्य जैसे दिखाई देते हैं और मनुष्य के बहुत से कामों की नकल भी कर सकते हैं परन्तु आदमी के समान काम करने वाले इस लोहे के आदमी, 'रोबॉट,' ने आज तक किसी शिशु 'रोबॉट' को जन्म नहीं दिया!

मानव शरीर की चमत्कारिक प्रक्रियां निश्चित रूप से इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि इस अद्भुत रचना के पीछे ईश्वरीय शक्ति है। इस से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि मानव शरीर में कार्य करने वाले नियम—प्रकृतिक नियम, स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम—ईश्वरीय नियम हैं। अतः जिस प्रकार मनुष्य का यह धर्म है कि वह ईश्वर के महान् नैतिक नियम का पालन करे, इसी प्रकार उस का यह भी कर्तव्य है कि स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार ही जीवन व्यतीत करे।

जब यह बात समझ में आ गई कि अपने शरीर को और अपने स्वास्थ्य को उत्तम स्थिति में रखना हमारा धर्म है, तो हमें चाहिये कि हम स्वास्थ्य के नियमों का बड़े ध्यान-पूर्वक मनन करें और उन्हें अपनी संतान को भी सिखाएं जिस से हम सब भली भांति समझ जाएं कि हमें किस प्रकार रहना-सहना चाहिये। इस के साथ-ही-साथ यह ज्ञात हो जाने पर कि सुरासार, तम्बाकू, अफीम, पान-सुपारी, मिर्च, चाय और कॉफी जैसे पदार्थों का प्रयोग हानिकारक होता है, हमें दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये कि हम इन पदार्थों को कभी हाथ तक न लगाएंगे। आहार-सम्बन्धी विषय का हमें बहुत ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिये क्योंकि अन्य बातों की अपेक्षा इसी का स्वास्थ्य पर सब से अधिक प्रभाव

पड़ता है। हमें ऐसी आदत बना लेनी चाहिये कि भोजन में हमें केवल स्वास्थ्यप्रद पदार्थ ही रुचिकर हों। यदि हम ऐसे पदार्थों का प्रयोग कर रहे हैं जो स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक हैं, तो हमें अपनी खाने-पीने की आदतों को बदल डालना चाहिये और दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये कि हम कुरुचि की दासता में नहीं फंसेंगे।

अपनी उत्पत्ति के पश्चात् जिन खाद्य पदार्थों का मनुष्य ने सर्व प्रथम प्रयोग किया, वही उस के आहार के लिए सर्वोत्तम थे। जब परमेश्वर ने मनुष्य की रचना की थी तो उस ने उसे खाने के लिए स्वादिष्ट फल, अन्न-पदार्थ और पृथ्वी से उगने वाली तरकारियां प्रदान की थीं। निस्संदेह जो परमेश्वर ऐसे अद्‌भुत शरीर की रचना कर सका, वह अवश्य यह बात जानता था कि इस शरीर के पालन-पोषण और इसे स्वस्थ रखने के लिए कौन-कौन से खाद्य-पदार्थ सब से अधिक उपयोगी होंगे। यदि हम ने हानिकारक पेयों और मादक पदार्थों के प्रयोग और मांस आदि खाने की आदतें डाल ली हैं, तो यह हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसी कुरुचियों के दासत्व से अपने को मुक्त कर लें, और ईश्वर की कृपा से प्रकृति के उन नियमों के अनुसार जीवन बिताएं जो हमारे शरीर के लिए उचित और लाभप्रद समझे गए हैं।

जिन व्यक्तियों में अपने अन्दर उपर्युक्त परिवर्तन करने का साहस होता है उन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि ऐसा करने से नया स्फूर्तिदायक स्वास्थ्य तथा मानसिक तीक्ष्णता प्राप्त होती है और ऐसे नए संतोषजनक आत्मसम्मान का अनुभव होता है जो उस कार्य को पूर्ण करने से होता है जिसे हम उचित तथा योग्य समझते हैं।

सब से बढ़ कर बात तो यह है कि इस प्रकार का आचरण ग्रहण कर के हम अपने महान् रचयिता के सहयोगी बन जाते हैं; हमें उस की शक्ति और दया का आभास होने लगता है, जो हमें समस्त पापों से मुक्त कर सकता है। केवल इसी से हमें मन की शांति प्राप्त होती है और स्वास्थ्य के लिए मन की शांति अत्यंत आवश्यक होती है।

इस प्रकार हम ईश्वर अर्थात् अपने रचयिता के प्रति श्रद्धा और उस में दृढ़ विश्वास बनाए रख कर ही शारीरिक तथा आत्मिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं, और इन्हीं के द्वारा हम अपना यह जीवन सुखी बना सकते हैं और भविष्य में अनन्त जीवन की आशा रख सकते हैं।

जो व्यक्ति ऐसे भविष्य के अभिलाषी हों उन के लिए हमारा यह परामर्श है कि वे ईश्वर के वचन अर्थात् बाइबल का अध्ययन ध्यानपूर्वक करें। उस पवित्र पुस्तक में ईश्वर ने हमें यह वचन दिया है कि प्रभु यीशु मसीह द्वारा वह हमें एक ऐसे देश में रहने को स्थान् देगा जहां पाप, रोग और मृत्यु न होंगे, और जहां सब को शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य व अनन्त यौवन प्राप्त होगा। यही नहीं बल्कि बाइबल का श्रद्धा-पूर्वक अध्ययन करने से हमें इस जीवन में भी लाभ होगा—हम अपने दयामय रचयिता के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करेंगे। जैसे-जैसे हम अपने रचयिता और उस के द्वारा स्थापित शारीरिक नियमों को जानते जाएं, वैसे-ही-वैसे हमें चाहिये कि उन नियमों का सावधानी और दृढ़ता से पालन करने का प्रयत्न करें, क्योंकि उन नियमों का सम्बन्ध स्वास्थ्य से है, और वे ईश्वरीय नियम हैं। इन नियमों का पालन करने से ही स्वास्थ्य और सुख प्राप्त होता है।

पिछले अध्यायों में अभिदिष्ट नुसखों का सूचीपत्र

नं. १. बोरिक एसिड का घोल (Boric Acid Solution) एक ऐसी साफ बोतल लीजिये जिस में ७ आउंस या उस से अधिक पानी आ सके (एक गिलास पानी)। बोतल में एक बड़ा चम्मच भर बोरिक एसिड के कण डालिये। बोतल में खौला हुआ पानी भरिये। इस का प्रयोग करने से पूर्व कुछ घंटे तक इसे इसी प्रकार पड़ा रहने दीजिये। सारा बोरिक एसिड नहीं घुलेगा। बोतल से बाहर उंडेलते समय इस बात का ध्यान रखिये कि कोई कण न आने पाए। घोल का प्रयोग करते समय अधिक पानी का प्रयोग किया जा सकता है जिस से कण घुल जाएं।

नं. २. टिंक्चर आव् आयोडीन (Tincture of Iodine) तैयार किया हुआ किसी भी औषधि विक्रेता की दूकान से खरीदा जा सकता है।

नं. ३. आर्जीरोल का घोल (Argyrol solution) यह भी किसी औषधि विक्रेता की दूकान से खरीदा जा सकता है। केवल दस प्रतिशत घोल का प्रयोग किया जाए। यदि यह तीस दिन से अधिक का हो तो इस का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

नं. ४. बोरिक एसिड पाउडर किसी भी औषधि विक्रेता की दूकान से मिल सकता है।

खुसी और बाल झड़ने की चिकित्सा

नं. ५. दो ड्राम गन्धक (लगभग ७ माशे या दो चाय के चम्मच भर) एक आउंस या २ बड़े चम्मच भर वैसलीन में मिलाइये।

गंज की चिकित्सा के लिए

नं. ६. २०ग्रेन रिसोरसिन (Resorcin) और ५ ड्राम मद्यसार और ५ ड्राम पानी मिलाइये।

दस्त रोकने के लिए

नं. ७. (क) मिलाइये
- सबनाइट्रेट आव् बिस्मथ (Subnitrate of Bismuth) २ ड्राम
- सैलोल (Salol) १ ड्राम
- चाक मिक्सचर (Chalk Mixture) १॥ आउंस

एक छोटा चम्मच भर तीन-तीन या चार-चार घंटे बाद दीजिये।

बच्चे के लिए

(ख) मिलाइये
- सबनाइट्रेट आव् बिस्मथ ३६ ग्रेन
- सैलोल (Salol) १२ ग्रेन
- चाक मिक्सचर ४ ड्राम

एक छोटा चम्मच भर तीन-तीन या चार-चार घंटे बाद दीजिये।

नं. ८. (Burnt Alum) इस प्रकार बनाया जाता है कि एक चम्मच में एक टुकड़ा फिटकरी डाल कर उसे आग पर रक्खा जाए, जब तक वह पिघल कर सफेद और फिर सूख न जाए, तब तक आग पर ही रहने दिया जाए।

कुल्ली और गरारे के लिए

नं. ९.

मिलाइये	कार्बोलिक एसिड (Carbolic Acid)	१ ड्राम
	ग्लीसिरीन	१ आउंस
	सम्मिश्रित बोरिक एसिड का घोल	१० आउंस

एक और उपयोगी नुसखा इस प्रकार का है:—

मिलाइये	बोरिक एसिड (Boric Acid)	१ ड्राम
	पोटेशियम क्लोरेट (Potassium Chlorate)	२॥ ड्राम
	पेपरमिंट वॉटर (Peppermint Water)	१२ आउंस

कुल्ली और गरारे करने का एक और अच्छा नुसखा यह है कि एक गिलास पानी में एक छोटा चम्मच भर नमक और एक चम्मच खाने का सोडा मिलाइये।

नं. १०.

मिलाइये	कार्बोलिक एसिड (Carbolic Acid)	१॥ ड्राम
	मद्यसार (Alcohol)	२ आउंस
	पानी	५ आउंस

इस से भी कुल्ली और गरारा करने का अच्छा पानी बनता है।

छोटी फुंसियों आदि के लिए मरहम

नं. ११.

मिलाइये	वेसलीन	१ आउंस
	सल्फाथियोजोल पाउडर	३ ग्राम

कलेजे (दिल) पर जलन या खट्टी डकारों की चिकित्सा के लिये

नं. १२ सोडा बाईकार्बोनेट (खाने का सोडा) या मैगनेशिया थोड़ा-थोड़ा छोटे चम्मच से खाना चाहिये।

बवासीर आदि का मरहम

नं. १३. वही जो नं. ११ में बताया गया है।

दांत का मंजन

नं. १४.

मिलाइये	पिसी हुई खरिया	॥ पाउंड
	पिसा हुआ कैस्टाइल सोप (Castile Soap)	१॥ आउंस
	चीनी	१ आउंस
	पिसी हुई ऑरिस रूट (Orris Root)	१ आउंस

नं. १५. अंकुशी कृमि (Hookworms) के नुसखों के लिए देखिये अध्याय २८।

सूंघने के लिये औषधि

नं. १६. बराबर बराबर मात्राओं में मिलाइये	
	मेन्थॉल (Menthol)
	कपूर (Camphor)
	यूकेलिप्टस आयल (Eucalyptus Oil)
	ऑलियम पिनी सिल्वेस्ट्रिस (Oleum Pini Sylvestris)

सूंघने की एक सस्ती दवा

नं. १७. दवा का प्रयोग करने की यह विधि है: एक छोटा सा बांस का टुकड़ा लीजिये जो भीतर से खोखला हो। वह चार इंच लम्बा और उंगली के बराबर मोटा हो। उस के एक सिरे पर डाट या लकड़ी का टुकड़ा लगा दीजिये जिस के भीतर एक छोटा-सा छेद हो। कपड़े या रुई का छोटा-सा टुकड़ा इस दवा में भिगो कर उस के अन्दर रख दीजिये। फिर बांस का खुला हुआ सिरा नाक के छेद में लगा कर दवा को सूंघिये। दिन में कई बार इस क्रिया को कीजिये। जब इस नली का प्रयोग न किया जा रहा हो तो बांस के खुले सिरे पर भी डाट लगा दीजिये जिस से दवा उड़ न जाए।

सूखी खांसी के लिए

नं. १८. मिलाइये		
	कोडीन सल्फेट (Codein Sulphate)	३ ग्रेन
	अमोनियम क्लोराइड (Ammonium Chloride)	७५ ग्रेन
	सिरप ऑव् सिटरिक एसिड (Syrup of Citric Acid)	१ आउंस
	पानी	१॥ आउंस

वयस्क रोगी एक छोटे चम्मच भर पानी में मिला कर तीन-तीन या चार-चार घंटे बाद पिए। बच्चों को चम्मच का १/३ भाग दिया जाए।

मासिक धर्म बंद हो जाने की चिकित्सा के लिए

१९. ४ ग्रेन सल्फेट ऑव् आयरन (sulphate of iron) और ३ ग्रेन ओवरिन (Ovarine) मिलाइये इस को कैपसूल में रख कर दिन में तीन बार खाइये।

हरित्-पाण्डु रोग (Chlorosis)

२०. ब्लॉड की गोलियां (Blaud's Pills) प्रत्येक गोली में दो ग्रेन सल्फेट ऑव् आयरन होता है।

नं. २१. (Blue Ointment) नीला मरहम यह बना बनाया औषधि विक्रेता की दुकान से मिल सकती है।

नं. २२. पहले एक गिलास पानी पोटेशियम परमैंगनेट (Potassium Permanganate) का गाढ़ा घोल बनाइये। उसे बार-बार हिला लेना चाहिये और उस का प्रयोग करने से पूर्व कुछ घंटों तक ऐसा ही रक्खा रहने देना चाहिये। यह तेज घोल ऐसे ही इस्तेमाल नहीं करना चाहिये, बल्कि इस के दो छोटे चम्मच भर कर दो गिलास पानी में मिलाइये,

उपचारानुक्रमणिका

(Treatment Index)

रोग-निरोधक टीके

रोग	आयु और परिस्थितियां	पहली बार के टीके और बाद के टीके
१. शीतला या चेचक (Small-pox)	छः महीने का होने से पूर्व ही प्रत्येक बालक के टीका लगना चाहिये।	हर तीन साल के बाद टीका लगना चाहिये, परन्तु यदि चेचक फैल रही हो, तो जहां संक्रमण की सम्भावना हो वहां प्रत्येक व्यक्ति के टीके लगना चाहिये।
२. मोतीझरा या आंत्रिक ज्वर या मियादी बुखार (Typhoid)	एक साल से ऊपर का हो जाने पर; जब संक्रमण का भय हो।	दो टीके—एक पहले और दूसरा ७-१० दिन के बाद। फिर प्रति वर्ष एक टीका।
३. हैजा (Cholera)	एक साल से ऊपर का हो जाने पर; जब संक्रमण का भय हो।	दो टीके—एक पहले और दूसरा ७-१० दिन के बाद। फिर प्रतिवर्ष एक टीका।
४. महामारी (Plague)	एक साल से ऊपर का हो जाने पर; जब संक्रमण का भय हो।	दो टीके—एक पहले और दूसरा ७-१० दिन के बाद। फिर हर छः महीने बाद एक टीका।
५. मोह-ज्वर (Typhus)	एक साल से ऊपर का हो जाने पर; जब संक्रमण का भय हो।	दो टीके—एक पहले और दूसरा ७-१० दिन के बाद। फिर साल भर में दो बार —एक नवम्बर के आरम्भ में और दूसरा फरवरी के आरम्भ में।
६. पीत ज्वर (Yellow Fever)	आयु-प्रतिबन्धन नहीं है। प्रत्येक उस व्यक्ति के लिए आवश्यक है जो पीत-ज्वर वाले क्षेत्रों में से गुजरे (अफरीका और दक्षिणी अमरीका में)।	केवल एक टीका। फिर हर चार साल के बाद।
७. हनुस्तम्भ या जमुहां (Tetanus)	३-५ की आयु में	पहली बार—तीन-तीन सप्ताह के बाद एक-एक टीका। इन टीकों के साल भर बाद संक्रमण-निरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए एक टीका। फिर यह रोग जीवन भर नहीं होता।
८. झिल्लीक-प्रदाह (Diptheria)	३ वर्ष की आयु में। ८ वर्ष से कम की आयु वाले बच्चों को Schick Test नामक प्रारम्भिक परीक्षण की आवश्यकता नहीं।	N.A.F.T. के दो टीके। पहला टीका लग चुकने के बाद दूसरा। फिर संक्रमण निरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए साल भर बाद एक और टीका 1. c.c. का।

दुर्घटनाएं तथा आकस्मिक घटनाएं
(अनुक्रमणिका)

सामान्य अनुक्रमणिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप जो छपा है	शुद्ध रूप जो होना चाहिये
१३३	१२	शीतल	शीतला
१३४	१ (चित्र का शीर्षक)	दंतोद्भरे	दंतोद्भेद
	७	सप्राह	सप्रह
१३८	३	चुचली	कुचली
१३९	३०	'प्रटीन'	'प्रोटीन'
१५१	१४	पेड़े.	पेड़.
१६४	३	बिछोने	बिछौने
१६५	१२	स्कती	सकती
१६६	१२	बच्चों के लगने की	बच्चों के दस्त लगने की
१७१	१४	आरंडी	अरंडी
१७२	१२	या बढ़े. हुए जाना	या बढ़े. हुए
१७३	२	वृद्धि की	वृद्धि को
१७३	६, १२	की, कौमार्य, में	को, कौमार्य, 'में' नहीं होना चाहिये
१७६	६, २८	पैपाने, कीशोरा-	पैमाने, किशोरा-
१७७	२१	लगने दो दिन	लगने के दो दिन
१७८	२१	से	सी
१७९	६, ९	पंछते, अच्छा न जाए	पोंछते, अच्छा न हो जाए
१८०	८	खतनाक	खतरनाक
१८३	६, ३०,	जीनर, "तरल अर्द्ध,	जेनर, "तरल या अर्द्ध,
१८३	३२	वेलाडोना	बेलाडोना
१८९	१, ३४	अदि, मक्यों	आदि, मक्खियों
१९१	२३	टांगा	टांगों
१९२	३, ५	एंठन	ऐंठन
१९५	३	ने	न
१९७	२२	भोजना	भोजन
१९७-१०९	दाहिने पृष्ठ पर सब से ऊपर	सामान्य संक्रामक रोग	पाचन संस्थान के रोग
२०२-२४८	बाएं पृष्ठ पर सब से ऊपर	स्वास्थ्य और जीवन	स्वास्थ्य और दीर्घायु
२००	अन्तिम	वीणर्त	वर्णित
२०१	९	डीलये	डालिये
२०४	२८	'कैप्सूत्स'	'कैप्सूल्स'
२१४	५	अशंका	आशंका
२१६	८, १६	विक्सित, पालइये	विकसित, पालिये
२१८	२१	कल	कुल
२२०	११, २७	पूर्वीय क्षन, हानिकारक होता	पूर्वीय क्षय, कृमियों को दूर रखता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध रूप जो छपा है	शुद्ध रूप जो होना चाहिये
२२३	२४	एंठन	ऐंठन
२२६	२३	एपस-साल्ट	एपसन-सॉल्ट
२२७	२०	बिल्लयों	बिल्लियों
२२९	२३	टीट्यों	टीटटयों
२३०	१९	दिखया	दिखाया
२३२	५	जाएगी	जाएगा
२४३	२७	कुबडे.	कुबड.
२४४	७	फैलाता	फैलता
२४८	३२	पक्वान	पकवान
२५१	१, १४	गोलयां, गर्भशय	गोलियां, गर्भाशय
२५२	७, १७	शरि, घरेलु (पृष्ठ २५४, २६० पर भी)	शरीर, घरेलु
२५३	१८	रज:स्व	रज:स्राव
२५४	१६, १७	गर्भभात, रह जाता है	गर्भपात, रह जाते हैं
२५६	१४, अन्तिम	डिम्ब-ग्रान्थियों, हो सकता	डिम्ब-ग्रन्थियों, हो सकता है
२६४	४	प्रयन्त	प्रयत्न
२७०	२	सकती	सकता
२७१	६, १४, १६	उलस्थित, काणों, काररों	उपस्थित, कारणों
२७२	७	भारता	भरता
२७३	३४	घरेलु	घरेलु
२८३	९, ३१,	घटानाएं, होती	घटनाएं, होती हैं,
२८३	३२	तात्कालित	तात्कालिक
२८४	९, १७,	जागरुक, दुसरों,	जागरूक, दूसरों,
२८४	२१, ३४	आकस्मित, अवरोध	आकस्मिक, अवरोध पर
२८५	२७	विस्फोठों	विस्फोटों
२८६	९	प्रितक्षा	प्रतीक्षा
२८८	१९	वह	'वह' नहीं होना चाहिये
२८९	६, ३०	मिन्टों, जाच	मिनटों, जांच
२९४	२१, अन्तिम	प्रगट, तुरंत	प्रकट, तुरंत
२९६	७, १९	आ जा, कोषों ...	आ जाता, कोषों ... पर
३००	३	हो जाती	हो जाती है।
३२२	१३, १५	चिंह, दोनें	चिह्न, दोनों
३३१	१४, २६	सर्वदा, प्रकृतिक	सर्वथा, प्राकृतिक
३३५	२८	सकती	सकता
गुलाबी पृष्ठ	८, १९, २०	अंगछना;	अंगोछना; पंक्तियों का क्रम गलत है
३४३	२५	देख की	देखने की